उ० प्र० हिं० ग्रं० अ० प्रकाशन-171

सिंधु सभ्यता

लेखक
किरनकुमार थपल्याल एम. ए., पी-एच. डी.
रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

संकटाप्रसाद शुक्ल एम. ए., पी-एच. डी.
लेक्चरर, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र

उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ

प्रस्तावना

शिक्षा आयोग (1964-66) की संस्तुतियों के आधार पर भारत सरकार ने 1968 में शिक्षा संबंधी अपनी राष्ट्रीय नीति घोषित की और 18 जनवरी 1968 को संसद् के दोनों सदनों द्वारा इस संबंध मे एक संकल्प पारित किया गया। उस संकल्प के अनुपालन में भारत सरकार के शिक्षा एवं युवक सेवा मंत्रालय ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षण की व्यवस्था करने के लिए विश्वविद्यालयस्तरीय पाठ्य पुस्तकों के निर्माण का एक व्यवस्थित कार्यक्रम निश्चित किया। उस कार्यक्रम के अंतर्गत भारत सरकार की शत प्रतिशत सहायता से प्रत्येक राज्य मे एक ग्रथ अकादमी की स्थापना की गयी। इस राज्य मे भी विश्वविद्यालयस्तर की प्रामाणिक पाठ्य पुस्तकें तैयार करने के लिए हिंदी ग्रंथ अकादमी की स्थापना 7 जनवरी, 1970 को की गयी।

प्रामाणिक ग्रथ निर्माण की योजना के अंतर्गत यह अकादमी विश्वविद्यालय-स्तरीय विदेशी भाषाओं की पाठ्य पुस्तकों को हिंदी मे अनूदित करा रही है और अनेक विषयो मे मौलिक पुस्तकों की भी रचना करा रही है। प्रकाशन ग्रथो मे भारत सरकार द्वारा स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जा रहा है।

उपर्युक्त योजना के अंतर्गत वे पांडुलिपियाँ भी अकादमी द्वारा मुद्रित करायी जा रही है जो भारत सरकार की मानक ग्रथ योजना के अतर्गत इस राज्य मे स्थापित विभिन्न अभिकरणो द्वारा तैयार की गयी थी।

प्रस्तुत ग्रथ मे डॉ० किरनकुमार थपल्याल व डॉ० सकटाप्रसाद शुक्ल ने 'सिंधु सभ्यता' संबधी आधुनिकतम खोजों से पाठकों को अवगत कराने का प्रयास किया है। पुस्तक की पाण्डुलिपि का पुनरीक्षण प्रसिद्ध विद्वान् श्री मुनीशचन्द्र जोशी, अधीक्षण-पुरातत्वज्ञ भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, उत्खनन शाखा–2, पुराना किला, नई दिल्ली ने किया है। इस बहुमूल्य सहयोग के लिए हिंदी ग्रथ अकादमी इन महानुभावो के प्रति आभारी है।

मुझे आशा है कि यह पुस्तक विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी और इस विषय के विद्यार्थियो तथा शिक्षकों द्वारा इसका स्वागत अखिल भारतीय स्तर पर किया जायगा। उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए हिंदी में मानक ग्रथों के अभाव की बात कही जाती रही है। आशा है कि इस योजना से इस अभाव की पूर्ति होगी और शिक्षा का माध्यम हिंदी में परिवर्तित हो सकेगा।

हजारीप्रसाद द्विवेदी
अध्यक्ष,
शासी मंडल
उ० प्र० हिंदी ग्रंथ अकादमी

भूमिका

सिंधु सभ्यता की खोज से पहले मौर्यकाल से पूर्व की भारतीय पुरातत्व सामग्री नही के बराबर ज्ञात थी। सिंधु सभ्यता के उद्घाटन से तृतीय-द्वितीय सहस्राब्दी की एक विकसित नागरिक सभ्यता का ज्ञान हुआ जिसके निर्माण-कार्य और उपकरण मिस्र और मेसोपोटामिया की सभ्यता के समान विकसित थे और कुछ अर्थों में तो उससे भी बढकर थे।

अब तक इस सभ्यता के अनेक स्थलों का पता चल चुका है और इन स्थलो से प्राप्त मृद्भाण्डो और कुछ अन्य प्रकार के उपकरणों में पर्याप्त एकरूपता पाई गई है। चूकि इस सस्कृति के खोज के प्रथम चरण में जो स्थल मिले वे सिंधु और उसकी सहायक नदियो के तट पर ही स्थित थे अतः मार्शल ने इसे 'सिंधु सभ्यता' नाम दिया। अब जब इस सभ्यता के अवशेष सिंधु के काठे से दूर गंगा जमुना के दोआब और नर्मदा ताप्ती के मुहानों के समीप तक मिल चुके है, भौगोलिक दृष्टि से इस सभ्यता के लिए सिंधु सभ्यता नाम समीचीन नही लगता। पुरातत्वविदो ने इसके लिए 'हडप्पा सभ्यता' नाम सुझाया है, जो उस पुरातत्व परपरा पर आधारित है जिसके अनुसार सभ्यता अथवा संस्कृति का नामकरण उसके सर्व प्रथम ज्ञात स्थल के नाम पर किया जाता है। किंतु 'सिंधु सभ्यता' नाम अत्यधिक प्रचलित है और विस्तृत क्षेत्र में पाये जाने के बावजूद अभी भी सिंधु तट पर मोहेजोदडो और सिंधु की सहायक नदी रावी के तट पर हडप्पा इस सभ्यता के सबसे विशाल, सबसे सुनियोजित और सबसे संपन्न नगर है। अत इस पुस्तक मे इस सभ्यता के लिये सिंधु सभ्यता का ही प्रयोग मुख्यत किया गया है, किंतु कही-कही 'हडप्पा सभ्यता' पद भी प्रयुक्त हुआ है।

सिंधु-सभ्यता अनेक विश्वविद्यालयों के प्राचीन इतिहास के पाठ्यक्रम का महत्त्वपूर्ण अग है। इस विषय पर उपलब्ध अधिकांश मौलिक ग्रंथो मे विद्वानों ने किसी विवादास्पद विषय पर मुख्यत अपने ही मत का उल्लेख किया है, दूसरे मतों का उल्लेख या तो किया ही नहीं या अत्यंत सूक्ष्म रूप से ही किया है। छात्रो को तो सभी महत्त्वपूर्ण मतों से परिचित होना ही चाहिए। हमने किसी मत विशेष को अधिक समीचीन मानते हुये भी सभी मतमतान्तरो से छात्रों को अवगत कराने की चेष्टा की है। सिंधु सभ्यता पर कई साल पहले छपे ग्रंथ प्रकाशन के समय तक उपलब्ध साक्ष्यों के संदर्भ मे तो उपयुक्त थे किंतु अनेक महत्त्वपूर्ण नये साक्ष्यों के कारण अब वे उतने उपयुक्त नही रहे। हमने

विभिन्न विद्वानों के ग्रंथों और लेखों (देखिये, पुस्तक के अंत में ग्रंथ और लेख-सूची) तथा व्यक्तिगत रूप से प्रेरित सूचनाओं के आधार पर सिंधु सभ्यता संबंधी आधुनिकतम खोजों से पाठको को अवगत कराने का प्रयास किया है।

सिंधु सभ्यता के कई उपकरण या उपकरण-प्रकार तत्कालीन जनजीवन के एक से अधिक पहलुओं पर प्रकाश डालते है। हमने जिस संदर्भ मे उनसे अधिक से अधिक प्रकाश पडता है वहा उसके बारे मे विस्तार पूर्वक लिखा है, दूसरे संदर्भों मे उनका संक्षिप्त उल्लेख कर विस्तृत विवरण युक्त अध्याय का संदर्भ दे दिया है। ऐसे विषयों का जिनका विभिन्न अध्यायों के अतर्गत समुचित प्रतिपादन नही हो पाया अथवा जो सिंधु सभ्यता से पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती संस्कृतियों से सबधित है, हमने परिशिष्ट के रूप में विवेचन किया है, तकनीकी शब्दावली के लिये मुख्यतः भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'पारिभाषिक शब्द-संग्रह' का सहारा लिया गया है। हम भाषा संबंधी सुझावो के लिए श्री मोहनकृष्ण डबराल, द्वितीय अध्याय के विषय-सामग्री सबधी सुझावों के लिये श्री रवीन्द्रसिह बिष्ट, और प्रेसकापी तैयार करने मे सहायता के लिए श्रीमती चन्द्रकला थपल्याल के आभारी है। हिन्दी ग्रंथ अकादमी के अध्यक्ष आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी और निदेशक श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित के भी हम आभारी है जिनके सत्प्रयत्न एवं प्रेरणा से इस ग्रंथ का प्रणयन और शीघ्र प्रकाशन की व्यवस्था हो सकी है।

किरणकुमार थपल्याल
संकटा प्रसाद शुक्ल

विषय-सूची

पाठक, कृपया फलकों पर क्रमशः I से XXIX की संख्या अंकित कर लें।

●

अध्याय 1

सिंधु सभ्यता का विस्तार एवं महत्त्वपूर्ण स्थलों का संक्षिप्त परिचय

सिंधु सभ्यता की सबसे बड़ी विशेषता इस सभ्यता की विभिन्न स्थलों में प्राप्त भौतिक सामग्री का बहुत-कुछ समरूप होना है। सिंधु नगरों की भवन-

निर्माण विधि, नालियो की योजना, ईंटो, मृद्भाण्डों, आयुधो, आभूषणों, मुद्राओं, नाप-तौल आदि में बहुत-कुछ एकरूपता देखी जा सकती है। हड़प्पा और मोहें-जोदडो के संदर्भ मे तो यह एकरूपता अत्यंत स्पष्ट है। इन दोनों नगरों के इमारतों
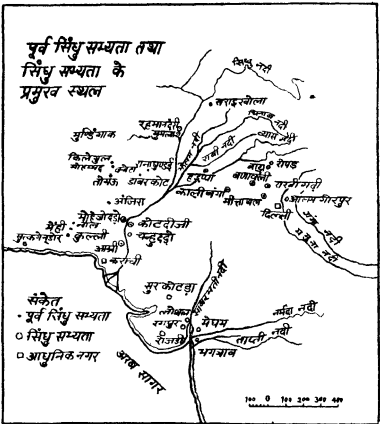
की निर्माण-प्रणाली, मृद्भाण्डो के आकार-प्रकार तथा अलंकरण मे ऐसी भिन्नता नही है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि अमुक वस्तु मोहेंजोदडो की है तथा अमुक वस्तु हडप्पा नगर की। यद्यपि यह सत्य है कि वास्तु संबधी कुछ बातें किसी स्थलविशेष मे विशिष्ट रूप से मिली है (जैसे मोहेंजोदडो मे विशाल स्नानागार) जो किसी स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए थी। यह रोचक है कि मोहेंजोदड़ो में नगर के अनेक बार उजडने तथा बसने पर भी नगर-विन्यास मे, अन्तिम चरण को छोड कर, विशेष परिवर्तन नही हुआ। किन्तु सामान्य मूलभूत एकता को स्वीकार करते हुए भी अब कुछ क्षेत्रीय विशिष्टताओ को भी स्वीकार करना ही होगा। उदाहरणार्थ गुजरात मे इस सभ्यता के कुछ मूलभूत उपकरणो मे समानता होते हुए भी वहां अनेक ऐसे तत्व मिलते है जो नये है और कुछ सिंधु सभ्यता के तत्व जो मोहेंजोदडो और हडप्पा मे प्रमुखता से पाये गये है, या तो यहा है ही नही या बहुत नगण्य रूप मे है।

सिंधु सभ्यता के अवशेष विस्तृत भू-भाग मे टीलो के रूप में पाये गये है। ये टीले नगर और ग्राम दोनो प्रकार के स्थलो के परिचायक है। हडप्पा की एक पुरैतिहासिक संस्कृति के महान् केन्द्र के रूप मे खोज रायबहादुर दयाराम साहनी ने सन् 1921 ई० मे और मोहेंजोदडो की राखालदास बनर्जी ने 1922 मे की। कालान्तर मे ननीगोपाल मजुमदार द्वारा सिंध क्षेत्र मे (1927–31 के बीच) और ऑरल स्टाइन के द्वारा बलूचिस्तान एव गेड्रोशिया क्षेत्र मे किये गये सर्वेक्षणो और सीमित उत्खननो से सिधु सभ्यता के अनेक स्थलो का पता लगा। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पूर्व मुख्यत सिंधु और उसकी सहायक नदियो के समीपवर्ती क्षेत्र मे पाये गये सिंधु सभ्यता के स्थलो की ही जानकारी थी; यद्यपि इसका प्रभाव बलूचिस्तान की कुछ संस्कृतियो पर विद्वानो ने आका था, और सौराष्ट्र मे रंगपुर मे भी इस सभ्यता का स्थल होने की संभावना बहुत पहले व्यक्त की गयी थी (जो बाद के उत्खननो से सही सिद्ध हुई)। ऑरल स्टाइन ने राजस्थान और बहावलपुर के क्षेत्र मे सर्वेक्षण से सिंधु सभ्यता के कुछ स्थलो का पता लगाया था। अब तो 1947 में भारत के विभाजन के बाद भारतीय क्षेत्र मे कई अन्य महत्त्वपूर्ण स्थान, यथा लोथल, रोपड, कालीबगा आदि का पता लगा है। उधर पाकिस्तान मे भी कुछ नये स्थल मिले जिनमे मोहेंजोदड़ो से लगभग 30 मील की दूरी पर स्थित कोटदीजो विशेषरूप से उल्लेखनीय है। पुरातात्विक खोजो तथा उत्खननों से स्पष्ट हो गया है कि इस सभ्यता का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत था। इस सन्दर्भ मे उल्लेखनीय है कि बहुत पहले मार्शल ने स्पष्ट रूप से यह धारणा व्यक्त की थी कि गंगा की घाटी में भी इसका विस्तार मिलना चाहिए, और उनकी यह धारणा अब कुछ सीमा तक सत्य सिद्ध हो चुकी है।

कुछ समय पूर्व तक इस सभ्यता की उत्तरी सीमा रोपड़ (पंजाब) थी। अब सुलेमान पर्वत के पूर्वी पाद में गोमलघाटी में दानी ने कई स्थल खोजे हैं जिनमें गुमला विशेष महत्त्वपूर्ण है। तक्षशिला के पास में सराय खोला नामक स्थल मिला है। नर्मदा नदी की घाटी में मेधम, तेलोद और भगत्राव और उससे भी दक्षिण में ताप्ती नदी की निचली घाटी में मालवण (जिला सूरत) नामक स्थल है—ये तीनों ही स्थल समुद्र के निकट हैं और व्यापारिक महत्त्व के रहे होंगे। पूर्व में यमुना की सहायक हिण्डन नदी के किनारे आलमगीरपुर (जिला मेरठ, उत्तर प्रदेश) और इससे भी पूर्व[1] तथा पश्चिम में मकरान के समुद्री तट पर कराची से 300 मील पश्चिम में स्थित सुत्कागेनडोर तक स्पष्ट है। डाबरकोट (उत्तरी बलूचिस्तान) सिंधु सभ्यता की उत्तरी सीमा का द्योतक है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने यह संभावना व्यक्त की है कि सिंधु सभ्यता का विस्तार कौशाम्बी और उससे भी पूर्व तक रहा हो, तथापि पुष्ट प्रमाणों के अभाव में निश्चय-पूर्वक कुछ कहना कठिन है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि गंगा की घाटी में विस्तृत पुरातात्विक सर्वेक्षण से न केवल इस क्षेत्र में सिंधु सभ्यता के प्रसार पर ही प्रकाश पड़ेगा अपितु उसमें सिंधु सभ्यता और गंगा-घाटी की सभ्यता के मध्य की कड़ी को भी जोड़ा जा सकेगा। उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर रंगनाथ राव ने इस सभ्यता के क्षेत्र का विस्तार लगभग 1600 किलोमीटर पूर्व से पश्चिम और 1100 किलोमीटर से अधिक उत्तर से दक्षिण में आंका है। अब उत्तर में सराय खोला नामक स्थल का ज्ञान होने पर उत्तरी-दक्षिणी सीमा और अधिक विस्तृत हो गयी है। इस विस्तृत भू-भाग में कुछ विशाल नगर (यथा हड़प्पा, मोहें-जोदड़ो), कुछ कस्बे (यथा रोपड़), तथा कुछ ग्राम (यथा आलमगीरपुर) थे। लोथल समुद्री व्यापार का केन्द्र रहा होगा, जब कि मकरान के समुद्र-तटवर्ती सुत्कागेनडोर, सोत्का-कोह और बालाकोट ने बन्दरगाहों के रूप में पश्चिमी एशिया के साथ होने वाले व्यापार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी। हाल ही के तुर्कमेनिया क्षेत्र के उत्खनन से स्पष्ट हो गया है कि सिंधु सभ्यता का मध्य-एशिया के साथ भी सम्पर्क था। सिंधु सभ्यता का विस्तार प्राचीन मेसो-पोटामिया, मिस्र तथा फारस की सभ्यताओं के क्षेत्र से कहीं अधिक था। दोनों

---

1 सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) जिले में यमुना की सहायक नदी मस्करा के तट पर बड़गांव में साधार तश्तरिया, चर्ट पत्थर के फलक, मिट्टी के पिंड, काचली मिट्टी की चूड़ी और ताम्रनिधि के छल्लों से मिलता-जुलता एक तांबे का छल्ला मिला है। सहारनपुर जिले में ही आंबखेड़ी नामक स्थल में कुछ बर्तन ऐसे मिले हैं जो सिंधु सभ्यता के बर्तनों से कुछ समानता रखते हैं।

मिस्र की लम्बाई मिलाकर लगभग साढ़े नौ सौ किलोमीटर है और लगभग यही विस्तार मेसोपोटामिया के क्षेत्र का भी है। सिंधु सभ्यता के अवशेष इनसे कही अधिक विस्तृत क्षेत्र में पाये गये है। अरब सागर के मकरान तट पर अवस्थित सुत्कगेन-डोर और आलमगीरपुर के ध्वंसावशेषों के बीच लगभग 1600 किलोमीटर का अन्तर है। यदि इस सभ्यता के विस्तार-क्षेत्र को सस्कृति ही नहीं साम्राज्य का भी विस्तार मान लिया जाय (जैसा कुछ विद्वानों ने सुझाया है), तो रोमन साम्राज्य से पहले विश्व मे शायद ही इतना विशाल राज्य कही रहा हो।

फेयरसर्विस का कहना है कि सिंधु सभ्यता का विस्तार मुख्य रूप से गेहूँ उपजाने वाले क्षेत्र—सिध, पंजाब और गुजरात मे हुआ। दिल्ली के पूर्ववर्ती क्षेत्र एवं ताप्ती नदी के दक्षिण में चावल की उपज मुख्य रूप से होती है। इससे ऐसा लगता है कि सिंधु वासियो ने ऐसे स्थलो को ही चुना जो गेहूँ उपजाने के लिए उपयुक्त है। यद्यपि सिंधु सभ्यता के कुछ थोडे से स्थल पर्वतीय क्षेत्र मे भी पाये गये है, तथापि साधारणत. इस सभ्यता के स्थल मैदानी क्षेत्र मे ही है, जो निश्चय ही एक महान् सभ्यता के विकास के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करते है। साथ ही इस सभ्यता के पास लगभग तेरह सौ किलोमीटर का समुद्रतट था जो समुद्री व्यापार के लिए उपयुक्त सुविधाए प्रदान करता था। नीचे इसके कुछ मुख्य स्थलो का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

बलूचिस्तान

सुत्कगेनडोर—यह कराची से लगभग 300 मील पश्चिम मे और बलूच-मकरान समुद्र-तट से 56.32 किलोमीटर उत्तर मे दाश्त नदी के पूर्वी किनारे पर स्थित है। स्टाइन ने इसे 1927 में खोजा और यहां पर परीक्षण-गर्त खोदे। 1962 में जार्ज डेल्स ने सर्वेक्षण किया और उन्हे यहा पर बन्दरगाह, दुर्ग और निचले नगर की रूपरेखा मिली। दुर्ग एक प्राकृतिक चट्टान के ऊपर और इर्द-गिर्द था और उसके अन्दर हड़प्पा सभ्यता की भांति कच्ची ईंटो का चबूतरा बना था। आधार पर किंचित् तराशे पत्थरो की दीवार थी, जो एक स्थान पर लगभग 8 मीटर चौडी है। दुर्ग की दीवार मे बुर्ज और द्वार भी थे। डेल्स ने दुर्ग (गढी) मे सिंधु सभ्यता के तीन चरणों की पहिचान की। उसके अनुसार मूलतः समुद्र सुत्कगेनडोर के बहुत समीप था और इसने एक बन्दरगाह के रूप मे सिंधु सभ्यता और बेबीलोन के मध्य व्यापार मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी, आज कुछ प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण यह स्थान समुद्र से काफी दूर हो गया है।

सोत्काकोह—यह स्थान परिन से लगभग 8 मील, शादी-कौर नदी की घाटी में सुत्कगेनडोर से पूर्व मे स्थित है। इसे डेल्स ने 1962 में खोजा था। यहा पर भी दो टीले मिले हैं। पूर्वी टीले के पूर्वी किनारे पर लगभग 488 मीटर लम्बी दीवार होने के साक्ष्य मिले हैं। अनुमानत. सोत्काकोह भी आकार-प्रकार मे सुत्कगेनडोर की तरह था। प्राप्त भाण्ड सिंधु सभ्यता के प्रकार के है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि सोत्काकोह बन्दरगाह न होकर समुद्र तट और समुद्र से दूरवर्ती भू-भाग के मध्य व्यापार का केंद्र रहा होगा।

डाबरकोट—उत्तरी बलूचिस्तान की पहाड़ियो तक सिंधु-संस्कृति के स्थल मिले है। यही पर सिध नदी से लगभग 200 किलोमीटर दूर लोरालाइ के दक्षिण मे झोव घाटी मे डाबरकोट स्थित है। सिंधु-संस्कृति का यह स्थल अपनी स्थिति एव स्वरूप के कारण पुरातत्त्व की दृष्टि से यथेष्ट महत्त्व का है। यहा का टीला 34.4 मीटर ऊचा है और लगभग 365 मीटर की परिधि मे फैला है। सिंधु घाटी मे कधार जाने वाले मार्ग पर स्थित इस महत्त्वपूर्ण स्थल पर अभी तक विशेष उत्खनन नही हो सका है। किंतु ऐसी आशा की जाती है कि इसके उत्खनन से सिधु सस्कृति के मूल पर प्रकाश पड़ेगा क्योंकि सतह के सर्वेक्षण के दौरान यहा पर सिंधु संस्कृति के साथ ही उससे पूर्वकालीन और उत्तरकालीन संस्कृतियो के अवशेष भी मिले है। यह भी पता चला है कि सिंधु सभ्यता के अवशेष टीले के अपेक्षाकृत ऊपरवाले भाग मे है और इसलिए आशा की जाती है कि टीले के निचले भाग के उत्खनन से सिंधु सभ्यता के मूल और प्रारंभिक चरण के बारे मे महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ेगा।

सिंध

कोटदीजी—कोटदीजी सिध प्रात के खैरपुर नगर से 24 किलोमीटर दक्षिण और मोहेंजोदडो से 40 24 किलोमीटर पूर्व मे है। 1935 में घुर्ये ने इस स्थल से कुछ मिट्टी के बर्तन प्राप्त किये थे जो प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम बम्बई मे संगृहीत है। पाकिस्तान पुरातत्त्व विभाग के निदेशक फजल अहमद खाँ ने 1955 और 1957 मे अपेक्षाकृत छोटे पैमाने पर उत्खनन कराया। उत्खनन से हडप्पा सभ्यता के नीचे एक और सभ्यता के अवशेष मिले जिसे 'कोटदीजी' संस्कृति नाम दिया गया। कुल सोलह परतों में नीचे के बारह 'कोटदीजी' संस्कृति के है। उसके ऊपर एक परत परिवर्तन काल की द्योतक है और सबसे ऊपर की तीन परतें सिंधु सभ्यता के उपकरणों से युक्त है। कोटदीजी संस्कृति के भाण्ड हड़प्पा मे रक्षा-दुर्ग के पहले वाले चरण मे प्राप्त भाण्डो से मिलते-जुलते हैं। इस संस्कृति मे सिंधु सभ्यता की तरह चर्ट के फलक और पक्की मिट्टी के

पिंड मिले है, किंतु इस काल मे ताम्र और कास्य का प्रयोग अत्यल्प मात्रा में हुआ। ऐसा लगता है कि कोटदीजी की प्राक् सिंधु बस्ती अग्निकाड से नष्ट हुई और फिर सिंधु सभ्यता के लोग इस स्थल पर आकर बसे। नवागंतुकों ने भवनों की नीव पत्थर की बनाई और दीवारें कच्ची ईंटो की। ताम्र और कांस्य का प्रयोग शुरू हुआ। पत्थर के बाणाग्र यहा के सिंधु सभ्यता काल की विशेषता है जो अन्य सिंधु सभ्यता के स्थलो मे नही मिलती। सिंधु सभ्यता के काल मे नगर-निर्माण सुनियोजित था। घरो की नीव में चुने-पत्थर का प्रयोग किया गया है। घरों मे नालियो का समुचित प्रबंध न था।

अलीमुराद—अलीमुराद सिंध में दादू से लगभग 32 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम मे स्थित है। यह तीन से पाच फुट मोटी लापरवाही से तराशे पत्थरों की प्राचीर से रक्षित छोटा सा लगभग वर्गाकार क्षेत्र है जो 76 मीटर लम्बा और इतना ही चौडा है। इस दीवार के अन्दर और बाहर इमारतो के अवशेष और एक कुआ भी मिले है। अन्य वस्तुओ मे मृण्मूर्ति, चर्ट-फलक तथा सेलखड़ी, कर्निलियन आदि के मनके मिले है। यह एक ग्रामीण स्थल था।

मोहेंजोदड़ो—यह सिंधु नदी के पूर्वी किनारे पर है और सिंधु के मुख्य प्रवाह तथा पश्चिमी धारा के मध्य ऐसे क्षेत्र मे है जो यदाकदा बाढ से क्षतिग्रस्त होता रहा है और आज भी होता रहता है। यह दक्षिण में लगभग 6 मीटर ऊंचा है और उत्तर मे लगभग 12 मीटर। मोहेंजादडो का अर्थ सिंधी भाषा मे "मृतको का टीला" है। यद्यपि यह एक प्राचीन स्थल के रूप मे कुछ समय पहले से ही ज्ञात था, तथापि इसके पुरैतिहासिक स्वरूप का प्रथम परिचय दिलाने का श्रेय सन् 1922 मे राखाल दास बनर्जी को मिला। यह उत्खनित सिंधु नगरों मे से सबसे महत्त्वपूर्ण और सम्पन्न नगर है। जब बनर्जी इस ध्वस्त नगर के शीर्ष पर बने कुषाण-कालीन स्तूप का उत्खनन करा रहे थे तो उन्हे स्तूप के नीचे कुछ विशिष्ट प्रकार की मुद्राए और अन्य सामग्री प्राप्त हुई। चूंकि इस तरह की वस्तुएं हड़प्पा में पहले ही मिल चुकी थी और एक वर्ष पूर्व 1921 मे वहा पर प्रारभ किये गये उत्खनन से उन वस्तुओ का पुरैतिहासिक काल का होना सिद्ध हो चुका था, अतः बनर्जी ने तुरंत ही यह निष्कर्ष निकाल लिया कि मोहेंजोदडो मे भी पुरैतिहासिक अवशेष छुपे पडे है। सिंधु सभ्यता के इस महत्त्वपूर्ण नगर के सास्कृतिक कोष का उद्घाटन करने के लिए मार्शल के नेतृत्व मे 1922 से 1930 तक खोदाई कराई गई। जिन पुराविदो के निरीक्षण में उत्खनन कार्य हुआ उनमे राखलदास बनर्जी, मैके, काशीनाथ दीक्षित, हारग्रीव्ज, दयाराम साहनी और माधोसरूप वत्स के नाम विशेष उल्लेखनीय है।

यहां नगर में निर्माण के कम से कम नौ चरण मिले। नगर-निर्माण योजना, भवन, मृद्भाण्ड, मुहरें तथा अन्य कलाकृतिया सभी अत्यंत विकसित सभ्यता की सूचक थी। कुछ साल बाद मैके के नेतृत्व में फिर खोदाई हुई। फिर सर मार्टिमर ह्वीलर ने मुख्य रूप से इस बात का पता लगाने के लिए कि मोहेंजोदड़ो के जलमग्न स्तरों मे किस तरह की सामग्री छिपी पडी है, 1950 में यहा पर सीमित उत्खनन कार्य कराया। ह्वीलर ने जल तल के नीचे भी लगभग तीन मीटर खोदाई कराई, किंतु अप्रयुक्ता धरती तक वे भी नही पहुंच सके। 1964 और 1966 में अमेरिका के पुराविद् डेल्स ने अप्रयुक्ता धरती तक पहुंचने के उद्देश्य से मोहेंजोदडो में उत्खनन किया। खोदी हुई खाई में बार-बार जल एकत्र हो जाने से उत्खनन कार्य मे बाधा हुई, तथापि वेधन (ड्रिलिंग) द्वारा नीचे के स्तरों के विषय मे कुछ महत्त्वपूर्ण सूचनाए सकलित करने मे सफलता मिली। इन जलमग्न स्तरो से जो मृद्भाण्ड व अन्य वस्तुएं मिली है वे पुराविदों के अनुसार बलूचिस्तान की सभ्यताओ के मृद्भाण्डो से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। वे उसी तरह की है जैसी की हडप्पा मे सुरक्षात्मक प्राचीर के निर्माण से पूर्व काल मे पायी गयी है।

चन्हुदड़ो—चन्हुदडो नामक स्थल मोहेंजोदडो से दक्षिण-पूर्व दिशा मे लगभग 128.75 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। सिधु नदी यहा से अब 21 कि.मी. की दूरी पर बहती है, किंतु सिधु सभ्यता के काल मे वह इसके बिल्कुल समीप बहती थी। इस स्थान पर मूलतः एक ही बडा टीला था, किंतु वर्षा, आतप, और वात ने मिल कर इसे तीन खंडों मे बाट दिया है। ननी गोपाल मजूमदार ने इस स्थल को 1931 मे ढूंढा था और तीन सप्ताह तक इसका उत्खनन कराया। फिर मैके ने 1935 मे इसका उत्खनन किया। चन्हुदडो मे जलस्तर तक ही उत्खनन किया जा सका। उसके नीचे जो अवशेष है उनके बारे मे कुछ भी पता नही है। उत्खन्न मे सबसे नीचे सिधु संस्कृति, उसके बाद झूकर सस्कृति और उसके बाद झागर सस्कृति के अवशेष मिले है। इन तीनो संस्कृतियो के बीच कितना काल-व्यवधान रहा, यह कहना कठिन है। सिंधु संस्कृति के तीन निर्माण-चरण पाये गये और एक निर्माण-चरण व दूसरे निर्माण-चरण के मध्य एक बाढ-स्तर मिला है। प्रत्येक चरण मे जो पुनर्निर्माण हुआ उसमें पूर्व-चरण मे अपनायी गयी भवन-निर्माण शैली व रूप रेखा का अनुसरण नही किया गया। सिधु सभ्यता के संदर्भ मे प्राप्त बर्तन, मुद्रा, ताम्र उपकरण, मनके, बाट-बटखरे आदि हडप्पा और मोहेजोदडो से प्राप्त इसी तरह की वस्तुओ से मिलते-जुलते हैं।

पंजाब

हड़प्पा—हड़प्पा मोण्टगोमरी जिले (पाकिस्तान) में इसी नाम के कस्बे से पंद्रह मील पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम में रावी नदी के बाएं किनारे पर स्थित है। आज यह नदी से लगभग साढ़े नौ किलोमीटर दूर है, किंतु सिंधु सभ्यता के काल में यह नदी के तट से अधिक दूर न रहा होगा और वर्षा अधिक होने पर यह क्षेत्र अकसर बाढग्रस्त हो जाता रहा होगा। 1856 ई० में रेलवे लाइन बिछाने के लिए रोडी की आवश्यकता हुई। जान ब्रंटन और विलियम ब्रटन को, भला रोड़ियों के लिए हड़प्पा की ईंटो से अच्छा और क्या साधन मिल सकता था। आज लगभग डेढ सौ किलोमीटर की लम्बाई तक रेलगाड़ी इन प्राचीन ईंटो की बनी रोडियो के ऊपर चलती है। वैसे इसके पहले भी आस-पास के निवासियो ने अज्ञात मात्रा मे प्राचीन ईंटो को खोद कर प्रयोग कर लिया था। लगातार ईंटो के निकालने से इमारतो की रूपरेखा तो पहले ही बिगड चुकी थी, जो रूपरेखा बची वह रेलवे लाइन की रोडी बिछाने के लिए ईंटे निकालने के कारण और भी नष्ट हो गई।

हड़प्पा के टीले के बारे मे प्रथम उल्लेख चार्ल्स मैरसन ने 1826 मे किया था। उसके बाद जनरल कनिंघम 1853 और 1873 मे इस टीले पर गये। उन्होने इस टीले से कुछ प्राचीन वस्तुएं उपलब्ध की और 1875 मे कुछ मुद्राएं और अन्य उपकरणो को आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट मे छपवाया। 1912 मे जे० एफ० फ्लीट ने भी ब्रिटिश सग्रहालय द्वारा उपलब्ध की गई सिंधु सभ्यता की कुछ वस्तुओ पर रायल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका मे एक लेख लिखा। किंतु कनिंघम और फ्लीट इस स्थल के पुरातात्त्विक महत्त्व को भलीभांति नही आंक सके। 1921 मे जब सर जान मार्शल पुरातत्त्व विभाग के महानिदेशक थे, रायबहादुर दयाराम साहनी ने इसका पुनरन्वेषण किया और 1923–24 तथा 1924–25 मे खुदाई करवाई। इसके बाद 1926–27 से 1933–34 तक यहा पर माधो स्वरूप वत्स के निदेशन मे उत्खनन हुए जिनकी रिपोर्ट वत्स ने दो जिल्दो मे छापी। इन उत्खननो से यह स्पष्ट हो गया कि हड़प्पा सिंधु सभ्यता का अत्यत महान् केंद्र था। 1946 मे ह्वीलर ने फिर यहा उत्खनन किया जिससे महत्त्वपूर्ण नये तथ्यो की जानकारी प्राप्त हुई जिनमे एक टीले की पहिचान गढ़ी के रूप मे किया जाना विशेष उल्लेखनीय है। अनुमानतः मूल रूप में यहां नगर 5 किलोमीटर के क्षेत्र मे बसा था।

रोपड़—रोपड पंजाब में शिवालिक पहाड़ी की उपत्यका मे स्थित है। यज्ञदत्त शर्मा के निर्देशन में इस स्थान की खोदाई 1953 से 1956 तक

हुई थी। यह टीला लगभग 15 मीटर ऊंचा है। भौगोलिक दृष्टि से यह सामरिक महत्त्व की जगह पर स्थित है, जहां पर हिमालय की तलहटी और मैदान मिलते है। सतलज नदी यही पर पंजाब की उपजाऊ भूमि में प्रवेश करती है। यहा छह संस्कृतियों के अवशेष मिले है। प्रथम काल में सिंधु संस्कृति के अवशेष मिले है। इसके दो चरण है—नीचे के स्तरों में विकसित हडप्पा सम्यता के उपकरण मिले; ऊपरी सतह पर कुछ नये प्रकार के बर्तन भी मिले। उत्खनन सीमित क्षेत्र में किये जाने के कारण नगर-निर्माण की रूपरेखा पर विशेष प्रकाश नही पड़ा। मुद्रा केवल एक ही मिली। हडप्पा सस्कृति के अनेक विशिष्ट बर्तन मिले है, किंतु इस संस्कृति के बर्तनों के कुछ प्रकार यहा नही मिलते और कुछ बर्तन ऐसे मिले है जिन पर नये प्रकार के डिजाइन है। घर साधारण कच्ची ईंट और नदी से प्राप्त उपल से बने थे। कांचली मिट्टी एव अन्य प्रकार के आभूषण, ताम्र कुल्हाडी, चर्ट फलक हडप्पा प्रकार के ही मिले है। एक कब्रिस्तान भी मिला है। हडप्पा सस्कृति के स्तरो के बाद कुछ अंतराल से एक नई संस्कृति के अवशेष मिले है जिसके मृद्भाण्डों में चित्रित धूमर भाण्ड मुख्य है।

बाडा—रोपड के पास ही स्थित बाडा की खोदाइयो से प्राप्त मृद्भाण्ड ह्रास-जनित हडप्पा संस्कृति के द्योतक है, किंतु उनमे से कुछ भाण्डो पर चित्रित अभिप्राय बलूचिस्तान तथा कोटदीजी और कालीबंगा के पूर्व-हडप्पा संस्कृति-कालीन अभिप्रायो से भी कुछ समानता रखते है।

संधोल—पंजाब के लुधियाना जिले मे, चडीगढ से 40 किलोमीटर दूर स्थित संघोल टीले की खोदाई पंजाब पुरातत्त्व विभाग की ओर से एस० एस० तलवार तथा रवीन्द्र सिह बिष्ट ने कराई। निम्नतम स्तरो मे अतिम सिंधु सम्यता प्रकाल के अवशेष पाये गये है, जिनके ऊपर अंतराल के साथ चित्रित-धूसर भाण्ड तथा ऐतिहासिक काल के अवशेष मिले। निम्नतम स्तरो मे दीवालें कुटी मिट्टी और कच्ची ईंटो की थी। तावे की दो छेनिया, काचली मिट्टी की चूडिया, बाली और मनके पाये गये है। कुछ वृत्ताकार नाते मिले जो अग्निस्थल के रूप मे प्रयुक्त लगते है। संघोल की इस प्रथम संस्कृति मे बाड़ा और रोपड़ की सिंधु सम्यता के चरण और कब्रिस्तान एच (हड़प्पा) के कुछ तत्त्वो का समन्वय पाया गया। चित्रण की विधा मे पूर्व सिधु सम्यता कालीन कालीबगा के तत्त्व भी मिलते है।

हरयाणा

राखीगढ़ी—हरयाणा मे भी कई सिंधु-संस्कृति-कालीन स्थल खोज लिए

गये है। इनमें मीत्ताथल बथावली और राखीगढी उल्लेखनीय है। जीद जिले मे जीद नगर से 11 किलोमीटर दक्षिण में स्थित राखीगढी सिंधु सभ्यता का एक विशाल स्थल है इसकी खोज सूरजभान और आचार्य भगवान देव ने की थी। यहां पर प्रागू सिंधु और सिंधु सभ्यता कालीन अवशेष मिले है। कुछ वर्ष पूर्व इस स्थल से कई ताबे के उपकरण भी उपलब्ध हुए थे। सिधु लिपि युक्त एक लघु मुद्रा भी उपलब्ध हुई।

बणावली—बणावली हिस्सार जिले के फतेहाबाद तहसील मे प्राचीन सरस्वती, जो अब सूख चुकी है, की घाटी मे स्थित है। हरयाणा राज्य के पुरातत्त्व विभाग के तत्त्वावधान मे रवीद्र सिंह बिष्ट ने 1973–74 मे यहां उत्खनन कराया। टीला लगभग ग्यारह मीटर ऊंचा है और उत्तर-दक्षिण की ओर 600 मीटर तथा पूर्व-पश्चिम की ओर 400 मीटर के क्षेत्र मे फैला है। यहा पर सिंधु संस्कृति से पहले की सस्कृति और सिंधु सस्कृति के अवशेष मिले। प्रथम काल के मृद्भाण्ड कई आकार-प्रकार के है और इनमे कुछ चित्रित तथा कुछ सादे है जो बहुत कुछ कालीबगा प्रथम के सदर्भ मे प्राप्त मृद्भाण्डो के समान है। इस काल मे भी नगर नियोजन का साक्ष्य मिलता है जिसमे सड़कें चौराहे पर काटती हुई मिलती है और पक्की ईंटे भी कुछ इस काल की मिली है। तत्पश्चात् प्रथम काल की सतहो के ऊपर सिंधु संस्कृति के अवशेष मिलते है। जो अल्प उत्खनन हुए है, उनसे इतना तो स्पष्ट हो गया है कि बणावली सिंधु सस्कृति का एक सुनियोजित और महत्त्वपूर्ण नगर था। मृद्भाण्ड आकार-प्रकार और चित्रण की दृष्टि से अन्यत्र सिंधु सभ्यता के सदर्भ मे प्राप्त मृद्भाण्डो के समान है। ताबे के बाणाग्र, उस्तरे, मनके, चर्ट फलक, कानीलियन, गोमेद और काचली मिट्टी के मनके, पशु और मानव मृण्मूर्तिया, बाट-बटखरे, मिट्टी के गोफन गोलिया, सिंधु लिपि वाली एक मुद्रा और कुछ मुद्रा छापे भी पायी गयी है कुछ मृद्भाण्ड खण्डो पर भी सिंधु लिपि के अक्षर उत्कीर्ण है।

मीत्ताथल—मीत्ताथल हरयाणा प्रदेश के भिवानी जिले मे भिवानी से उत्तर-पश्चिम मे स्थित है। यहां पर सतह से कुछ ताम्र-निधि के उपकरण मिले थे। 1968 मे पंजाब विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान मे सूरजभान ने यहा पर उत्खनन कराया। उनके मतानुसार टीले के पूर्व मे जो लगभग 400 मीटर चौडी प्राकृतिक खाई है वह यमुना के प्राचीन प्रवाह मार्ग की द्योतक है जो आगे चल कर राजस्थान मे दृषद्वती और सरस्वती सरणि (system) से मिलती थी। मीत्ताथल के प्रथम काल के मृद्भाण्ड कालीबगा के प्रथम काल के बर्तनो से मिलते जुलते हैं। इस काल मे भवन-निर्माण कच्ची ईंटों से होता था। दूसरे

काल की संस्कृति सिंधु-संस्कृति है जिसके अवशेषो को दो चरणों मे बांटा गया है—प्रथम चरण विकासशील और दूसरा चरण ह्रासोन्मुख, प्रथम चरण में सुनियोजित नगर की नीव डाली गई और यहां पर भी गढ़ी और निचले नगर की परियोजना नगर-निर्माण मे दिखाई देती है। सडकें पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण दिशा को जाती थी। इस काल में सिंधु सभ्यता के सामान्य भाण्डो के साथ कुछ पहले काल (कालीबंगां प्रथम प्रकाल) के बर्तन भी प्रचलित रहे। सिंधु सभ्यता के द्वितीय चरण मे निश्चित रूप से ह्रास के लक्षण मिलते है। इमारतों का निर्माण निम्नकोटि का था और खण्डित ईंटो से भी निर्माण होने लगा था। मृद्भाण्डों के आकार-प्रकार और चित्रण-शैली भी पहले की अपेक्षा निम्नकोटि के है। कुछ ताम्र-उपकरण यथा चपटी कुल्हाडी तथा परशु ताम्रनिधि के उपकरणो से मिलते-जुलते है। पानपात्र और चचुक जो सिधु सभ्यता के खास बर्तनो के प्रकारो मे से है, शनै. शनै. कम होते गये और बाद मे उनका प्रचलन ही बद हो गया। अन्य उपकरणो मे खिलौने गाडियो के पहिये, पशु आकृतियां, भृत्पिण्ड, गोफन गोलिया, पत्थर के बाट और फलक, मिट्टी और शख की चूडिया और पत्थर की अंगूठी उल्लेखनीय है।

राजस्थान

कालीबंगा—पुराकालीन सरस्वती और दृषद्वती (जिनकी पहचान क्रमशः घग्घर और चौताग नदियों से की गई है) की घाटियो मे, जो आज सूखी पडी है, किसी समय सिंधु सस्कृति फूली-फली थी। इसके प्रमाण वे अनगिनत टीले है जो राजस्थान की रेतीली भूमि अपने वक्ष मे पुराविदो के लिए छिपाये बैठी है। ऑरेल स्टाइन ने भूतपूर्व बहावलपुर रियासत मे हक्रा (घग्गर नदी का ही विस्तार) नदी के सूखे रास्ते मे प्राग्-हड़प्पा संस्कृति के करीब ग्यारह प्राचीन स्थल 1942 मे ढूढ निकाले थे और लगभग एक दशक बाद अमलानद घोष ने 1953 मे लगभग दो दर्जन हडप्पा सस्कृति के स्थल राजस्थान के भूतपूर्व बीकानेर रियासत मे खोज निकाले। इनमे गंगानगर जिले मे घग्गर (प्राचीन सरस्वती) के किनारे पर स्थित कालीबगा प्रमुख है। यहा पर सिंधु सभ्यता के अवशेषो के नीचे प्राग्-सिंधु सभ्यता के अवशेष मिले है। कालीबगा मे उत्खनन ब्रजवासी लाल और बालकृष्ण थापड के निर्देशन में 1961 में मुख्य रूप से हडप्पा सस्कृति के उद्भव के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिए और साथ ही 'स्कूल ऑफ आर्क्योलाजी' के विद्यार्थियो को महत्त्व-पूर्ण पुरातात्त्विक स्थल के उत्खनन का प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से आरंभ किया गया था। मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा की भांति यहा भी दो टीले थे—एक छोटा

पश्चिम में और दूसरा बड़ा पूर्व में। महत्त्व की बात यह है कि ये दोनों टीले सुरक्षा दीवार से घिरे थे। छोटे टीले पर पहले हड़प्पा संस्कृति से पूर्व की संस्कृति के लोग बसे हुए थे फिर हड़प्पा संस्कृति के लोग बसे। बडे टीले पर केवल हड़प्पा सभ्यता के ही उपकरण मिले। कुछ विद्वानों का सुझाव है कि संभवतः हड़प्पा, मोहेंजोदडो और कालीबंगा हड़प्पा साम्राज्य (?) की तीन राजधानियां थी (विस्तार के लिए देखिए परिशिष्ट 'सिंधु सभ्यता की संभावित राजधानिया')। गढी ही नही बल्कि नीचे नगर की बस्ती भी रक्षात्मक दीवार से घिरी होने के कारण भारत की ताम्राश्म-युगीन संस्कृति के मानचित्र पर इसका विशिष्ट स्थान है।

उत्तर प्रदेश

आलमगीरपुर—सन् 1958 तक हड्प्पा-सस्कृति के अवशेष गंगा-यमुना दोआब में नहीं मिले थे। किंतु इसी साल यमुना की सहायक हिण्डन नदी के बायें तट पर उससे 3.21 किलोमीटर की दूरी पर इसके अवशेष मिले। यह मेरठ से साढे तीस किलोमीटर पश्चिम, दिल्ली से लगभग 45 किलोमीटर उत्तर-पूर्व मे है। यहा पर भारत सेवक समाज का शिविर लगाया जा रहा था तो अचानक कुछ पुराकालीन सामग्री प्रकाश मे आई जो भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा परीक्षित होने पर सिंधु संस्कृति-कालीन प्रतीत हुई। कालांतर मे किये गये उत्खननो से इसकी पुष्टि हुई। यहा 'सिंधु' प्रकार के मृद्भाण्ड, मृत्पिण्ड और मनके मिले। आलमगीरपुर मे प्राप्त सामग्री ह्रासोन्मुखी हड़प्पा सभ्यता की द्योतक है। एक भी मुद्रा यहा पर नही मिली और सिधु सभ्यता के कुछ भाण्डो के प्रकार भी यहां पर अनुपलब्ध है।

गुजरात

शि० रंगनाथ राव ने सुझाया है कि सिंधु सभ्यता के लोगो का सौराष्ट्र में पदार्पण सभवतः व्यापारिक कारणों से हुआ। अनुमानतः लोथल मे इस सभ्यता का आगमन मोहेंजोदडो और हड़प्पा नगरो की नीव पडने के अल्पकाल (लगभग अर्द्ध-शताब्दी) के भीतर ही हो गया था। रंगपुर की नीव लोथल के कुछ समय बाद पडी (देखिए नीचे)। राव का मत है कि सौराष्ट्र के और उसके समीप के सिंधु सभ्यता के कुछ स्थल प्राचीन समुद्रतट पर स्थित हैं जो इसके द्योतक है कि सिंधु सभ्यता के लोग सौराष्ट्र मे समुद्री मार्ग से आये होंगे। जो स्थल समुद्र तट से कुछ दूर है वे व्यापारिक लाभ के लिए अथवा आर्थिक परिस्थितियो के कारण बसाये गये होंगे। जगतपति जोशी ने हाल ही में कच्छ

मे किये सर्वेक्षणों एवं उत्खननों के आधार पर मत व्यक्त किया है कि सिंधु सभ्यता के लोगो ने सौराष्ट्र आने के लिए भूमि-मार्ग का प्रयोग किया। साकलिया की धारणा कि कुछ लोग भूमि-मार्ग और कुछ समुद्री मार्ग से आये होंगे, अधिक समीचीन लगती है।

रंगपुर—रगपुर लोथल से लगभग 50 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में और अहमदाबाद के दक्षिण-पश्चिम मे भूतपूर्व लिम्बिडि राज्य में भादर नदी के तट पर धुन्धुका रेलवे स्टेशन से करीब 5 किमी की दूरी पर है। 1934 मे रंगपुर टीले को सड़क-निर्माण के सिलसिले में खोदने पर कुछ मृद्भाण्ड मिले जिन्हें हड़प्पा सभ्यता का करार दिया गया। माधोसरूप वत्स ने 1931–34 में, मोटेश्वर दीक्षित ने 1947 मे शि० रगनाथ राव ने 1953–54 में इस टीले का उत्खनन कराया। वत्स और घुर्ये ने इसे हड़प्पा सस्कृति का स्थल घोषित किया था, किंतु दीक्षित ने इसमे संदेह व्यक्त किया। राव द्वारा अपेक्षाकृत विस्तृत क्षेत्र पर उत्खनन किये जाने पर न केवल यह हड़प्पा संस्कृति का केंद्र निश्चित रूप से सिद्ध हुआ बल्कि इससे हड़प्पा सस्कृति के ह्रास काल के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई। राव का अनुमान है कि सिंधु सभ्यता का प्रारभ रगपुर मे लोथल से आये बाढ पीडित लोगो द्वारा हुआ और इसलिए रंगपुर में सिंधु सभ्यता का उदय लोथल से बाद में हुआ। लेकिन साकलिया के मतानुसार इस बात की पूरी सभावना है कि रंगपुर और लोथल दोनों ही स्थलो में इस सभ्यता का प्रारभ लगभग एक ही समय में हुआ।

रंगपुर की खुदाई मे सबसे नीचे लघु अश्म मिले। इनके साथ बर्तन नही पाये गये। उसके बाद यहा पर सिंधु सभ्यता से पूर्व की संस्कृति के अवशेष मिले जिसके केवल बर्तन ही ज्ञात है। जिनमे (1) लाल अभ्रकी—जिसमे हत्थेदार कटोरा और बाहर की ओर फैले रिम वाला छोटा बर्तन, (2) पाण्डु रग का बर्तन जिसमे घडे और तश्तरियां है और (3) खुरदरे घूसर बर्तन मुख्य है। इसके बाद सिधु सभ्यता के अवशेष मिले है जो विकसित सिंधु-संस्कृति के चरण के द्योतक है। सिंधु सभ्यता के विशिष्ट स्मारक, नालिया, कच्ची ईंटो के सुरक्षा दुर्ग, मृद्भाण्ड, आभूषण, औजार, बाट और मृत्पिड मिले है, किंतु 'मातृदेवी' की मूर्तिया और मुद्राएं नही मिलीं। हड़प्पा संस्कृति के मृद्-भाण्डो से भिन्न कुछ नये आकार-प्रकार के मृद्भाण्ड मिले है। फलक चकमक पत्थर की जगह जैस्पर से बने थे। इसके ऊपर चमकीले लाल मृद्भाण्ड की संस्कृति के अवशेष मिले जो ह्रासोन्मुखी सिंधु सभ्यता से ही विकसित हुई थी। सिधु सभ्यता के उपकरणों के साथ ही काले-लाल भाण्ड भी मिले। मृद्भाण्डो तथा अन्य पुरातात्त्विक वस्तुओं के अध्ययन से प्रतीत होता है कि यहा पर सिंधु

सभ्यता का अंत अचानक नही हुआ अपितु वह मध्य-भारतीय ताम्र-पाषाण संस्कृति के सम्पर्क में आकर परिवर्तित हुई और अतत: अपना अस्तित्व विलीन कर बैठी ।

लोथल—लोथल सौराष्ट्र क्षेत्र में सिंधु सभ्यता का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है । यह टीला अहमदाबाद जिले मे इसी नाम के नगर से लगभग 16 किमी दक्षिण में सरगवाला गाव की सीमा में स्थित है । संभवत: प्राचीन काल में यह साबरमती और भोगावा नदियो के संगम पर स्थित था, किंतु आज यह सगम से लगभग सवा तीन किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में है । यहा पर किये गये उत्खनन से सिंधु सभ्यता के इतिहास में एक नया अध्याय जुड गया है ।

लोथल का टीला आज लगभग 3 220 किमी की परिधि में फैला है । उत्खाता शि० रंगनाथ राव के मतानुसार आज यह अपने मूल रूप का आधा ही रह गया है । देखने से यह बहुत ऊँचा नही लगता, लगभग 3.5 मीटर ही ऊंचा है, पर खोदाई मे 6 7 मीटर गहराई तक प्राचीन अवशेषो की प्राप्ति हुई है । सबसे नीचे अभ्रकी लाल रंग के मृद्भाण्ड मिले है जो राव के मतानुसार सिंधु सभ्यता के लोगो के आने से पहले के लोगो के है । ये लोग ताम्र से परिचित थे और साथ ही उल्टे रख कर बर्तन पकाने की विधि (inverted firing) से भी परिचित थे और इस विधि से काले-लाल भाण्ड बनाते थे । यह कहना कठिन है कि इस संस्कृति का उद्गम भारतीय भूमि मे हुआ कि विदेश मे । सिंधु सभ्यता के काल मे भी लोथल मे इस तरह के भाण्ड बनते रहे थे ।[1] इसके बाद नगर के पूरे जीवन-काल मे एक ही सभ्यता–सिंधु सभ्यता रही । नगर सुनियोजित था और सीधी सडको द्वारा खण्डो मे विभक्त था । नालियो का सुंदर प्रबध था । कब्रिस्तान बस्ती से थोडी दूर पर था । प्राय: सिंधु सभ्यता के सभी प्रकार के विशिष्ट उपकरण, बर्तन, मुद्राएं बाट-बटखरे, आभूषण, ताम्र तथा पाषाण उपकरण आदि यहां मिले है । विशेषज्ञो का कहना है कि सिंधु सभ्यता के काल मे समुद्र भी इसके नजदीक ही लगभग 5 किलोमीटर के भीतर था । यहां पर एक गोदी मिली है जो समुद्री आवागमन तथा व्यापार के लिए महत्त्वपूर्ण थी । पश्चिमी एशिया के साथ सिंधु सभ्यता के सम्पर्क मे इसका महत्त्वपूर्ण योगदान था । राव के मतानुसार लोथल मे सिंधु सभ्यता के

1 अभ्रकी भाण्डों के साथ अन्य निम्न उपकरण मिले हैं—मिट्टी के तकुए, पत्थर के मनके, शंख की चूडी, हाथी दांत और तांबे के उपकरण । ताम्र का प्रयोग विशेषतया इस संस्कृति के लोगों का पर्याप्त उन्नत होने का साक्ष्य प्रस्तुत करता है ।

लोग लगभग 2400 ई० पू० में आये। यहां पर संस्कृति के पांच प्रकाल मिले है। एक से चार प्रकाल हडप्पा सस्कृति के है जिन्हे 'ए' चरण की संज्ञा दी गई है। पाचवें प्रकाल को 'बी' चरण नाम दिया गया है। इस चरण में हडप्पा संस्कृति के साथ नये तत्त्वो का सम्मिश्रण पाया गया है। कई बार यह भीषण बाढ से क्षतिग्रस्त हुआ। लोथल में इस विकसित सिंधु सभ्यता के बाद ह्रासोन्मुखी और किंचित् परिवर्तित सिंधु सभ्यता के दर्शन भी होते हैं।

रोजदि—रोजदि भादर नदी के तट पर राजकोट से लगभग 55 किमी दक्षिण में स्थित है। यह स्थल बडे-बडे पत्थरों की दीवार से घेर कर सुरक्षित किया गया था। सुरक्षा के लिए इस प्रकार की व्यवस्था हडप्पा सभ्यता में अपने ढंग की है। घर लगभग दो फुट ऊंचे कच्ची ईंटों के चबूतरे पर बने थे जिन पर मिट्टी कूट कर ऊपर से चूना बिछाया गया था। इसे तीन चरणों में बांटा गया है। 'ए' चरण मे हडप्पा प्रकार के बर्तन, आभूषण, ताम्र उपकरण तथा लघुपाषाण उपकरण मिले जिनके निर्माण मे फ्लिंट के स्थान पर जैस्पर का प्रयोग हुआ है। इस काल का अंत अग्निकाड से हुआ। 'बी' चरण भी हडप्पा 'ए' की ही तरह का था, पर इसमे कुछ पाडु मृद्भाण्ड और कुछ काले-लाल मृद्भाण्ड खण्ड मिले है। 'सी' चरण मे बिना तराशे पत्थरो की इमारतो के अवशेषो के साथ 'प्रभास' प्रकार के बर्तन भी मिलते है।

सुरकोटडा—कच्छ जिले मे अदेसर से 12 किलोमीटर उत्तर-पूर्व में स्थित सुरकोटडा की खोज (1964 ई० में) और उसका उत्खनन श्री जगतपति जोशी के निदेशन मे किया गया। I ए (प्रथम काल के प्रथम चरण) में यहा पर गढी और आवास क्षेत्र मिला है। गढी के बाहर परकोटा से घिरा बडा क्षेत्र था। परकोटा कच्ची ईंटो और मिट्टी के लोंदो मे बना था और 5 से 8 रद्दे तक पत्थर से आच्छादित था। आवास स्थल भी कच्ची ईटो की रक्षा दीवार से सुरक्षित था। रक्षा दीवार नीव के पास लगभग सात मीटर चौडी थी। इस काल के अधिकाश मृद्भाण्ड अन्यत्र प्राप्त सिधु सभ्यता के बर्तनों से मिलते-जुलते है यद्यपि कुछ पूर्ववर्ती सस्कृति के सपर्क के भी द्योतक है। शवाधान के उदाहरण मुख्यत अस्थि-कलशो के रूप में मिले हैं। बडी चट्टान से ढकी एक कब्र सिंधु सभ्यता मे अपने ढग की एक ही है। प्रथम काल के द्वितीय चरण मे, जिसका अंत एक भीषण अग्निकाड से हुआ था, सिंधु सभ्यता के बर्तनो के साथ ही एक नयी तरह का लाल भाण्ड भी मिला है। तृतीय चरण मे भी हडप्पा सभ्यता के तत्त्व विद्यमान रहे, किंतु इस चरण मे सफेद रंग के चित्रित काले और लाल भाण्ड काफी संख्या में पाये गये। घोडे की हड्डिया इस चरण की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

मालवण—यह काठियावाड़ के सूरत जिले में ताप्ती नदी के निचले मुहाने पर स्थित है। संभवतः यह सिधु सभ्यता का एक बंदरगाह था। आल्विन तथा जोशी ने 1967 मे इस स्थल का पता लगाया और 1970 में यहा पर सीमित उत्खनन किया। यहा पर उपलब्ध सास्कृतिक सामग्री दो काल की है—प्रथम काल मे सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण के द्योतक तथा सैन्धवोत्तर सस्कृत सभ्यता के ताम्राश्म उपकरण मिले, और द्वितीय काल के उपकरण ऐतिहासिक काल के है। प्रथम काल मे पूर्व-पश्चिम जाती हुई एक खाई मिली जो 1.50 मीटर चौड़ी थी और 18.30 मीटर तक लम्बाई मे मिल चुकी है। सभवतः यह सिंचाई के लिए नहर थी। उत्तर की ओर कच्ची ईंटों का चबूतरा मिला। इस काल में लाल, पाण्डु, चमकीले लाल, काले और लाल इत्यादि प्रकार के मृद्-भाण्ड मिले है। ये मृद्भाण्ड इस बात के द्योतक है कि मालवण मे मध्य भारतीय (मालवा) दक्कनी और सौराष्ट्र के ताम्र-पाषाण कालीन सस्कृति का संगम रहा। यही नही, यह भी संभावना है कि आध्र (कर्नूल) क्षेत्र का प्रभाव भी इस स्थल की संस्कृति पर पडा। विभिन्न प्रकार के पत्थरो के बने शल्क और क्रोड, तांबे और कासे के उपकरण, साड की मृण्मूर्तिया, कार्नलियन के मनके आदि भी मिले हैं। कई ज़ंगली तथा पालतू पशुओं की हड्डिया भी पायी गयी हैं।

●

अध्याय 2

सिंधु सभ्यता का उद्भव

सिंधु सभ्यता जिस रूप में मिली है वह एक विकसित संस्कृति का रूप है। इसके प्रारंभिक चरण और क्रमिक विकास के बारे मे निश्चित जानकारी नही है। सिंधु सभ्यता के जनक कौन थे? वे स्थानीय थे अथवा विदेशी? यदि वे बाहर से आये तो कहा से और किस जाति से संबंधित थे और शातिपूर्वक आये अथवा आक्रमणकारी के रूप में? और यदि भारतीय भूमि के लोग ही इस संस्कृति के निर्माता थे तो एक लघु ग्रामीण संस्कृति से उस महान् नागरिक संस्कृति के क्रमिक विकास के निश्चित सूत्र क्यों नही मिलते? इन सब समस्याओं का निश्चित उत्तर देना कठिन है।

इन समस्याओं पर विचार करने के पूर्व इस बात का उल्लेख करना समीचीन होगा कि मार्शल के उत्खननों और उनके विवरण के अनुसार, मोहेंजोदडो मे भवन निर्माण के स्तर उद्घाटित हुए है। इन स्तरो को तीन कालो मे बाटा गया है—तीन स्तर अंतिम, तीन मध्य और एक प्रारंभिक काल का। किंतु यहां पर निम्नतम उत्खनित स्तरों के नीचे भी अवशेष है जो जल-स्तर के आ जाने से खोदे नही जा सके है। निम्नतम खोदे गये स्तरों के अवशेष भी सुविकसित नगर-सभ्यता का साक्ष्य प्रस्तुत करते है। नगर-जीवन की जटिलता, भवनो का सुनियोजित होना, कला एवं उद्योग धंधो का उत्कर्ष, इन सबके विकास मे कई पीढियो का संचित और क्रमिक विकासशील ज्ञान अपेक्षित होता है। उनको चित्रलिपि के अक्षर-चिह्नो का विकास साधारण चित्रो से हुआ होगा जो दीर्घावधि तक कुशलतापूर्वक विकास करने के पश्चात् ही एक निश्चित रूप धारण कर सके होंगे। इतर देशो से व्यापार-वाणिज्य का विशेष विकास नगर-संस्कृति के विकसित काल मे ही संभव हुआ होगा। किंतु विकास के प्रथम चरणो के द्योतक साक्ष्य अप्राप्य हैं। क्या पता मोहेंजोदडो में निचले जलीय स्तर के नीचे ही सैंधव सभ्यता के मूल की कुंजी छुपी हो? अब तक जो तथ्य उपलब्ध हैं उन्ही के आधार पर यहा सिधु सभ्यता के मूल पर विचार किया जायेगा। एक मत इसका श्रेय मेसोपोटामिया की संस्कृति को देता है, दूसरा ईरानी-बलूची-सिंध संस्कृतियों और भारत की ग्रामीण संस्कृतियों से इसे विकसित मानता है।

चूंकि मेसोमोटामिया में संस्कृति का विकास कालक्रम की दृष्टि से हड़प्पा संस्कृति से पहले हुआ था और संभवतः सभ्यता का विचार यही पर सबसे पहले

उद्भासित हुआ था, अतः कुछ विद्वान हड़प्पा संस्कृति का प्रेरक मेसोपोटामिया की संस्कृति को मानते है । उनके अनुसार सभ्यता की भावना सर्वप्रथम मेसोपोटामिया से थल मार्ग द्वारा मिस्र पहुची, जिसने वहा की वास्तुकला तथा लिपि को कुछ परिवर्तनो एव परिवर्धनो सहित अपना लिया । कालांतर मे यह सभ्यता की भावना भारत भी पहुची और सिंधु सभ्यता की प्रेरक बनी । गार्डन तथा कतिपय अन्य विद्वानो का कथन है कि उपलब्ध साक्ष्यो के आधार पर इस अनुमान की गुंजाइश नही कि भारतीय धरती पर इस सभ्यता का विकास क्रमिक व धैर्यपूर्ण प्रयासो द्वारा हुआ ।

मेसोपोटामिया से इस सभ्यता के अनुप्राणित होने के पक्ष में ह्वीलर ने एक महत्वपूर्ण तर्क यह प्रस्तुत किया है कि मोहेंजोदडो के राजकीय अन्नागार और गढी तथा दक्षिणी-पूर्वी बुर्ज के, जो प्राप्त अवशेषो मे सबसे पहले के निर्माण-कार्यों में हैं, निर्माण में लकडी के शहतीरों का प्रयोग हुआ हैं । ह्वीलर के अनुसार इनके निर्माता कच्ची ईटों से भवन निर्माण करने के अभ्यस्त थे और चूंकि इस तरह की निर्माण-प्रक्रिया मेसोपोटामिया मे विशेष रूप से लोकप्रिय थी, अतएव, उनके अनुमार, हड़प्पा संस्कृति के जनक मेसोपोटामिया के लोग हो सकते है ।

गॉर्डन (1958, 5) का तर्क है कि मेसोपोटामिया के लोगो ने सभ्यता के मूल तत्त्वों को लेकर नये वातावरण के अनुरूप उन्हे ढाल कर एक शताब्दी के भीतर ही अपनी दूरदर्शिता और अध्यवसाय से सस्कृति का ऐसा प्रतिरूप तैयार किया जो कि दीर्घकाल तक चला । उनके अनुसार यह संभव नही लगता कि मोहेंजोदडो जैसे नगर का विकास हड़प्पा संस्कृति के ग्रामो से हुआ, अत. ऐसी संभावना अधिक है कि बाहर से आये लोगो ने विकसित सभ्यता के तत्त्वो को यहा पर नवीन पृष्ठभूमि मे आरोपित कर आमरी संस्कृति के ग्रामो को प्रभावित किया, और हड़प्पा संस्कृति का विकास द्रुतगति से होने के फलस्वरूप आमरी की खेतिहर अर्थ व्यवस्था को अपने प्रभाव-क्षेत्र के अंतर्गत कर लिया । गॉर्डन का अनुमान है कि मेसोपोटामिया के लोग समुद्री मार्ग से, समुद्र के किनारे-किनारे होकर आये । वे टायनबो की इस धारणा को इस संदर्भ में उद्धृत करते है कि समुद्र से यात्रा के समय लोग कुछ चुने हुए उपकरण ही अपने साथ ले जाते हैं । इन चुने उपकरणों को भी छोटे टुकडो मे ही ले जाया जाता है और नये स्थल में पहुंचने पर उन्हे नये ढंग से जोडा जाता है जिससे वे मूल से भिन्न लगने लगते है । समुद्री मार्ग से आने के पश्चात् नये वातावरण में नये सिरे से नयी चुनौतियों का सामना करने के फलस्वरूप ये लोग नई संस्कृति का विकास कर सके ।

गॉर्डन का कहना है कि हड़प्पा संस्कृति के नगरों में कच्ची ईंटों का प्रयोग थोड़ा बहुत सभी चरणों में मिलता है (मुख्य रूप मे चिनाई-भराई के लिए), ऐसी भी संभावना है कि इस संस्कृति के आदि निर्माता कच्ची ईंटों से मकान बनाते रहे हों और कालातर पक्की ईंटो का उपयोग करने लगे हो—जो हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो की मुख्य विशेषता है। यह भी लगता है कि बाहर से आने पर उन्हे यहा पर जो लोग मिले वे भी कुछ उन्नतिशील थे और नागरिकता का कुछ सबक सीख चुके थे। नवागन्तुकों ने मानो इन्हे प्रभावित करने के लिए ही गढियां बनायी हो।

सांकलिया ने बलूचिस्तान के कुछ स्थलो से प्राप्त वर्गाकार या आयताकार चबूतरों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। ये ऊपर की ओर क्रमशः सकरे होते हुए सीढियो की तरह बने हैं। कुछ तो 1 मीटर से भी अधिक ऊचे है और उनके सिरे पर पक्की और कच्ची ईंटों से निर्माण किया गया है। उन्होंने मत व्यक्त किया है कि यदि ये जिगुरेट के अवशेष हैं तो ये बलूचिस्तान में मेसोपोटामिया के प्रभाव के द्योतक हो सकते है। ह्वीलर तो सिंधु सभ्यता के कृत्रिम चबूतरो और मेसोपोटामिया के कृत्रिम जिगुरेट के टीलो को एक ही प्रकार के राजतंत्र की प्रेरणा से निर्मित होने की संभावना मानते हैं। उनके अनुसार हड़प्पा के बैरक जैसे भवन सुमेर के पुरोहित-नियंत्रित उद्योग से संबंधित लगते है। लेकिन उनके अनुसार ये समानताएं मेसोपोटामिया से सीधे ही सिंधु सभ्यता के लोगो द्वारा सीखने के निश्चित प्रमाण नही माने जा सकते और सामाजिक प्रगति के समान स्तर पर पहुचने के उपरात सिंधु सभ्यता के लोग स्वतः भी उनका विकास कर सकते थे।

किंतु यह प्रश्न भी उठता है कि यदि मेसोपोटामिया वाले इस सभ्यता के जनक थे तो उनकी लिपि और सिंधु सभ्यता की लिपि मे इतनी भिन्नता क्यों है? इस प्रश्न के उत्तर में गॉर्डन का मत है कि इसका सही कारण बताना तो कठिन है पर कदाचित् या तो उन्होंने मूल स्थान से अपनी अलग राष्ट्रीय विशे-षता बनाये रखने के उद्देश्य से लिपि मे भिन्नता रखी अथवा ऐसा इसलिए किया कि नये लोगों की वाणी को व्यक्त करने के लिए उनकी लिपि पर्याप्त नही थी। ज्ञातव्य है कि हड़प्पा लिपि मे तीन सौ या उससे कुछ अधिक चिह्न है, जब कि कीलाकार लिपि में लगभग नौ सौ चिह्न है। वे इस बात की भी संभावना मानते है कि यह जान बूझ कर सुधारात्मक परिवर्तन किए जाने का उदाहरण भी हो सकता है। पर इस सुधार किये जाने मे अधिक समय नही लगा। उनका कहना है कि मोहेंजोदड़ो में मुद्राएं वहां पर सबसे नीचे के स्तरों

मे नहीं मिलती और द्रवी मोम विधि से मूर्तियों का निर्माण भी वहां पर दूसरे चरण से ही शुरू हुआ ।

ह्वीलर के कथनानुसार विचार प्रबल होते है और उचित परिस्थितियों में बहुत शीघ्र फैलते है और इस भाव को नये परिप्रेक्ष में कुशलतापूर्वक क्रियात्मक रूप देने से नगर निर्माण कला के क्षेत्र मे सिंधु सभ्यता के निर्माता प्रारम्भ से ही मेसोपोटामिया से आगे बढ़ गये । कुछ ऐसे मेधावी लोग रहे होंगे जिन्होने नदियों की समस्या की चुनौती स्वीकार की और एक निश्चित योजना के आधार पर नगर-निर्माण किया जिसकी प्रमुख विशेषता थी नदी से सुरक्षा । उन्होने लोगों को संगठित किया होगा क्योंकि ऐसे कार्यों में सामूहिक सहयोग अपेक्षित है। बांध बनाये गये, नहरें निकाली गयी और कृषिकर्म का विकास हुआ । संक्षेप मे, वातावरण पर विजय प्राप्त करने का पूरा प्रयास किया गया और एक औद्योगिक तथा व्यापारिक समाज का निर्माण हुआ । इसके अतिरिक्त समय-समय पर नगर क्षतिग्रस्त हुए तो उनका जीर्णोद्धार भी किया गया । प्रारंभ से ही संस्कृति विस्तार बिना किसी विशेष दीर्घकालीन चिंतन के एकाएक तीव्र गति से हुआ ।

हड़प्पा संस्कृति और मेसोपोटामिया की संस्कृतियो में अन्य कई आधार-भूत भिन्नताएं है । यह सच है कि मेसोपोटामिया में, पुरातत्त्व के साक्ष्यो के अनुसार, सिंधु सभ्यता से भी पूर्व नागरिक सजगता के प्रमाण मिलते है, किंतु सिंधु सभ्यता मे नगर का नियोजन एवं सार्वजनिक स्वच्छता की व्यवस्था मेसो-पोटामिया ही नही वरन् विश्व की समस्त प्राचीन सभ्यताओं मे श्रेष्ठ पाया गया है । मेसोपोटामिया मे मंदिर महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है किंतु इनका कोई निश्चित प्रमाण सिंधु सभ्यता के किसी भी स्थान पर उद्‌घाटित नही हुआ है । मेसोपोटा-मिया और मिस्र के समान भव्य कब्रें भी हड़प्पा संस्कृति मे नही मिली है । शासक वर्ग के लिये हड़प्पा सभ्यता में दुर्ग बनाए गये थे जो विशिष्ट प्रकार के है । दोनो सभ्यताओं की भौतिक वस्तुओ में, यथा आयुध, मृद्‌भाण्ड, पाषाण मूर्तियां, मृण्मूर्तियां और मुहरों में महत्त्वपूर्ण असमानताएं हैं । दोनो की लिपि में भी पर्याप्त अंतर है । ये एक दूसरे से ऊपरी विशिष्टता के कारण आसानी से अलग पहचाने जा सकते हैं । इन भिन्नताओं के बावजूद ह्वीलर, जो सिंधु सभ्यता के विकास में मेसोपोटामिया के योगदान को अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझते है, का कहना है कि नागरिक भावना का स्रोत मेसोपोटामिया ही है, किंतु सिंधु सभ्यता तथा मेसोपोटामिया में घनिष्ट संबंध होने पर भी उस भावना का विभिन्न क्षेत्रों में भौतिक उपकरणों के निर्माण में जो रूप दिया गया वह पर्याप्त

भिन्न हो सकता है। उन्होंने ऐतिहासिक काल से अपने मत की पुष्टि में कुछ साक्ष्य प्रस्तुत किये है।[1]

दूसरे मत के अनुसार हड़प्पा सभ्यता की वस्तुएं मेसोपोटामिया, और मेसोपोटामिया की सभ्यता की जो कुछ वस्तुएं हड़प्पा संस्कृति के स्थानों के उत्खननो से प्राप्त हुई है वे केवल परस्पर आदान-प्रदान, व्यापार-वाणिज्य की ही सूचक लगती है; और इन्हे एक ही क्षेत्र की इस संस्कृति के उद्‌गम को सिद्ध करने के लिए प्रमाण नही माना जा सकता। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि प्रारंभ से ही सिंधु संस्कृति मे भारतीयता के तत्त्व मिलते है जो परवर्ती सभ्यता मे भी पाये जाते है। कुछ विद्वान सिंधु सभ्यता का मूल ईरानी-बलूची संस्कृतियो को मानते हैं। बलूचिस्तान में पिछले कुछ वर्षों में किये अपने सर्वेक्षण के पश्चात् फेयरसर्विस इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि बलूचिस्तान में चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पूर्व सस्कृतियो का प्रादुर्भाव हुआ और इनके विकास में ईरानी संस्कृतियों का (और अप्रत्यक्ष रूप से ईरानी संस्कृति के माध्यम से ही मेसोपोटामिया की संस्कृति का) पर्याप्त योगदान था।[2] किंतु इन बलूच संस्कृतियो का निरंतर भारतीयकरण होता रहा। सिंधु और बलूचिस्तान मे हड़प्पा से पूर्व काल की सस्कृतियो का विकास होता गया। उत्खनन के दौरान सिंधु में आमरी और कोटदीजी I, सस्कृति, दक्षिण-मध्य बलूचिस्तान में नाल और कुल्ली संस्कृति, पंजाब मे हड़प्पा, और राजस्थान म कालीबंगा में सिंधु सभ्यता के स्तरो के नीचे पहले की सस्कृति के अवशेष मिले है। इन संस्कृतियों के संदर्भ मे ऐसे मृद्‌भाण्ड मिले है जो उत्तरी बलूचिस्तान के रानाघुण्डाई III और पेरिआनो-घुण्डाई में प्राप्त मृद्-भाण्डो से काफी मिलते जुलते है। कालातर मे शनैः शनैः बलूच संस्कृतियो को

1 ह्वीलर कहते है कि इस्लामी मस्जिद, गुम्बद वाले मकबरे और दीवाल बनाने की प्रेरणा भारतीयो ने फारस से ली। लेकिन शाह अब्बास के इस्फहान की अकबर की फतेहपुर सीकरी से तुलना इस बात को स्पष्ट कर देती है कि एक ही विचार उस समय भी जबकि भारत एवं फारस के बीच पर्याप्त राज-नैतिक आदान-प्रदान था, दो क्षेत्रो में कितनी भिन्नता के साथ व्यक्त किया जा सकता है।

2 इस सदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि कालीबंगां के प्रथम काल से ही साधारण चूल्हो के साथ तंदूरी चूल्हे भी मिले हैं। तंदूरी चूल्हों का रिवाज आज भारत मे पश्चिमी एशिया की अपेक्षा काफी कम है। साकलिया ने सुझाव दिया है कि कालीबंगा प्रथम काल में तंदूरी चूल्हो का मिलना पश्चिमी राजस्थान का ईरान तथा पश्चिमी एशिया से सम्पर्क का द्योतक है।

भारतीयता ने प्रभावित किया जिसका प्रमाण वहा से प्राप्त कूबड़वाला बैल, पीपल की पत्ती का अलंकरण, इंटो के प्रयोग और नालियों के निर्माण मे परिलक्षित होता है। फेयरसर्विस और कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार सिधु मे हड़प्पा सभ्यता बलूच संस्कृतियों के भारतीयकरण के फलस्वरूप हुए विकास का चरमोत्कर्ष है, बलूचिस्तान मे कुल्ली सस्कृति इसके कुछ निकट आती है ![1]

फेयरसर्विस के अनुसार इस सभ्यता का उद्भव और विस्तार बलूची (ईरानी) संस्कृतियो का सिधु की आखेट पर निर्भर करने वाली किन्ही वन्य और कृषक संस्कृतियों के पारस्परिक प्रभाव के फलस्वरूप हुआ। इस संदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि बहुत पहले पैंटरसन ने यह मत व्यक्त किया था कि सुक्कर और रोहरी की पाषाण कर्मशाला लगभग सिंधु सभ्यता के प्रारभिक चरण के समय की है। डि टेर्रा का मत है कि इस क्षेत्रीय सस्कृति से सिंधु सभ्यता का विकास हुआ होगा। धर्म इसका प्रमुख आधार था जिसके कारण इस संस्कृति के नागरीकरण की दिशा मे तीव्र विकास हुआ और कालातर मे इसी अत्यधिक धार्मिकता के कारण इसमें गत्यवरोध भी हुआ। पर्वतीय क्षेत्र से लोग उत्तम भूमि और पर्याप्त जल के लिए पंजाब और सिंधु के मैदान मे आये होगे। पर्वतीय प्रदेश मे आर्थिक रूप से उतना निर्भर नही रहा जा सकता जितना कि मैदानी प्रदेश मे। जन सख्या और मवेशियो के बढने से, और शायद पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे से भी परिवार के भरण-पोषण के लिए कृषि के उपयुक्त भूमि की कमी हो गई होगी। यह भी हो सकता है कि किसी वर्ष फसल खराब हो जाने के कारण वे लोग काफी सख्या मे मैदानी अचल की ओर चल पडे हो। लेकिन ऐसा नही है कि वे पहाड़ी क्षेत्र को छोड कर सीधे मैदानी क्षेत्र मे आ गये हो। वे धीरे-धीरे पडावो मे आये होगे और कुछ समय तक पहाडी अचल और मैदानी अचल के बीच पडावो की एक शृखला बन गई होगी। इस सस्कृति के निर्माता जब पर्वतीय क्षेत्र से नदी के तट पर मैदान मे आये होगे तो उनके विचारो मे महान् परिवर्तन हुआ होगा। नदियो से यातायात व सिंचाई की सुविधा, आहार के लिए

---

1. साकलिया का अनुमान है कि इस बात की पर्याप्त सभावना है कि उत्तरी बलूचिस्तान मे डाबर कोट मे या सिधु के मैदान मे जैकोबाबाद से लगभग 22 किमी दूर स्थित जुडेईरोजोदड़ो के उत्खनन से सिंधु सभ्यता के मूल के बारे में कोई जानकारी मिल जाय। डाबरकोट के टीले मे तो सिधु सभ्यता के अवशेष इससे पूर्वकालिक और परवर्ती सस्कृतियों के बीच बिखरे मिले है। सांकलिया का सुझाव है कि मूल के संबध मे जानकारी प्राप्ति के लिए कुछ ग्रामीण स्थलो का पूरा उत्खनन करना ठीक होगा।

मछलियों की सुलभता और निरंतर अपने साथ लायी मिट्टी से भूमि को उपजाऊ बनाने की क्षमता सस्कृति के तीव्र विकास व विस्तार में सहायक हुई। किसी महान् सभ्यता के विकास के लिए ऐसा वातावरण अत्यंत उपयुक्त और अपेक्षित है। उपजाऊ मिट्टी से इतना अन्न सुगमता से पैदा किया जा सकता था जिससे अपनी आवश्यकता पूरी हो जाय और साथ ही उन लोगों का भी भरण-पोषण हो सके जो स्वयं तो कृषि उत्पादन नही करते किंतु धातु व अन्य प्रकार के विभिन्न उपकरण बनाते थे और प्रशासन कार्य चलाते थे। जब धातुकर्म करने वाले तथा अन्य धंधे करने वाले बिना स्वयं कृषि किए अपने उपकरणो के बदले पर्याप्त खाद्यान्न प्राप्त करने लगे तो वे कही अधिक दत्तचित्तता से कार्य करने लगे और नयी विकसित लाभदायक तकनीकों का प्रयोग करने लगे और इन विकसित उपकरणो से और अधिक उत्पादन होने लगा। इससे ही नागरीकरण का मार्ग तीव्रता मे प्रशस्त हुआ भौगोलिक परिस्थितियों एव वातावरण की कठिनाइयो के कारण पर्वतीय क्षेत्र मे थोडी-थोडी दूर पर भी अलग-अलग सस्कृतियो का विकास हुआ। किंतु मैदानी क्षेत्र मे तीव्रगति से विकास और विस्तार की पूरी सभावनाए थी।[1] विभिन्न प्रकार की वस्तुए जिनका अभाव हो, विकसित यातायात के साधनो के कारण व्यापार द्वारा आसानी से प्राप्त की जा सकती है। किंतु नदियों की घाटियो के मैदानो मे संस्कृति के लिये जहा ये लाभ थे वही महान् चुनौतिया भी थी। जहा नदिया लाभकारी थी, वही हानिकारक भी थी। समय-समय पर भयकर बाढे आने के कारण नगर का क्षतिग्रस्त होना स्वाभाविक था। यहां पर सस्कृति के प्रथम निर्माताओ को मैदान मे नदी के तट पर सभ्यता के निर्माण के लाभ और हानि का पूरा परिचय मिल गया होगा और उन्होने सामूहिक रूप से सगठित एव अनुशासित होकर कार्य करने की आवश्यकता को भी भली तरह महसूस किया होगा। विकास के क्रमशः होने के साक्ष्यो के अभाव मे ऐसी कल्पना की गयी है कि इस सभ्यता का विकास शनैः-शनै न होकर किसी महान् प्रबुद्ध नेता या नेताओ के सुयोग्य निदेशन में स्फुटन हुआ। यह उल्लेखनीय है कि सिंधु सभ्यता के अंतर्गत नगरो का ही निर्माण नही हुआ बल्कि गाव भी बसे। वास्तविकता तो यह है कि ग्रामो की सख्या नगरो की अपेक्षा कही

---

1. फेयरसर्विस का कहना है कि भारत-पाक उपमहाद्वीप के सीमावर्ती क्षेत्रो मे भेड बकरियो के विशाल पैमाने पर पाले जाने का साक्ष्य है; सिंधु सभ्यता मे भेड बकरी पालने का साक्ष्य तो मिलता है पर गाय, बैल, भैंस जैसे पालतू पशुओ का विशेष महत्त्व रहा था। यह भी यायावर चरवाहे और मैदान मे स्थायी रूप से बसे कृषकों के भेद का द्योतक है।

अधिक है। बलूचिस्तान और सिंध की ग्रामीण संस्कृतियों के लोगों को इन ग्रामो के बसाने में कठिनाई की गुंजाइश कम ही थी। फेयरसर्विस का कहना है कि जिस प्रक्रिया से सिंधु सभ्यता का निर्माण हुआ वह उस प्रक्रिया का ही तर्क-संगत परिणाम लगता है जो उस समय उसके निकटवर्ती अंचलो में चल रही थी। हाल ही में टेपे याह्या (दक्षिणी ईरान के केरमन प्रांत) के उत्खनन में चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पूर्व के अंत और तीसरी सहस्राब्दी ई० पूर्व के प्रारंभ की ऐसी संस्कृति का उद्घाटन हुआ है जिसके लोग लेखन कला से परिचित थे। और इस बात की संभावना है कि सिंधु सभ्यता के लोगों ने लेखन कला की प्रेरणा इस संस्कृति से ही ली हो।

राजस्थान के कुछ स्थलो, और कुछ अन्य क्षेत्रो से भी, ऐसे मृद्‌भाण्ड मिले है जो प्राग्-हड़प्पा-कालीन मृद्‌भाण्डो से समानता लिए है। इस तरह के मृद्‌भाण्ड श्री अमलानंद घोष को 1953 मे सर्व प्रथम सोथी (बीकानेर क्षेत्र) नामक स्थान पर और बाद मे अब लुप्तप्राय सरस्वती दृषद्वती नदियो की घाटियो मे उत्तरी राजस्थान के गगा नगर जिले में अनेक स्थानो पर मिले। कुछ समय पूर्व तक इस तरह के बर्तनो को (जो तब केवल सर्वेक्षण से प्राप्त हुए थे, उत्खनन से नही) सिंधु सभ्यता के बाद का समझा जाता था। किंतु अब कालीबगा (गंगा नगर जिला) की खोदाई के प्रकाश से ये हडप्पा संस्कृति से पहले की संस्कृति के सिद्ध हुए है। इन बर्तनो वाली सस्कृति को कुछ ने 'सोथी' सस्कृति और कुछ ने 'कालीबगा प्रथम' नाम दिया है। कुछ विद्वानो ने, जिनमे अमलानंद घोष मुख्य है, इस (सोथी) संस्कृति से हडप्पा संस्कृति के विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान की सभावना व्यक्त की है। इस सिलसिले मे घोष इस बात पर बल देते है *कि सोथी और सिंधु सभ्यता के भाण्ड कुछ स्थलो में साथ-साथ मिलते है* जिसका अर्थ हुआ कि दोनो समकालीन भी रही। जगतपति जोशी द्वारा हाल ही में सुरकोटडा (कच्छ) मे किये गये उत्खनन से भी सोथी (कालीबंगा प्र०) प्रकार के बर्तन और सिधु सभ्यता के बर्तन प्रारंभिक चरण से ही साथ साथ मिलते है। घोष का मत है कि इस धारणा के बजाय कि बाहर से लोगों ने सिंधु घाटी और अन्य सिंधु सभ्यता के क्षेत्र मे आकर उपनिवेश बसाये, यह अधिक तर्क सगत मालूम देता है कि भारत के ही लोगों ने, जिनका मस्तिष्क ग्रहणशील था और जिन्होने मेसोपोटामिया से नागरिक जीवन का भाव ग्रहण किया था और मेसोपोटामिया के लोगो से अधिक योजनाबद्ध निर्माणकार्यों के द्वारा, शायद सुमेरियों से अच्छे बनाने की होड में, सिंधु सभ्यता के नगरो का निर्माण किया था। सम्पन्नता के लिए उन्होंने मेसोपोटामिया से व्यापारिक संबंध स्थापित किये और विभिन्न क्षेत्रों मे मानकीकरण किया। निश्चित अधिकार-

वाद से शासित नदियों की घाटी में स्थित नगरों का चरमोत्कर्ष होना कोई आश्चर्य की बात नही। उनका कहना है कि सीमित जन-संख्या और एक कुशल बहुमुखी नेतृत्व के द्वारा इस तरह की उपलब्धि एक-दो पीढी में भी हो सकती थी। इनकी इस उपलब्धि को देख कर हो सकता है उनके अन्य क्षेत्रो के लोगों ने भी इस प्रगति की दिशा में उनका अनुसरण किया हो।[1] सिंधु सभ्यता के ग्रामीण स्थलों, जिनकी संख्या इस सभ्यता के नगरो की अपेक्षा कही अधिक है, के लोगो ने पूर्ववर्ती कृषक समुदाय के आर्थिक ढाचे तथा उनके बर्तन बनाने आदि की परंपरा को काफी हद तक बनाये रखा होगा और इसके साथ ही नये तत्त्वो को भी ग्रहण किया होगा।

मेसोपोटामिया की प्रेरणा वाले मत के विरुद्ध भी विद्वानो ने प्रभावशाली तर्क दिए। उनका कहना है कि यदि इस सस्कृति के आदि निर्माताओं ने मेसोपोटामिया से प्रेरणा ली होती तो कम से कम प्रारभिक चरण मे नगर-योजना की रूपरेखा सुमेरीय रूपरेखा के अनुरूप होती, जो बात नही है। साथ ही अगर ये पश्चिमी एशिया से व्यापार द्वारा बहुत जल्दी मानक स्थापित करना चाहते तो उनके माप-तौल पश्चिमी एशिया के नगरो मे प्रयुक्त माप-तौल पर आधारित होते, पर ऐसा भी नही है। राव के अनुसार सिंधु सभ्यता के मूल का श्रेय उसी सस्कृति को दिया जा सकता है जो सिंधु सभ्यता से कालक्रम की दृष्टि से पूर्व की हो और सिधु सभ्यता के साथ-साथ उसके विद्यमान होने के साक्ष्य हो और उनमे परिवर्तन के क्रमिक चरण स्पष्ट हो उसमे वे तत्त्व, सूत्र रूप मे ही सही, हो जो सिंधु सभ्यता की विशिष्टता है, यथा नगर-नियोजन, नागरिक स्वच्छता का प्रबन्ध, लेखन-कला का ज्ञान, मुद्रा और बाट का ज्ञान, धातु-कला का ज्ञान और ऐसे मृद्भाण्डों का निर्माण जिन्हे सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्डो का पूर्वरूप माना जा सके। उनके अनुसार इस सभ्यता का विकास सिधु की स्थानीय संस्कृतियों द्वारा शनैः-शनै दीर्घावधि में हुआ। उनके अनुसार लोथल मे इस बात के साक्ष्य मिले है कि सिंधु संस्कृति के लोगो का ही साधारण संस्कृति से विकसित सभ्यता मे परिणित होने मे पर्याप्त समय लगा।

---

1. वे सिंधु सभ्यता के नरकंकालो पर किए सरकार के शोधकार्यों के परिणामस्वरूप उपलब्ध साक्ष्य का उल्लेख करते है जिनके अनुसार मोहेंजोदड़ो के सैंधव सभ्यता के लोग आधुनिक सिंध के वासियो, हडप्पा वासियो का आधुनिक पजाबियो और लोथल के लोग आधुनिक गुजरात के लोगों से मिलते-जुलते है जिससे सिंधु सभ्यता के सभी स्थलों के लोगो का एक जाति का न होना सिद्ध होता है।

सिंधु सभ्यता और सोथी संस्कृति के मृद्भाण्डों में कुछ समानताएं है, यथा मत्स्य शल्क और पीपल की पत्ती का चित्रण, रस्सी के निशान का अलंकरण, साधार तश्तरी, उथले नाद, और बर्तनों के छल्लेदार आधार, यह साक्ष्य महत्त्वपूर्ण है। धर्मपाल अग्रवाल, ब्रिजेट अल्चिन, रेमण्ड अल्चिन आदि विद्वानों ने यह धारणा व्यक्त की है कि सोथी सिंधु सभ्यता से पूर्व की अलग सस्कृति नही थी बल्कि वह सिंधु सभ्यता का ही प्रारंभिक रूप थी। अग्रवाल के अनुसार ग्रामीण सोथी संस्कृति का ही नागरिक रूप सिंधु सभ्यता है, और यह ग्रामीण स्वरूप उसके नागरिक रूप के साथ कुछ काल तक समकालीन रहा। सिंधु सभ्यता के ग्रामीण स्थलो में सोथी का प्रभाव अधिक समय तक रहा यद्यपि उस पर सिंधु सभ्यता का प्रभाव भी पडता रहा। ब्रिजेट और रेमण्ड अल्चिन, कोटदीजी तथा कालीबंगां मे 'तथाकथित' प्राग् सिंधु सस्कृति और सिंधु संस्कृति के मध्य निरतरता मानते है। इनके अनुसार मोहेंजोदडो मे 1932 मे 'डी के' क्षेत्र के सातवें खण्ड मे निम्नतम अनावरित स्तरो से उसी प्रकार के भाण्ड मिले जिस तरह के हडप्पा के गढी वाले टीले मे निम्नतम स्तरो पर मिले है, अल्चिन युगल के अनुसार मोहेंजोदडो के वे स्तर आमरी, हडप्पा और कोटदीजी मे प्राग् सिंधु सभ्यता से सिंधु सभ्यता मे परिवर्तन के चरण के समकालिक है। अब तो ह्वीलर ने भी, जो इस सभ्यता के उद्गम के लिये मेसोपोटामिया को मुख्य श्रेय देने के पक्ष मे है, चेतावनी दी है कि इस सभ्यता के मूल के लिये बाहरी स्रोत ढूंढने मे कही 'दिया तले अधेरा' को उक्ति चरितार्थ न हो। यह सही है कि जैसे जैसे नये साक्ष्य मिलते जा रहे है वैसे वैसे विद्वान् सिंधु सभ्यता के मूल को भारत मे ही होने के विषय में गहराई से सोचने लगे है। लेकिन यह भी स्वीकारना होगा कि सोथी और सिंधु सभ्यता मे स्तर भेद और पर्याप्त सास्कृतिक भिन्नता है। जिन स्थलों मे 'सोथी' संस्कृति के बाद सिंधु संस्कृति के अवशेष मिले है उनमे ऐसा लगता है मानो सिंधु सभ्यता उस स्थल पर अध्यारोपित की गई हो और एक साथ छा गई हो।

●

अध्याय 3

नगर-विन्यास एवं स्थापत्य

विस्तृत क्षेत्र मे फैली सिंधु सभ्यता के कुछ टीले नगरों के द्योतक है और कुछ छोटे कस्बो और गावो के। ग्रामीण सस्कृति के टीले संख्या में अधिक है किंतु पुराविद् स्वाभाविक रूप से विस्तृत, वैभवपूर्ण और विकसित नागरिक जीवन की सस्कृति वाले टीलो के प्रति अधिक आकर्षित हुए है और ग्रामीण सस्कृति के टीले अपेक्षाकृत उपेक्षित रहे है। यही कारण है कि हमे सिंधु सभ्यता के नागरिक जीवन के बारे मे उसके ग्रामीण जीवन से कही अधिक जानकारी उपलब्ध है। इस अध्याय में हम पहले नगर-विन्यास और भवन निर्माण संबंधी विशिष्टताओ का उल्लेख करेंगे और फिर कुछ महत्त्वपूर्ण स्थलों के विन्यास और विशिष्ट स्मारको का विवरण देंगे।

मोहेंजोदड़ो के विशेष संदर्भ में
सिंधु सभ्यता के नगर-विन्यास तथा स्थापत्य की सामान्य विशेषताए[1]

सिंधु सभ्यता के नगर प्राचीनतम सुनियोजित नगर है। हड़प्पा और मोहें-जोदडो तथा सिंधु सभ्यता के कुछ दूसरे स्थलों मे जिस तरह का नगर विन्यास हमे मिलता है वह इस बात का साक्षी है कि विधिवत् नक्शा बनाकर और आज-कल की नगरपालिका की तरह की किसी तत्कालीन संस्था द्वारा उसे स्वीकृत कराके ही भवन-निर्माण किया गया होगा। प्राय. सडकें एक दूसरे को समकोण पर काटती है और नगर को आयताकार खण्डो मे विभाजित करती है। यही बात लोथल, कालीबगा सुरकोटडा आदि नगरो मे भी दिखायी पडती है। मोहेजोदडो में जो सबसे चौडी सड़क मिली है वह 10 मीटर से कुछ अधिक चौडी है, जिसे पुराविदो ने राजपथ नाम दिया है। सड़को के निर्माण मे हवा का भी ध्यान रखा गया था। हवा के झोंको से सड़क के दोनो ओर के मकानों की वायु शुद्ध हो जाती थी। चौडी सडको पर कई बैलगाड़िया एक साथ समानान्तर चल सकती थी। मोहे-जोदड़ो, हडप्पा, लोथल आदि स्थलो मे सिंधु सभ्यता काल की सडकों के बारे में जो जानकारी मिली है उससे पता चलता है कि उस काल की किसी भी सड़क

---

1. इस शीर्षक के अंतर्गत यदि किसी स्थल विशेष का उल्लेख नही है तो विवरण मोहेजोदड़ो के साक्ष्य पर आधारित है।

को ईंट आदि बिछाकर पक्का नही बनाया गया था। केवल मोहेंजोदडो की एक सडक पर टूटे बर्तन और खण्डित ईंटें पडी मिली है जिससे ऐसा लगता है कि इस सडक को पक्का बनाने की दिशा मे प्रयोग किया जा रहा था। न जाने क्यो यह ठीक नही समझा गया। कच्ची सडक के कारण गर्मी मे धूल उड़ती रही होगी। धूल से निवारण के लिए शायद नगरपालिका ने पानी छिडकने का प्रबध किया रहा होगा, किंतु वर्षा के बाद इन सडकों मे कीचड भर जाता रहा होगा। ऐसी परिस्थिति मे बैलगाडिया कैसे चलती रही होगी और पैदल लोग भी कैसे यात्रा करते रहे होंगे, यह आसानी से समझ मे नही आता। सड़को की सफाई का प्रबंध अवश्य उत्तम लगता है।

भवन विभिन्न आकार-प्रकार के है जिनकी पहिचान धनाढ्यो के विशाल भवन, सामान्य जनो के साधारण घर, दुकानें, सार्वजनिक भवन इत्यादि से की जा सकती है। साधारणतया घर पर्याप्त बडे थे और उनके मध्य मे आगन होता था। आगन के एक कोने मे ही भोजन बनाने का प्रबध था और इर्द-गिर्द चार या पाच कमरे बने थे। प्रत्येक घर मे स्नानागार और घर के पानी की निकासी के लिए नालियो का प्रबध था और कई घरो मे कुए भी थे। गलिया 1 मीटर से 2 2 मीटर तक चौडी थी। ये गलिया चक्करदार या भूलभुलैया जैसी नही है जैसा कि भारत और अन्य कई एशियाई देशो के नगरो मे अधिकतर होती है, वे सीधी है, और निश्चय ही उनका निर्माण योजनाबद्ध तरीके से किया गया था।

हडप्पा और मोहेंजोदडो दोनो नगर लगभग 5 किलोमीटर के घेरे मे बसे थे। इन दोनो नगरो तथा कालीबगा, सुरकोटडा आदि की नगर-निर्माण योजना मे पर्याप्त समानता दृष्टिगोचर होती है। इनमे प्रत्येक स्थान पर दो मुख्य टीले है—एक छोटा और दूसरा बड़ा किंतु अपेक्षाकृत नीचा। इतना ही नही, सभी मे छोटा ऊचा टीला बडे नीचे टीले के पश्चिम मे स्थित है और गढी का द्योतक है। कालीबंगा मे तो निचला नगर भी रक्षा दीवार से सुरक्षित था पर हडप्पा मे ऐसा नही। कालीबगा और हडप्पा में गढी और निचले नगर के बीच खाली जगह है। मोहेंजोदडो मे इस बात के साक्ष्य दिखते है कि गढी और निचले नगर के मध्य नहर या सिधु नदी की एक शाखा बहती थी। लोथल और सुरकोटडा मे गढी और निचला नगर दोनो एक ही सुरक्षा दीवार से रक्षित थे।

सिधु सस्कृति के नागरिक भवनो के निर्माण में सजावट और बाहरी आडम्बर के विशेष प्रेमी नही थे। उनके भवनो में न अलंकरण ही दिखता है और न विविधता ही, ऐतिहासिक काल में अलंकरण भारतीय स्थापत्य का आवश्यक

अंग रहा है। नगरों के ध्वंसावशेषों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कि वे आधुनिक व्यवसायिक नगरों के अवशेष हों। संभवतः सिंधु सभ्यता के लोगों की व्यवसायिक बुद्धि ने स्थापत्य में सुन्दरता से कही अधिक उपयोगिता की ओर ध्यान देने को प्रेरित किया हो। कई विद्वानो, विशेषत. पिगट ने भवन-निर्माण शैली में एकरूपता की आलोचना की है जो उनके अनुसार लोगो के अत्यधिक परंपरावादी दृष्टिकोण का फल है। सिंधु सभ्यता मे न तो सुमेर की भांति विशाल मदिरो के अवशेष मिले हैं और न मिस्र जैसी भव्य और प्रभावशाली कब्रे। सिंधु सभ्यता की ईंटो में वह चित्ताकर्षक कारीगरी नही है जो हमें परवर्तीकालीन सारनाथ, भीतरगांव, और पहाड़पुर की ईटों में दिखलाई पडती है। कालीबंगा का एक फर्श का उदाहरण एकमात्र अपवाद है जिसके निर्माण में अलंकृत ईटों का प्रयोग हुआ है।

यों काष्ठ-कला के विकास में प्राचीन भारत अग्रणी रहा है, यहा तक कि हमें चट्टानों से काट कर बनाये गये चैत्यों मे भी, जहां काष्ठ का प्रयोग आवश्यक नही था, काष्ठ प्रयुक्त मिलता है। अतः यह भी संभव है कि परवर्ती काल की भाति सिंधु सभ्यता की इमारतो में स्थापत्य तथा सजावट के लिए काष्ठ का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग होता रहा हो, किंतु उसके अवशेष अब नही बचे है।

मोहेंजोदडो और हडप्पा जैसे नगरों का भवन-निर्माण सादा होते हुए भी उच्च कोटि का है। इन दोनो नगरों मे भवन निर्माण के लिए पक्की ईटो का प्रयोग किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि सिंधु सभ्यता के समकालीन मेसोपोटामिया मे पक्की ईटो का प्रयोग अपेक्षाकृत बहुत कम हुआ है। सिंधु सभ्यता के ही कई स्थलों, यथा लोथल, रंगपुर आदि मे भवनो का निर्माण प्राय: कच्ची ईटो से हुआ था। हडप्पा और मोहेंजोदडो की इमारतों के उस भाग के निर्माण मे, जो बाहर से दिखाई देता था, कही भी खण्डित ईंटों का प्रयोग नही किया गया। केवल भराव के लिए ही खण्डित ईंटों का उपयोग हुआ है। ईटें नदियो द्वारा लायी गयी मिट्टी से बनायी जाती थी। खुले भट्ठों मे पकाने के कारण इनका रग लाल हो गया है। इनके पकाने मे पर्याप्त मात्रा मे ईंधन जलाया गया होगा। गीली ईटों को आज की भाति समतल मैदान मे बिछाकर सुखाया जाता था। इसी कारण कुछ ईंटो पर पशुओ के पद-छाप है। चन्हुदडो की एक ईंट पर पडे बिल्ली और कुत्ते के पद-चिह्नो के निरीक्षण से स्पष्ट है कि किसी कुत्ते ने बिल्ली का पीछा किया था और इसी भागा-दौड़ी मे वे दोनो सुखाने के लिए बिछायी गयी गीली ईटों के ऊपर से गुजरे थे।

सिंधु सभ्यता मे प्रयोग की गई ईंटें अलग अलग आकार-प्रकार की हैं। मोहेंजोदड़ो से प्राप्त सबसे बड़ी ईंट 51.43 सेमी × 26.27 सेमी × 6.35 सेमी

की हैं । कुछ ईंटें 36 83 सेमी × 18 41 सेमी × 10 16 सेमी की मिली हैं । सबसे छोटी ईंटें 24.13 सेमी × 11 05 सेमी × 5.08 सेमी की है । जो ईंटें सामान्यतया व्यवहार में आयी है वह 27 94 सेमी × 13.97 सेमी × 6.35 सेमी की हैं । सिंधु सभ्यता के प्राय सभी स्थलों पर जहा भी ईंटों का व्यवहार भवनों के निर्माण में हुआ है, लगभग इसी माप की ईंटें प्रयुक्त हुई हैं । इमारतों के कोनों की चिनाई अंग्रेजी के अक्षर एल (L) जैसी समकोणाकार बनी ईटो से की गयी है । फन्नीदार ईटो का प्रयोग कुओं की दीवार और मेंहराब बनाने में किया गया है ।

इमारत की नीव भी उसके आकार-प्रकार को ध्यान में रख कर कम या ज्यादा गहरी रखी जाती थी । मोहेंजोदडो नगर के मध्य प्रकाल के निवासियो ने इमारतो की नीव गहरी रखने का विशेष ध्यान रखा । छोटी छोटी इमारतों की नीव अपेक्षाकृत कम गहरी थी । नीव की भराई मे खण्डित ईंटो का प्रयोग हुआ है । नगर के अंतिम प्रकाल मे सभवत निर्धन व्यक्तियो ने अपने मकानो की नीवो को गहरा करने की ओर विशेष ध्यान नही दिया । उन्होने पूर्वकालीन खण्डहरो के मलबे के ऊपर ही, नीव की गहराई की परवाह किये बिना ही इमारत बना दी । मोहेंजोदडो मे अगल-बगल के घर आपस मे संयुक्त दीवार से संबद्ध नही थे । उनके मध्य साधारणत बहुत थोडा, लगभग एक फुट का फासला छोड दिया जाता था, जिसे दोनो तरफ से ईटों से बद कर दिया जाता था । स्पष्ट है कि ऐसा चोरो से बचाव के लिए किया जाता था । मोहेंजोदडो, हड़प्पा, लोथल इत्यादि नगर नदियो के किनारे पर बसे थे । चूकि उन्हे बाढ से नुकसान पहुंचने का लगातार खतरा रहता रहा होगा अत उन लोगो ने भवनों को ऊँचाई पर बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया था ।

मोहेंजोदडो की इमारतो मे ईंटे चपटी या खडी लगाई गई है । स्नानागारो में प्रयुक्त ईटे प्राय खडी जमा दी गयी हैं जिससे सीलन कम रहे । मकानो के फर्श तीन तरह से बनाये जाते थे—मिट्टी की कुटाई करके, समतल और मजबूत कच्ची ईंटें बिछा कर, अथवा पक्की ईंटों का प्रयोग करके । अधिकाशत फर्श मिट्टी को ठोक-पीट कर बनाये गये हैं । इस विधि से फर्श बनाना आसान भी होता है और सस्ता भी । महत्त्वपूर्ण इमारतो के फर्श प्राय. पक्की ईंटो से निर्मित है । इस तरह के फर्शों की मोटाई एक ईट से लेकर पाच ईट तक पायी गयी हैं । कालीबगा का एक फर्श अलकृत ईटो का बना है जिन पर प्रतिच्छेदी वृत्त का अलंकरण है (फ० VIII , I) ।

मोहेंजोदडो के अधिकाश घरो में स्नानागार थे, जो कि गली की ओर स्थित होते थे जिससे पानी के निकास मे आसानी रहे । स्नानागार के फर्श के निर्माण

में विशेष सावधानी बरती गयी है। इसके लिए सदैव अच्छी तरह पकाई गई ईंटों का प्रयोग किया गया है। ईंटो के किनारे ठीक तरह से घिस दिये जाते थे ताकि वे फर्श पर ठीक-ठीक बैठाए जा सकें। मैके का कहना है कि ये ईंटें आरे से काटकर बिठाई गई है। कुछ स्नानागारों मे फर्श पर लाल रंग के धब्बे मिलते है जो कुछ चमक लिए है। हो सकता है कि यह चमक मनुष्यों के बारंबार चलने के कारण घिसने से पैदा हुई हो। फर्श के किनारे पर एक छोटा सा निकास भी छोडा जाता था जिससे गदा पानी आसानी से बाहर निकल सके। स्नान के लिए प्रायः अलग से एक कमरा होता था, किंतु कभी कभी एक बडे कमरे के कोने में ही स्नान का प्रबंध कर लिया जाता था। स्नान करते समय लोग झावे से शरीर को साफ करते थे। सिंधु सभ्यता मे ये झावे बडी संख्या मे मिले है। कुछ तो इतने इस्तेमाल किये गये थे कि वे अधिक घिस गए और बेकार हो गये। स्वच्छता के अतिरिक्त धार्मिक अनुष्ठान के रूप मे भी लोग स्नान करते थे।

भीतर की ओर तो छोटी-बडी सभी दीवारे लगभग सीधी है। छोटे भवनों की दीवारों का बाहरी हिस्सा या तो सीधा है या थोडा ढाल लिए है, किंतु बडी-बडी इमारतो की दीवारें प्राय बाहर की ओर ढाल लिए है। मैके ने सुझाया है कि दीवारो को ढालू बनाने का मूल मिट्टी की बनी दीवारो मे ढूंढा जा सकता है, किंतु उन्होने यह भी बताया है कि मिट्टी की बनी दीवारें दोनो ओर से ढालू होती है जब कि सिंधु सभ्यता की ईंट की दीवारें बाहर की ओर ही ढालू है। कुछ इमारतो मे पलस्तर मिट्टी के पलस्तर के साक्ष्य मिले है संभवत उस पर पुताई भी की जाती थी। दीवारे आजकल की तुलना मे काफी मोटी है। मोहेंजोदडो व हडप्पा जैसे नगरो मे धनी सम्पन्न लोगों की कमी नही रही होगी। सुरक्षा की दृष्टि से ही दीवारो को पक्की बनाने का विशेष यत्न रहा होगा। मोटी दीवारों से इमारत की मजबूती तो रहती ही है, साथ ही कमरे ठडे भी रहते है। गरम जलवायु वाले स्थलो मे गर्मी से राहत पाने के लिए ऐसी दीवारें विशेष उपयुक्त है। संभवतः एक से अधिक मजिल वाले मकान भी थे और कुछ दीवारो को इसलिए भी मोटा बनाया गया होगा ताकि वे ऊपरी मंजिल (या मजिलो) के भार को भलीभाति वहन कर सकें। दीवारों का अनुलम्ब संरेखण (vertical alignment) अत्यंत सही है जिससे स्पष्ट है कि राज लोगो ने दीवालों का सीधा बनाने मे साहुल की सहायता ली होगी।[1]

---

1. मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक चूना-पत्थर के उपकरण की पहचान मैके (फ० इ०, 408) ने साहुल से की है।

दीवारो की जुडाई एक तह लम्बाई में, फिर एक चौडाई में, फिर लम्बाई में, इस क्रम से ईंटों को रखा जाता था। इस तरह की जुडाई मे ईंटों के किनारे एक सीध मे नही पडते अत· दीवार अधिक मजबूत होती हैं। कुछ थोडे से ऐसे भी दृष्टात मिले है जिनमे ईंटो के चपटे हिस्से को खडा करके रखा गया है। चिनाई की दृष्टि से इसका कोई महत्व नही, शायद विविधता लाने के लिए ऐसा किया गया होगा। सभवतः ऐसी दीवालों पर पलस्तर नही लगाया जाता था ताकि ईटो की यह विशिष्ट प्रकार की चिनाई दिखाई देती रहे। वास्तव मे दीवार की चिनाई मे ईंटो को विभिन्न रूप से रखने के जो थोडे से उदाहरण सिंधु सभ्यता मे मिले है, वे ही दीवालो के अलंकरण का आभास देते है, अन्यथा दीवाले एक जैसी सपाट है।

बेबीलोन मे इमारतो की जुडाई मे गारे के लिए गीली मिट्टी अथवा गिरि-पुष्पक (बिटूमिन) का व्यवहार होता था। वहा पर चूने से जुडाई का प्रचलन सिंधु सभ्यता के बाद मे प्रारभ हुआ। सिंधु संस्कृति मे मिट्टी का ही मुख्य रूप मे प्रयोग हुआ, जिप्सम का मिश्रण ईटो की चिनाई में गारे के रूप में बहुत कम किया गया। मोहेंजोदडो की केवल एक ही इमारत—विशाल स्नानागार के निर्माण मे गिरिपुष्पक का प्रयोग मिला है। यह उल्लेखनीय है कि मोहेंजोदडो नगर से लगभग 112.65 किलोमीटर की दूरी पर चूना पत्थर उपलब्ध था, किंतु फिर भी वहा के निवासियो द्वारा चूने का प्रयोग मकान की चिनाई मे नही किया गया। चूने और जिप्सम के मिश्रण का प्रयोग केवल नालियो की जुडाई मे मिलता है, जहा निरतर पानी के बहाव के कारण चिनाई को मजबूत बनाना आवश्यक था। प्राचीन मिस्र मे चूने का प्रयोग गारे के रूप मे तथा रोमन काल मे प्लास्टर के लिए किया जाता था।

जिन इमारतो के निचले खण्ड बच रहे हैं उन्हें देखने मे ज्ञात होता है कि इमारतो मे अधिकाशत वायु प्रवेश और निकास के लिए मार्ग मात्र दरवाजा ही होता था। दरवाजे लकडी के बने होते थे और उनके अवशेष प्राप्त नही है। ये दरवाजे दीवार के मध्य मे न होकर एक किनारे पर होते थे। सामान्य द्वार की चौडाई लगभग एक मीटर थी, किंतु कुछ काफी चौड़े भी थे। एक 2.35 मीटर चौडा दरवाजा था। संभवत पशुओ के आवागमन की सुविधा के लिए इसे इतना चौडा बनाया गया था। दरवाजो के चूल के लिए ईटो के द्वार विवर मिले हैं। खिडकियो के होने के अत्यल्प साक्ष्य उपलब्ध (फ० V, 1) है। संभवत नागरिक अपनी धन-सम्पदा को सुरक्षित और गुप्त रखने के लिए बाहर की दीवारों मे खिडकिया नही बनवाते थे। यह भी संभव है कि खिडकिया ऊपरी भाग मे रही हो जो अब शेष नही रहे। शायद इस क्षेत्र मे गरमी काफी पड़ने के

कारण भी धूप और लू से बचाव के लिए खिड़कियां बहुत कम बनाई गई थी। अलाबास्टर पत्थर की कुछ खण्डित जालियां प्राप्त हुई हैं। हो सकता है कि इनका प्रयोग खिडकी के लिए किया गया हो। कुछ पकाई मिट्टी की जालियां भी मिली है।

दुर्भाग्य से उत्खात वस्तुओं मे, एक अपर्याप्त और धुंधली रूप-रेखा वाली मुद्रा को छोड कर, किसी वस्तु पर भी किसी भवन का चित्रण नही मिलता जिससे तत्कालीन भवनों की पूरी रूपरेखा का ज्ञान प्राप्त हो सके। कुछ घरो मे सीढ़िया (फ० V, 2) मिली है जो दीवारो की खडी नालियों के साक्ष्य की भाति ऊपरी मंजिल होने का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। अधिकांशतः सीढ़ियों की पैड़ बहुत संकरी थी और दो पैंडो के बीच की ऊंचाई काफी थी। मैंके को केवल एक सीढी ही अपवाद-स्वरूप ऐसी मिली जिसमे पैंडों की चौडाई काफी थी (फ०इ०, 168)। जिन घरो में सीढिया नही मिली है वहा कुछ में हो सकता है लकड़ी की सीढिया रही हो जो अब नष्ट हो गई है। मोहेंजोदडो की तुलना मे हडप्पा मे सीढिया बहुत कम मिली है।

शायद इमारतो की छतें समतल थीं। छतों पर सरकंडों को चटाई की तरह बिछाकर उन्हे रस्सी से गूथ दिया जाता था और उसे कडियो के बीच रख कर उसके ऊपर मिट्टी की मोटी तह बिछा दी जाती थी। इमारतों के मलबे से खपरैल और कासे या तांबे की बनी सरियों जैसी कोई वस्तु उपलब्ध नही हुई। एक अधजली लकडी की कडी के साथ ताबे का उपकरण पाया गया है जिसके बारे मे अनुमान है कि इसका प्रयोग कड़ियो को जोडने मे कील की तरह किया गया होगा। इसकी कम सभावना है कि भवनो का ऊपरी भाग चपटा न होकर शिखरनुमा रहा हो।

मोहेंजोदडो और हडप्पा मे कुछ ऐसे कमरो की रूपरेखा भी है जिनमे प्रवेश के लिए कोई दरवाजा नही था। संभवतः ऐसे कमरो मे ऊपर से सीढी द्वारा पहुचा जाता था। यह मानना युक्तिसगत नही लगता कि उनका उपयोग निद्रा-कक्ष के रूप में किया जाता था। वे या तो किसी धार्मिक अनुष्ठान से संबंधित थे, या इनका प्रयोग गोदामो की तरह अन्न रखने के लिए किया जाता था।

मोहेंजोदड़ो और हडप्पा मे भवनो मे स्तंभों का प्रयोग कम हुआ है। हो सकता है कि लोग लकड़ी के स्तभो का प्रयोग करते रहे हों जो अब नष्ट हो गये है। स्तभों के जो अवशेष मिले है वे या तो चतुर्भुजाकार है या वर्गाकार। गोल स्तभ सिंधु सभ्यता मे अनुपलब्ध हैं, जबकि इस तरह के स्तंभ तत्कालीन मेसोपोटामिया की सभ्यता में लोकप्रिय थे, जहा संभवतः इस तरह के स्तंभ बनाने की प्रेरणा खजूर के पेड़ो से मिली थी। सुमेर में अर्धवृत्ताकार अर्ध-स्तंभों

का निर्माण होना था, किंतु सिंधु सभ्यता मे ऐसे उदाहरण नही मिलते । लेकिन वृत्ताकार अथवा अर्धवृत्ताकार स्तंभों के अभाव का कारण यह नहीं कि सिंधु संस्कृति के लोग गोल स्तंभ निर्माण करने मे सक्षम नही थे, क्योंकि उन्होंने फन्नीदार इंटो का प्रयोग करके गोल कुएं बनाये थे । गोल स्तंभ बनाने के लिए ऐसी ही ईंटो की आवश्यकता होती है ।

उत्खननो मे पत्थर के अनेक वृत्ताकार चक्के उपलब्ध हुए है । इनमें से कुछ 42 67 सेमी से 48 51 सेमी व्यास वाले है और 24.89 सेमी से 27 45 सेमी ऊंचे है । विद्वानो का विचार है कि इनका प्रयोग लकडी के स्तंभो के शीर्ष भाग की सजावट के लिए किया गया था । पत्थर के अन्य अधिकाश छल्ले काफी छोटे है और उनके भीतरी भाग का व्यास इतना कम है कि स्तंभ के शीर्ष भाग की मोटाई कम करके भी इनका प्रयोग स्तभ के शीर्ष के रूप मे किया जाना कठिन लगता है ।

हडप्पा सभ्यता मे टोडा मेहराब (फ० III, 2) का प्रयोग मिलता है । बेबीलोन और मिस्र की संस्कृति मे पुराकाल मे गोल मेहराब का प्रचलन था, किन्तु मोहेंजोदडो नगर मे उसे नही अपनाया गया । लोथल मे एक आध उदाहरण ऐसे है जिनसे गोल मेहराब से सिंधु सभ्यता के लोगो का परिचय होने का प्रमाण मिलता है, लेकिन ये अपवाद स्वरूप है, सामान्यत. दन्तक मेहराब का ही प्रयोग होता रहा । सुमेरी और सिंधु संस्कृति के बीच सांस्कृतिक सम्पर्क था, अत हडप्पा एव मोहेंजोदडो के लोग गोल मेहराब से अपरिचित रहे हो इसकी सभावना कम ह है । यदि वे इस तरह का मेहराब बनाना चाहते तो बना सकते थे क्योकि ये लोग फन्नीदार ईंटे बनाना जानते थे ।

मोहेंजोदडो के निचले नगर के कुछ मकानो मे सडाम बडे ढंग से बनाये गये थे । इनकी तुलना पश्चिमी जगत के शौचालयो मे की जा सकती है । इन्हे कुछ ढलुआ बनाया गया था । कही-कही इनमे सीढीदार नाली की व्यवस्था की गई है जो दीवार मे होकर सडक की नाली मे मिलती है । दीवार मे जिस स्थान मे नाली निकाली गयी है उसकी जुडाई मे कुशलता दिखलायी गयी है । इस कार्य मे ईंटो को घिस कर (या आरी स काट कर ?) लगाया गया है ।

सडको के किनारे स्थित कुछ इमारतो के कोने घिसे मिले है । इन स्थानो से बोझ लादे हुए पशु अथवा सवारियां निकलने से यह घिसावट हुई होगी । हडप्पा संस्कृति के नगरो की कुछ इमारतो क कोने कुछ गालाई लिए हुए बनाये गये थे ताकि सामान-लदे जानवर बिना कठिनाई के गुजर सकें ।

मोहेंजोदडो मे इस बात के स्पष्ट साक्ष्य है कि समय बीतने पर जनसंख्या बढने के साथ ही ऐसी जगहो पर भी मकान बनने लगे थे जहा साधारणतः

उनके होने की संभावना नहीं थी। स्पष्ट है कि भवन-निर्माण संबंधी नियमों का पालन कराने मे तत्कालीन नगरपालिका जैसी संस्था असमर्थ थी। जैसे-जैसे परिवार मे सदस्यो की संख्या बढी, मकान को छोटे-छोटे कमरो मे बाटा जाने लगा जिससे भवनों की गरिमा नष्ट हो गई। कुम्हारों के भट्टे जो पहले नगर से बाहर ही बनते थे वे अब नगर के अंदर बनने लगे और उन्होने प्रमुख सड़कों पर भी अड्डा जमा लिया था।

प्राचीन सभ्यताओं में निकास नालियों का इतना सुन्दर प्रबध और कही नही मिलता जितना कि सिंधु सभ्यता में। भारत में भी सिंधु सभ्यता के बाद शताब्दियों तक इस तरह का प्रबंध नही मिलता। ये नालिया (फ० III, 1, 2; VII, 1) इस बात की साक्षी है कि सिंधु सभ्यता के लोग सफाई के प्रति अत्यंत सजग थे। कुछ नालिया तो थोडी गहरी हैं लेकिन कुछ आधे मीटर से भी अधिक गहरी है। साधारणतया बडी नालियो को पत्थर के खण्डो से ढक दिया गया था और छोटी नालियो को बड़ी ईटो से। पत्थर आसानी से उपलब्ध नही था, अत आशा की जाती थी कि नालियो को ढकने के लिए पक्की ईटों का ही प्रयोग वे करते। किन्तु, जैसा कि मैके ने सुझाया है, नालियों के ऊपर से जहा यातायात मार्ग था वहा ईंटो के जल्दी टूट जाने की सभावना थी और इसीलिए वहा पत्थर का प्रयोग किया गया होगा। घर के कमरो, रसोई, स्नानागार और शौचगृह की निकास-नालिया एक बडी नाली मे मिलती थी और विभिन्न घरो से निकली ये बडी नालिया अन्तत एक बडी सार्वजनिक नाली मे मिलती थी। जिस स्थान पर ऊंची सतह से आती कोई नाली किसी दूसरी नाली से मिलती थी वहा पर ईंटो की चिनाई वाला एक गड्ढा बना देते थे और जहा नाली किसी कोण पर मुड़ती थी वहा उसे गोलाई लिये बना देते थे। इस गोलाई को लाने के लिए फन्नीदार ईंटो का प्रयोग होता था। नरमोखा (मेनहोल) को बडी-बडी ईंटो से ढका जाता था जिन्हे हटा कर सफाई की जाती थी। ऊपर की मंजिलो से पानी निकालने के लिए भी नालिया होती थी जो कही तो दीवारो मे ही ईंटो की जगह खाली छोड कर बनी हुई होती थी। कुछ ईंटो पर नाली कटी हुई मिली है। कहीं-कही पकाई मिट्टी के बने पाइप की आकृति के परनाले लगाये जाते थे। पक्की मिट्टी के पाइप वाली नालियो के उदाहरण चन्हुदड़ो से विशेष रूप से मिले हैं। मोहेंजोदडो मे भी इसी तरह के पाइप मिले हैं। ये अलग-अलग हिस्सो मे बनाये गये थे और प्रत्येक भाग का एक किनारे का व्यास दूसरे से कम होता था जिसको कि दूसरे भाग के चौडे हिस्से के भीतर बैठाया जाता था। प्राचीन क्नौसोस और मिस्र मे इस तरह के मिट्टी के पाइप मिले है। कालीबंगा में लकड़ी की नाली के प्रयोग किये जाने के

भी प्रमाण मिले हैं। वहां पर पेड के तने को अंदर से खोखला करके उसका नाली के रूप मे प्रयोग हुआ है। अन्य सभी सिंधु स्थलों में नालियों का निर्माण ईंटो से हुआ है। नाली मे प्रयुक्त कुछ ईंटों को तो केवल गारे से जोडा गया है। किंतु कुछ पर जिप्सम के चूर्ण का प्रयोग हुआ है। नालियो को ढकने में टोडा मेहराब का प्रयोग भी मिलता है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण विशाल स्नानागार के जलाशय की नाली है। (फ० III, 2) यह 1.87 से 2 59 मीटर तक गहरी है और इसे टोडा मेहराब से ढका गया है। नालियों में बीच-बीच मे गड्ढे (चहबच्चे) भी बनाये जाते थे जिनमे कूडा करकट रुक जाता था और नाली में पानी बहता रहता था, फिर इनकी सफाई करके कूडा-करकट निकाल दिया जाता था। सडक की नालियो के किनारे रेत के ढेर मिले है जिनसे यह सिद्ध होता है कि नालियों की नियमित रूप से सफाई की जाती थी। किंतु ये ढेर इस बात के भी द्योतक है कि सडक पर पडे कचरे को हटाने मे कभी-कभी लापरवाही बरती जाती थी। कही-कही नालियों मे बनाये ऐसे गड्ढो मे उतरने के लिए सीढिया भी बनी होती थी। इन गड्ढो को ढकने के लिए कदाचित् लकडी के ढक्कन रहे होगे जो अब नष्ट हो गये है। मोहेंजोदडो और सिंधु सस्कृति के कई स्थलो मे ऐसे भी उदाहरण मिले है जिनमे घर के परनाले या छोटी नालिया किसी बडी नाली से नही जुडी हैं, उनमे बहता पानी मिट्टी के ऐसे वृहदाकार घडो मे गिरता था जिनके पेंदो मे छिद्र कर दिये गये थे। पानी तो घडों के पेंदो से होकर जमीन मे रिस जाता था और फिर इकट्ठा हुए कूडे कचरे की सफाई कर दी जाती थी। कुछ पक्की ईंटो के नाबदान भी मिले है। मोहेंजोदडो मे कुछ नालिया ऐसी भी मिली हैं जो कुए के बिल्कुल पास से जाती थी। ऐसी दशा मे उनका गदा पानी रिस कर कुएं मे पहुंच सकता था और उसका जल दूषित हो सकता था।

नालियो के निर्माण मे इस बात का ध्यान रक्खा जाता था कि उनसे बहते पानी के छींटे राहगीरो पर न पडें। वे ढाल पर नालियों को प्रायः सीढीदार बना देते थे जिससे उनमे बहते पानी का वेग कम हो जाय। लोथल की खोदाई से सार्वजनिक नाली का एक बहुत ही सुन्दर उदाहरण मिला है जिसमे घरो की नालिया गिरती थी। इसमे ईंटो को चूने से बहुत ही सफाई से जोडा गया है। ईंटे एक दूसरे से बिल्कुल सटा कर जोडो गई है। ढाल पर इस नाली को सीढीदार बनाया गया है। इसमे सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता नाली में द्वार का बनाया जाना है। यह द्वार काष्ठ का होने के कारण आज उपलब्ध नही हैं किंतु द्वार के लिए बनी चूल विद्यमान है जिससे कि उसके लगे होने का साक्ष्य मिलता है। इस दरवाजे को जालीदार बनाया गया होगा ताकि पानी छन छन

कर बहता रहे और कूड़ा वहीं रुक जाय, जिसकी सफाई नियमित रूप से होती रही होगी।

मोहेजोदडो में निर्माण पुर्ननिमाण के फलस्वरूप भूमि की सतह उठती गयी और उसके साथ ही नालियों को भी ऊँचा करने की आवश्यकता पडी। पहले तो उन्होंने नाली की दीवारों को ही ऊंचा करके आसानी से समस्या सुलझानी चाही, पर जैसे-जैसे सडक की ऊंचाई और उठती गई और इतने से ही काम नही बना तो फिर उन्होंने पुरानी नालियों के ऊपर नई नाली का निर्माण किया और इसके लिए अक्सर पुरानी नाली की ही ईंटों का पुन: प्रयोग किया। अंतिम प्रकाल में नगर-निर्माण के विभिन्न पहलुओ मे ह्रास के चिह्न मिलते हैं और नालिया भी इसका अपवाद नही है। इस प्रकाल मे नालियों के निर्माण, उनकी सफाई और उनके अनुरक्षण की व्यवस्था मे शिथिलता आ गई थी।

सिंधु सभ्यता के कुएं (फ० V, 3) वृत्ताकार अथवा अण्डाकार थे। मोहे-जोदडो की अपेक्षा हडप्पा मे बहुत कम कुएं मिले है। मोहेजोदडो मे प्राप्त कतिपय उदाहरणो के साक्ष्य से ऐसा पता लगता है कि यहा पर सिंधु सभ्यता के प्रारंभिक काल मे कुछ कुएं सार्वजनिक प्रयोग के लिए न होकर केवल व्यक्तिगत प्रयोग के लिए थे, क्योंकि उन तक पहुचने के लिए सडक से कोई मार्ग नही था। पर समय बीतने पर और जनसख्या बढने के कारण कुछ व्यक्तिगत कुओं को जनता के प्रयोग के लिए भी खोल देना पडा। मोहेजोदडो मे अंतिम काल में जब सभ्यता ह्रासोन्मुखी थी, नये कुएं बनाये जाने के साक्ष्य नही मिलते, वे पुराने कुओ से ही काम चलाते रहे। एक तो नये कुएं खोदने मे धन का व्यय बहुत था और दूसरे पिछले काल की ईंटो को खोदकर नीचे कुएं खोदना कठिन भी था। जिन कमरो मे कुए है उनका फर्श भली-भाति ईंटें बिछा कर बनायी गयी थी और उनमे घडे रखने के लिए गहरी जगहे बनी थी। कभी-कभी ईंटें चिन कर बैठने के लिए थोडी ऊची जगह बना दी गई थी, लोग वही बैठ कर अपनी बारी की प्रतीक्षा करते रहते होंगे और न जाने कौन से गीत गुनगुनाते रहते होंगे, कौन से दुखड़े रोते रहे होंगे, क्या हंसी ठिठोली होती रहती होगी। अधिकाश कुएं लगभग .91 मीटर व्यास वाले हैं, पर .61 मीटर व्यास वाले छोटे कुएं और 2.13 मीटर व्यास वाले बड़े कुएं भी मिले है। नगर की सतह ऊंची होने से कुएं की जगत को भी ऊपर उठाना पड़ा। कुछ अपवादों को छोड कर कुओं की जगते बहुत नीची होती थी और निश्चय ही उसमें बच्चों के गिरने का खतरा रहा होगा। ऐसे भी कुएं मिले हैं जो ठीक स्थिति मे है किंतु फिर भी लोगों ने निर्माण के थोडे समय पश्चात् ही उनका उपयोग त्याग दिया था। शायद इस कारण कि कोई उसमे गिर गया था।

सिंधु सभ्यता के कुछ महत्त्वपूर्ण स्थलों के भवन एवं अन्य निर्माण-कार्य
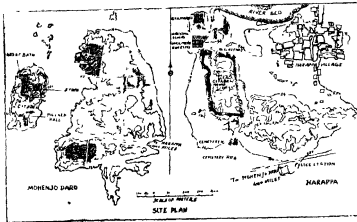
आरेख 2

हड़प्पा

(आरेख 2-3)

लाहौर–मुल्तान रेलवे लाइन पर गिट्टी बिछाने के लिए और मकान बनाने के लिए लोगों ने हड़प्पा के टीले की पुरानी ईंटों को खोद-खोद कर प्रयोग किया, जिस कारण यहां पर भवनों की रूपरेखा उतनी अच्छी दशा में नहीं मिली जितनी कि मोहेंजोदड़ो में मिली है।

हड़प्पा का पश्चिमी टीला गढ़ी था और पूर्वी टीला निचला नगर। गढ़ी आकार में लगभग समानांतर चतुर्भुज है जो उत्तर से दक्षिण दिशा में 420 मीटर और पूर्व से पश्चिम 196 मीटर परिमाप में है। इसका धरातल दक्षिण की अपेक्षा उत्तर की ओर अधिक ऊंचा है। इसकी सर्वाधिक ऊंचाई लगभग 12 से 15 मीटर के बीच में है और इसके निर्माण में मिट्टी और कच्ची ईंटों का प्रयोग हुआ है।

हड़प्पा की गढ़ी के दक्षिण में किये गये उत्खनन से पता चला है कि सिंधु संस्कृति के पूर्व इस स्थान पर पूर्वगामी लोग कभी निवास करते थे। इनके मृद्-भाण्ड, जो सिंधु संस्कृति के मृत्पात्रों से भिन्न हैं, बलूचिस्तान में विशेषकर राना घुंडई तृतीय काल के तृतीय (C) चरण से प्राप्त मृद्भाण्डों से सादृश्य रखते हैं। कालांतर में नदी की बाढ़ में सम्पूर्ण आवास-भूमि पर रेत की तह जम गई और फिर इसके ऊपर सिंधु संस्कृति के अवशेष मिलते हैं। इस संस्कृति के प्रथम चरण में ही गढ़ी (दुर्ग) बनाये जाने के साक्ष्य हैं। सर्वप्रथम सुरक्षा के लिए एक सुदृढ़ दीवार (फ० I, 1) का निर्माण किया गया। यह दीवार आधार पर

12.19 मीटर चौड़ी थी और उसकी ऊंचाई 10.66 मीटर थी और वह शनैः

आरेख 3
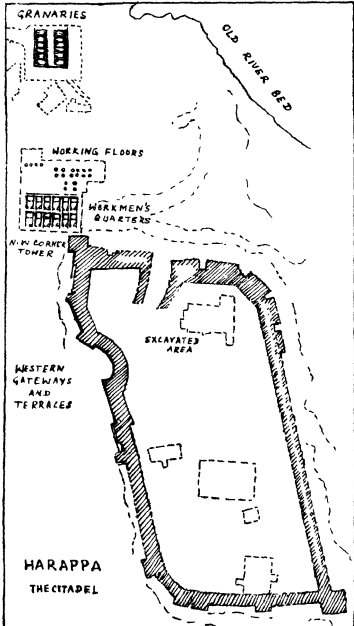
शनैः ढलुआं होती गई थी। इसका निर्माण तो कच्ची ईंटों तथा मिट्टी से हुआ था, किंतु बाहरी भाग पर पक्की इंटें लगाई गई थी। प्रारंभिक अवस्था में इंटों की दीवार की पीठ सीधी बनायी गयी थी, किंतु बाद में असुरक्षा की आशंका से उसे तिर्यक कर दिया गया था।

सुरक्षा प्राचीर के अन्दर लगभग 6 मीटर से 7.6 मीटर तक ऊंचा कच्ची इंटों का एक चबूतरा बनाया गया था जिसकी बाहरी सतह पर पक्की इंटें लगायी गयी थी। निर्माण की दृष्टि से यह रक्षा दीवार से अलग था किंतु कालक्रम के संदर्भ मे यह समकालीन सिद्ध हुआ है। इसी चबूतरे पर 6 बार इमारतें बनायी गयी जो बनावट की दृष्टि से अलग अलग चरणों की प्रतीत होती है।

गढी की बाहरी दीवार पर कुछ दूरी पर बुर्ज बने थे जिनमे से कुछ दीवार से अधिक ऊंचे थे। गढी के भीतर मुख्य प्रवेश-द्वार उत्तर की ओर था। पश्चिमी द्वार घुमाव लिए था जिसके साथ ही सीढिया भी थी। ह्वीलर का अनुमान है कि इस द्वार से जो पथ निकलता था वह विशिष्ट प्रकार का था और शायद किसी अनुष्ठान मे सबद्ध था। द्वार को रक्षा के लिए रक्षकों के कमरे भी बनाये गये थे। दक्षिण सिरे पर भी गढी मे प्रवेश के लिए एक सीढ़ी का प्रबध था। गढी की प्राचीर को मूलत खण्डित ईटों से बनाया गया था। प्राचीर क्षतिग्रस्त हो जाने पर उसकी जगह पर नीव के थोडे उपर से अच्छी और पकाई ईटों से उसको निर्मित किया गया। गढी निर्माण के दूसरे प्रकाल मे उत्तरी-पश्चिमी किनारे पर पश्चिमी द्वार बद कर दिया गया। ऐसा सभवत. सुरक्षा की दृष्टि से किया गया होगा।[1] रक्षा-दीवार का निर्माण आक्रमण और बाढ दोनो से बचाव के निमित्त किया गया था।

आधुनिक काल मे निर्माण-कार्यों के लिए ईंटे खोद कर निकाल ली जाने के कारण गढी के भीतर तो किसी महत्त्वपूर्ण भवन की रूपरेखा नही मिली। गढ़ी के बाहर उत्तर मे 6.1 मीटर ऊचे 'एफ' टीले पर 275 वर्गमीटर क्षेत्र मे प्राचीन नदी के तट पर कुछ महत्त्वपूर्ण इमारतों की रूपरेखा मिली है।

उत्खनन से छोटे-छोटे घरो की एक बस्ती का उद्घाटन हुआ है। कुल मिला कर सात घर उत्तर मे तथा आठ घर दक्षिणी पक्ति मे थे। ये घर एक दूसरे से लगभग एक मीटर की दूरी पर बने थे। इस बस्ती के चारो ओर दीवार थी। प्रत्येक घर का आकार लगभग 17 × 7.5 मीटर है। इनका निर्माण एक जैसी योजना पर हुआ था। कुछ विद्वानो ने इन मकानो की तुलना

---

1. शि० रंगनाथ राव इस बात की भी संभावना मानते है कि ऐसा बाढ़ से सुरक्षा की दृष्टि से किया गया था।

तेल-एस-अमर्ना के श्रमिकों की बस्ती से की है, किंतु वे बस्तिया नगर का अंग न होकर उससे अलग थी, जब कि हड़प्पा के ये मकान गढी से बाहर होते हुए भी उससे सीधे संबद्ध लगते हैं। सभवत. ये प्रशासन की ओर से निर्मित श्रमिकों के आवास थे। इन्ही भवनो के समीप सोलह भट्टिया मिली हैं और उनके पास ही मिट्टी का मूषा। मूषा का प्रयोग ताबा गलाने के लिए किया गया होगा। भट्टी मे कंडे और कोयले का प्रयोग हुआ है। यह तांबे के उपकरण बनाने का कारखाना लगता है। शि० रंगनाथ राव का सुझाव है कि इन छोटे-छोटे घरों में शायद ताम्रकार ही रहते थे।

इस श्रमिक आवास से उत्तर दिशा में ईंटो के 18 वृत्ताकार चबूतरे (फ० II, 2) पाये गये हैं। 1946 मे व्हीलर द्वारा किये गये उत्खनन में जो चबूतरा मिला उसका व्यास 3 2 मीटर है। इनमें ईंटों को खड़े रूप में रखा गया है। इनमें से प्रत्येक के मध्य मे एक गड्ढा है। इनके बीच राख और जले गेहूँ व जौ की भूसी के अवशेष मिले है। कुछ विद्वानो का मत था कि ये यज्ञ की वेदिया थी, किंतु ह्वीलर का यह मत कि इनका उपयोग अनाज कूटने के लिए होता था, अधिक समीचीन लगता है। उनके अनुसार इनमे लकड़ी की ओखली लगाई रही होगी जो अब नष्ट हो गई है। इस तरह से अनाज कूटने की प्रथा कश्मीर मे आज भी प्रचलित है।

इन चबूतरों और रावी नदी के मध्य मे, दोनों ही से लगभग 32 मीटर की दूरी पर, एक ऐसी इमारत के अवशेष (फ० IV, 2) मिले है जिसे अन्नागार माना गया है। इस विशाल अन्नागार का निर्माण खण्डो मे किया गया था। ऐसे बारह खण्ड मिले हैं जो छ· छ. की दो कतारों मे है। इन दो कतारो के मध्य 7 मीटर का फासला है। प्रत्येक खण्ड का क्षेत्रफल लगभग 15.24 × 6.10 मीटर है। इनकी नीव लगभग 1 22 मीटर ऊँची कुटी हुई भूमि पर रखी गयी थी। पश्चिम मे दक्षिणी किनारा पक्की ईंटो से सीढीदार बनाया गया था। इस प्रकार दीवार तिर्यक हो गयी। दक्षिणी किनारे पर पूरे हिस्से मे पुश्ता बनाया गया था और पूर्वी-दक्षिणी ओर जगह की कमी है, अत· अन्नागार मे अन्न उत्तर मे नदी की ओर से ही लाया - ले जाया जाता रहा होगा और अन्न लाने में नदी-मार्ग का विशेष उपयोग रहा होगा। अन्नागार के फर्शों मे लकडी के शहतीर लगाये गये थे। इनके बीच में जगह छूटी थी जिससे हवा आ जा सके और जमीन की नमी से अनाज बचा रहे। रोमन युग मे अन्नागार इसी तरह बनते थे। हड़प्पा के इन 12 अन्नागार-भवनो की पूरी जगह 2745 वर्गमीटर से अधिक क्षेत्र मे थी और मोहेंजोदडो के मूलतः आयोजित अन्नागार के क्षेत्र के लगभग बराबर ही थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि अन्न से आगमन-निगमन को निरंतर बनाये रखने के लिए अन्नागार शासन द्वारा नियन्त्रित थे। यही से संभवत. अन्न का वितरण वेतनभोगियो, जिनमे शासकीय अधिकारी, लेखाकर्मी तथा श्रमिक वर्ग सम्मिलित थे, मे किया जाता था। बैरक जैसे भवनो मे रहने वाले लोग सभवतः राजकीय श्रमिक थे जो मुख्यत विशाल अन्नागार से सबद्ध थे। इनका कार्य अन्नागार मे अन्न पहुचाना, वहा से अनाज निकालना, उसे कूटना और फिर शासन के आदेशानुसार उसको यथास्थान पहुंचाना था। कुछ श्रमिक समीपस्थ भट्टियों पर भी काम करते रहे होगे। राव का कहना है कि ये बैरक ठठेरो के रहने के लिए भी हो सकते थे। मोहेंजोदडो नगर मे तो अन्नागार का निर्माण गढी के अन्दर ही किया गया था। तत्कालीन अर्थव्यवस्था मे (देखिए 'आर्थिक जीवन' अध्याय) और अन्ततः शासन प्रबन्ध मे इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा होगा। दजला-फरात की घाटी के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण नगरो मे अन्नागारो को व्यवस्था थी, जैसा की वहा से प्राप्त लेखो से ज्ञात होता है। निर्माण-विशिष्टता एव वैज्ञानिकता की दृष्टि से सिधु सस्कृति के समय के अन्नागार अपना सानी नही रखते। यूनान के 'क्लासिकल युग' से पहले ऐसे विशिष्ट अन्नागार विश्व भर मे कही नही मिलते।

मोहेंजोदड़ो

(आरेख 2)

मोहेंजोदडो में गढी होने का ज्ञान सर्वप्रथम 1950 मे ह्वीलर द्वारा की गई खोदाइयो से हुआ। हड़प्पा की भाति यहा भी गढी कच्ची ईंटो द्वारा निर्मित काफी ऊचे चबूतरे पर बनायी गयी थी। इसकी ऊचाई दक्षिण मे 6.1 मीटर और उत्तर का आर 12.19 मीटर तक है। उत्तर दिशा मे गढी के ऊपर द्वितीय शती ईसवी मे निर्मित बौद्ध स्तूप है। नगर जीवन के मध्य प्रकाल के समय, जब यह सभ्यता चरम विकास पर थी, इसका निर्माण हुआ था। नगर की सार्वजनिक इमारते, जैसे विशाल स्नानागार, इसी समय बनायी गयी। इसमे भी पूर्व स्तरो में सिधु सस्कृति की जो इमारतो के अवशेष होंगे उन्हे जलस्तर 9.15 मीटर तक ऊपर उठने के कारण अनावृत्त नही किया जा सका है। 1964-65 मे गहरी ड्रिलिग करने से अप्रयुक्त धरती तक (मैदान से 11 9 मीटर की गहराई तक) पहुच सभव हो पायी, किंतु वहा तक वैज्ञानिक उत्खनन नही हो पाया। 1950 मे वहा तक खोदने का प्रयास मोटर पम्प से किया गया जो सफल नही हो पाया था। हा इतना अवश्य स्पष्ट हो गया कि गढी के निर्माण और पहले की संस्कृति के मध्य काल-व्यवधान नही है।

नदी मे जल-स्तर का हर वर्ष ऊचा हो जाना सिधु संस्कृति के लिए विकट समस्या थी। इसी कारण आरम्भ से ही गढी की सुरक्षा के लिए ईंट और मिट्टी

की सहायता से 13.1 मीटर चौड़े एक पुश्ते का निर्माण कर दिया गया था। उसी समय प्लेटफार्म के साथ-साथ जाने वाली एक पक्की ईंट की नाली का बाद में 4.27 मीटर की ऊंचाई पर पुनर्निर्माण किया गया। बाद में इस पुश्ते को बाहर से भी मजबूत बनाया गया।

मोहेंजोदडो की गढी के दक्षिण-पूर्वी किनारे पर पक्की ईंटो का बना एक ठोस बुर्ज मिला है। चबूतरे का समकालीन बुर्ज 9 15 × 6.71 मीटर का था। इसकी नीव विशाल थी। इसकी ईंटो की दीवार की चिनाई मे उसे दृढ बनाने के लिए लकडी का भी प्रयोग किया गया था। लकडी का प्रयोग अन्नागार मे भी हुआ है जो इसी काल मे निर्मित हुआ था। भवनों को मजबूत करने हेतु लकडी का प्रयोग कच्ची ईंटों से बनाये जाने वाले भवनो की चिनाई मे तो समझ मे आता है किंतु पक्की ईंटो के साथ इस तरह चिनाई मे लकडी का प्रयोग मजबूती की दृष्टि से ठीक नही। ह्वीलर ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इस टीले के अवशेष और इमारतें यह प्रकट करती है कि इनके निर्माता वे थे जो पक्की ईंटो की इमारते बनाने की अपेक्षा कच्ची ईटो की इमारतें बनाने की कला मे प्रवीण थे, और चूकि मेसोपोटामिया मे निर्माण कच्ची ईटो से ही प्रायः होता था, अत. ह्वीलर इस बात की सभावना मानते है कि शायद वही से आये लोगों ने ही मोहेंजोदड़ो मे इस तरह का निर्माण किया होगा। दक्षिण-पूर्वी कोने मे और भी बुर्जे रहे जिनमे से दो तो मूलत पृष्ठ द्वार के दोनो पार्श्व मे थे। कालान्तर मे द्वार बन्द कर उस स्थान पर चबूतरा बना दिया गया। इस चबूतरे के मलबे मे उत्खनन के दौरान पकी मिट्टी की कई गोफन-गोलिया मिलीं। गढा के पश्चिमी क्षेत्र मे भी एक बुर्ज मिला है जिसके उत्तर मे एक द्वार था।

मोहेंजोदडो की सबसे महत्त्वपूर्ण इमारत स्नानागार (फ० I, 2) है। यह स्तूप-क्षेत्र मे स्तूप से लगभग 57 9 मीटर की दूरी पर स्थित है। मोहेंजोदडो नगर मे, मार्शल के अनुसार, मध्य प्रकाल मे इसका निर्माण हुआ था। यह इमारत काफी बडी है। इसका विस्तार उत्तर से दक्षिण की ओर 54.86 मीटर और पूर्व से पश्चिम की ओर 32 91 मीटर है। बाहरी आधार से 2.13 से 2.43 मीटर तक चौडी है और बाहर की ओर छह डिग्री का ढाल लिए है। इस भवन के प्रागण में एक तालाब है जो पूर्व मे लगभग 11.89 मीटर लम्बा, 7.01 मीटर चौडा और 2 44 मीटर गहरा था। इसके चारो ओर कुछ ऊचा प्लेटफार्म बना था। तालाब के अन्दर पहुँचने के लिए उत्तर और दक्षिण मे लगभग 2.43 मीटर चौडी सीढिया बनायी गयी थी। उत्खनन के समय सीढिया क्षतिग्रस्त मिली। उत्तर की ओर बनी सीढी के 9 पैडो के अवशेष मिले। दक्षिण में बनी सीढ़ी नमक के प्रभाव से बिल्कुल नष्ट हो चुकी थी। मूलत. इसमे

10 पैडी थी । पैड़ियो की ईंटो को ऐसा लगाया गया था कि उनका लम्बान वाला भाग बाहर की ओर दिखे । कुछ साक्ष्यों के आधार पर मैके ने सुझाया है कि इन ईंटो के ऊपर लकडी लगायी गयी थी । वे तो यह भी सुझाते हैं कि लकड़ी के ऊपर तावे की परत भी शायद थी । अंतिम पैडी के साथ एक चबूतरा बना था जो बच्चों और उन लोगो के सुभीते के लिए था जिन्हे तैरना न आने के कारण पानी मे डूबने का डर था । सीढी की अतिम पैड़ी के नीचे नाली थी जो 23 5 सेमी चौडी और 8.26 सेमी गहरी थी ।

तालाब का फर्श समतल नही था, पर उसे काफी सतर्कता से बनाया गया था । तालाब के निर्माण मे उसकी दीवारो को जलरोधी बनाने का और नीवों को धसने स बचाने का पूरा यत्न किया गया था । इस हेतु उन लोगो ने इस तालाब के निर्माण मे पहले अच्छी तरह तराशी गई ईंटो की लगभग एक मीटर मोटी दीवार का निर्माण किया था । इसमे प्रयुक्त ईटें 25.78 × 12.95 × 5 59 सेमी या 27.94 × 13.1 × 5.65 सेमी आकार की हैं । जुडाई जिप्सम से की गयी है और यह इस ढग की है कि दो ईटो के बीच कोई अंतर दिखता ही नही है । इस दीवार के पीछे की ओर 2.54 सेमी मोटा बिटूमेन लगाया गया और उसे गिरने से बचाने के लिए उसके पीछे एक पक्की ईंटो की दीवार बनायी गयी थी । इसके बाद अपरिशोधित ईटो की भराई की गई थी और फिर पक्की ईंटो की एक दीवार थी जिसे छोटी-छोटी आड़ी दीवारो के द्वारा बरामदे की दीवार से जोड़ दिया गया था, जिसका उद्देश्य संभवतः बाहर की ओर के दबाव को रोकना था । मार्शल का कहना है कि उस समय उपलब्ध निर्माण-सामग्री मे इससे सुन्दर और मजबूत निर्माण की कल्पना करना कठिन है । इतने सालों भूमि के नीचे दबे होने पर भी उत्खनन के दौरान यह अच्छी दशा मे मिला है ।

इस विशाल स्नानागार भवन का दक्षिणी-पश्चिमी छोर थोडा ढलुआ बनाया गया था । यही पर स्नानागार की पश्चिमी दीवार के साथ लगी एक नाली थी जिसके द्वारा पानी के निकास की व्यवस्था थी । तालाब के तीन ओर बरामदे थे और उनके पीछे कई कमरे और गैलरिया थी । पूर्व की ओर के एक कमरे मे ईंटो की दोहरी पंक्ति से बना सुन्दर कुआ था । स्नानागार के लिए पानी की पूर्ति का यही मुख्य स्रोत था । यो अन्य कुओं से भी कुछ पानी भरा जा सकता था । दूसरे कमरे मे ऊपर जाने के लिए जीना था जिसे अनुमान लगाया जा सकता है कि ऊपर दूसरी मंजिल थी । कमरे से भारी मात्रा मे जला हुआ कोयला और राख पायी गयी है जो निर्माण में काष्ठ के प्रयोग किये जाने का प्रमाण

लगती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस इमारत में बाद में बहुत से परिवर्तन और परिवर्धन किये गये होंगे।

स्नानागार के दक्षिण-पश्चिमी कोने में एक महत्त्वपूर्ण नाली थी। यह नाली स्नानागार के दक्षिणी प्लेटफार्म से 12.7 सेमी को दूरी पर थी। यह पश्चिमी दीवार में जिसकी चौड़ाई 1 4 मीटर है, मे हो कर जाती है। उसके बाद मिट्टी के भराव से और तत्पश्चात् दूसरी दीवार से। इसके बाद यह नाली एक कमरे से होकर निकलती थी। आगे यह फर्श पर खुली बनी है। इसके किनारे पर लबाई में ईंटें बड़े ढंग से जिप्सम तथा बालू की सीमेंट से चिनी है। यह नाली आगे 69 सेमी चौडी है और एक 71 सेमी चौडी कड़ीदार छत से गुजरती है। यह छत इतनी ऊची है कि एक लम्बा आदमी इसके भीतर होकर गुजर सकता है। जहा से नाली के ऊपर मेहराब प्रारंभ होती है वह स्थान नाली की सतह से 1.7 मीटर ऊचा है और मेहराब की छत तक पूरी ऊचाई लगभग 2 मीटर है।

विशाल स्नानागार की इमारत को वेष्ठित करने वाली बाहरी दीवार बाहर की ओर छह अश तिर्यक बनी थी। पूर्व तथा दक्षिण दिशा मे इस दीवार की मोटाई 1 9 मीटर पश्चिम मे 2 2 मीटर है और उत्तर में कुछ जगह पर 2.34 मीटर मोटी थी। इसकी तथा अंदर के कमरो की दीवारो की नीव मे भोडी ईंटों का प्रयोग हुआ था। इसमे 6 प्रवेश-स्थान थे—2 दक्षिण मे, 3 पूर्व मे तथा एक उत्तर दिशा मे। पश्चिम दिशा मे शायद ऐसा ही कम से कम एक प्रवेश-स्थान अवश्य रहा होगा जिसका अब दीवार के क्षतिग्रस्त हो जाने से मात्र अनुमान ही लगाया जा सकता है। दक्षिण की ओर वाली दीवार में 1.93 मीटर और 2.64 मीटर चौडे प्रवेश-द्वार थे। उत्तर मे 1.18 मीटर चौडा प्रवेश-द्वार था जिसे किसी कारण बद कर दिया गया था। प्रवेश-द्वारों पर फर्श 1 93 मीटर मोटा था। इस विशाल स्नानागार की इमारत का मुख्य प्रवेश-द्वार किस तरह का रहा होगा इसका निर्धारण करना कठिन है, किंतु इसकी विशालता और विशिष्टता देखकर लगता है कि यह काफी प्रभावोत्पादक रहा होगा।[1]

इस विशाल स्नानागार की इमारत के उत्तर मे दो पंक्तियों मे छोटे-छोटे आठ स्नानकक्ष है। इन स्नानकक्षो की माप 2.9 × 1.8 मीटर है और उन्हे सावधानी से सुदृढ़ बनाया गया था। इनके दरवाजे आमने सामने नही खुलते थे। कदाचित् गोपनीयता के लिए ही ऐसा प्रबंध किया गया होगा। स्नानकक्षो के बीच की खाली जगह मे नाली का भी प्रबन्ध था। इनमे ऊपर जाने के लिए

---

1. मैके ने मार्शल द्वारा संपादित **मोहेंजोदड़ो एण्ड दि इण्डस सिविलिजेशन** में विशाल स्नानागार का विस्तृत विवरण दिया है।

सीढियो का होना और इनकी दीवारो की अत्यधिक मोटाई इस बात की द्योतक लगती है कि मकान दुमंजिले थे। मैके का सुझाव है कि इन मकानों मे पुजारी रहते थे जो ऊपरी कक्ष मे अनुष्ठान कराते और नीचे के कक्ष मे स्नान कराते थे।

मोहेंजोदडो की विशाल स्नानागार की इमारत के पश्चिम में खोदाई मे एक अन्य महत्त्वपूर्ण इमारत के अवशेष (फ० II, 1) मिले हैं। इसको 1.52 मीटर ऊचे पक्की ईंटो से बनाये गये ठोस चबूतरो पर बनाया गया था। यह इमारत पूर्व से पश्चिम 45.72 मीटर लबी और उत्तर से दक्षिण की ओर 22.86 मीटर चौडी है। इसका विस्तार दक्षिण की ओर होता रहा। सभवतः मूलत. इसमे 27 खड (ब्लाक) थे। इन खंडो के बीच मे सँकरी खाली जगह छोडी गई थी जिससे वायु का सचार होता रहे। मार्शल के समय यह भवन अशत उद्‌घाटित हो पाया था और उनका मत था कि इस भवन का इस विशिष्ट तरह का निर्माण इसके "धूप-स्नान" के लिए प्रयुक्त किये जाने के लिए किया गया होगा। किंतु ह्वीलर ने 1950 में इस पूरी इमारत के ऊपर से मलवा हटवाया और इसकी रूपरेखा का परीक्षण करके मत प्रकट किया कि यह भवन अन्नागार था, जो अधिक समीचीन लगता है। इस अन्नागार के विभिन्न खडो मे बीच आडे-तिरछे मार्ग है जिनमे वायु का आवागमन होता था। इमारत के ऊपरी भाग के निर्माण मे लकडी का प्रयोग हुआ था। इसकी दीवारें तिर्यक हैं। इमारत के उत्तर दिशा मे बने चबूतरे को दीवारे भी तिर्यक बनायी गयी थी। अन्न के भारी गट्ठर ऊपरी मजिल मे चढाने में इस ढाल मे सुविधा रहती थी। इसी स्थल की गढी के दक्षिणी-पश्चिमी बुर्ज की तरह इस उत्तरी चबूतरे के निर्माण मे भी कच्ची ईंटो मे भवन-निर्माण की परंपरा के अनुसार चिनाई मे पक्की ईंटो के साथ लकडी का प्रयोग किया गया है।

इस स्नानागार की इमारत मूल रूप मे उसके समीप स्थित विशाल स्नानागार की इमारत से पुरानी थी क्योकि बाद मे स्नानागार की टोडी नाली बनाये जाने से अन्नागार की इमारत के चबूतरे का पूर्वी किनारा कट गया था जिसके सहारे कभी सामान चढाया जाता था। लेकिन अन्नागार मे दक्षिण की ओर जो कुछ और जोडा गया वह विशाल स्नानागार की इमारत का समकालीन था।

प्राचीन समय मे अन्नागारो के महत्त्व की चर्चा अन्यत्र की गई है। अन्नागार की विशाल रूप-रेखा और उसमे वायु-सचरण की सुविधा तथा तथा दुर्ग के बाहर से सामान चढाने की व्यवस्था का होना महत्त्वपूर्ण है। हडप्पा में अन्नागार की इमारत दुर्ग के पास ही पायी गयी है। हडप्पा और मोहेंजोदडो दोनों नगरो के अन्नागारो का क्षेत्रफल लगभग बराबर है।

मोहेंजोदडो के अन्नागार की इमारत के दक्षिण में विशाल सीढ़ी की मात्र रूप-रेखा पायी गयी है । जहां पर सीढ़ी आरंभ होती है वहा पर इसकी चौड़ाई 6.7 मीटर के लगभग है। सीढी के तल पर एक कुआ है और आस-पास दो अन्य कुएं । अंतिम सीढी के पास एक छोटा स्नानकक्ष था । इस स्थान पर इतनी बडी सीढी का क्या महत्त्व था यह ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है, किंतु उसके समीप बनाये गये कुए और स्नानकक्ष को ध्यान मे रखते हुए यह अनुमान लगाया गया है कि उसका संबध किसी ऐसे अनुष्ठान से था जिसमे स्नान करना आवश्यक था ।

विशाल स्नानागार भवन के उत्तर-पूर्व मे एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथा विशाल इमारत की रूप-रेखा मिली । इसका आकार 70.1 × 23.77 मीटर है । इसमे 10 मीटर वर्गाकार एक खुला हुआ आगन था जिसके साथ ही तीन बरामदे और बैरक जैसे कुछ कमरे थे । कमरो का फर्श पक्की ईटों से बनाया गया था । इसमे दो सीढिया थी । यह कोई महत्त्वपूर्ण इमारत लगती है । इसके साधारण निवास-गृह होने का कम संभावना है । मैके का अनुमान है कि यह इमारत पुरोहित जैसे विशिष्ट लोगो का आवास रही होगी ।

जिस स्थान पर कुषाणकालीन स्तूप है उसके नीचे किस तरह की इमारत के अवशेष हैं, अभी तक यह अज्ञात है क्योकि वहा पर उत्खनन नही किया गया है । इस स्थान का अत्यधिक ऊचा होना इसके महत्त्व का द्योतक लगता है । कुछ विद्वानो का ऐसा अनुमान हैं कि कुषाणकाल मे इस स्थान को स्तूप-निर्माण के लिए शायद इसलिए चुना गया था कि उसके साथ धार्मिक स्थल होने की परपरा चली आ रही थी । किंतु इस सदर्भ मे यह नही भूलना चाहिए कि सिंधु सभ्यता के अत और कुषाणकाल के मध्य तक लगभग डेढ हजार वर्षों का अन्तराल है, और इस अवधि मे इस स्थल के धार्मिक होने के बारे मे कोई जानकारी नही मिलती ।

इसी स्तूप की उत्तर दिशा मे सिंधु सभ्यता-कालीन एक अन्य विशाल इमारत की पश्चिमी तथा दक्षिणी दीवार का खण्डित भाग है । प्राचीन उर मे मन्दिर के पास स्थित इमारतो मे मदिर के कर के रूप मे मिली वस्तुओ को सग्रहीत करके रखा जाता था । यदि स्तूप के नीचे मंदिर होने का अनुमान सही हो तो इस इमारत का भी कदाचित् इसी तरह का उपयोग किया जाता रहा होगा ।

मोहेंजोदडो की गढी के दक्षिण मे लगभग 27.43 मीटर वर्गाकार एक प्रशाल के अवशेष मिले है जो मूलत. 20 स्तंभों पर आधारित था । ये स्तभ

चार कतारों मे हैं; प्रत्येक कतार में पाच स्तंभ हैं। इमारत तक पहुंचने के लिए उत्तरी छोर के मध्य से रास्ता था। फर्श भली-भांति बिछाई गई ईंटो द्वारा कई गलियारों मे बँटा था। इनका उपयोग संभवतः बैठने के लिए किया जाता था। मूलत' इन गलियारो मे काठ की लबी और कम ऊंचाई वाली बेंचें लगी थीं। मार्शल ने इस तरह के निर्माण की तुलना बौद्ध गुफा-मंदिरो से की है जिनमे बौद्ध भिक्षु लबी कतारो मे बैठते थे। मैके के अनुसार यह बाजार का 'हाल' हो सकता है जहां पर दूकानें लगाने के लिए स्थायी रूप से स्थान (स्टाल) बनाये गये थे। ह्वीलर ने इसके फारसी 'दरबारे आम' जैसी इमारत होने की ओर सकेत किया है। इस सदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि पाटलिपुत्र (पटना) मे स्तभो पर आधारित मौर्यकालीन भवनो के जो अवशेष मिले है उनके बारे में यह सुझाव दिया गया है कि वे स्तंभो पर आधारित ईरानी भवनो की नकल थे। यह सुझाव सही है अथवा नही, यह कहना कठिन है। किंतु सिंधु सभ्यता के सदर्भ मे इस तरह स्तभो पर आधारित भवन के मिलने से अब हम निश्चय-पूर्वक कह सकते है कि भारत मे इस तरह के भवनो के निर्माण के उदाहरण ईरान मे निर्मित ऐसे भवनो मे भी काफी प्राचीन है। मोहेंजोदडो की इस इमारत के पश्चिम मे एक छोटी-सी इमारत भी मूलत स्तंभों पर ही आधारित थी। इस इमारत का ठीक तरह से उद्घाटन नही हो पाया है।

मोहेंजोदडो के गढी वाले टीले के भवनो के बारे मे विस्तृत जानकारी की प्राप्ति हेतु उसका वैज्ञानिक विधि से विस्तृत रूप से उत्खनन आवश्यक है, तथापि जो जानकारी अब तक हुए उत्खननो से वहा के भवनो—विशाल स्नानागार, विशाल अन्नागार, कालेज भवन, स्तभो पर आधारित भवन, और बुर्ज आदि—के रूप मे उपलब्ध है, वह गढी की महत्ता प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है।

मोहेंजोदडो का निचला नगर

मोहेंजोदडो नगर की गढी के पूर्व मे स्थित टीले की खोदाई से निचले नगर के विषय मे जानकारी मिली है। डेल्स द्वारा 1964-65 मे किये गये उत्खननो में इस तरह के साक्ष्य मिले है जिनसे लगता है कि नगर के इस भाग को भी दीवारो से घेरा गया था। यद्यपि यह कहना कठिन है कि यह सुरक्षा दीवार बाढ से सुरक्षा के लिए थी अथवा आक्रमण से बचाव के लिए। डेल्स के उत्खननों से यह भी पता लगा है कि यहा पर नीचे के स्तरो मे निर्माण कार्य के लिए ईंटो के साथ साथ लकडी की चिनाई हुई थी। नगर का यह भाग पूर्व-नियोजित रूप-रेखा के अनुसार बसाया गया था और नगर समकोण पर काटती सडकों द्वारा खंडो में विभक्त था। ये खण्ड लगभग समान आकार के है जो माप में

पूर्व-पश्चिम में 243 84 मीटर और उत्तर-दक्षिण में 365.76 मीटर के लगभग हैं। खोदाई से 6 या 7 ऐसे खंड उद्घाटित हुए हैं और दो मुख्य सड़कें, 'पूर्वी सड़क' और 'पहली सडक'। पिगट ने उपलब्ध साक्ष्यों से अनुमान लगाया है कि शायद मूलतः बारह खंड रहे होंगे जो पूर्व-पश्चिम की दिशा में तीन कतारो में थे, प्रत्येक कतार में चार खंड रहे होंगे और नगर करीब करीब डेढ़ किलोमीटर लम्बे और डेढ किलोमीटर चौडे वर्ग मे बसा रहा होगा तथा इनमें से गढी वाला टीला पश्चिम को ओर का मध्यवर्ती टीला रहा होगा। मुख्य सडकें लगभग 9 14 मीटर और गलिया लगभग 3 मीटर चौडी थी।

उत्खननों से कुछ महत्त्वपूर्ण इमारतो के अवशेष प्रकाश में आये है। एच आर क्षेत्र मे उत्खनन से साधारण निवास-गृह की रूप-रेखा के विषय मे पर्याप्त सूचना प्राप्त हुई है। प्रवेश के लिए गली मे होकर एक छोटा-सा द्वार था जो प्रवेश कक्ष मे खुलता था जहा कुम्हारो का वासा था। दीवारो पर मिट्टी के लेप के चिह्न मिलते है। दक्षिणी भाग मे एक कुआ बना था। यही से एक रास्ता आगन मे पहुंचता था जो 10 मीटर वर्गाकार था। कुएं वाले कमरे से सटा हुआ एक स्नानकक्ष था। दूसरे कमरे मे, जो पूर्व में स्थित था, मिट्टी के पाइप की नाली थी जो सडक की नाली से जुडी थी। ऊपरी मंजिल से आयी एक नाली पूर्वी आगन मे मिलती थी। दीवारे काफी मोटी है और इससे इस बात की पर्याप्त सभावना है कि यह इमारत दो मंजिली थी और ऊपर की मंजिल तक सीढियो द्वारा पहुचा जाता था। अनुमानत. घर का अधिकाश काम-काज आगन में ही होता रहा होगा। पश्चिम की ओर अग्रेजी अक्षर 'एल' (L) की आकृति के गलियारे मे एक कमरा है। यह भवन आगन, कुआ, स्नानागार, ऊपरी मंजिल तथा नालियो के प्रबध का एक अच्छा उदाहरण है।

निचले नगर के डी के क्षेत्र के दक्षिणी भाग मे पूर्व-पश्चिम में बनी लगभग 76.2 मीटर लम्बी एक इमारत के भग्नावशेष प्रकाश मे आये है। इसकी दीवारे अत्यत मोटी (1 से 2 13 मीटर तक) और ढलानदार है। मैके, मुख्यतः इसकी दीवारो की मोटाई के आधार पर इसे राजप्रासाद मानते है। राव का यह सुझाव उपयुक्त लगता है कि राजप्रासाद के मिलने की संभावना गढी टीले पर है न कि निचले नगर मे, और इसलिए यह इमारत किसी धनी नागरिक की हो सकती थी। इसके दो आगन है जिनके बीच 1 52 मीटर चौडा गलियारा है जिसमे प्रवेश के लिए 2.43 मीटर चौडा द्वार है। जिस समय इसका निर्माण हुआ था उस समय उसमें तीन या चार प्रवेश-द्वार बनाये गये थे। किंतु आगे चल कर किसी अज्ञात कारण से एक को छोड कर शेष सभी बन्द कर दिये गये। आगन के पास वाले कमरे में दो कुएं हैं। इसके साथ ही फन्नीदार ईंटों से

बनाये गये कुछ वृत्ताकार गढे है। ईंटों के अत्यधिक ताप से पकी होने से ज्ञात होता है कि इन गढो मे कोई वस्तु तेज आच देकर पकायी गयी थी। दक्षिण-पूर्वी कोने मे जहा पर एक छोटा-सा आगन था, रोटी पकाने के लिए वृत्ताकार चूल्हे (तन्दूर) बने थे। इसमे ऊपरी मंजिल (या छत) मे जाने के लिए सीढिया थी।

इस क्षेत्र के उत्तर मे उस स्थान पर जहा 'केन्द्रीय सडक' और 'निचली गली' मिलती थी एक अन्य महत्त्वपूर्ण इमारत थी। मैके ने इसे यात्रियो के ठहरने के लिए होटल होने का सकेत किया है। वैसे यह धर्मशाला या सराय जैसी कोई इमारत हो सकती है। मोहेंजोदडो जैसे व्यावसायिक नगर मे, जहा देश-विदेश से यात्रियो का आना जाना रहता था, इस तरह की इमारत का होना स्वाभाविक ही है। इस इमारत के मुख्य आवास भवन की रूप-रेखा अग्रेजी के 'L' अक्षर की भाति बनायी गयी थी। इसमे कुआ, नालिया और शौचालय की व्यवस्था थी। कालातर मे पहले के प्रवेशद्वार को बद करके दीवार काट कर दूसरा प्रवेशद्वार बनाया गया था।

'पहली सडक' (फर्स्ट स्ट्रीट) के समीप ही लगभग 26.51 × 19.65 मीटर के क्षेत्र मे एक अन्य इमारत के भग्नावशेष मिले है। इस इमारत के बीच मे आगन था जिसके चारो ओर काष्ठावलिया बनी थी। सडक की ओर कुछ ऐसे कक्ष थे जो उस स्थल के व्यावसायिक क्षेत्र होने की दिशा मे सकेत करते है। तीन कमरो का फर्श पक्की खडी ईटो मे बनाया गया था। इसमे पाच शक्वाकार गढे मिले है जिन्हे फन्नीदार ईटो से बनाया गया था। संभवत इनमे नुकीले पेंदे वाले बर्तन रखे जाते थे। एक कमरे मे कुआ और सीढी पास-पास है। कुछ विद्वानो के अनुसार यह भवन जलपानगृह था, कुछ के अनुसार इनमे रखे घडो का उपयोग वस्त्रो के रगने के लिए किया जाता था।

एच आर क्षेत्र की 'दक्षिणी गली' और एक अन्य गली जिसे पुरातत्त्ववेत्ताओ ने 'मृतको की गली', नाम दिया है, इनके मध्य 15.85 × 12.19 मीटर आकार की एक इमारत के अवशेष मिले है। इसकी दीवारो की मोटाई लगभग 1.21 मीटर है। दीवार की चिनाई मे भराई के तौर पर कच्ची ईंटो का प्रयोग हुआ है। इस तक पहुचने के लिए दक्षिणी किनारे पर दो सीढिया एक-दूसरे के समानान्तर बनाई गई थी। एक द्वार था। इसके अन्दर की ओर 1.21 मीटर व्यास वाला ईटो का एक चबूतरा था जो सभवतः पवित्र वृक्षो का बाडा रहा होगा। सफेद चूना पत्थर का दाढीयुक्त सिर जो आकार मे 17.15 सेमी है, तथा एक अलाबास्टर पत्थर की सिर रहित 41.9 सेमी ऊंची मनुष्याकृति मिली है। इस सिर रहित मूर्ति के दो टुकडे बाद मे कुछ दूरी पर मिले। (देखिए 'कला-कौशल'

अध्याय) मूर्तियों की प्राप्ति, इमारत की सुदृढता, उसमे दो सीढ़ियो की व्यवस्था और वृक्षो अथवा मूर्तियो के लिए ईंटो के बाडे से ह्वीलर ने इसके देवालय होने का अनुमान लगाया है। वैसे इस भवन मे न तो प्रार्थना-सभा का कक्ष और न वेदी होने का ही साक्ष्य मिला है। डी के क्षेत्र मे मिली एक अधूरी इमारत के बारे मे, जिसकी दीवारें काफी मोटी और दृढ़ थी, मार्शल ने यह मत व्यक्त किया है कि कदाचित् वह भी देवालय रहा होगा। लेकिन मैके इसकी पहिचान 'खान' से करते है।

निचले नगर मे लगभग 1.37 मीटर मोटी दीवर की एक और इमारत एच आर क्षेत्र में अनावृत्त की गई है। इसके आस-पास 2 43 मीटर से 3 मीटर तक ऊची एक दीवार है जो कच्ची ईंटो के चबूतरो को घेरे है। इन दीवारो पर सभवत ऊपरी मंजिल भी थी। इस इमारत के बीच मे एक आगन है जिसके उत्तर और दक्षिण की ओर स्कंध है। दक्षिणी स्कंध मे एक कुआ है। इसके भी धार्मिक इमारत होने का अनुमान लगाया गया है।

उपर्युक्त इमारत के सामने एक तंग गली है जिसे पार करने पर बैरको का खण्ड मिलता है। इसमे 16 बैरके है जो दो पक्तियो मे बनी है। उनके पिछवाडे आमने सामने है। प्रत्येक बैरक मे एक बडा और एक छोटा कमरा है। अधिकाश बडे कमरो के किनारे पर स्नान करने के लिए व्यवस्था थी। इन कमरो का पानी एक नाली से होकर बाहर रखे हुए मृद्भाण्ड मे पहुचता था। मृद्-भाण्ड को टूटने से बचाने के लिए उसके चारो ओर ईटो का एक घेरा बना दिया गया था। दक्षिणी किनारे के कमरे मे एक कुआ भी था। एक कुआ तो बीच रास्ते मे पडता था। मैके इन इमारतो का दुकाने मानते है, किंतु जैसा कि पिगट ने सुझाया है, ये श्रमिको के आवास भी हो सकते है। हडप्पा नगर मे इस तरह के आवास मिले भी है। यदि इसके सामने की इमारत देवालय थी तो मिस्र के साक्ष्य के आधार पर (जहा मदिरो से सबद्ध विभिन्न श्रम-कार्य के लिए दास अथवा अर्द्ध-दास होते थे), पिगट के सुझाव का समर्थन होता है। ह्वीलर यद्यपि पिगट के इस सुझाव को तर्कपूर्ण मानते है तथापि उन्होने दो और सभावनाए भी रक्खी है। उनके अनुसार ये पुलिस के बैरक अथवा किसी पौरोहित्य वर्ग के निवास भी हो सकते है।

चन्हुदड़ो

चन्हुदडो के उत्खननो से सबसे नीचे की सतह (जहा तक खोदा जा सका है) मे ईटों के बने तीन या चार घरों और एक कुएं के अवशेष मिले है। इसके ऊपर निर्जन स्तर होने से स्पष्ट है कि चन्हुदडो कुछ समय के लिए निर्जन

रहा और फिर जब इसका पुनर्निर्माण हुआ तो भवनो को कच्ची ईंट के चबूतरे पर बनाया गया। एक 7.62 मीटर चौडी सडक थी, और मोहेंजोदडो और हडप्पा के समान यहा पर भी मकान सडक के दोनो ओर थे। इस मुख्य सडक को समकोण पर काटती हुई गलिया थी जिनमे निकास-नालियो का सुन्दर प्रबंध था। विशाल संख्या मे ताबे तथा कासे की अधबनी गुरिया और गुरियों के पकाने की भट्ठी मिली है, साथ ही शख और हड्डी का काम तथा मुद्रा-निर्माण के साक्ष्य है। इससे यह स्पष्ट है कि इस स्थल पर मुख्य रूप से कुलिको की बस्ती थी। सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण मे केवल कुछ ठूंठ सी दीवारें मिली है जो साधारण कोटि के घरो की परिचायक है। किंतु इस काल की एक दीवार लगभग 1.52 मीटर मोटी और 24.38 मीटर से अधिक लंबी है जिसे पूरा नही खोदा जा सका। ऐसा मत व्यक्त किया गया है कि ये दीवारें एक अन्नागार भवन का अंग रही होगी, किंतु इसकी पुष्टि के लिए निश्चित साक्ष्य नही है। यहा पर सिंधु सभ्यता के बाद कुछ अतर से झूकर नामक दूसरी सस्कृति के लोगो ने बस्ती बसाई।

लोथल

लोथल का नगर भी हडप्पा तथा मोहेंजोदडो के समान ही सुनियोजित था। सडके और गलियां एक दूसरे को समकोण पर काटती थी। यहा की नगर-निर्माण योजना और उपकरणों को देख कर ही इसे 'लघु हडप्पा' या 'लघु मोहेंजोदडो' कहा गया है।

राव का कहना है कि प्रारभ मे नगर उत्तर-दक्षिण मे 300 मीटर चौडे और पूर्व-पश्चिम मे 400 मीटर लम्बे क्षेत्र मे बसा था। कच्ची ईंटों की 13 मीटर चौडी एक सुरक्षा दीवार भी थी जो उत्तर की ओर पक्की ईंटो से मजबूत बनायी गयी थी। लेकिन तृतीय चरण मे नगर इसके बाहर भी फैला, यहा तक कि 2 किलोमीटर के दायरे मे हो गया। सुरक्षा दीवार कदाचित् बाढ़ से रक्षा के लिए थी, क्योकि उसमे कोई बुर्ज आदि नही थे। इस दीवार के भीतर कच्ची ईंटो के बने ऊंचे चबूतरो पर घर बनाये गये थे। चबूतरो के सात ब्लाक खोदाई मे मिले। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि मूलत पाच और ब्लाक थे। कब्रिस्तान आवासक्षेत्र से अलग कुछ दूरी पर था। मुख्य रूप से नगर के दो भाग थे—गढी (ऐक्रापालिस) और निचला नगर। भवन साधारणतया कच्ची ईंटो के बने है। केवल गोदी (?) और कुछ थोडे से महत्वपूर्ण भवनो के निर्माण मे ही पक्की ईंटो का प्रयोग होता था। हा, नालिया और स्नानागार के फर्शों के लिए पक्की ईंटो का ही प्रयोग होता था।

लोथल में गढी समलंबक है। यह 117 मीटर पूर्व और पश्चिम में तथा 136 मीटर उत्तर मे और 111 मीटर दक्षिण की ओर है। इसके ब्लाक 'बी' में एक भवन 126 × 30 मीटर आकार का मिला है। यह भवन ऐसे स्थान पर स्थित था जहा से नौकाघाट, भाण्डागार तथा जहाजो के गमनागमन की निगरानी भली भांति की जा सकती थी। राब का मत है कि यह शासक का भवन था। यहा पर कुआ, अत्युत्तम नालिया एवं अन्य मकान थे। साधारण लोगों के घर ज्यादातर औसतन 9 × 5.5 मीटर के आकार के थे, कुछ बड़े आवास 13 × 6 मीटर के थे।

गढी मे ही एक इमारत (फ० VI, 1), जिसका वर्तमान क्षेत्रफल 42 67 × 18.28 मीटर है, 4 मीटर ऊचे चबूतरे पर बनायी गयी थी। इस चबूतरे पर कच्ची ईंटो के बने 12 घनाकार खण्ड चार पक्तियो मे है। प्रत्येक पक्ति मे तीन खण्ड है। इन खण्डो के बीच लगभग 1.06 मीटर चौडी नालिया बनाई गई थी। ये नालिया उत्तर दिशा मे बनी पक्की नाली से मिल जाती थी। नालियो और घनाकार खण्डो मे इंटे आग के प्रभाव से लाल हो गयी है। इन नालियो मे पक्की मिट्टी के खण्ड, त्रिभुजकार मृत्पिण्ड गोलियां, मिट्टी के चोंगे (सिलिडर) और पर्याप्त मात्रा में राख पाई गई है। दक्षिण की ओर पूर्वी छोर वाली नाली के भीतर सिधु सभ्यता की मुहरों की लगभग 70 छापें मिली है। पहले लोथल-उत्खनन के निदेशक शि० रंगनाथ राव ने सुझाया था कि उपर्युक्त निर्माण-कार्य सिधु सभ्यता-कालीन भट्टे के द्योतक है। ह्वीलर ने उन्हे अन्नागार के भवन का अग माना है। उनका कहना है कि अन्नागार भवन लकडी का बना था जो जल गया। अन्न के गट्ठरो मे लगी मोहरें भी उनके जलने के कारण नीचे गिर गयी। राव ने बाद में अपने मत मे कुछ सशोधन किया और अब उनका विचार है कि यह मूलतः भाण्डागार की इमारत थी, किंतु परवर्ती काल मे इसका भट्टे के रूप मे उपयोग किया गया।[1] इस इमारत के अवशेषो के सामने ही एक चबूतरा था। इसके ऊपर निर्मित भवन अब नष्ट हो गये है, किंतु अनुमान है कि वे भी महत्त्वपूर्ण रहे होगे।

लोथल की तीन इमारतो मे पशुओं की हड्डिया, ताबा, काचली मिट्टी के

---

1. राव ने अपनी हाल मे छपी पुस्तक **'लोथल एण्ड द इंडस सिविलिजेशन'** मे लिखा है कि मूलतः इस तरह के 64 ब्लाक थे जो 1930 वर्गमीटर के क्षेत्र मे बने थे। उनके अनुसार यह मोहेंजोदडो और हडप्पा के अन्नागारो से भी बडी, यही नही सिंधु सभ्यता मे अपने ढंग की सबसे बड़ी, इमारत थी, जिसका वहा के आर्थिक जीवन में महत्त्वपूर्ण योगदान था।

मनके, मिट्टी की चूड़िया और कुछ मृद्भाण्ड पाये गये है। एक में तो जली हुई हड्डी, सोने का एक आभूषण और कुछ मनके मिले हैं। हो सकता है इन इमारतो का कोई धार्मिक महत्त्व रहा हो। वहा के अनेक मकानो मे वृत्ताकार या चतुर्भुजाकार 'अग्नि स्थान' पाये गये है जिनमे राख के साथ मृत्पिड भी मिले हैं। शायद इसका उपयोग यज्ञ जैसे अनुष्ठान के लिए था।

निचला नगर

राव के अनुसार निम्न नगर विस्तार मे गढ़ी से कम से कम तिगुना था। इसमे उत्तर की ओर बाजार, पश्चिम की ओर व्यावसायिक निर्माण और उत्तर-पश्चिम मे मकानो के जो अवशेष मिले है उनके बारे मे यह कहा जाता है कि वे निजी आवास-गृहो के अवशेष है। अभी इस निचले नगर मे चार ब्लाको का ही उत्खनन हुआ है, पर मूलत कई और भी रहे होगे। यह नगर कच्ची ईंटों के चबूतरे पर बना था। राव के अनुसार यह लगभग आयताकार रहा होगा। निचले नगर मे चार खंड मिले है जो कि सडको द्वारा एक दूसरे से अलग थे। राव का मत है कि मूलतः कई और खंड भी थे। खोदाई मे चार सड़को का पता चला है जिनमे से दो उत्तर-दक्षिण को और दो पूर्व-पश्चिम को जाती थी। एक सडक के एक ओर 12 मकानो की रूपरेखा की जानकारी मिली है। दूसरी सडक के दोनो ओर दो-तीन कमरे वाले छोटे-छोटे मकान मिले है। इनमे से प्रत्येक मे दो या तीन कमरे है। शायद ये दूकाने थी। कुछ चार या पाच कमरे वाले मकानो की रूपरेखा भी मिली है। दीवारे आधा मीटर या उससे भी कुछ अधिक मोटी थी। कुछ के आगे बरामदा है जबकि कुछ अन्य के बीच मे आगन और चारो ओर कमरे थे। यो लोथल मे घर बनाने के लिए कच्ची और पक्की दोनो ही तरह की ईंटो का उपयोग हुआ था। टमटमो और मनके बनाने वालो के घर अपेक्षाकृत छोटे थे और वे कच्ची ईंटो के बने थे। कच्ची ईंटो की इमारत मिली है जिसके मध्य मे आगन और विभिन्न आकार के ग्यारह कमरे मिले है। साथ ही रक्षक का कमरा और भडार (स्टोर) का कमरा भी था। दो मिट्टी के बर्तनो मे छ सौ कीमती पत्थरो के बने अर्ध निर्मित मनके मिले और दो बर्तनो मे कच्चा माल (पत्थर) भी। लगता है कि मनके बनाने वाले इन कमरो मे रहते थे और आगन मे सामूहिक रूप से मनके बनाते थे। ताबे का काम करने वालो के कारखाने का स्थल भी मिला है। मकान कही सडक के दोनो ओर और कही एक ही ओर बनाये गये थे। एक मकान जिसकी दीवार एक मीटर मोटी थी धार्मिक कार्य के लिए था क्योंकि उसमे अग्निपूजा के साक्ष्य मिलते है। एक मकान जो किसी धनी व्यापारी का लगता है, मे मूलतः तीन कमरे थे और तीन कमरे बाद मे जोडे गये। इस घर में सोने के नौ बडे

मनके, चार सेलखड़ी की मुद्राएं और कई कीमती पत्थर से बने मनके मिले। इस घर मे अक्षीय नली वाले सोने के मनके तथा 'रिजर्व्ड स्लिप' वाले बर्तनों के पाये जाने के आधार पर राव ने इसके मालिक के मेसोपोटामिया से व्यापार करने वाला होने की संभावना व्यक्त की है। लोथल का सबसे महत्त्वपूर्ण स्मारक गोदी (फ० VI, 2) है। इसका विस्तृत विवरण अन्यत्र दिया गया है।

नालियो का बहुत सुन्दर प्रबंध था (फ० VII, 1)। घरो से छोटी-छोटी नालिया निकल कर बडी-बड़ी नाली मे मिलना, ढाल पर सीढीदार होना, सफाई की दृष्टि से बीच मे नरमोखो का होना, सार्वजनिक नाली मे जालीदार किवाड की व्यवस्था जिससे पानी छन कर निकले और कचडा रुक जाय, लोथल की नालियो के अत्यत विकसित होने के प्रमाण है। लोथल के कुछ स्नानागारो की ईंटो को डामर से आच्छादित किया गया था। शौचालय भी थे और उनके साथ शोष-गर्त भी बने थे।

मकानों का सीधी पंक्ति मे होना, स्नानागार के जल के निकास के लिए सार्वजनिक नालियो की व्यवस्था, नालियो मे बहने वाले कूडे-करकट को एकत्र करने और हटाने के लिए नरमोखो (मेनहोलो) की तरह कुण्डो का होना वहां के निवासियो की योजना और सफाई के प्रति सजगता के प्रमाण है तथा सशक्त नागरिक सगठन के परिचायक है। इतने सुनियोजित भवन और इतनी सीधी दीवारे बनाना बिना दिशा-मापक यत्र, साहुल और पैमाने के सभव न था। एक छोटा सा उपकरण मिला है जिसका सभवत दिशा मापक की तरह उपयोग होता रहा होगा। पैमाने तथा मिट्टी के बने कई साहुल भी मिले है। अतिम काल मे भवन-निर्माण मे ह्रास के चिह्न स्पष्ट दिखते है।

लोथल के प्रथम प्रकाल में नगर-निर्माण मे काफी सतर्कता बरती गयी, किंतु द्वितीय प्रकाल मे इस दिशा मे ह्रास दिखलाई देता है। बाढ़ से सुरक्षा के यथासंभव प्रयास किये जाने के बावजूद बाढो के प्रकोप से मुक्ति नही मिली और क्षतिग्रस्त भवनो का पुनर्निर्माण का सिलसिला चलता रहा। शि० रंगनाथ राव के अनुसार एक बाढ तो इतनी भयानक थी कि जनसंख्य का एक विशाल भाग लोथल छोडकर रंगपुर मे जाकर बस गया।

कालीबंगां

(आरेख 4)

कुछ पुराविदो के अनुसार कालीबगा सभवतः सिंधु साम्राज्य (?) की तीसरी राजधानी थी जहा से सरस्वती की घाटी का समीपवर्ती क्षेत्र शासित होता था। यहा का पश्चिमी टीला जिसे 'कालीबंगा–1' नाम दिया गया है, लगभग 12 मीटर ऊंचा है और यह $\frac{1}{4}$ किलोमीटर लम्बे और किलोमीटर चौड़े

क्षेत्र में है। इसमें निचले स्तरों मे प्रार्गसिंधु-सभ्यता-कालीन अवशेष पाये गये है। जब यहा पर अप्रयुक्त धरती पर औसतन 1.6 मीटर तक मोटी तह के ऊपर
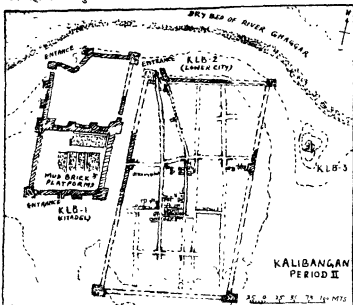
आरेख 4

इस बात के साक्ष्य है कि कुछ काल तक यह स्थान संभवत किसी प्राकृतिक कारण से क्षति पहुचने के कारण वीरान हो गया और ध्वसावशेषो पर बालू की तह फैल कर जम गई जो संभवतः नदी की बाढ का परिणाम था। कालान्तर मे यहा सिंधु सभ्यता के लोग बसे। उन्होने मिट्टी तथा कच्ची ईटो के चबूतरे बना कर उन पर इमारतो की नीवे रखी। आवास-भूमि के क्षेत्रफल मे भी विस्तार हुआ। स्पष्ट है कि नवागतुको के आने से जनसख्या मे वृद्धि हुई होगी।

सिंधु सभ्यता के लोगो के आगमन से आवास की योजना मे परिवर्तन आया और 'गढी' और 'निचला नगर' के रूप मे नगर को बसाया गया जो हडप्पा और मोहेंजोदड़ो की नगर-योजना से मिलता-जुलता है। गढी को उसी स्थान के ऊपर बसाया गया जहा पर कि प्राक्-हडप्पा अवशेष पाये गये है, ऐसा संभवत उन्होने इसलिए किया कि वह स्थल आवासित होने के कारण कुछ ऊंचा हो गया था और गढी का ऊंचाई पर होना उसकी उपयोगिता को बढ़ा देता है। इसके चारो ओर रक्षा-प्राचीर बना दी गई जो 3 से 7 मीटर तक चौडी थी। इसमें प्रवेश के लिए चारो दिशाओ मे द्वार बनाये गये थे। दक्षिणी द्वार के दोनों तरफ आरक्षक-कक्ष बने थे। गढ़ी को मध्य से एक लम्बी दीवार द्वारा जो पूर्व-पश्चिम

जाती थी, दो भागों में बाट दिया गया था। यह विभाजन किस उद्देश्य से किया गया था यह कह सकना कठिन है। गढी का इस तरह विभाजन किये जाने का दृष्टान्त सिंधु सभ्यता के किसी अन्य स्थल पर नहीं मिला है। गढी की रक्षा-प्राचीर मजबूत रहे इसका भी ध्यान रखा गया। इसीलिए उसमें स्थान-स्थान पर बुर्ज बनाये गये। दीवार के निर्माण मे दो आकार की ईंटें इस्तेमाल की गई हैं—$40 \times 20 \times 10$ सेमी की और $30 \times 15 \times 7.5$ सेमी की, जो दो निर्माण के चरणों की द्योतक है—पहले चरण में बड़ी ईंटो का और दूसरे में छोटी इंटो का इस्तेमाल हुआ है। इसके चबूतरे कहीं भी दीवार के अभिन्न अंग नही थे। गढी की दीवार तथा बुर्ज कच्ची ईंटों से निर्मित किये गये थे। इसके भीतरी भाग पर लिपाई की गयी थी। आगे चल कर सिंधु सभ्यता काल मे ही इस रक्षा-प्राचीर का महत्त्व कम हो गया और शायद बुर्ज बाद मे बनी इमारत के नीचे दब गया।

कालीबंगा के गढी वाले टीले के दक्षिण अर्धभाग में पांच या छह मिट्टी और कच्ची ईंटों के चबूतरे थे जो एक दूसरे से अलग और कुछ भिन्न थे। उनके बीच के मार्ग में भी भिन्नता थी। ये चबूतरे कही भी रक्षा-दीवार का अभिन्न अंग नही थे। बाद के लोगो द्वारा ईंटे उखाड ली जाने के कारण इन चबूतरो के ऊपर निर्मित भवनो की रूपरेखा स्पष्ट नही है, तथापि जो भी साक्ष्य बचे हैं वे इस बात की ओर इंगित करते है कि इनमें से कुछ का धार्मिक प्रयोजन था। एक चबूतरे पर कुआ, अग्नि-स्थान के और पक्की इंटो से निर्मित एक आयताकार गर्त था जिसमे पशुओ की हड्डिया थी। दूसरे चबूतरे पर आयताकार सात अग्नि-वेदिकाएं एक कतार मे थी। गढी के इस दक्षिणी अर्धभाग मे जाने के लिए उत्तर और दक्षिण दिशा में सीढिया थी। उत्तरी दिशा का मार्ग विशिष्ट था और दुर्ग के दो बाहर निकलते हुए कोनो के मध्य से था। इन दोनो मार्गों की स्थिति और रूपरेखा से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि संभवत दक्षिणी मार्ग निचले नगर के साधारण जनो के आवागमन के लिए था और उत्तरी मार्ग गढी के उत्तरी भाग मे रहने वाले सम्भ्रान्त व्यक्तियों के लिए। गढी के उत्तरी अर्धभाग मे संभ्रान्त जनो के आवास थे और उसकी सडक निर्माण-योजना विशिष्ट ढग की थी। इस भाग मे प्रवेश करने के लिए तीन या चार मार्ग थे। कालीबगा मे गढ़ी पर धार्मिक अनुष्ठानों के साक्ष्य को देखते हुए साकलिया का अनुमान है कि गढ़ी का धार्मिक महत्त्व था।

निचला नगर

हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ो के निचले नगरों के रक्षा-प्राचीर से घिरे होने का

एकदम स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नही, किंतु कालीबंगा के उत्खननो से प्राप्त साक्ष्यों से स्पष्ट है कि यहा का निचला नगर भी रक्षा-प्राचीर से घिरा था।[1] उत्खनन मे इस प्राचीर को लगभग 150 मीटर तक अनावृत्त किया जा चुका है। इसकी चौडाई सर्वत्र समान नही थी। यह 3 से 3.9 मीटर तक मोटी है। इसकी ऊचाई मे ईंटो के 15 रद्दे लगे है। इस रक्षा दीवार मे प्रयुक्त ईटें 40 × 20 × 10 सेमी परिमाप की हैं। सुरक्षा-दीवार पूर्व से पश्चिम की ओर 230 मीटर क्षेत्र को घेरे है, उत्तर-दक्षिण की ओर सुरक्षा दीवार से घिरे हुए क्षेत्र के माप का ठीक अनुमान नही लगाया जा सका है। उत्तर-दक्षिण की ओर पाच और पूर्व-पश्चिम की ओर तीन मुख्य सडको का पता चला है। कई तग गलिया भी मिली। सडको का निर्माण नियोजित ढग से किया गया था (फ० VII, 2; VIII, 2) सडको की चौडाई लगभग 1 80 मीटर गुणक मे थी। सडको के मोड पर बने घरो को यातायात से क्षतिग्रस्त होने से बचाने के लिए कही-कही सडक के किनारे लकडी के खंभो की बाड लगायी गयी थी। सडको पर कही-कही घरो के सामने आयताकार चबूतरे भी बन थे। अतिम चरण को छोड़ कर सडको को पक्की बनाने का प्रयास नही किया गया। सडक को पक्की बनाने का प्रयास हडप्पा और मोहेजोदडो मे नहा मिलता और इसीलिए कालीबगा का यह साक्ष्य इस सदर्भ मे विशिष्ट है। यहा पर सार्वजनिक नालियो के अवशेष नही मिले। घर की नालियो का पानी, चाहे वे नालिया लकडी की रही हो या पक्की ईंटो की, नाबदानो मे गिरता था। लकडी को कुरेद कर उसे नाली के रूप मे प्रयोग करना कालीबगा की अपनी विशेषता है जिसका साक्ष्य सिंधु सभ्यता के किसी अन्य स्थल पर नही मिलता।

इस टीले के एक भाग मे इमारतो के नौ क्रमिक स्तर पाये गये है। मकानो के आगे और पीछे दोनो आर सडके थी। साधारणत घरो मे एक आगन होता था जिसमे कभी एक कुआ होता था। आगन के तीन ओर छह या सात कमरे थे। एक घर म ऊपर की मजिल (?) मे जाने के लिए सीढी भी थी। एक मकान के अवशिष्ट भाग से ज्ञात होता है कि उसका दरवाजा गली मे खुलता था। हडप्पा तथा मोहेजोदडो मे भी दरवाजे गली की ओर ही मिले है। द्वार से प्रवेश कर बरामदे मे होकर कमरो मे पहुचा जाता था। कमरे बडे और छोटे दोनो ही आकार के थे जो परस्पर दरवाजो से जुडे होते थे। द्वार की

---

1 ऑल्चिन (पृ० 235) के मतानुसार सभवत: हड़प्पा और मोहेजोदडो के निचले नगर भी रक्षा-प्राचीर से घिरे थे।

चौड़ाई 70 से 75 सेमी तक पायी गयी है । दरवाजे मे कदाचित् एक ही किवाड़ लगाया जाता था क्योंकि किवाड के लिए एक ही छेद पाया गया है जो ऊपर की ओर है । इस तरह के एक-पल्लेवाले किवाड होने के प्रमाण सिधु सभ्यता के किसी अन्य स्थान पर अब तक उपलब्ध नही हुए है । कालीबगा के घर (हडप्पा और मोहेजोदडो के पक्की ईंटों से निर्मित भवनों से भिन्न) सभी कच्ची ईंटो के बने हैं । पक्की ईटो का प्रयोग केवल कुआ, नालिया और स्नानागार के निर्माण मे ही हुआ है । फर्श मिट्टी को कूट कर बनाया जाता था और कभी उसके ऊपर कच्ची ईंट और पक्की ईंट के पिण्ड बिछा देते थे । यह विधि आज भी कालीबंगा के आस-पास के क्षेत्र मे फर्श बनाने के लिए अपनाई जाती है । कुछ उदाहरणो मे पक्की मिट्टी के 'पिण्ड' फर्श बनाने मे प्रयुक्त हुए है । पर मृत्पिडो का एक मात्र यही उपयोग था यह कहना कठिन है । एक उदाहरण में फर्श की ईटो पर वृत्त को काटते हुए वृत्त का सुन्दर अलंकरण है ।[1] (फ० VIII, 1) कालीबंगा मे मिट्टी के खंडो पर शहतीरो की छाप मिली है । शायद शहतीरो का प्रयोग ऊपरी छत को सहारा देने के लिए किया गया होगा जैसा कि आज भी इस क्षेत्र मे किया जात है । अधिकांश घरो में तो मिट्टी की ईटो के आयत रूप घेरे मिले है जिनमे मिट्टी के बर्तनो के टुकडे पाये गये हैं । कुछ मिट्टी से पुते अण्डाकार गड्ढे भी मिले । इनके भीतर राख तथा कोयले के टुकडे पाये गये है । इनके बीच मे एक या अधिक ईंटे थी । इनका संबंध किसी धार्मिक अनुष्ठान से लगता है[2] (देखिए अध्याय 'धार्मिक विश्वास एव अनुष्ठान') ।

कालीबगा को इमारतो के खण्डहरो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आगन का क्षेत्रफल समय बीतने के साथ सकुचित होता गया । कई स्तर पर हरे रग की तह देखी गयी है । शायद यह तह गोबर की थी जिसे आजकल के गावो मे प्रचलित प्रथा के अनुरूप मकान को लीपने मे प्रयोग किया गया था ।

कुछ अन्य स्थल

दक्षिणी सिंध के अनेक स्थलों पर भवनो की नीवे पत्थर की थी जिसके ऊपर संभवत: कच्ची ईंटो या मिट्टी और गारे की दीवारे रही होगी । बलू-

---

1. साकलिया का कहना है कि यह अभिप्राय मात्र अलंकरण के लिए नही लगता बल्कि इसका धार्मिक महत्त्व हो सकता है ।

2. साकलिया द्वारा नेवासा में कराये गये उत्खननों में उथले गड्ढो में मिट्टी की आयतरूप संरचनाएं मिली है जिनके भीतर पत्थर पाये गये है ।

चिस्तान के सुत्कगेन्डोर मे घर की बाहरी दीवारें कम से कम 1 52 मीटर की ऊंचाई तक पत्थर की थी और अदर की विभाजक दीवारे एक मीटर तक पत्थर की थी और उसके ऊपर कच्ची ईंटो की। सिंध के अलीमुराद मे पत्थर की रक्षा-दीवार और उसके भीतर भवनो की दीवारो के अवशेष मिले। सिंध और बलूचिस्तान के स्थलो के नगर-निर्माण की रूपरेखा और भवनो के अवशेषों के बारे में जानकारी उन स्थलो के सक्षिप्त परिचय के सदर्भ मे ऊपर दी जा चुकी है।

रोपड़ में, उत्खनन सीमित क्षेत्र में होने से, स्थापत्य सबंधी जानकारी उपलब्ध नही हो पायी है। यद्यपि यहा चार निर्माण चरणो के चिह्न मिले है। ऐसे प्रमाण मिले है कि प्रथम चरण से ही नदी के तट के रोडे व मामूली तौर से तराशे ककर-पत्थर का कच्ची और पक्की इटो के साथ चिनाई मे प्रयोग किया गया था। जुडाई के लिए गारे के रूप मे मिट्टी का प्रयोग किया गया था।

बणावली मे प्रथम काल मे सिंधु सभ्यता से पूर्व की सस्कृति (जो कालीबगा प्रथम के बहुत कुछ समान है) के अवशेष मिलते हैं। द्वितीय काल सिधु सभ्यता का काल है। सिंधु सभ्यता के काल मे सड़के एक-दूसरे को समकोण पर काटती थी। मकानो के दोनो ओर सड़के और नालिया थी। दो विशाल चबूतरे मिले है जो एक दूसरे से 1 50 मीटर की दूरी पर है। इनके पश्चिम मे मकानो के ब्लाक थे। उत्तर-पश्चिमी सड़क की चौड़ाई 5.50 मीटर पायी गयी है। सड़क पर बैलगाड़ी के पहियो के निशान मिले है, पहियो की दूरी आजकल के बैलगाडी के पहियो की दूरी के समान है। सिधु सभ्यता के भवन कच्ची ईंटो के बने है जो तीन आकारो की है। मकानो की दीवारो मे मिट्टी का लेप लगाया गया था।

आलमगीरपुर मे किसी भवन के अवशेष नही मिले। किंतु कुछ पक्की ईटो का मिलना पक्के मकानो के होने का सूचक है। ईटें मुख्यतया दो माप की है एक 28.57 सेमी से 29.84 सेमी लम्बी, 13.33 सेमी से 15.87 सेमी चौडी और 6.98 सेमी मोटी है और दूसरी प्रकार की (बड़ी) ईंटो की माप $35.56 \times 20.32 \times 10.16$ है।

रगपुर मे सिंधु सस्कृति के प्रथम चरण के भवन कच्ची ईटो के चबूतरे पर निर्मित हैं। सिंधु सभ्यता के अन्य नगरो के भवनो की भाति उनमे स्नानागार और नालियो का प्रबध था। एक भयानक बाढ एवं नदियो के मार्ग-परिवर्तन से यहां पर नागरिक सुख-सुविधाओ में अत्यधिक ह्रास हुआ। द्वितीय चरण मे इस सस्कृति के भवन पहले की अपेक्षा छोटे और अनियोजित थे। घर कच्ची ईंटों

के बने थे। तृतीय तौर अंतिम चरण में, जैसा कि अनेक उपकरणों से स्पष्ट है, भौतिक उपकरणों में कुछ उन्नति हुई। लेकिन रंगपुर में हड़प्पा सभ्यता के किसी भी चरण में कोई महत्त्वपूर्ण इमारत नही मिली, यद्यपि इस बात को भी नजरदाज नही किया जा सकता कि इस स्थल मे अभी तक उत्खनन विस्तृत नहीं किये गये हैं।
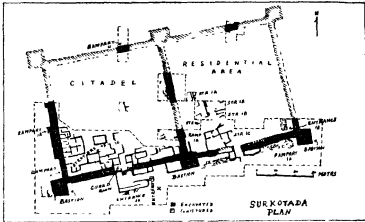
आरेख 5

सुरकोटडा (आरेख 5) मे सिंधु सभ्यता के लोगो ने कच्ची ईंटों और मिट्टी के लोदो से प्रथम काल के प्रथम चरण मे किलेबंदी की और इसमे भीतर की ओर आधार पर पाच से आठ रद्दे तक पत्थर का आच्छादन है। आधार पर रक्षा-दीवार की चौडाई लगभग 7 मीटर थी और इस पर अंदर की ओर 5 सेमी मोटा लेप था। कच्ची ईंटो का आकर $10 \times 20 \times 40$ सेमी है। दीवार की वर्तमान ऊचाई 4.50 मीटर है। इसके निर्माण मे चार चरण पाये गये। गढी की दीवार मे दो प्रवेशद्वार थे, एक दक्षिण की ओर और एक पूर्व की ओर। आवास-क्षेत्र भी सुरक्षा-दीवार से आवेष्टित था जो 3.25 मीटर चौडी थी। दक्षिण-पश्चिम की ओर यह 1.80 मीटर ऊंची थी।

वहा पत्थर की चिनाई वाले घरो के अवशेष भी मिले हैं। घरों में स्नानकक्ष और नालियो के प्रबंध के साक्ष्य मिले हैं। प्रथम काल के द्वितीय चरण मे भी सुरक्षा-दीवार की रूपरेखा पूर्ववत रही। तृतीय चरण मे भी पूर्वकालीन लोगों की परपरा में ही गढी और सुरक्षा-दीवार बनाई गई। गढी का आकार 60×60 मीटर था और निम्न आवास-स्थल का 55×60 मीटर। सुरक्षा-

दीवार साढे तीन से चार मीटर चौडी थी और उसके प्रत्येक ओर लगभग 10 मीटर का वर्गाकार बुर्ज था तथा दक्षिण की ओर एक द्वार भी थी जिसमें सुरक्षा के लिए रक्षक-कक्ष थे। इसके साथ ही साधारण आवास-स्थल से भी गढी मे प्रवेश हेतु एक दरवाजा था जिसे कालातर मे बद कर दिया गया। सुरक्षा-दीवार और बुर्जों मे मरम्मत के चिह्न मिले है। गढी मे एक नौ कमरे वाले मकान के अवशेष मिले। आवास-क्षेत्र मे साधारणतया घरो मे पांच कमरे और सडक की ओर चबूतरे बने पाये गये।

•

अध्याय 4

पाषाण तथा धातु की मूर्तियां

सिंधु सभ्यता की मुहरें अपनी कलात्मकता के लिए विख्यात है, किंतु इस सभ्यता की पाषाण मूर्तिया और मृण्मूर्तिया दोनो ही कुछ अपवादों को छोड कर, कला की दृष्टि से साधारण कोटि की है। दूसरी ओर, अपवाद स्वरूप, हडप्पा की दो पाषाण मूर्तिया और मोहेंजोदडो से प्राप्त मिट्टी की बैल की एक आकृति इतनी कलात्मक है कि यह निष्कर्ष निकालना समीचीन होगा कि हडप्पा सस्कृति की उपलब्ध मूर्तिया उस काल की उन्नत कला का समुचित प्रतिनिधित्व नही करती और सिंधु सभ्यता की कला के बारे मे हमारी जानकारी अधूरी है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि इन लोगो ने शिल्पाकृतिया अधिकागत· लकडी की बनाई थी जो नष्ट हो गई है। परवर्तीकाल मे भारत लकडी की कलाकृतियों के लिए विश्वविख्यात रहा है और आश्चर्य नही कि यही स्थिति सिंधु सभ्यता के समय भी रही हो। पाषाण मूर्तियो का इतनी अल्प संख्या मे प्राप्त होना भी इसी निष्कर्ष की ओर इंगित करता है। वैसे पत्थर की मूर्तियों का कम संख्या मे मिलने का एक कारण यह भी था कि हडप्पा और मोहेंजोदडो के समीपवर्ती क्षेत्र मे पत्थर का अपेक्षाकृत अभाव था। उपलब्ध पाषाण मूर्तिया अलाबस्टर, चूना-पत्थर, सेलखडी, बलुआ पत्थर और स्लेटी पत्थर से निर्मित है। प्राप्त सभी मूर्तिया खंडित अवस्था मे है, किसी का केवल सिर मिला है, किसी का केवल धड कोई भी मूर्ति ऐसी नही जिसका सिर और धड दोनो मिला हो।[1] कलात्मक मूर्तिया अल्प है किंतु इस बात के निश्चित प्रमाण है कि उस काल के कलाकारो मे सौंदर्य सृष्टि की पर्याप्त दक्षता था।

शिल्प कला

मोहेंजोदडो मे प्राप्त सेलखडी पत्थर की एक खण्डित मानव-मूर्ति, जिसका सिर से वक्षस्थल तक का ही भाग बचा है (फ० IX, 1), उल्लेखनीय है। यह सतह से 1.37 मीटर की गहराई पर मिला है और इसलिए यह विदित

---

1. मैंके का अनुमान है कि इन्हे जान-बूझ कर तोडा गया, किंतु उन्होने इस बात को बताने मे असमर्थता प्रकट की है कि किन लोगो ने और किन कारणों से इन्हे तोडा होगा।

होता है कि यह सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण के काल का है। इसकी ऊंचाई लगभग 19 सेमी है। नेत्र कुछ लम्बे तथा अधखुले हैं। दृष्टि नासाग्र पर केन्द्रित लगती है। होंठ मोटे है। नासिका मध्यम आकार की है। माथा छोटा तथा ढलुआ है। ग्रीवा साधारण से कुछ अधिक मोटी है। मेसोपोटामिया की प्राचीन शिल्प कृतियों में भी अक्सर मोटी गर्दन बनाने का चलन था। मार्शल का विचार है कि इन विशेषताओं से यह किसी व्यक्ति विशेष की रूपाकृति नही लगती है, और न ही बसे किसी जाति विशेष का द्योतक मान सकते हैं। किन्तु मैके इसमें कलाकार द्वारा किसी व्यक्ति के यथार्थ रूपाकन की चेष्टा का उदाहरण मानते हैं।

इस मूर्ति का केश विन्यास विशेष रोचक है। पीछे काढ़ी गयी केश राशि मस्तक पर एक फीते से बँधी है। पर कान कुछ विचित्र ढंग से वनाये गये हैं दाढी भली प्रकार कटी है, किन्तु ऊपरी ओठ पर मूछें मुंडी है। उल्लेखनीय है कि प्राचीन मेसोपोटामिया की कलाकृतियो मे भी मुडी मूछो वाली आकृतिया ही अधिकाशतया बनी थी। वह एक शाल ओढे है जो बाए कंधे को ढके हुए है; दायाँ हाथ खुला है। परवर्ती काल की कला मे भी इसी शैली मे शाल ओढे मूर्तिया, विशेषतया बुद्ध और बोधिसत्व की, मिलती है। शाल पर उभरा हुआ तिपतिया अलकरण है। इस अलकरण के भीतर वाले भाग को लाल पेस्ट से भरा गया था। तिपतिया अलकरण सिधु संकृति के कुछ मनको पर भी मिलता है। मिस्र, मेसोपोटामिया और क्रीट मे प्राचीन संस्कृति के सदर्भ मे इस तरह का अलकरण देवताओ की आकृतियो पर विशेष रूप से मिलता है। कुछ विद्वानो के अनुसार यह अलकरण सिधु सभ्यता के लोगों ने नही सीखा। आखे सीप की बना कर अलग से जडी गयी थी, एक आख पर सीप के स्पष्ट चिह्न बचे मिलते है। इस तरह आख को जड कर बनाने का प्राचीन मिस्र और सुमेर मे काफी प्रचलन था। आकृति की दाहिनी भुजा पर भुजबध है।

उपर्युक्त मूर्ति को सतर्कता तथा सावधानी से गढा गया था। किंतु बनावट मे हडप्पा से प्राप्त लाल पत्थर के धड और मोहेंजोदडो की कास्य नर्तकी जैसी स्वाभाविकता का अभाव है। नेत्रगह्वर सकरे बनाये गये है। इस सदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि मोहेंजोदडो से प्राप्त एक नरककाल की पहिचान जाति से की गयी है। वागम तो इसे मगोल जाति के व्यक्ति की आकृति का रूपाकन होने की सभावना मानते है। लेकिन मैके का कहना है कि आखें मगोलियन प्रकार की नही है। केशराशि और चेहरा बाकी भाग के अनुपात मे बडे दिखलाये गये है। मोटी ग्रीवा, ऊपरी होठ मुडा होना और नेत्र गह्वर, वस्त्र के तिपतिया अलंकरण, बाजूबद और शायद कान भी खचित दिखाना प्राचीन मेसोपोटामिया

की कला में भी मिलता है किंतु मस्तक को ढलुआ दिखाना समकालीन मेसोपोटामिया की मूर्तियों से इसकी विभिन्नता स्पष्ट करता है। दोनों कानों के पीछे बालों के आधार पर धातु के कालर के लिए छेद है। इस मूर्ति पर लेप लगाया गया था जो कि उत्खनन के बाद मूर्ति की सफाई करने के लिए धोने से निकल गया। इस मूर्ति को सावधानी से गढ़ने के बावजूद कलाकार द्वारा शारीरिक गठन को स्वाभाविक ढंग से न दिखाने का कोई विशेष कारण हो सकता है। परवर्ती काल में विशेषतया भारत में 'देवी-देवताओं के अंकन मे उनकी मानवाकृति के स्वाभाविक रूपाकन के स्थान पर पारंपरिक शैली का सहारा लिया गया और आश्चर्य नही कि धार्मिक महत्त्व के कारण सिंधु सभ्यता काल में भी इस मूर्ति को इसी तरह पारंपरिक शैली मे वनाया गया हो। मार्शल का कहना है कि पारंपरिक शैली का उदाहरण होने के कारण इस मूर्ति को सिंधु सभ्यता की कला समझने का पैमाना नही माना जा सकता। वे इस मूर्ति मे परवर्ती योगी रूप मे देवी-देवताओ के अकन का पूर्व रूप पाते है।

चूने के पत्थर से निर्मित लगभग 14 सेमी ऊंचाई का एक सिर अत्यधिक भग्न अवस्था मे पाया गया है। इस मूर्ति के एक नेत्र मे मूर्ति के पत्थर से भिन्न श्वेत पत्थर खचित किया गया था। नाक टूटी है, मुह भी क्षत-विक्षत है। गर्दन के दोनो ओर हार के लिए छेद हैं। लगभग 17.8 सेमी लंबा एक अन्य सिर (फ० X, 2) मोहेंजोदडो से मिला है। इसमे लहरदार केशो को एक फीते से बाधे और ऊपरी होठ के मूंछो को साफ कराये दिखाया गया है। इसका चेहरा और कपोल अपेक्षाकृत सुन्दर बनाये गये है। केश-सज्जा दिखलाने में विशेष कुशलता प्रदर्शित की गयी है। इस आकृति को कुछ विद्वान किसी व्यक्ति विशेष की रूपाकृति (पोर्ट्रेट) मानते है। केवल कान के अंकन मे सावधानी नही बरती गयी, इन्हे स्वाभाविक न बनाकर शखाकार दिखाया गया है। चूने पत्थर की एक मूर्ति 14 6 सेमी ऊची है। यह पूरी तरह नहीं बन पायी है। केशो को इसमे भी पीछे एक चूढ (जूड़े) मे संवारा गया है। उसकी ठुड्डी पर दाढी के चिह्न नही है। यह आकृति पुरुष अथवा नारी किसी की भी हो सकती है। मुंह छोटा है होठ मांसल है, आंखों मे कुछ जडा गया था जो अब नष्ट हो गया है और गड्ढे मात्र शेष रह गये है। नाक छोटी है। चेहरे की अपेक्षा खोपडी छोटी है।

मोहेंजोदडो से अलाबास्टर पत्थर की बनी एक बैठे हुए आदमी की 29.5 सेमी ऊंची मूर्ति प्राप्त हुई है। यह आकृति कटि मे पारदर्शी वस्त्र बांधे है। यह बायी भुजा ढकता हुआ दाहिनी भुजा के नीचे से होता हुआ पारदर्शी पतला शाल ओढ़े है पुरुष का बाया घुटना उठा है और उस पर उसकी बायी भुजा

टिकी है। सिर खण्डित है। केशों को गाठ बांध कर दिखाने का प्रयास किया था किंतु किसी कारण से उसे अधूरा छोड दिया गया है। बनावट की दृष्टि से यह निम्न कोटि की है। उकड़ू बैठे हुए एक पुरुष की 42 सेमी ऊंची अलाबास्टर पत्थर की बनी मूर्ति प्राप्त हुई है। इसकी भुजाएं दाहिने घुटने पर टिकी हैं। वह स्कर्ट की भांति कोई वस्त्र पहने है। उसकी दाढी दिखाई गई थी किंतु अधिकाश भाग खण्डित है। आंखों का जो कुछ भाग बचा है उससे लगता है कि वे लम्बी और पतली थी। कान अन्य कुछ मूर्तियों की अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह दिखाये गये हैं। वह केशपाश बाधे है जिसके छोर पीछे लटकते दिखलाये गये है। इस आकृति के सिर के दो भाग खोदाई में इसके प्राप्ति स्थल से थोडी दूर पर पाये गये। यह मूर्ति अंतिम प्रकाल की है।

मोहेंजोदडो के उत्खननो मे चूने पत्थर की कुछ मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं जो अत्यधिक खण्डित अवस्था मे है। एक 21 सेमी ऊंची घुटने पर हाथ रखे आदमी की खंडित मूर्ति मिली है। उकड़ू बैठे आदमी की एक 21 6 सेमी ऊंची मूर्ति में भुजा घुटनो पर टिकी है। यह मूर्ति दुर्ग के अंतिम स्तर से उस स्थान पर पायी गयी है जहा पर 'पुरोहितो का कॉलेज' भवन स्थित था। यह मूर्ति खण्डित है। इसका सिर केश-पाश से सज्जित था।

मोहेंजोदडो से प्राप्त उपर्युक्त मूर्तिया अधिकाशत. ऊपरी स्तरो से मिली है। अत: संस्कृति के अपेक्षाकृत बाद के चरणो की है। इनमे से तिपतिया डिजाइन का शाल ओढे आकृति और कुछ परपरागत शैली मे बैठी आकृतिया देवता की हो सकती है। इन ग्यारह मोहेंजोदडो की मूर्तियो में से पाच गढी वाले टीले मे मिली हैं। मैके का निश्चित मत है कि अधिकाश मूर्तियो पर मूलत. लाल अथवा अन्य किसी रंग का लेप था। मूर्तियो को रगने की प्रथा अन्य प्राचीन सस्कृतियो में भी प्रचलित थी।

कान को यथार्थ रूप मे दिखाने मे कलाकार सफल नही हुए है। 'पुजारी' की मूर्ति मे कान को इतना परपरागत शैली मे दिखाया गया है कि यदि इसे सिर के सदर्भ से अलग कर दे तो उसे कान पहचानना कठिन ही नही असंभव है। उपर्युक्त मूर्तियो मे कोई न कोई अग ऐसे हैं जिन्हे देख कर लगता है कि मानवाकृतियो के अकन मे इन मूर्तियो के निर्माताओ ने दक्षता नही प्राप्त की है। कलाकार ने कुछ मूर्तियो मे दाढ़ी दिखायी है जो इस बात का द्योतक है कि उस काल के लोग दाढी रखते थे। इन मूर्तियो से यह भी अनुमान लगता है कि पुरुष लम्बी अलकावली भी रखते थे और बाल की गाठ को सर पर बंधे फीते से सभाले रहते थे।

मानवशास्त्रीय दृष्टिकोण से परीक्षण करने से कुछ आकृतियां दीर्घशिरस्क हैं और कुछ लघुशिरस्क लगते हैं। मैके ने यह भी उल्लेख किया है कि एक को छोड़ कर सभी उदाहरणों में गाल चपटापन लिए है। कुछ विद्वानो का मत है कि आदिम अवस्था में मनुष्य के गाल की हड्डिया उभरी होती है और सम्य होने पर चपटी।

वस्त्रो मे शाल दिखाया गया है। दो मूर्तियो मे शाल के नीचे भी वस्त्र दिखाये गये हैं। सिंधु सभ्यता के लोग पट्टी (fillet) का प्रयोग करते थे। सुमेर की मूर्तियो पर भी पट्टी दिखायी गयी हैं। केवल इन मूर्तियो से तत्कालीन लोगों की जातिगत विशेषताओ का निर्धारण करना समीचीन नही होगा, यद्यपि अन्य साक्ष्यों के समर्थन अथवा विपक्ष मे इनके साक्ष्य का भी उल्लेख करना असगत न होगा। जो सिर मिले है वे सभी एक ही तरह की आकृति दिखाने का प्रयास नही करते बल्कि वे इस बात की संभावना प्रस्तुत करते है कि कलाकार ने उन्हें अलग-अलग आकृतियो (वास्तविक लोगो की अथवा काल्पनिक देवी-देवताओ की) का अकन करने की चेष्टा मे बनाया है।

मोहेंजोदडो की मूर्तियो की तुलना समकालीन और लगभग समकालीन मेसोपोटामिया की मूर्तियो से करने पर कुछ समानता और कुछ भिन्नता दिखती है। मोहेंजोदडो की मूर्तियों मे आखो को संकुचित दिखाया गया है जिससे वे अधखुली-सी लगती है। मेसोपोटामिया मे नेत्र गोल और पूरे खुले दिखाए जाते थे। मुख का शेष सिर से अनुपात न होना और ढलुआ मस्तक भी इन्हे मेसो-पोटामिया की शिल्पाकृतियो से अलग करता है। दूसरी ओर, मोटी गर्दन और मूंछो का मुंडा होना, दोनो देशो की कला मे मिलते है। मोहेंजोदडो के तीन सिरो मे आखो को उत्खचित दिखाने का स्पष्ट साक्ष्य है। एक मे उत्खचन पत्थर का है, दूसरे मे सीप का। प्राचीन बेबोलोनिया और मिस्र की कलाकृतियों मे आखो को स्वाभाविक रूप से दिखाने के लिए उत्खचन का प्रयोग सामान्य था। यद्यपि अधिकाश पाषाण-मूर्तियों मे नाक क्षतिग्रस्त है तथापि जो भाग बचा है उससे इतना आभास होता है कि नाक विशेष प्रखर नहीं दिखाई गई है। केवल देवता या पुजारी की मूर्ति मे ही नाक सुपुष्ट है। सुमेरी कलाकृतियो में अधिकाशत नाक को सुपुष्ट दिखाया गया है।

हडप्पा के उत्खननो से पत्थर की दो मूर्तिया उपलब्ध हुई हैं कला के क्षेत्र में शैली और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से ये काफी हद तक यूनानी कलाकृतियो के समकक्ष रखी जा सकती है। दोनों ही मूर्तिया खण्डित है। इनमें से एक लाल बलुआ पत्थर का धड है जो वत्स द्वारा किये उत्खनन में मिला था (फ० IX, 3)।

यह एक युवा पुरुष का धड है और इसकी रचना में कलाकार ने मानव शरीर के विभिन्न अगों का सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण दिया है, मूर्ति के शरीर के अंग अत्यंत सजीव तथा स्वाभाविक रूप से गठित है और इसी स्वाभाविकता के कारण यूनानी कलाकृतियो के समीप है, किंतु इसकी किंचित् तुन्दिलता यूनानी नही बल्कि भारतीय शैली के अनुरूप है। यह मूर्ति पूर्णतया नग्न है। कुछ विद्वान् इसमें जैन तीर्थकरो की कायोत्सर्ग मुद्रा के प्राग् रूप की कल्पना करते है। मूर्ति के कंधों और ग्रीवा में छेद है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि सिर और भुजाएं अलग-अलग बना कर यथा-स्थान जोडी गयी थी जो अब उपलब्ध नही।

दूसरी स्लेटी चूने-पत्थर की नृत्य-मुद्रा में बनाई गई आकृति का धड है (फ० IX, 2) जो दयाराम साहनी द्वारा किये उत्खनन मे मिला। इसमें शरीर के विभिन्न अंगों का विन्यास आकर्षक है। इसमे सिर, और भुजा अलग-अलग बना कर उन्हे जोडा गया होगा किन्तु अब उनके स्थान के द्योतक केवल छेद ही बचे हैं। यह आकृति दाये पैर (जो काफी हद तक बचा हुआ है) पर खडी है और बाया पैर (जो घुटने से ऊपर मे ही खडित है) आगे की ओर कुछ ऊपर उठा हुआ है। ऐसा लगता है मानो ताल के साथ यह गति कर रही हो। पैर के उठने मे शरीर के पृष्ठ भाग मे जो उतार चढाव आता है वह भी कलाकार की पैनी दृष्टि से छूटा नही है। पूरी आकृति मे जीवन और गति-शीलता है। मार्शल, मैके, ह्वीलर प्रभृति विद्वानो ने इसे पुरुष आकृति माना है। मार्शल ने तो उस आकृति के शिव नटराज के पूर्वरूप होने की सभावना व्यक्त की थी। उनके द्वारा इस तरह की पहिचान का कारण उनकी यह धारणा थी कि आकृति को मूलत ऊर्ध्वलिंग दिखाया गया था। उनका यह भी अनुमान है कि गर्दन स्वाभाविक से अधिक मोटी लगती है और यह हो सकता है कि आकृति पर सिर (जो अब उपलब्ध नही है) एक न होकर तीन रहे हो, यदि ऐसा था तो इसकी पहचान शिव से की जा सकती है। किन्तु क्षीण कटि, भारी नितम्ब तथा अन्य नारी सुलभ अगो को ध्यान मे रख कर डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इसे नवयौवना नारी की आकृति माना है, जो अधिक समीचीन लगता है। यह उल्लेखनीय है कि मार्शल ने भी इसके अङ्गों मे कोमलता दिखाये जाने का

1. मैके ने खुदाई मे भाग लेने वाले स्थानीय मजदूरो की आखों का निरीक्षण कर यह पाया कि वे इन शिल्पाकृतियो मे दिखाई आखो की तरह अधखुली थी। उनके अनुसार भारत के अन्य क्षेत्रो मे यह बात नही मिलती। उन्होंने यह मत व्यक्त किया कि संभवत. ये लोग इस प्रदेश मे सिंधु सभ्यता के किसी जाति के लोगो के वंशज हो।

उल्लेख किया है । तत्कालीन मेसोपोटामिया की संस्कृतियो में मंदिरों मे नर्तकिया रहती थी । ऐसी ही परम्परा देवदासी के रूप में हाल ही तक दक्षिणी भारत के कुछ मंदिरों मे प्रचलित थी । हो सकता है कि हड़प्पा संस्कृति मे भी ऐसी ही कोई प्रथा रही हो ।

निश्चय ही ये दोनो मूर्तिया सिंधु सभ्यता की अन्य मूर्तियों से, जो कला की दृष्टि से अपेक्षाकृत निम्नकोटि की हैं । अत्यंत भिन्न हैं । जब ये दोनों मूर्तियां उद्घाटित हुई तो कलाविदो मे सनसनी फैल गयी । अब तक यही धारणा थी कि यूनानी कला को ही सर्वप्रथम यथार्थ रुपाकन का श्रेय है भारत मे ऐतिहासिक काल मे जो मूर्तिया मिली है उनमे परपरा का ही निर्वाह अधिक मिलता है, यथार्थता की ओर कलाकारो का ध्यान कम गया । और यह आशा नही की जाती थी कि भारत के पुरैतिहासिक कलाकारों ने कला के ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये होगे जैसे कि ग्रीक कलाकारो ने परवर्ती काल मे किये । आज भी कुछ लोग इनके सिंधु सभ्यता-कालीन होने पर संदेह व्यक्त करते है, किन्तु मार्शल ने अकाट्य तर्को से इनके सिंधु सभ्यता का होना सिद्ध कर दिया है । मार्शल के मुख्य तर्क इस प्रकार है :—(1) लाल बालुए पत्थर की मूर्ति सतह से 1.470 मीटर की गहराई पर तीसरे स्तर पर मिला है और दूसरी स्लेटी चूना-पत्थर की मूर्ति अन्य क्षेत्र मे चौथे या पाचवें स्तर से । ये दोनो ही सतह से काफी नीचे मिली हैं । यह तर्क दिया जा सकता है कि ये दोनो सिंधु सभ्यता के बाद के काल की है और सतह की भूमि मे कुछ परिवर्तन किये जाने के कारण किसी तरह इतनी गहराई तक चली गई । किंतु ऐसी दशा मे यह सोचना स्वाभाविक है कि केवल यही दो नही परवर्ती काल की कुछ अन्य वस्तुए उसी तरह भूमि के अन्दर चली गयी होगी । किंतु वास्तव मे ऐसा नही है । दोनो मूर्तिया तथा उनके साथ मिले सभी उपकरण सिंधु सभ्यता के काल के है, एक भी वस्तु परवर्ती काल की नही । यही नही, वत्स का कहना है कि जिस टीले मे यह मिली है, उसकी सतह से भी कोई पुरैतिहासिक काल के बाद का उपकरण नही मिला है । (2) यह सही है कि हड़प्पा के पास न तो स्लेटी चूना पत्थर है और न लाल बलुआ पत्थर; किंतु पुरैतिहासिक काल मे वही के लोग अन्यत्र से मँगा कर विभिन्न प्रकार के पत्थरो का प्रयोग करते रहे, जबकि इण्डोग्रीक, सीथियन और पार्थियन राजाओ के काल मे इस तरह के पत्थर के प्रयोग का एक भी उदाहरण नही मिलता; (3) हाथ और सिर को अलग से बना कर मूर्ति मे छेद करके जोडने की शैली और पत्थर मे कधे के समीप खचित करने के उद्देश्य से किये गये नालीदार बर्मे से छेद और स्लेटी चूने पत्थर मे वक्ष के चूचुक भी खचित किये जाने की परंपरा ऐतिहासिक काल की कला में नही मिलते; (4) यह सही है कि

शरीर के विभिन्न अंगों के यथार्थ अंकन यूनानी कलाकृतियों की ही मुख्य विशेता है और भारतीय संदर्भ में गंधार कलाकृतियो में यूनानी प्रभाव निश्चित रूप से परिलक्षित होता है फिर भी गधार कलाकृतिया मूल यूनानी कलाकृतियों से कुछ भिन्न हैं। इनमे एक भी उदाहरण ऐसा नही है जिसकी सजीवता की दृष्टि से मूल यूनानी कलाकृतियो से तुलना की जा सके। अत. इन दो कलाकृतियों को गंधार कला की कृति मानना समीचीन नही लगता। दूसरी ओर मुद्राओ पर अकित पशु आकृतिया विशेषत बैल (और इस सदर्भ मे मार्शल की मुद्रा 337 विशेष उल्लेखनीय है) की आकृतियों को देखने से बरबस यह धारणा बनती है कि जो लोग पशु का इतना सुंदर, सजीव और गतिशील रूपांकन कर सकते थे वे मानवाकृति का भी उसी शैली में रूपाकन कर करने मे सक्षम रहे होगे। फिर इन दो कलाकृतियो की निर्माण-शैली मे कुछ भारतीय तत्व भी हैं। सरसी कुमार सरस्वती का कहना है कि शैली की दृष्टि से लाल बलुए पत्थर के धड की कुषाणकालीन शिल्पाकृतियो से भी कुछ समानता है। आकृति मे गड्ढे छोड कर फिर उस स्थान पर किसी वस्तु को खचित करने का उदाहरण सिधु सभ्यता मे हमे मोहेंजोदडो से प्राप्त पुरोहित की मूर्ति, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, मे भी मिलता है, और अब तक किसी भी विद्वान् ने इस मूर्ति के सिधु सभ्यता के होने पर लेशमात्र भी सदेह नही किया है।

पाषाण पशु-मूर्तिया

पाषाण निर्मित पशुओ की मूर्तिया अत्यल्प सख्या मे मिली है। मोहेंजोदडो से एक 25.4 सेमी ऊंचा ऐसी पत्थर की मूर्ति पाई गई है, जिसमे मेढ़े के सीग और शरीर दिखाया गया है और हाथी जैसी सूँड भी। सिर भली-भाति बना है और इस बात की सभावना है कि मानव सिर दिखाया रहा हो। मुद्राओं पर इस तरह के विभिन्न जानवरो के अवयव लेकर आकृति बनाने के अनेक उदाहरण है। एक मेढ़े की, और एक अन्य आकृति (वह भी सभवत. मेढे की है) साधारण कोटि की है। मोहेंजोदडो से एक सेलखडी का एक कुत्ता बहुत सुंदर बना है और आजकल के मैस्टिफ (mastiff) नस्ल के कुत्ते से बिल्कुल मिलता-जुलता है।

कांस्य मूर्तियां

हडप्पा संस्कृतिकालीन कास्य मूर्तियों मे सर्वाधिक कलात्मक नर्तकी की मूर्ति है (फ० X, 1) मोहेंजोदडो के एच आर क्षेत्र से उपलब्ध यह मूर्ति 14 सेमी ऊंची है। यह टखनो से नीचे खण्डित है। आकृति नग्न है। बायी भुजा,

जो कंधे से लेकर कलाई तक चूड़ियों से भरी है, में एक पात्र है। वह सहज भाव से नृत्य करती प्रतीत होती है। उसकी दाहिनी भुजा कटि पर अवलंबित है और इसमें केवल थोडी-सी चूड़िया है। इस हाथ के हाव-भाव दिखाने के लिए अपेक्षाकृत अधिक प्रयुक्त होने के कारण ही इसमें दूसरे हाथ की अपेक्षा काफी कम चूड़िया है। सिर थोडा-सा एक ओर झुका हुआ है। केशराशि पीछे की ओर एक वेणी में सँवार कर दाहिने कधे पर लटकती छोड दी गई है। कण्ठ कण्ठाभरण से शोभित है।

इस मूर्ति मे नारी अगो का न्यास सुन्दर रूप से हुआ है। दुपली-पतली गात यष्टि और क्षीण-कटि एवं अभ्यानत जंघाएं परवर्ती भारतीय साहित्य मे वर्णित और कला मे अकित आदर्श नारी सौन्दर्य का परिचायक है। आकृति को उद्दीपक ढंग से दिखाया गया है। मुखाकृति विशेष आकर्षक नही है। नेत्र बड़े है और उन्हे गहरे निशान से अभिव्यक्त किया गया है। नासिका का चपटापन, ओठ का भारीपन तथा बायी भुजा का अनेक चूडियो के भार से बोझिल होना भी सौदर्य-सृष्टि मे बाधक माना जा सकता है। एक पूरी बाहु को चूड़ियों से भरना किसी धार्मिक परपरा का सूचक हो सकता है। मार्शल के अनुसार इस कास्य-मूर्ति के अग-सौष्ठव को देखने से लगता है कि इसमे किसी आदिवासी युवती के रूपाकन की चेष्टा की गई है। इसकी शारीरिक गठन की विशेषताओ के आधार पर कुछ ने इसको दक्षिण-भारतीय नारी से प्रेरित कलाकृति माना है। पिगट ने इस आकृति की तुलना कुल्ली (बलूचिस्तान) मे प्राप्त मिट्टी की नारी आकृतियो से की है और इसे बलूची नारी पर आधारित माना है। उनका कहना है कि शायद सिधु सभ्यता के व्यापारी व्यापार के संदर्भ मे बलूचिस्तान के मार्ग से लौटते समय मनोरजन के लिए बलूचिस्तान मे नृत्य-नाटिका देखते रहे होगे और शायद किसी नर्तकी को अपने साथ ही ले आये होगे। उनके मत मे ऐसी ही कोई नर्तकी मोहेंजोदडो की इस कास्य मूर्ति का माडल रही होगी।

इस मूर्ति का निर्माण द्रवी मोम विधि से हुआ है। इसका निर्माण एक ही प्रयास मे होने से इसमे पर्याप्त स्वाभाविकता आ गयी है। और इसीलिए पत्थर की मूर्तियो की अपेक्षा (हड़प्पा के दो कलात्मक धडों को छोड कर) यह कास्य-मूर्ति कुछ अधिक प्रभावशाली बन पडी है। कार्लटन ने सजीवता एवं गतिशीलता के लिए इसकी भूरि-भूरि प्रशसा की है। यद्यपि शरीर को उतनी यथार्थता के साथ नही दिखाया गया जितना कि हडप्पा के उपर्युक्त दो पत्थर के धडो मे दिखाया गया है, तथापि इसके निर्माण में उनकी ही जैसी कला-भावना की प्रेरणा लगती है। और इसका निश्चित रूप से हडप्पा सस्कृति की मूर्ति होना हड़प्पा के उन दो शिल्पाकृतियो को भी हड़प्पा सस्कृति की ही सिद्ध करने

मे एक और साक्ष्य प्रस्तुत करता है। मोहेंजोदडो से ही एक और नर्तकी की कास्य-मूर्ति मिली है। यह उपर्युक्त कांस्य नर्तकी की मूर्ति से कला की दृष्टि
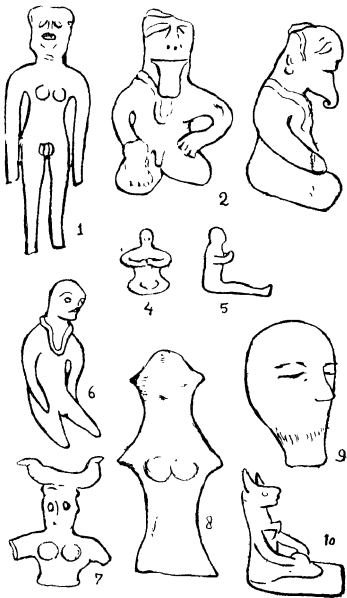
आरेख 6

से निम्न कोटि की है। कास्य की किसी मूर्ति का केवल पैर ही मिला है जो भली-भांति बनाया गया है। यदि पूरी आकृति प्राप्त होती तो अनुमानतः वह बहुत सुन्दर होती।

मोहेंजोदड़ो से कासे की कुछ पशुओं की भी आकृतियां मिली है। इनमें भैसा (फ० XV, 2) और मेढ़ा (अथवा बकरा) की आकृतियां विशेष उल्लेखनीय हैं। क्रोध में तिरछे देखते हुए भैसे की आकृति कला का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है। लोथल मे भी तांबे के पक्षी, बैल, खरगोश और कुत्ते की आकृतिया मिली है (आरेख 6)। लेकिन इनमें ताबे का एक कुत्ता कला की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। हड़प्पा से एक 5.08 सेमी ऊंची ताबे की इक्का-गाडी मिली है; और चन्हुदड़ो से ताबे से बने गाड़ियों के दो माडल उपलब्ध हुए है।

जैसा कि पिगट ने कहा है, सिंधु सभ्यता के लेखो के समान ही उस सभ्यता की शिल्पाकृतियों मे विशालता या सार्वजनिक प्रयोग किये जाने का अभाव है। यह लघु है और इनका प्रयोग व्यक्तिगत देव स्थानों में ही हुआ होगा, सार्वजनिक मंदिरो मे नही। पिगट के मतानुसार अन्य कई साक्ष्यो की भाति इनसे भी हड़प्पा सभ्यता के लोगों का निजीयता या कहना चाहिए गोपनीयता के प्रति विशेष लगाव होने का ही अनुमोदन होता है।

●

अध्याय 5

मृण्मूर्तियां

मिट्टी की सर्वत्र-सुलभता, आकृतियो के निर्माण मे धातु एव पत्थर से अधिक आसानी और कम खर्च के कारण प्रायः सभी प्राचीन संस्कृतियो मे मृण्मूर्ति-कला लोकप्रिय रही। हडप्पा सस्कृति मे उपलब्ध शिल्प आकृतियो मे सर्वाधिक सख्या मृण्मूर्तियो की ही है। ये मूर्तिया मानव और पशुओ की है। जहा तक मानव आकृतियो का प्रश्न है, मोहेजोदडो मे नारी मृण्मूर्तियो की तुलना मे पुरुष मूर्तिया बहुत कम मिली है। हडप्पा मे भी नारी आकृतिया ही अधिक है, किन्तु पुरुष आकृतिया मोहेजोदडो की तुलना मे कही अधिक है, (लगभग नारी आकृतियो की आधी) मानव आकृतिया उसी तरह की नदी द्वारा लाई मिट्टी से बनी है जिस तरह को मृद्भाडो के बनाने मे प्रयुक्त की गई है। सिधु सभ्यता की प्राय सभी मृण्मूर्तिया हाथ से बनाई गई है। अपवाद स्वरूप कुछ मुखौटे है जिन्हे साचे से बनाया गया था।

मोहेजोदडो और हडप्पा मे जो नारी आकृतिया मिली है (फ० XI, XII) वे कर्धनी से नीचे और घुटने से ऊपर स्कर्ट की तरह के वस्त्र पहने हुए दिखाई गई है, शेष शरीर बिल्कुल नग्न है। समकालीन मेसोपोटामिया और अन्य देशो की सस्कृतियो मे अधिकाशत. इस तरह की मृण्मयी नारी आकृतियो का नग्न अकन मिलता है। सिर पर पखाकार शिरोभूषा है जिसके दोनो ओर प्यालेनुमा आकार बनाये गये है। प्यालेनुमा वेशभूषा वाली आकृतिया नीचे के स्तरो मे कम और ऊपर के स्तरो मे अधिक मिली हैं। मैके का कहना है कि शायद उस काल म नारिया इससे मिलती जुलती शिरोभूषा पहनती थी और एशिया माइनर के अदालिया (Adalia) से कुछ प्राचीन मूर्तियो की शिरोभूषा भी बहुत कुछ पखाकार हैं। कुछ मे इन्हे सर मे बाधा हुआ दिखाया गया है। इनके चेहरे पर दोनो ओर एक एक शकु बने है जो वास्तविक रूप मे शिरोभूषा के अग है न कि चेहरे के। इस शंखाकार सोने का आभूषण उत्खनन मे मिला है जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आकृतियो मे सोने का आभूषण दिखाने का ही अभिप्राय था। इन मिट्टी की मूर्तियो मे नारी आकृतियो को खूब लम्बी-लम्बी कई लडी वाले हार पहने दिखाया गया है। हारो मे अलग-अलग मनके दिखाने का प्रयास किया गया है। करधनी भी मनको की ही बनी लगती हैं। गले पर अत्यत अलंकृत हँसली है। अधिकाश मूर्तियो के हाथ और पैर टूट

गये है लेकिन जिनमे बच गये हैं उनमें उन्हें हाथों में भुजबंद और पावों में कड़े पहने दिखाये गये है। इन मूर्तियों का एक ही परंपरा के अनुसार निर्मित होना और उनके अत्यधिक अलंकृत शिरोभूषा और आभूषण इस बात के द्योतक लगते हैं कि वे धार्मिक महत्त्व की थी। विद्वानों का मत है कि ये मातृदेवी की मूर्तियां है, जिसकी पूजा अन्य प्राचीन सभ्यताओं में भी प्रचलित थी। इस संदर्भ में यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि इस तरह के वेशभूषा और आभूषणो से अलं-कृत मातृदेवी की मूर्तियां मुख्यत. हड़प्पा और मोहेंजोदडो मे ही पायी गयी हैं, सिंधु सभ्यता के कुछ स्थलों पर तो नारी आकृतिया मिली ही नही है। लोथल जैसे महत्त्वपूर्ण नगर से भी नारी मृण्मूर्तिया अत्यत अल्प संख्या मे मिली हैं, उनका आकार प्रकार भी हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो मे प्राप्त नारी मृण्मूर्तियों से भिन्न है। लोथल की एक नारी मृण्मूर्ति का धड मिला है जिसमे मोहेंजोदडो की नारी मूर्तियों की अपेक्षा कही अधिक सजीवता दिखती है। लोथल से ही प्राप्त एक नारी मृण्मूर्ति को कुल्ली की मृण्मूर्तियो की तरह सिर से कमर के पास तक ही बनाया गया था। मोहेंजोदडो की मूर्तियो की तरह अलकरण का इनमे अभाव है। कुछ मृण्मूर्तियो मे नारी को आटा सानते दिखाया गया है। हड़प्पा से एक नारी आकृति को, जो खडित अवस्था मे है, तीन पाये वाली कुर्सी पर बैठा दिया गया है। कभी-कभी नारी के पेट को काफी बडा दिखाया गया है जो निश्चय ही उसे गर्भवती दिखाने के उद्देश्य से किया गया है। कुछ मे नारी को शिशु के साथ दिखाया गया है। शिशु या तो कूल्हे पर दिखाया गया है या वक्षस्थल पर दुग्धपान करता हुआ। कुछ मे नारी पक्षी पकड़े दिखायी गयी है, इस तरह का अभिप्राय ऐतिहासिक काल मे काफी प्रचलित था। कभी-कभी नारी आकृतियो के सिर पर कुछ दिखाया गया है, यथा सीग जैसी वस्तु अथवा चपाती जैसी वस्तु। कुछ उदाह-रणो मे नारी को तख्ते पर लेटा दिखाया गया है। जिन मूर्तियो मे उत्पादिका शक्ति को स्पष्ट करने का प्रयास है वे तो निश्चय ही मातृदेवी की मूर्तिया लगती है। लेकिन जो साधारण प्रकार की नारी आकृतिया है वे बच्चो के खिलौने भी हो सकती थी।

उपर्युक्त मातृदेवी की मूर्तियां कला की दृष्टि से आदिम प्रकार की है। मातृदेवी के चेहरे कुरूप है, यद्यपि उनमे भयानकता अथवा रौद्र रूप दिखाने का प्रयास नही लगता। आकृतियो के शरीर के कुछ अवयवो, यथा आख, कुच को अलग-अलग बना कर उन्हे शरीर मे यथास्थान पर जोड़ दिया गया था। इनके आभूषण भी अलग से चिपका कर लगाये गये थे। प्राय: सभी मानव मृण्मूर्तियों में आखों के स्थान पर गोल टिकली चिपका दी गयी है। अत्यंत अल्प उदाहरण ही ऐसे हैं जिनमें इन टिकलियों में आखें स्पष्ट करने के लिए लकीरें डाली गई

हैं। लेकिन इस बात की संभावना है कि मूलतः ये मूर्तियां रंगी गई थीं, और आख की पुतली को अलग रंग से स्पष्ट रूप से दिखाया गया हो। आंखों की पुतलियों को इस तरह लकीरों द्वारा दिखाने की प्रथा प्राचीन मेसोपोटामिया में विशेष रूप से प्रचलित थी। पुरुष आकृतियों में तो आखें, बिना अपवाद के, विभिन्न भागों को स्पष्ट किये बिना ही छोड दी गयी है। गीली मिट्टी की टिकली चिपका कर उसमे बीच मे लगीर लगा कर मुंह और होंठ दिखाये गये है। प्राचीन किश की मूर्तियो मे मुंह दिखाने का प्रयास बहुत कम उदाहरणों में मिलता है, और जहा मुंह दिखाने का प्रयास किया भी है वहां होंठ न दिखा कर केवल लकीर उत्कीर्ण कर मुंह होने का आभास दिया गया है। सिंधु मृण्मूर्तियों में नासिका अलग से गीली मिट्टी चिपका कर नही बल्कि मुंह के ऊपर के भाग में मिट्टी को चुटकी से दबा कर बीच में उभार दे कर बनायी गयी है जो चोंच जैसी लगती है। कुछ मृण्मूर्तियो पर लाल रग के चिह्न मिलते है। यह अनुमान लगाया जाना स्वाभाविक है कि इनमें से अनेक मूर्तिया मूलत. लाल रग से रंगी रही होंगी।

पुरुष आकृतियां

पुरुष मृण्मूर्तिया, बहुत थोडे अपवादो को छोड कर, प्राय. सभी नग्न है। कुछ मूर्तिया खडी दिखायी गयी है, कुछ बैठी। बैठी आकृतिया घुटनो को भुजाओ से घेरे दिखाई गई है या फिर उन्हे हाथ जोडे दिखाया गया है। कुछ पुरुष आकृतिया तग-सी टोपी पहने हुए है, लेकिन यह भी सभव है कि ये टोपी न होकर बाल दिखाने के प्रयास हो। वत्स को हड़प्पा के उत्खनन मे एक विशिष्ट पुरुषाकृति मिली जिसका दाहिना भाग खंडित होने के कारण अनुपलब्ध है। यह मूलतः कुर्सी पर बैठी दिखाई गई थी। इसकी आखें कुछ लम्बी है, मस्तक ढलुआ है, नाक काफी उभरी है। बाल चार लटो मे दिखाए गए है। यह नर आकृति अन्य नग्न आकृतियो के विपरीत तहमद (kilt) पहने है जिस पर कुछ उभरे हुए डिजाइन है। वह चार लडी का हार भी पहने है। वत्स का कहना है कि उभार लिए दाने वास्तविक जीवन मे धातु से अलकृत वस्त्र पहने जाने के परिचायक हैं। पुरुषाकृतियो को सीगयुक्त दिखाया गया है।

सिंधु सभ्यता के मूर्तिकारों द्वारा कुछ ऐसी आकृतियों का भी निर्माण हुआ है जिनकी शक्ले विदेशी लगती है। (फ० XIII, 1) इस दृष्टि से मोहेंजोदडो मे अन्नागार के समीप 1950 के उत्खननो मे पायी गयी पुरुष मृण्मूर्ति महत्त्वपूर्ण है। इसका शरीर कुछ चपटा है। नासिका लम्बी और उत्तरोत्तर ढालू है। ठुड्डी मासल है, किंतु उस पर केश नहीं है। इस मूर्ति मे सेमेटिक जाति के

पुरुष के से शारीरिक लक्षण विद्यमान हैं। यह धार्मिक आकृति नहीं लगती। लेकिन डी के क्षेत्र से प्राप्त एक सीग वाली आकृति शायद देवता की है। मोहेंजोदडो के एच आर क्षेत्र से प्राप्त पुरुष मृण्मूर्ति को आभूषण पहने दिखाया गया है जिससे ज्ञात होता है कि पुरुष भी नारियों की तरह के आभूषण पहनते थे। कालीबंगां से प्राप्त एक मिट्टी का मानव-सिर इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। इसमें माथा पीछे की ओर ढलुआं, गालो की हड्डियां उभरी हुई तथा ठुड्डी कुछ आगे निकली हुई है। नाक सीधी और नुकीली है, नीचे का होंठ साधारण से थोड़ा अधिक मोटा है। आंखें बादाम के आकार की हैं। मोहेजोदडो तथा हडप्पा की कुछ मृण्मूर्तियो की दाढी के बाल भी दिखाये गये हैं। इस तरह की एक पुरुष की प्रसन्न-मुद्रा प्रभावशाली है। एक मृण्मूर्ति की छोटी दाढी बहुत कुछ मिस्र देश की कलाकृतियों में दिखाई दाढी से मिलती है। मैके का कहना है कि केवल दाढी की समानता के आधार पर ही इस आकृति को मिस्र देश के किसी व्यक्ति की आकृति मानना ठीक नही होगा। लोथल की खुदाइयों से दो महत्त्वपूर्ण मृण्मूर्तिया प्रकाश मे आयी है। एक में दाढी लगभग वर्गाकार कटी है, और नाक तीखी है। शि० रगनाथ राव के अनुसार यह सुमेरी पाषाणमूर्तियों, (विशेषतः मारी से प्राप्त मूर्तियों) से बहुत मिलती-जुलती हैं। असीरिया में इस तरह दाढी के केश रखने की प्रथा लोकप्रिय थी। दूसरा उदाहरण एक मृण्मय 'ममी' का है। मिस्र में शवो को इसी तरह के खोल मे रख कर दफनाया जाता था। ये दोनो मूर्तियां विदेशी संपर्क की द्योतक लगती है। इस संदर्भ मे मोहेजोदडो की दो सिर वाली मृण्मूर्ति का भी उल्लेख करना समीचीन होगा। इसके दोनो चेहरे समान है और एक ही साचे से बने है। यह मूर्ति कण्ठ से नीचे खण्डित है। वैसे मेसोपोटामिया और मिस्र में क्रमशः मर्दुक और आमून की मूर्तियो मे उन्हे दो चेहरे वाला दिखलाया गया है। ग्रीक रोमन देव-शास्त्र मे जेनस की दो सिरो वाली आकृति के रूप मे कल्पना की गयी है। सभवत दो सिर दिखाये जाने का अभिप्राय देवता द्वारा भूत और भविष्य पर दृष्टि रखने की क्षमता को दिखाता था। चूंकि मिस्री सभ्यता की अपेक्षा मेसो-पोटामिया की संस्कृति से सिंधु संस्कृति के बीच सीधा संपर्क होने के पुष्ट प्रमाण उपलब्ध है, अतः इस मूर्ति की मेसोपोटामिया के देवता मर्दुक अथवा उससे मिलते-जुलते हडप्पा संस्कृति के किसी देवता के होने की पर्याप्त संभावना है। यों एक तरह के सिर दिखाने से यह भी असंभव नही कि एक ही देवता के दो स्वरूप दिखाने का अथवा उसके ही पुरुष और स्त्री रूप दिखाने का प्रयास किया गया है।

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा से साचे द्वारा बने मिट्टी के शृंगयुक्त चेहरे पाये गये हैं (फ० XIII, 2) ये मुखौटे पीछे की ओर से खोखले हैं और इनके

किनारे पर छेद थे। निश्चित रूप से पीछे का हिस्सा दिखाने के लिए अभिप्रेत नही था। उर में शवो पर धातु से बने मुखौटे लगाए जाते थे। यह कहना कठिन है कि इनका उपयोग नाटक के मुखौटो के रूप मे होता था। मैंके की धारणा है कि इनका धार्मिक महत्त्व था। मोहेंजोदडो के डी के क्षेत्र से प्राप्त एक शृंगी पुरुष की आकृति को देवता पहचाना गया है। वही से प्राप्त एक बैठी हुई मृण्मूर्ति इसी तरह की बैठी पाषाण शिल्प-मूर्तियो की याद दिलाती है।

मोहेंजोदडो मे पुरुष और नारी आकृतिया, दोनो ही अत्यधिक खण्डित अवस्था में पायी गयी है। इन भली-भाति पकाई गई मूर्तियो का खण्डित अवस्था में पाया जाना, जब कि मेसोपोटामिया मे अधिकाश मूर्तिया बहुत कुछ सुरक्षित रूप मे मिली है, मैंके के अनुसार इस बात का द्योतक है कि इन्हे जान-बूझ कर तोडा गया है। इस सबध में मैंके ने दो सुझाव दिये है—या तो किन्ही बाहरी आक्रमणकारियो ने, जो इनसे भिन्न प्रकार के धर्म का पालन करने वाले अथवा मूर्ति पूजा के प्रबल विरोधी थे, इन्हे तुडवाया, या यही के लोगो ने धार्मिक विश्वासो मे परिवर्तन होने के कारण, स्वय ही इन्हे तुडवा दिया। दोनो ही सुझावो को मानने मे कठिनाइया है। मिस्र के अख्नातन नामक राजा ने, जो अपने दार्शनिक विचारो के लिए सुप्रसिद्ध है, अपने राज्य मे अनेक मूर्तियो को तुडवाया था। तो क्या कोई ऐसा ही दार्शनिक शासक सिंधु सभ्यता मे भी हुआ ? लेकिन धार्मिक क्षेत्र में कितना भी राजनियत्रण रक्खा जाय, ये छोटी-छोटी मिट्टी की मूर्तिया इस तरह की निषेधाज्ञा से ही लोगो ने तोड दी हो ऐसा मानने मे हिचक होना स्वाभाविक है। अधिक सभावना यह है कि इन्हे घरो के पूजा ठौर मे रखा जाता था और कुछ अवसरो पर बाहर भी निकाला जाता था। जब ये टूट जाती थी तो इन्हे कूडे की तरह फेंक दिया जाता था।

मोहेंजोदडो से घुटने के बल चलते हुए दो बच्चो की मूर्तिया मिली है। इन्हे आभूषण पहने दिखाया गया है। मैंके का कहना है कि इनका भी धार्मिक महत्त्व था। कुछ मानव-मृण्मूर्तियो के आकार-प्रकार से ऐसा लगता है कि उनका उपयोग खेल की गोटी की तरह भी हो सकता था।

पशु-मूर्तियां

(आरेख 7-8)

सिंधु सभ्यता की पशु-मूर्तिया मानव-मूर्तियो से कही अधिक संख्या मे पाई गई है। ऐसा अनुमान है कि मोहेंजोदडो और हडप्पा मे पशुमूर्तियों की संख्या पूरी मूर्तियों की सख्या के तीन चौथाई है। अधिकाश पशु-मूर्तिया मिट्टी की ही बनी है। इनके लिए प्रयुक्त मिट्टी मानव मूर्तियो के लिए प्रयुक्त मिट्टी की तरह की ही है। काचली मिट्टी की बनी पशु-मूर्तियों की संख्या भी कम नही।

अल्प संख्या में पशु-मूर्तियां सेलखडी, सीप और हड्डी की भी बनी हैं। हडप्पा की पशु-मूर्तियों में मोहेंजोदडो की पशु मृण्मूर्तियों से अधिक विविधता मिलती है।

कुछ मूर्तियां तो बहुत साधारण कोटि की है और इनमे अधिकांश बच्चों के खिलौने हो सकते है। कुछ तो स्वयं बच्चो के ही बनाये लगते है। कभी-कभी पशु के विभिन्न अंगो को अनुपात मे नही बनाया गया है। खरगोश की पूंछ को काफी लम्बा दिखाया गया है जब कि बैल की पूछ को बहुत छोटा। लेकिन कुछ मूर्तिया ऐसी है जिनके निर्माता काफी कुशल कलाकार थे और उन्होने यत्न-पूर्वक इन्हे बनाया है।

मोहेंजोदडो मे छोटे सीग और बिना कूबड के बैल की मूर्तिया सर्वाधिक संख्या मे है, और उसके बाद कूबड वाले बैल की। दूसरी ओर हडप्पा में संख्या की दृष्टि से कूबड वाले बैल की मूर्तियो के बाद बिना कूबड वाले बैल का नबर है। वृषभ के बाद मोहेंजोदडो में मेढे की आकृत्तिया सर्वाधिक मिली है और फिर गेडे की, लेकिन हडप्पा मे गेडे की आकृत्तिया मेढे की अपेक्षा अधिक मिली है। अन्य पशुओ मे महिष, हाथी, बाघ, बकरा, कुत्ता, सुअर, खरगोश, गिलहरी, साप आदि है। एक उदाहरण मे कुत्ता खरगोश को पकडे हुए है। जलचरो मे घडियाल, कछुआ और मछली की आकृतिया हडप्पा से मिली है। हडप्पा और मोहेंजोदडो मे गाय की आकृतिया नही मिलती। राव ने लोथल से दो गाय की मृण्मूर्तियो के मिलने का उल्लेख किया है।

हडप्पा मे एक काल्पनिक पशु के एक ही गर्दन से दो सिर निकलते दिखाए गए है। इस मृण्मूर्ति का धार्मिक महत्त्व लगता है। लोथल से प्राप्त एक मृण्मूर्ति मे मानव शरीर और पशु का सिर दिखाया गया है। इसी स्थल से प्राप्त एक गोरिल्ला की आकृति के रूपाकन में पर्याप्त यथार्थता दिखती है।

कई प्राचीन सभ्यताओ मे बैल शक्ति का प्रतीक माना गया है और शायद सिंधु सभ्यता मे भी उसका यही महत्त्व था। छोटे सीग वाला बैल कभी तो गर्दन मे मालाओ मे लदा है और कभी सिर कुछ नीचे झुकाए है, जैसा कि उसे मुद्राओं पर भी दिखाया गया है। मोहेंजोदडो से प्राप्त एक छोटे सीग वाले बैल की आकृति (फ० XIV, 1) कला की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उसका मासल शरीर और भावभंगिमा विशेष आकर्षक है और कलाकार की दक्षता का परिचायक है। कला की दृष्टि से इसकी तुलना किसी भी काल की कला के उत्तम उदाहरणों से की जा सकती है। मार्शल का कहना है कि इसके निर्माता मे महान् कलाकार होने की पूरी संभावना थी। इसी स्थल से बैल की एक और कलात्मक मृण्मूर्ति मिली है (मैके, फ० LXXIX, 30) जो मैके ने मार्शल द्वारा वर्णित उपर्युक्त बैल (फ० XCVII, 23) से भी श्रेष्ठ बतलाई है।
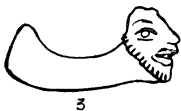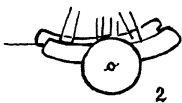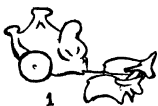
आरेख 7

लोथल से प्राप्त एक बैल की मृण्मूर्ति (फ० XV, 3) भी कला की दृष्टि से मोहेंजोदडो के उपर्युक्त उदाहरणों के निकट है। कालीबंगा से प्राप्त एक बैल की आकृति को कलात्मक ढग से आक्रमण की भंगिमा मे दिखाया है। सुरकोटडा मे पहियेदार मिट्टी का वृषभ मिला है। सांकलिया ने भावनात्मक दृष्टि से इसकी साम्यता ईरान-ईराक सीमा पर स्थित नुजि नामक स्थल और नेवासा तथा चाण्डोली की इस तरह की मूर्तियो से की है। मोहेंजोदड़ो मे मिट्टी के अतिरिक्त पत्थर, ताबे और कासे से भी बैल की आकृतिया बनी थीं। मेढ़े की आकृतियां मिट्टी से अधिक काचली मिट्टी की है। काचली मिट्टी की आकृतियां काफी सावधानी और सफाई से बनी हैं। प्राचीन मिस्र मे मेढा पवित्र पशुओं मे से एक था। वैदिक साहित्य मे उसकी अग्नि के वाहन के रूप मे कल्पना की गई है। साधारणत. गैंडे की आकृतिया असावधानी से बनी है और भोंडी है। ये बालकों द्वारा निर्मित लगती है। लोथल से प्राप्त गैंडे का मिट्टी का बना सिर प्रभावपूर्ण है (फ० XIV, 3) मिट्टी के महिष की आकृति (फ० XIV, 2) भी मिली है। कुछ उदाहरणो मे जानवरों की खाल को यथार्थ रूप से दिखाया है। अधिकाश कुत्ते की आकृतिया भी बच्चो की ही कृतिया लगती है। लेकिन कुछ काफी स्वाभाविक बन पडी है जिससे कुत्ते की नस्ल तक पहचानी जा सकती है। मैके ने तीन नस्लो को पहचाना है। कुछ उदाहरणो मे कुत्ते के गले मे पट्टी बंधा दिखाया गया है जो उसके पालतू होने का परिचायक है। ताबे की कुत्ते की आकृतिया मोहेंजोदडो से मिली है। मोहेंजोदडो की मुद्राओ पर तो हाथी का अकन अनेकश: हुआ है किन्तु मिट्टी की हाथी की मूर्तियां अत्यल्प है। सुअर की आकृतिया भी कम ही है। गिलहरी की आकृति काचली मिट्टी मे मिली है। (फ० XIII, 3) ये कला की दृष्टि से काफी अच्छी है। कुछ खरगोश की मूर्तिया भी मिली है। बन्दर की कुछ आकृतिया मिट्टी की और कुछ काचली मिट्टी (फ० XIII, 4) की है। कुछ विभिन्न पशुओ के अवयवो के मेल से बनी आकृतिया भी हैं। आलमगीरपुर से प्राप्त मृण्मूर्तियों मे एक रीछ और एक साप की आकृति उल्लेखनीय हैं। एक जानवर के धड की आकृति मोहेंजोदड़ो के अन्तिम प्रकाल से पायी गयी है जो घोडे की लगती है। रंगपुर और लोथल (फ० XV, 1) की मूर्तियों मे भी घोडे की पहचान की गई है। यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि हडप्पा की खोदाई में घोडे की हड्डिया नही मिली है। मोहेंजोदडो में जो सबसे ऊपरी सतह पर घोडे की हड्डिया मिली है उन्हे कुछ विद्वानो ने सिधु सभ्यता के बाद का आका है। लोथल के अपेक्षाकृत बाद के चरण मे कुछ हड्डियों को घोड़े की हड्डी पहचाना गया है। बलूचिस्तान के रानाघुंडई नामक स्थल से घोडे की हड्डियां सिंधु सभ्यता से कही पहले के काल के स्तरों में मिली है।
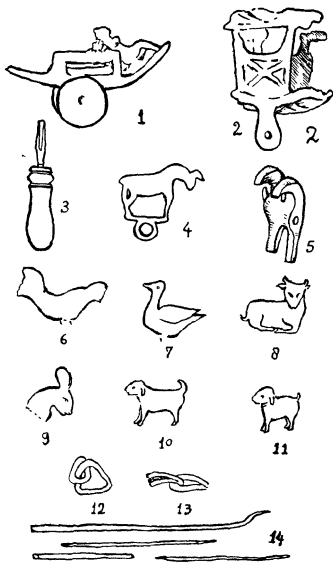
आरेख 8

सिधु सभ्यता की कला मे पक्षियों को बैठे, उडते और चोच खोले दिखाया गया है। मोहेंजोदडो की मृण्मूर्तियो मे पक्षियो की ठीक प्रकार पहिचान करना कठिन है। पक्षियों की कुछ मूर्तिया अन्दर खोखली है तथा उनमें एक छेद है।

इनका व्यवहार संभवतः सीटी के रूप में किया जाता था। यदि मुंह को छेद पर रख कर फूंक मारी जाय तो सीटी की सी आवाज पैदा होती है। ये घुग्घू (फाख्ता) की आकृतियां लगती हैं। हड़प्पा के उत्खननों मे प्राप्त मृण्मूर्तियों में वत्स ने फाख्ता के अतिरिक्त बतख, मोर, मुर्गी, चील, कबूतर, गौरैया, तोता, उल्लू आदि पक्षियो की पहिचान की है। हड़प्पा की कुछ मृण्मूर्तियों मे पक्षियों के शरीर मे जहा से टाग शुरू होती है वहा छेद बने है। स्पष्ट है कि इन छेदों मे अलग से टांग बना कर जोडी गई होगी। हड़प्पा के कुछ उदाहरणों में इस बात के साक्ष्य मिलते है कि पख भी अलग से बना कर जोडे गए होगे। काचली मिट्टी के सर्प की आकृति मे सिर और विषदन्त भी अलग से जोड़े गए है। काचली मिट्टी और सीप के बने बैल के सिर मे आख और कान के लिए छेद बने है। कुछ चिडियो के पंख को उभरा दिखाया गया है। इन चिडियो को अधिकाशत आधार पर स्थित दिखाया गया है। इस बात के साक्ष्य है कि चिडियो को स्वाभाविक दिखाने के लिए उन्हे अनुरूप रंगों में रंगा गया था। बच्चो के खिलौनों मे सीटियों के अतिरिक्त पहियेदार मिट्टी की गाड़िया भी सम्मिलित है। इनके आकार-प्रकार में दर्शनीय विभिन्नता है। कुछ गाडिया इक्के जैसे भी है। इन गाडियो को खीचने वाले बैलो की आकृतिया विशेष आकर्षक नही। पशु आकृतियो के शरीर की सूक्ष्मताएं कीलों से दिखायी गयी है। अगो के उभार बडी कुशलता से प्रदर्शित है। पहिया-गाडियों के लिए जो बैल की आकृतिया बनायी गयी है, उनमे सीग, कूबड तथा पैर बहुत भोडे बने है।

मैके ने मोहेंजोदडो की पशु-मृण्मूर्तियो की निर्माण-शैली के बारे मे अध्ययन किया ह। उनके अनुसार मानव मृण्मूर्तियो के विपरीत पशुमृण्मूर्तिया खोखली है जिससे स्पष्ट है कि पहले वे किसी ऐसी वस्तु के आधार पर बनाई गई है जो पकाने पर नष्ट हो गया और इसलिए अदर खोखली है। जो आकृतिया पूरी मिली है उनमे एक छेद मिलता है जो अन्दर की आधार वस्तु के जलने से उत्पन्न गैस को निकालने के लिए अभिप्रेत था। सांचे से बनी पशु-मृण्मूर्तियों के एक-दो ही उदाहरण मोहेंजोदडो में प्राप्त हुए हैं।

मोहेंजोदडो की कुछ पशु मृण्मूर्तियों में आंख को यथार्थ की भाति दिखाया गया है। मिट्टी मे पहले कुछ गहराई तक गड्ढा-सा बना देते थे और फिर उसके भीतर गीली मिट्टी की टिक्की भर कर पुतली दिखाई गई है। झुरियों को रेखाओं द्वारा और खाल की परत को मिट्टी की पट्टिया चिपका कर दिखाया गया है। इन मिट्टी की पशु-आकृतियों पर लेप लगाया गया था और कुछ को चित्रित भी किया गया था।

●

अध्याय 6

मुद्राएं तथा ताम्र पट्ट

सिंधु सभ्यता की मुद्राएं (फ० XVI, XVII, XVIII, 1, आ० 9; 10) विशिष्ट प्रकार की हैं। इनमें से अधिकांश पर चित्रलिपि में लेख, जो साधारणतया 3 से लेकर 8 अक्षर वाले हैं, और पशु-आकृतिया बनी है (फ० XVI, 1, 5, 6)। कुछ पर केवल लेख (XVI, 3) है और कुछ पर केवल अभिप्राय (फ० XVI, 4)। प्रारंभ मे विद्वान इस बात से एकमत नही थे कि इनका उपयोग मुद्रा के लिए था अथवा ताबीज के रूप मे। इसका कारण यह था कि मोहेंजोदडो, हडप्पा और चन्हुदडो के उत्खननों से मुद्राओं की उपलब्धि तो सैकडो की सख्या मे हुई थी किंतु उनकी छाप नही के बराबर प्राप्त हुई थी। मुद्राओं के पीछे घुण्डिया होने के कारण कुछ विद्वानो ने एक ओर उनके ताबीज की तरह प्रयुक्त होने मे सदेह व्यक्त किया था और दूसरी ओर मुद्रा के सदर्भ मे घुण्डी की उपयोगिता भी दर्शाई थी। कितु इससे ताबीज वाले मत का पूरा खण्डन नही हो सका। कुछ ही वर्ष पूर्व लोथल मे किये उत्खननो से न केवल मुद्राए, अपितु सैकडो मुद्राओ की छापे भी उपलब्ध हुई है। उसके बाद कालीबगा से भी कुछ इस तरह के उदाहरण मिले है। इन छापो से स्पष्ट हो गया है कि वे मुद्राएं ही थी जिनकी छापे वस्तुओ—पत्र, पार्सल आदि को मुहर-बंद करने मे प्रयुक्त की जाती थी। यो इन खोदाइयो मे पूर्व भी बेबीलोनिया के एक स्थल से सिंधु सभ्यता की किसी मुद्रा की मिट्टी पर छाप मिली जिसके पीछे कपडा चिपके होने के निशान थे। विद्वानो ने इससे यह निष्कर्ष निकाला था कि इसे सिंधु सभ्यता के किसी स्थल से भेजे गये कपडे मे बंद सामान के गट्ठर पर लगाया गया था। लोथल की एक मुद्रा छाप पर भी कपडे के निशान मिले (फ० XVIII, 1)। अधिकांश सिंधु सभ्यता की मुद्राये, ऐतिहासिक काल की मुद्राओ की भाति पत्र अथवा पार्सल पर छाप लगाने के लिये प्रयुक्त होती रही होगी। किंतु ऐतिहासिक काल की भाति ही कुछ छापें मन्नत-चढ़ावा, स्मृति चिह्न अथवा पारपत्र के रूप मे भी प्रयुक्त होती रही होगी; ऐसी मुद्राओं के पीछे की ओर रस्सी आदि के निशान नही होते।

मार्शल, मैके आदि के उत्खननों से यह ज्ञात नही होता कि मुद्राओं का कोई प्रकार विशेष नगर के प्राथमिक, माध्यमिक अथवा अंतिम काल की विशेषता है

केवल वत्स (पृ०324-25) ने हड़प्पा के एक टीले के उत्खनन के साक्ष्य के आधार पर बताया है कि प्रारंभिक (निम्न) स्तरो में अधिकाश मुद्रायें छोटे आकार की मिली, इनकी माप 1 77 से 0.91 सेमी लम्बी, 1 52 से 0.51 सेमी चौड़ी और 1 27 सेमी मोटी थी। सबसे नीचे वाले स्तर मे केवल छोटे आकार की ही मुद्राएं मिली। इन छोटी मुद्राओ पर एक शृंगी पशु या अन्य महत्त्वपूर्ण पशु अंकित नही, न उनके पीछे घुडी या छेद ही है। इनमें अधिकाश पर एक ओर कुछ अक्षर-चिह्न और दूसरी ओर एक अभिप्राय मिलता है, यह या तो ज्यामितीय है अथवा घडियाल या मछली, या कभी-कभी बकरी या खरगोश; चार में उसी तरह का 'ध्वज' है जिस तरह का एक-शृंगी पशु के साथ दिखाया जाता है। लेख लापरवाही से खुरचे है, खोदे नही गये हैं। वत्स का कहना है कि इस तरह के लेख छाप में तो कुछ भी नही दिखेंगे, अतः ये छाप लगाने के लिए नही थी और इन पर अंकित अक्षर सीधे ही पढने चाहिएं, छाप लगाकर नही। इन मुद्राओ मे एक ही लेख अनेक पर मिला है (उदाहरणार्थ एक लेख तेईस पर मिला है)। वे इन्हे इन कारणो से और इनके अत्यंत छोटे आकार के कारण निश्चित रूप से ताबीज के लिए प्रयुक्त मानते है। वत्स द्वारा इन लघु मुद्राओ के लिए प्रस्तुत काल-क्रम संबंधी साक्ष्य हडप्पा के संदर्भ मे भले ही सही हो, लोथल मे छोटे आकार की मुद्राए साधारण मुद्राओ के साथ प्रारंभ से लेकर अंत तक के चरण मे मिली है।

यह उल्लेख्य है कि हडप्पा संस्कृति-युक्त आलमगीरपुर तथा अन्य कई 'ग्राम' स्थलो के उत्खननो मे एक भी मुद्रा अथवा उसकी छाप नही उपलब्ध हुई है। आलमगीरपुर सिंधु सभ्यता की साधारण लघु ग्रामीण बस्ती थी और हडप्पा सस्कृति के जिस रूप के यहा दर्शन होते है उससे प्रतीत होता है कि लोग पूर्वजो द्वारा निर्मित वस्तुओ के निर्माण के प्रति शनैः शनैः उदासीन होते जा रहे थे। रोपड मे एक (और वह भी निम्न कोटि की) मुद्रा मिली है सुरकोटडा से एक, और कालीबंगां से कुल आठ मुद्राएं मिली हैं। लगता है यहा व्यापारिक जटिलताओ, विशेषतः विदेशी व्यापार का अभाव था। दूसरी ओर हड़प्पा मोहें-जोदडो और लोथल जैसे व्यापारिक केंद्रों में विशाल संख्या में मुद्राएं मिली हैं।

इन मुद्राओं के निर्माण मे एक ही जैसी सावधानी और कलात्मकता नही दिखती। कुछ अपेक्षाकृत असावधानी से बनी है तो कुछ मे कलाकार ने उन्हे कलात्मक बनाने में कोई कसर नही रखी। मुद्राओं के कुछ सुन्दर उदाहरण विश्व की महान् कलाकृतियों में अपना स्थान रखते है। सिंधु सभ्यता में मुद्राएं विभिन्न पदार्थों से निर्मित की जाती थीं। किंतु अब तक उपलब्ध मुद्राओं में सबसे अधिक सेलखडी की हैं। कांचली मिट्टी की मुद्राए भी पर्याप्त संख्या में

मिली हैं। थोडी-सी मुद्राए गोमेद, चर्ट और मिट्टी की भी है। लोथल और देसाल पुर से ताबे की मुद्राए मिली है जो पीछे छेद होने के कारण ताम्र फलको से भिन्न है। आकार-प्राकार की दृष्टि से मुद्राओ मे विविधता है। ये बेलनाकार, वर्गाकार, चतुर्भुजाकार, बटन-जैसी, घनाकार और गोल है। मोहेजोदडो से कुल पाच बेलनाकार मुद्राओं के उदाहरण उपलब्ध है। कालीबंगा से भी इस प्रकार की एक मुद्रा मिली है (फ० XVI, 2), ये हड़प्पा संस्कृति की अन्य मुद्राओ से पूर्णत. भिन्न हैं। यद्यपि इस प्रकार की मुद्राएं कुछ अन्य देशो, विशेषतया प्राचीन मेसोपोटामिया मे लोकप्रिय थी। सिंधु सभ्यता मे ऐसी मुद्राए बहुत कम मिलने से स्पष्ट है कि सुमेरी सभ्यता से संपर्क होने के बावजूद मुद्रा के निर्माण मे सिंधु-सभ्यता ने अपनी विशिष्टता बनाए रखी है। बेलनाकार मुद्राओ को गीली मिट्टी, मोम या लाख पर इस तरह लुढका कर लगाया जाता था जिससे दृश्य-चित्र बन जाता था। लोथल से एक बटन की तरह गोल मुद्रा मिली है जिसके पीछे छिद्रित घुडी है। छाप लगाने वाली तरफ एक दुमुहे राक्षस के दोनो ओर एक-एक कूद भरते हिरन दिखाये गए है। इस तरह की मुद्राएं फारस की खाडी के समीप के भू-भागो मे मिली है और इनकी तिथि सारगन से कुछ बाद की है। ठप्पे लगा कर प्रयोग की जाने वाली मुद्राए सीरिया मे हलाफ काल मे मिलती है पर उन पर जो अभिप्राय है वे ज्यामितीय है, जब कि सिंधु सभ्यता की अधिकाश मुद्राओ पर पशु की आकृति है। ईरान मे भी सिंधु सभ्यता से पूर्व ठप्पे लगाने वाली मुद्राओ का प्रचलन था। लेकिन बलूचिस्तान मे प्राग्-सिंधु सभ्यता के सदर्भ मे मुद्रा नही मिलती जिससे ईरान का भी सीधा प्रभाव इस सदर्भ मे होने की अधिक संभावना नही लगती। बलूचिस्तान मे जो थोडी बहुत मुद्राए उपलब्ध हुई है वे सभी सिंधु सभ्यता मे निर्मित हुई लगती है।

वर्गाकार मुद्राए प्राय. सभी सेलखडी की है और सिंधु सभ्यता के नगरो मे ये बहुत लोकप्रिय थी। ये दो प्रकार की है—छिद्रयुक्त घुण्डीदार और बिना घुण्डीवाली। घुण्डीदार मुद्राओ का आकार 1 27 × 1 27 सेमी और 6 86 × 6.86 सेमी तक है। मुद्रा का सबसे अधिक प्रचलित आकार 2.8 × 2 8 सेमी है। इस प्रकार की मुद्राओ पर पशु की आकृति के साथ अभिलेख है जो एक अथवा दो पक्तियो मे लिखा मिलता है। जिन वर्गाकार मुद्राओं के पृष्ठ भाग मे घुण्डी नही है उनका आकार साधारणतया 2.8 × 1.27 सेमी तक है और इन पर अभिलेख प्राय. दोनों ओर है। इस तरह कुछ मुद्राओ के पृष्ठ भाग मे छेद भी मिलता है। इनकी सख्या अधिक नही है। घुण्डी-विहीन आयताकार मुद्राओं की सख्या बहुत कम है। ये भी अधिकाशतया सेलखडी की हैं, केवल थोडी-सी ही मिट्टी की है। इनमे कई ऐसी है जिनके दोनो ओर लेख हैं। ये 1.33 सेमी

× 2.8 सेमी आकार की हैं। बिना घुण्डी की आयताकार मुद्राएं भी कम ही है। बटन जैसी मुद्राओं पर, जो सेलखडी और काचली मिट्टी की है, अधिकांशतया स्वस्तिक बना है। ऐसी मुद्राओं पर स्वस्तिक का डिजाइन क्रीट, कैपेडोसिया व ट्राय मे भी लोकप्रिय था। बटन जैसी मुद्राओं पर मिले स्वस्तिक का अलंकरण सूसा और मुसयान के मृद्भाण्डो पर भी मिलता है। छेददार घुंडीयुक्त आयताकार और वृत्ताकार और बिना घुंडी वाली वृत्ताकार मुद्राए स्टेटाइट और मिट्टी की है। इनकी सख्या भी अधिक नही है। घनाकार मुद्राओं की संख्या भी कम है। इनके प्रत्येक ओर की माप 1.44 सेमी तक है। यह बलुए पीले रंग के पेस्ट की बनी है, जिस पर कुछ चमक भी है। इनमे से कुछ पर दो तरफ एक दूसरे को काटती रेखाए है और एक ओर मुद्रा छाप है जिसमे एक-शृंगी पशु दिखाया गया है।

अधिकाश मुद्राओ पर लेख और पशु आकृति है। कुछ अपवादों को छोडकर पशु बाये ओर मुंह किये दिखलाया गया है। लेकिन छाप लगाने पर पशु दाया मुख किये दिखेगा। चूंकि मुद्राओ से छाप ही लगाई जाती थी, अत. छाप पर जैसा पशु दिखेगा वही मुद्रा निर्माता को दिखाना अभिप्रेत था। अत. हम पशुओ को दायी ओर मुख किया हुआ ही उल्लेख करेंगे। सिधु सभ्यता संबंधी जो भी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है उनमे मुद्राओं का चित्र नही उनसे छापे लेकर छापो का चित्र छपा है ताकि अभिप्रेत रूप का ही अवलोकन हो। एक शृगी पशु (फ० XVII, 1) की आकृति का कुछ भाग बैल और कुछ हिरन जैसा है। इसके एक ही शृग है। या तो कलाकार का उद्देश्य एक ही सीग दिखाना था (यद्यपि इसकी संभावना कम है) या दूसरा शृग पशु का पार्श्व चित्रण होने के कारण दिखाये गये सीग से छिपा समझना चाहिए, जिस कारण कलाकार ने उसे अभिव्यक्त नही किया। किंतु इस सबध मे यह उल्लेखनीय है कि पार्श्व मे अकित अनेक बैल की आकृतियो के दोनों सीग दिखाये गये है। इस पशु के सम्मुख एक वस्तु का अकन मिलता है जो एक डण्डे पर आधारित एक के ऊपर एक बर्तन की तरह लगता है (फ० XVII, 1)। इस अभिप्राय की पहिचान कुछ ने पिंजडे से की है लेकिन कुछ विद्वानो का कहना है कि यदि इसका अभिप्राय पिंजडे से होता तो कलाकार ने उसमे चिडिया अवश्य दिखाई होती। दोनो ही बर्तनो (?) को पार करता हुआ डण्डा बर्तनो के बीचो-बीच दिखलाया गया है। नीचे वाला बर्तन (?) मुख्यत कटोरे की तरह का है। इसका प्रयोजन पशु के लिए भेंट की गई वस्तु को दिखलाना हो सकता है। एक मुद्रा से ली गई दो छापो मे चार व्यक्तियो को एक कतार मे दिखाया गया है और प्रत्येक ध्वज लिए हुए है। इनमें से एक ध्वज पर एक-शृंगी पशु और एक पर उसी तरह का दो बर्तनो वाला अभिप्राय है जैसा कि एक-शृंगी पशु के सामने रखा दिखाया

जाता है। उर से प्राप्त एक बेलनाकार मुद्रा पर एक-शृंगी पशु दिखाया गया है लेकिन उपर्युक्त अभिप्राय के स्थान पर मछली दिखाई गई है। यह मुद्रा किसी भारतीय द्वारा बनायी अथवा भारतीय प्रभाव से बनी हुई लगती है। सिंधु सभ्यता का यह ध्वज या धूपदानी प्रकार इस सभ्यता तक ही सीमित लगता है वैसे कुल्ली के एक बर्तन पर बैल को इसी तरह के दो बर्तनों से बने अभिप्राय से बंधा दिखाया गया है। मिस्र की प्राचीन सभ्यता में ध्वज के साथ जन समूह दिखाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। यह एक धार्मिक परंपरा थी। हो सकता है कि हड़प्पा संस्कृति की मुद्राओं पर अंकित ध्वजों का भी कुछ धार्मिक महत्त्व रहा हो।

मुद्राओं पर छोटे सींगों वाले बैल का अंकन भी लोकप्रिय था। मुद्राओं पर इनके पर्याप्त उदाहरण हैं। इन पशुओं को प्राय. सिर नीचा किये और थोड़ा एक ओर घुमाए चित्रित किया गया है, मानो यह क्रुद्ध हो आक्रमण करने के लिए तैयार हो। बैल की मिट्टी में बनी आकृतियों में भी उसे क्रोध की मुद्रा में दिखाया गया है। कुछ मुद्राओं पर बैल के कन्धे और गलकंबल को बड़ी कुशलता से व्यक्त किया है। आकृति के अंकन में अतीव सजीवता है। इस बैल के आगे एक नाद दिखाया गया है। इस तरह के नाद के अभिप्राय वाली एक बेलनाकार मुद्रा सूसा में मिली है। मैके का मत है कि शायद इस मुद्रा का निर्माण किसी प्रवासी भारतीय के लिए किसी एलम के कारीगर ने किया हो। उर के उत्खननों में एक मुद्रा पुराविद् वूली को अक्कद के सारगन के काल के स्तर में मिली थी जिसमें इसी तरह का बैल और नाद बना है, किंतु इस पर लेख कीलाकार लिपि में है। जो भी इस मुद्रा का स्वामी रहा होगा वह भारतीय कला-अभिप्राय से परिचित था। ब्रिटिश संग्रहालय में बेबीलोनिया के किसी प्राचीन स्थल से प्राप्त मुद्रा पर भी यह अभिप्राय है।

मुद्राओं पर कूबड़ वाले बैल की आकृतियां (फ० XVII, 2) विशेष कुशलता से बनायी गयी हैं। वास्तव में ये सिंधु सभ्यता की कला के चरम विकास की झांकी प्रस्तुत करते हैं। मोहेंजोदड़ो से उपलब्ध एक मुद्रा (मार्शल की सं० 337) पर अंकित बैल की आकृति की कलात्मकता की मार्शल ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अंगों के उभार और शरीर के अनुपात में जो विशिष्टता दिखाई गई है वह अपूर्व है। कलाकार ने यथार्थ और कल्पना के सुंदर सम्मिश्रण से इस मुद्रा को बहुत तन्मयता और कुशलता से बनाया है। इस छोटी सी मुद्रा के सीमित क्षेत्र में अपेक्षाकृत विशालकाय बैल का इस तरह अंकन किया गया है कि उसकी विशालकायता का पूरा आभास मिल जाता है। खड़े दिखाये जाने पर भी उसमें अत्यधिक गतिशीलता लगती है। पशु को पार्श्व में दिखाते हुए भी

उसके दोनों सींग कलाकार ने दिखाए है। यद्यपि यह यथार्थता की दृष्टि से ठीक नहीं, तथापि कला की दृष्टि से दोनों सीगों के दिखाने से आकृति की सुन्दरता बढ जाती है, और एकबारगी ध्यान इस त्रुटि की ओर नही जाता। प्राचीन सुमेर अथवा एलम की कला में इस बैल की आकृतिया नहीं मिलतीं। अपवाद स्वरूप इसका एक उदाहरण बेबीलोन में गुडिआ (Gudea) के समय के एक चूना पत्थर पर निम्न उद्भृत (basrelief) सर्वप्रथम प्राप्त होता है। नाल सस्कृति के एक मृद्भाण्ड पर भी इस प्रकार के बैल की आकृति चित्रित है।

पालतू और जगली भैसे की आकृतिया अपेक्षाकृत यथार्थवादी ढंग से अंकित है। भैसे को रँभाते हुए सिर नीचा किए दिखाया है मानो कि वह लडने के लिए उतारू हो। अन्य पशुओ मे व्याघ्र, हाथी और गैडे का चित्रण हुआ है। व्याघ्र का चित्रण सिंधु सभ्यता के संदर्भ मे सिंधु घाटी के ही स्थलो मे मिलता है। इस घाटी से बाहर केवल एक उदाहरण कालीबंगा की मुद्रा पर किया गया अंकन है। व्याघ्र अब सिंधु मे नही पाया जाता है, किंतु एक शताब्दी पूर्व तक उसके यहा पर पाये जाने के साक्ष्य है। एक मुद्रा मे चित्रित एक मनुष्य वृक्ष की शाखा पर बैठा है, शाखा के नीचे खडा व्याघ्र बडे ध्यान से उसे देख रहा है। यह चित्रण नव-बेबीलोन-कालीन मुद्रा के चित्रण से साम्य रखता है। किश से उपलब्ध इस युग की एक मुद्रा पर भी एक ऐसे ही दृश्य का अकन है, किंतु व्याघ्र के स्थान पर इसमे लकड़बग्घा दिखलाया गया है। मुद्राओं पर हाथी की आकृति का अकन (फ० XVIII, 1) भी पर्याप्त लोकप्रिय था। इनका चित्रण वास्तविक के अनुरूप हुआ है। कुछ विद्वानो के मतानुसार भारतीय और अफ्रीकी दोनो प्रकार के हाथियो का अकन हुआ है। अब सिंध मे हाथी नही पाये जाते। गैडे (फ० XVII, 4) के पृष्ठ भाग और पैर अनुपात से बनाये गये है और चर्म की सिकुडन और तहे स्वाभाविक रूप से अंकित है। खुरदरे अधि-मास दिखाने के लिए छोटे गोल चिह्न अंकित है। टेल अस्मर से फ्रैंक फोर्ट को जो वर्तुलाकार मुद्रा मिली थी उस पर गैडे, घडियाल के साथ हाथी भी चित्रित है। अनुमानतः इसका निर्माण भारत मे ही हुआ था, किंतु सुमेर मे स्थित किसी भारतीय व्यापारी द्वारा प्रयोग मे लायी गयी थी। गैडे और बाघ को तो प्राय. किंतु हाथी को थोडे ही मुद्राओ पर नाद के साथ दिखाया गया है। घडियाल भी थोडी सी मुद्राओ पर दिखाया गया है। चन्हुदडो की एक मिट्टी की मुद्रा पर तीन घडियालो तथा दो मछलियों का अकन है। इसके दूसरी ओर अभिलेख है। हडप्पा की एक मुद्रा पर एक गरुड़ दिखाया गया है। गरुड के फैले पैरो के ऊपर दो साप दिखाए गए है। मेसोपोटामिया और एलम मे गरुड एक लोकप्रिय अभिप्राय था। हडप्पा की एक मुद्रा पर खरगोश भी दिखाया गया है। हिरनों

का अंकन बहुत कम हुआ है जबकि सुमेरी मुद्राओं पर इस पशु का अंकन काफी मिलता है ।

1

2

3

4.

5

6

आरेख 9

कुछ मुद्राएं विशेष रूप से धर्म से संबंधित लगती है। मोहेंजोदडो की एक मुद्रा (फ० XVI, 1) पर देवता (शिव-पशुपति) की आकृति के साथ हाथी बाघ, गैंडा, भैंसा (बैल ?) और हिरण (?) दिखाए गए है (विस्तार के लिये देखिए अध्याय 'धार्मिक जीवन')। इसमें प्रथम चार पशु एक अन्य मुद्रा पर भी अंकित है, जिनमें केन्द्र मे एक बिच्छू भी दिखाया गया है, बिच्छू का अकन इने गिने उदाहरणों मे से है। हा, उर से प्राप्त एक सिंधु सम्यता की मुद्रा पर भी बिच्छू दिखाया मिलता है। एक अन्य मुद्रा में वृक्ष की दो शाखाओं के मध्य एक शृंगयुक्त आकृति है, उसके समीप ही एक दूसरी इसी तरह की आकृति उससे प्रार्थना कर रही है, दूसरी आकृति के पीछे एक बकरा और नीचे सात मानव आकृतिया, एक मुद्रा (आ० 9, 3) मे एक अर्धमानव और पशु आकृति दो बाघो को अलग-अलग अपने हाथों से गले से पकडे दिखलाई गई है जो मेसो-पोटामिया के गिल्गमेश अभिप्राय का द्योतक लगता है। एक अन्य मुद्रा मे इसी तरह की आकृति सीगयुक्त बाघ से युद्ध कर रही है। बेबीलोनी कला में इकिडू को इसी तरह सिंह से लडता दिखलाया गया है और गिल्गमेश को साड से। मेसोपोटामिया की मुद्राओ पर सिंह का अकन काफी लोकप्रिय रहा, किंतु सिंधु सम्यता की एक भी मुद्रा पर सिंह की आकृति नही मिलती। यह कहना कठिन है कि कहा तक बेबीलोनी कला या आख्यानो का प्रभाव मानव-पशु युद्ध के अकनों मे है। धनुष-बाण लिए मानव आकृतियों का अकन भी मिलता है। मानव आकृतियों का आलेखन पशु आकृतियों की भांति सजीव नही है। देवता, पशु और सात नारी आकृतियो का अभिप्राय मोहेंजोदडो की एक मुद्रा पर मिलता है (फ० XVII, 3, आ० 9,2)। चन्हुदडो की एक मुद्रा छाप विशेष महत्त्व की है। इस पर वर्गाकार मुद्रा की छाप है जिसमे दो नग्न नारिया अकित है जो एक एक हाथ मे ध्वज पकडे खडी है। ध्वजो से पीपल की पत्तिया निकलती दिखायी गयी है। उनका खाली हाथ कटिविन्यस्त है। कला की दृष्टि से नारी आकृति की तुलना कासे की नर्तकी से की जा सकती है।

कुछ मुद्राओ पर मानव एव विभिन्न पशुओ के अगो से मिश्रित आकृतिया है। मुद्राओ पर ऐसी भी आकृतिया बनी है जिनमे बैल के जैसे सीग, मनुष्य के चेहरे और गज के शुण्ड तथा दत है व अग्र भाग मेष का, पृष्ठ भाग बाघ जैसा लगता है (फ० XVI, 5) एक उदाहरण मे एक-शृंगी पशु बकरा तथा छोटे सीग वाले बैल का संयुक्त अंकन है (फ० XVI, 4)। इनमें से यदि हम किन्ही दो सिरों को ढक दे तो एक पशु की पूरी आकृति बन जाती है। शायद ऐसे अभिप्राय का आशय एक साथ तीन भिन्न देवताओं की कृपा प्राप्त करना रहा हो। कुछ मुद्राओं पर विचित्र मानवी चेहरे तथा पशु आकृति का सयुक्तीकरण

है। संयुक्त पशु का अंकन अन्य संस्कृतियो मे भी किया गया है। मैके की धारणा है कि शायद इस तरह की आकृतियो के निर्माण का प्रारंभ भारत मे सबसे पहले हुआ जो स्थल मार्ग से पश्चिम देशो मे पहुंचा। एक अन्य मुद्रा (आ० 10, 5) पर बीच में बिच्छू है दाहिनी ओर एक मनुष्य और बायी ओर एक गैंडा। ऊपर और नीचे दो-दो पशु अंकित है। बिच्छू का अगला भाग ऊपर के पशुओ के सीग और उसकी पूछ, नीचे (बायें ओर के) हाथी की सूंड और दाहिनी ओर के पशु की पूछ बनाती है।

कभी-कभी एक ही पशु के अनेक सिर एक ही धड से संयुक्त भी दिखाये गये है। मोहेंजोदडो की एक मुद्रा पर तीन बाघो के सिर दिखाए गये है जिनके शरीर का मध्य एक दूसरे से गुंथा हुआ बनाया गया है (फ० XVI, 7)। ऐसी एक मुद्रा का खण्डित भाग चन्हुदडो से भी प्राप्त हुआ है। मोहेंजोदडो की एक मुद्रा पर छ पशुओं की गर्दन और सिर एक छल्लेदार अभिप्राय से बाहर निकलते दिखते है। चार सिर जिनकी पहिचान निश्चित है—एक-शृंगी पशु, छोटे सीग वाला बैल, हिरन और बाघ है। शेष दो सिरो मे एक गैंडा और एक हाथी का सा लगता है। लोथल की एक मुद्रा पर बीज बोने का यत्र (seed drill) जैसा अभिप्राय है।

सिधु सभ्यता की मुद्राओ पर कुछ वृक्षो के चित्रण भी मिलते है। एक उदाहरण मे पीपल की शाखा के निचले भाग से एक-शृंगी पशु के दो सिर निकलते दिखाये गये है। पीपल के अतिरिक्त अन्य वृक्षो की पहिचान कठिन है। मैके ने कुछ मुद्राओ पर बबूल और झण्डी के पेड की पहचान की है। कुछ मुद्राओ पर एक एक प्रतीक-यथा स्वास्तिक, छोररहित गाठ, बहुरेखीय क्रूस का चिह्न इत्यादि है। मोहेंजोदडो की एक मुद्रा पर नाव की आकृति उकेर कर बनायी गयी है जिसमे मिलता-जुलता अकन वही के एक मृद्भाण्ड खण्ड (आ० 10, 2) पर भी उपलब्ध है। इसमे मस्तूल का अभाव है तथा पोत वाहक की खण्डित आकृति बनी है। ऐसी नावो का उपयोग नदियो मे साधारण कार्यों के लिए किया जाता था। प्राचीनकाल मे ऐसी नावे अन्य स्थानो पर भी प्रयुक्त होती रही है। प्रारंभिक मिनोअन की मुद्रा, प्राग् राजवश काल मे किश तथा सुमेर की वर्तुलाकार मुद्रा पर इससे मिलती-जुलती नाव का अकन हुआ है।

सेलखडी की मुद्राए किस प्रकार निर्मित की जाती थी उस विधि के बारे मे उनके अध्ययन से कुछ जानकारी मिलती है। सर्वप्रथम आरी से सेलखडी की एक लम्बी पट्टी काटी जाती थी। तत्पश्चात् जिस माप की मुद्रा अभिहित होती थी उसी आकार मे उसे काट दिया जाता था। यदि मुद्रा के पृष्ठ भाग पर घुडी बनानी होती तो उस ओर बीच मे केवल उतना स्थान छोड़ कर, जिसमे घुण्डी

बनती थी, बाकी हिस्से में जितनी मुद्रा की मोटाई रखनी थी वहा तक कटाई की जाती थी। घुण्डी वाले छेद में तागा या तार डाल दिया जाता रहा होगा, इसमें उंगली डाल कर मुहर लगाने में और लगाने के बाद मिट्टी या लाख से मुहर को हटाने में सहूलियत होती थी। सेलखड़ी पत्थर मुलायम होता ही है। बार-बार प्रयोग से रस्सी से घिसने के कारण छेद बडे हो जाते थे और कभी कभी घुंडिया टूट भी जाती थी। अत. मुद्राओ के छेद को बीच मे कुछ गहरा कर दिया जाता था ताकि घुंडी जल्दी न टूटे।

मुद्राओं पर अभिलेख और अन्य चित्रण की रूप-रेखा बनायी जाती थी, इस विषय मे निश्चित प्रमाण उपलब्ध नही है। वैसे इलम और सुमेर मे मुद्रा के अभिप्राय की रूप-रेखा पहले अंकित की जाती थी, तत्पश्चात् उसे उत्कीर्ण किया जाता था। इस कार्य के लिए नुकीले तथा गोलाई लिए, दोनों तरह के उपकरण (बर्मा) का व्यवहार होता था।

कुछ मुद्राए अधूरी छूट गई है जिनसे निर्माण-विधि के बारे मे महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इस सदर्भ मे एक अधूरी मुद्रा का विशेष उल्लेख करना असगत न होगा। मुद्रा को निश्चित आकार देकर इसे तराश भी लिया गया और उसके पृष्ठ भाग की घुण्डी पूरी बनी है, जिसमे छिद्र भी किया गया है। मुद्रा-निर्माता ने पहले पशु की पूरी आकृति का रेखाकन नही किया, अपितु पहले उसके शरीर के मध्य भाग मे बनाना प्रारम्भ किया और वहाँ उसे जितने भी अलकरण दिखाने थे वे सब अंकित कर दिये। फिर शरीर के अन्य भागों की रेखाकृति बनाना शुरू किया। पशु के कधे की हड्डियो का बनाना अपूर्ण रह गया। इस मुद्रा के साक्ष्य से प्रकट होता है कि हडप्पा संस्कृति के कुछ मुद्रा-निर्माता कला मे इतने सिद्धहस्त थे कि वे बिना पूरी रूप-रेखा अंकित किये ही पशु की आकृति का उसके किसी भी अग से बनाना प्रारभ कर, सजीव और आनुपातिक चित्रण कर सकते थे, यद्यपि यह असंभव नही कि रेखाकन स्याही से किया गया रहा हो जो अब नष्ट हो गया है। अक्षरो मे अक्सर अनुपात का अभाव है और इससे ऐसा लगता है कि मुद्रा-निर्माता ने पशु आकृतियो का अकन पहले ही करके मुद्राएं रख ली और बाद मे ग्राहक के किसी मुद्रा को पसंद करने पर उससे सबधित नाम-पद-वाची लेख बाद मे खोदे। बडे नाम होने पर जगह की कमी के कारण अक्षरों को आखिर मे छोटा कर दिया और उन्हे ठीक आनु-पातिक ढंग से नही लिख पाये। मुद्राएं बन जाने के पश्चात् उस पर किसी पदार्थ (शायद क्षार) का लेप चढाया जाता था। तत्पश्चात् मुद्रा को भट्ठी मे पकाया जाता था जिससे उसमे सफेद चमक आ जाती थी और वह कुछ मजबूत भी हो जाती थी।

मुद्रा छापे

मुद्रा-छापें वर्गाकार, आयताकार, तिकोन, वृत्ताकार इत्यादि प्रकार के हैं । छापे मिट्टी, काचली मिट्टी और पेस्ट की बनी है और उन पर मानव, पशु या लेख अंकित है । मुद्राओ की कुछ छापें मृद्‌भाण्डों पर मिली हैं । मोहेंजोदडो से प्राप्त एक आयताकार मुद्रा-छाप, जो पेस्ट से बनी है, अग्रभाग में एक कतार मे 6 मानव आकृतिया है । इनके बारे में निश्चित करना कठिन है कि ये पुरुष है या नारिया । नीचे के हिस्से में झुकी हुई आकृति है जो अपने हाथ मे एक चौडे फलवाली वस्तु पकडे है । उसके आगे एक बकरा है जिसके सामने पीपल का पेड है । मुद्रा के दूसरी ओर भी यह चित्रण था, किंतु यह अब धूमिल हो गया है । मैके के अनुसार इस दृश्य से पुरोहित बकरी को वृक्ष की आत्मा के लिए बलिदान दे रहा है ।

एक अन्य आयताकार मुद्रा-छाप, जो काचली मिट्टी की है, पर मध्य मे एक योगी की मूर्ति है, जिसके दोनो ओर एक-एक भक्त है, जिनके पीछे एक-एक नाग है । मोहेंजोदडो से प्राप्त एक मुद्रा-छाप लगभग 2 9 सेमी लम्बी है और इसके किनारे (sides) लगभग .9 सेमी चौडे है । दो तरफ कुछ लेख है, तीसरी तरफ चार लोग एक कतार मे, प्रत्येक एक ध्वज लिए, है । यहा से प्राप्त एक और मिट्टी की तिकोनी मुद्रा-छाप के एक तरफ एक कतार मे एक हाथी, एक गैंडा, एक बाघ और एक बिल्ली की आकृति सदृश जानवर है, ऊपर की ओर एक मछली और मुह मे मछली लिए एक घडियाल है । दूसरी तरफ एक-एक शृंगी पशु, एक पशु (गाय ?), छोटे सीगो वाला बैल और गैंडा है । इनके ऊपर कुछ जगली चिडिया और घडियाल है । तीसरी तरफ दो बकरे, एक जगली चिड़िया, एक आदमी एक पशु (बकरा ?) को खीचते हुए और एक हिरन जैसा पशु है । एक और मिट्टी की छाप मे एक ओर बाघ और तीन अक्षर, दूसरी ओर एक-शृंगी पशु और तीन अक्षर, और तीसरी ओर छोटे सीग वाला बैल और दो अक्षर है । चूकि इन मुद्रा-छापो के पीछे रस्सी के निशान नही है अत उनका प्रयोग मुहरबद करने के लिए नही किया गया था । मैके का कहना है कि इनका या तो ताबीज की तरह से उपयोग हुआ था या इन्हे पुरोहित लोग भक्तो को प्रसाद के रूप मे बाटते रहे होंगे और उन्हे संभाल कर रखते रहे होगे । लोथल और कालीबगा से प्राप्त मुद्रा-छापें सेलखडी की बनी वर्गाकार या आयताकार मुद्राओ से ली गई है और उनमें से कुछ पर रस्सी के निशान भी है, उनका उपयोग सामान मुहरबद करने के लिए किया गया होगा ।

आरेख 10
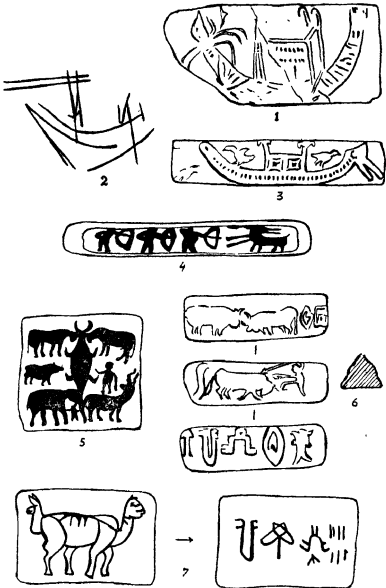
ताम्र-पट्ट

मोहेंजोदड़ो और हड़प्पा से कई ताम्र-पट्ट (copper tablets) (आ० 9, 4-5; 10, 7) मिले हैं जिनका, मैके का कहना है, प्रयोग ताबीज की तरह किया जाता था। ये आकार मे तीन प्रकार के हैं—(1) लम्बे और कम चौड़े, (2) वर्गाकार या लगभग वर्गाकार और (3) आयताकार। शायद लोग उन्हें शरीर पर ताबीज की तरह बाधते थे। जहा मुद्राओ के अभिलेख मुद्रा-स्वामियों के नाम; पद आदि के द्योतक है वहा ताम्र-पट्टों के लेख पशुओ से संबंधित लगते हैं क्योंकि कई ताम्र-पट्टों पर एक तरह के पशु के साथ एक ही तरह के लेख मिलने के उदाहरण मिले है। कई ताम्र-पट्टों पर छोर रहित गांठ के डिजाइन हैं। यह डिजाइन मिस्र मे पवित्र चिह्न समझा जाता था।

मुद्राओ (Dies) के विपरीत ताम्र फलको मे सभी पशु दाहिनी ओर मुंह किये है। चूंकि ये ताम्र फलकों पर खुदे हुए अक्षर और अभिप्राय इतने उथले खुदे है कि इनसे छाप लिये जाने की कोई संभावना नही लगती, अत यही मानना ठीक होगा कि इन पर पशु जिस दिशा मे दिखाया गया है उसे उसी दिशा मे दिखाना अभिप्रेत था।

ऐसा लगता है कि दूकानदार ताम्र-पट्टो को काट कर रखता था और ग्राहक की इच्छानुसार उस पर अभिप्राय और लेख खोद देता था। मैके ने कुछ पर आरी से काटने और कुछ पर सीधे पैने औजार से काटने के निशान पाये।

इन ताम्र-पट्टो को तांबे के सिक्के नही माना जा सकता, यद्यपि कुछ विद्वानो ने इस तरह का सुझाव दिया है। सिंधु सभ्यता के बाट अपनी तौल मे सही होने के लिए विख्यात है और आशा यही की जाती हैं कि यदि वे लोग सिक्को का निर्माण किये होते तो उनके सिक्के भी निर्धारित नाप-तौल के ही होते। एक ही आकार-प्रकार के ताम्र फलको को तौलने पर पाया गया है कि वे किसी खास तौल प्रणाली पर अथवा तौल प्रणालियो पर आधारित नही है। इन्हे तांबे की सिल (ingots) भी नही माना जा सकता क्योंकि इनमे से कोई भी ऐसा नही जिसे हम सिंधु सभ्यता मे प्राप्त किसी और वस्तु के बनाने के लिए उपयुक्त आकार वाला मान सकें।

●

अध्याय 7

मनके

सिंधु सभ्यता में मृद्भाण्ड-निर्माण और मुद्रा-निर्माण के समान ही मनकों का निर्माण भी एक विकसित उद्योग था। सिंधु सभ्यता के सभी स्थलो से मनके मिले हैं किंतु हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो, चन्हुदड़ो और लोथल से तो ये सहस्रों की संख्या मे पाये गये है (आ० 11)। लोग इन मनको को लड़ियों मे गूथ कर कई लड़ियो वाला हार बनाते थे। मृण्मूर्तियो का साक्ष्य इस बात का द्योतक है कि नारिया मनको की माला की बनी मेखला भी पहनती थी। सिंधु सभ्यता के मनको के निर्माण के लिए सेलखड़ी, गोमेद, कार्नीलियन, जैस्पर इत्यादि पत्थरों का प्रयोग हुआ। धातुओ मे सोना, चादी और तावे का प्रयोग मनके निर्माण के लिए विशेष रूप से हुआ। काचली मिट्टी, मिट्टी शख, हाथीदात आदि के भी मनके बने। सिंधु सभ्यता के मनको के आकार-प्रकार मे पर्याप्त विविधता है। आकार-प्रकार की दृष्टि से मनको का निम्नलिखित वर्गीकरण किया गया है—

बेलनाकार मनके—इस तरह के मनके अत्यत लोकप्रिय थे। ये काचली मिट्टी, सेलखड़ी, शख, मिट्टी और कैल्साइट पत्थर के है। सेलखड़ी के कुछ वर्तुलाकार मनको पर सोने की टोपी लगी है।

दतचक्र प्रकार के मनके—इस तरह के मनके पेस्ट के बने है और इन पर ओप (glazing) भी है। इस तरह के मनके साचे से बने है। मेसोपोटामिया मे ऐसे मनको का अभाव है।

छोटे ढोलाकार मनके—ये मनके कासा, ताबा, सोना, चादी, स्फटिक, शख, जेड, सेलखड़ी और चूना-पत्थर के है। स्फटिक और हरिताश्म के मनके बहुत कम है।

लम्बे ढोलाकार मनके—यद्यपि यह अनेक पदार्थों के बने है किंतु काचली मिट्टी, मुलायम पत्थर और चूना-पत्थर के बने मनके सबसे अधिक है। मोहेंजोदड़ो से इस प्रकार का एक गोमेद का भी मनका मिला है। इन मनकों की काट अण्डाकार है। ऐसे आकार के मनके सोने और चादी के भी मिले है। एक शंख का ऐसा मनका एक ओर चपटा है और दूसरी ओर अर्ध-गोलाकार। इस प्रकार के मनके जेम्देत नस्र के उत्खनन मे पाये गये है। दक्षिणी नाल (बलूचिस्तान) के प्रारंभिक मृद्भाण्डों के साथ भी इस तरह के मनके उपलब्ध है। हड़प्पा से कार्नी-

लियन के ऐसे मनके मिले हैं जिनकी तुलना उर, किश और तेल अज्मर के मनकों से की जा सकती है।

आरेख 11

अण्डाकार या अर्धवृत्त काट वाले आयताकार मनके—कुछ आयताकार मनके अण्डाकार या अर्धवृत्ताकार काट वाले बनाये गये हैं। इनमे अण्डाकार काट वाले मनके विशेष लोकप्रिय रहे। यह सेलखड़ी, गोमेद, और हरी काचली मिट्टी के बने है।

खाड़ेदार तिर्यक (fluted tapered) **मनके**—ये पेस्ट के है और साचे से बने है। संभवत ऐसे मनके लटकन की तरह् प्रयुक्त होते रहे होंगे।

लम्बे ढोलाकार जैसे मनके (long barrel cylinder)—ये मनके बडे आकर्षक है और या तो लाल का कर्नीलियन या मिट्टी के है। मिट्टी के मनके आकार मे कर्नीलियन मनको की प्रतिलिपि है और इन्हे समाज के आर्थिक दृष्टि से निम्न वर्ग के लोग पहनते रहे होंगे। इस प्रकार के मनके मेसोपोटामिया में मिले है पर वहा उनकी सख्या अधिक नही, जबकि हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो मे ये भारी संख्या मे उपलब्ध हुए है। कुछ विद्वानो के विचार से इनका निर्माण सिंधु सभ्यता मे हुआ और वहा से ये मेसोपोटामिया पहुचे।

बिम्ब (disc) **मनके** (आ० 11, 1, 10) इस तरह के मनके काचली मिट्टी, मिट्टी और शख के है और इनकी सख्या अपेक्षाकृत कम है।

गोल (globular) **मनके**—ऐसे मनके छोटे तथा बडे दोनों आकार के मिले है। छोटे मनके कई पदार्थों से निर्मित है। कुछ ऐसे छोटे-छोटे सोने के मनके मोहेंजोदड़ो के दो आभूषण निधानों में भी पाये गये। बडे मनके विभिन्न धातुओ के बने है। इन्हे साचे से या पीट कर बनाया गया है। ऐसे एक ओपदार मनके का विश्लेषण भी डा० हामिद ने किया है। उनके अनुसार इस तरह के मनको मे उन्हे चमकाने के लिए किसी पदार्थ को अलग से मिलाया नही गया। ओप के लिए पालिश ही काफी थी।

रेखाकित मनके (आ० 11, 1-3) ऐसे मनके उर, किश और तेल अज्मर से मिले है। लेकिन चन्हुदडो तथा मोहेजोदड़ो के जो उदाहरण है वे अधिक सुधरे लगते है। हड़प्पा से एक हृदयाकार मनका मिला है। मोहेंजोदड़ो के रेखाकित मनके तीन तरह के है। कुछ मे लाल भूमि पर सफेद, कुछ में सफेद भूमि पर काली और कुछ पर लाल भूमि पर काली डिजाइन है। चन्हुदड़ो से पहले दो प्रकार के मनके मिले हैं।

खण्डशः विभक्त (segmented) **मनके** (आ० 11, 8) इस तरह के मनको का निर्माण केवल कांचली मिट्टी से हुआ है। इन पर किसी तरह ओप के चिह्न नही हैं। मेसोपोटामिया मे प्राग् सारगन काल तथा मिस्र में बाद के काल मे ऐसे मनके बहुत लोकप्रिय थे। वहा के इस तरह के मनकों पर तरह-

तरह के रंगों की परत चढाकर चमकाया गया था। प्रारंभिक मिनिओन II में पत्थर के इस तरह के मनके बनते थे। मार्शल के अनुसार मोहेंजोदड़ो में इस तरह के काचली मिट्टी के बने मनके अन्तिम प्रकाल मे पाये गये हैं।

काचली मिट्टी के खंडशः विभक्त मनके टेलब्राक (उत्तरी सीरिया) में जमदेत नस्र काल (लगभग 3000 ई पू.) मे मिले हैं। क्रीट मे ये मध्य मिनिओन तृतीय और मिस्र के अठारहवी राजवंश के काल तक पाये गये है। पी डी. रिशी (Ritchie) ने एक हड़प्पा और एक वनौसौस के मनके का वर्णक्रमलेखी (spectrographic) विश्लेषण से पता किया कि इन दोनो के निर्माण-पदार्थ मे पूर्ण समानता है। कुछ विद्वानो का कहना है कि ये लगभग 1600 ई. पू. मे एक ही स्थल मे निर्मित हुए किंतु यह तिथि सिंधु सभ्यता की हड़प्पा स्थल की तिथि से मेल नही खाती। यह भी निश्चय करना कठिन है कि निर्माण स्थल कौन था।

उपर्युक्त प्रकारो के अतिरिक्त कुछ और आकार-प्रकार के मनके भी मिले है। उदाहरणार्थ हड़प्पा मे सेलखड़ी के दात की शक्ल के, कुछ सीढ़ीनुमा, कुछ सलीबनुमा मनके भी मिले है।

चन्हुदडो और लोथल मे मनका बनाने वालो के कार्यस्थल (फैक्ट्री) उद्-घाटित हुए है। इन स्थानो पर कई अधूरे बने मनके मिले। इनका अध्ययन कर साधारण पत्थर के टुकडे से लेकर पूरी तरह बने मनके तक के विभिन्न चरणो का ज्ञान हुआ। लम्बे कार्नीलियन के मनके के बनाने की विधि निम्नलिखित थी— पहले पत्थर की लगभग 7.62 सेमी लबी वर्गाकार तीलिया बनाते थे। इस तरह की आकृति देने के लिए पत्थर को काटने मे ताबे की आरी और क्वार्ट्ज पत्थर के चूरे का प्रयोग किया गया होगा। फिर इन टुकड़ों को तराश कर इच्छित आकार दिया जाता था और उसे पत्थर पर घिस कर सपाट कर दिया जाता था और उस चमका भी दिया जाता था। इन मनको पर तागे डालने के लिए छेद दोनो ओर से किया जाता था। कुछ मनको मे यह छेद साधा नही हो पाया और इसलिए दोनो ओर मे मध्य की ओर उकेर कर दोनो तरफ से किये छेदो को मिला दिया जाता था। छेद करने के बाद छेद वाले भाग को पालिश भी कर दिया जाता था। छेद करने के लिए पत्थर या ताबे की बेधनी का प्रयोग किया गया। पत्थर की बेधनी की नोक पर छोटा प्यालानुमा बना था जिसमे अपघर्षक और पानी अटक सके। निश्चय ही अपघर्षक की सहायता से छेद करने मे आसानी रही होगी। चन्हुदडो मे इस तरह के पत्थर की बेधनिया मिली हैं। पिगट के अनुसार परीक्षणो से ज्ञात होता है कि कार्नीलियन के एक 7 65 सेमी के मनके पर छेद करने मे मनके बनाने वाले को लगभग 24 घंटे लग जाते रहे

होंगे और स्वाभाविक है कि ऐसे मनके काफी कीमती होंगे। लोथल के समीप ही स्थित कैम्बे में आज भी मनके बनाने का कार्य बडे पैमाने पर होता है। शि. रंगनाथ राव का मत है कि वहा पर मनके बनाने की परंपरा सिंधु काल से अक्षुण्ण चली आ रही है और उस समय के लोगो की मनका बनाने की तकनीक आजकल की तकनीक से अधिक भिन्न नही रही होगी।

सेलखडी के मनके सिंधु सभ्यता मे जितने मिले है उतने विश्व की किसी भी संस्कृति में नही मिले। मनको के निर्माण के लिए सेलखड़ी का प्रयोग दो तरह से किया गया है—या तो सेलखड़ी पत्थर से सीधे ही मनके बनाये गये हैं या फिर उसके चूरे से पेस्ट बना कर। सेलखडी के पेस्ट से बने अत्यंत छोटे मनकों को तो कासे की नली से उस पर दबाव डाल कर बनाया गया है। सेलखड़ी के पेस्ट से बने मनको में से कुछ ढोलाकार या उत्तल द्विकोण (कन्वेक्स बाइकोन) मनको पर तिपतिया अलकरण है। पहले यह अलंकरण काट कर बनाया गया, फिर बाकी पृष्ठभूमि को भी काट दिया गया और इस तरह गहरे किये गये स्थान मे लाल या काला रग भर दिया गया। इस तरह तिपतिया डिजाइन लाल या सफेद रंग की पृष्ठभूमि में उभर आता है और रेखाकित कार्नीलियन के मनकों पर अकित डिजाइन की तरह दिखता है। कुछ मनकों पर लाल रग बिना पृष्ठभूमि को काटे भी लगाया गया है।

कार्नीलियन के रेखाकित मनके तीन तरह के हैं—लाल पृष्ठभूमि पर सफेद रग के डिजाइन वाले और सफेद पृष्ठभूमि पर काले रंग के डिजाइन वाले और लाल पृष्ठभूमि पर काले डिजाइन वाले। प्रथम प्रकार के मनको पर डिजाइन तेजाब (एच. सी बेक के अनुसार सोडा कार्बोनेट) से अंकित किया जाता था और फिर मनके को काफी ताप पर गरम किया जाता था जिससे तेजाब ठीक तरह कार्नीलियन के भीतर पैठ जाता था और स्थायी रूप से सफेद रेखाएं अंकित हो जाती थी। इस प्रकार आख की डिजाइन वाले मनके, अग्रेजी के '8' अंक के समान डिजाइन वाले मनके और ऋजुरेखीय हीराकार मनके उर, किश, टेल अज्मर (सारगान काल) मे प्राप्त मनको के समान है और एक ही स्रोत से इन स्थलों मे लाये गये लगते हैं। दूसरे प्रकार के मनकों में पहले सारे मनके पर तेजाब लगाया जाता था जिसमे सफेद सतह बन जाती थी। इस सफेद सतह पर काले रग से डिजाइन बनाया जाता था। इस तरह के मनके मेसोपोटामिया मे भी मिले हैं। रेखाकित कार्नीलियन के मनके मोहेंजोदड़ो मे कम प्राप्त हुए। हड़प्पा मे मोहेंजोदड़ो की अपेक्षा अधिक संख्या मे मिले है। राव के अनुसार लोथल की खोदाइयो मे ऐसे मनके काफी संख्या मे मिले हैं। एच. सी. बेक के मतानुसार ऐसे मनके बनाने की तकनीक इतनी क्लिष्ट है कि दोनों संस्कृतियो मे इनके

स्वतंत्र रूप से बनाये जाने की संभावना नही दिखती । राव तो ऐसे मनकों का स्रोत लोथल मानते है । राव का मत कि रेखांकित मनके सबसे पहले लोथल में बने और अन्यत्र लोगों ने इस तरह के मनके बनाने का ज्ञान लोथल से ही प्राप्त किया सही नही लगता, मोहेंजोदड़ो मे प्रारंभिक चरण से ही इस तरह के मनके मिलते है और इनकी तिथि लोथल से बाद की नही मानी जा सकती ।

रेखांकित मनके, लम्बे ढोलाकार कार्नीलियन के मनके, सेलखड़ी के पकाए गए छोटे मनके, सीढ़ीदार मनके, और मनको पर तिपतिया डिजाइन सिंधु सभ्यता और मेसोपोटामिया की संस्कृतियो के बीच सपर्क के द्योतक लगते है । यह भी ध्यान देने योग्य है कि (1) सेलखड़ी के मनके सिंधु सभ्यता मे तो पर्याप्त सख्या मे मिलते है किंतु मेसोपोटामिया मे अत्यल्प संख्या मे, (2) सेलखड़ी के मनको पर चित्रण सिंधु सभ्यता मे मिलता है पर मेसोपटामिया के मनकों पर नही, (3) कुछ आकार-प्रकार सिंधु सभ्यता में मिलते है, मेसोपोटामिया मे नही और कुछ मेसोपोटामिया के प्रकार सिंधु सभ्यता मे नही मिलते ।

●

अध्याय 8

मृद्भाण्ड

सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्ड अपनी विशिष्टता लिए है और इसके भाण्डो के कई मुख्य प्रकार अन्यत्र सस्कृतियो मे अनुपलब्ध है। ये व्यावसायिक पैमाने पर उपयोगितावाद के दृष्टिकोण से निर्मित किये गये थे। उस सभ्यता के बर्तन अधिकतर चाक पर ही बने है। चाक लकड़ी के रहे होगे जो नष्ट-से हो गये है। हाथ से बनाये बर्तन भी मिले है, किंतु चाक पर निर्मित बर्तनो की अपेक्षा इनकी संख्या बहुत कम है और ये मुख्य रूप-से निम्न स्तरो से उपलब्ध हुए है। बर्तनों के निर्माण मे अतिम चरण में ह्रास के लक्षण दिखते है। आजकल की प्रथा को ध्यान मे रखते हुए ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि बर्तन पुरुषो ने बनाये होगे और उन पर चित्रण आदि स्त्रियो ने किया होगा। मृद्भाण्डो के निर्माण के लिए मिट्टी नदी से लायी गयी थी। उसमें अभ्रक और बालू भी मिली है। भाण्डो को भट्टो मे भलीभाति पकाया गया था।

मोहेंजोदडो के अन्तिम चरण में, जब सभ्यता ह्रासोन्मुखी थी, नगर मे भट्ठे भी पाये गये है। विकसित युग मे भट्ठे नगर से बाहर रहे होगे। ये उपलब्ध भट्ठे वृत्ताकार है और इनका व्यास 1 8 मीटर से 2 74 मीटर है। इनमे नीचे कोयला रखने के लिए गड्ढा था और उसके ऊपर बर्तन रखने के लिए गुम्बद की तरह आकार बना था। इस तरह के भट्ठे पश्चिमी एशिया की प्राचीन सस्कृतियों मे भी मिले है। बर्तनों का ठीक तरह पका होना इस बात का द्योतक है कि आच भली-भाति नियंत्रित थी। लेकिन आजकल की भाति बिना भट्ठे के भी खुले मे भाण्ड पकाए जाते रहे होगे।

कुल्हड के पेंदे गोल और कुछ नुकीले है और उनके नीचे का भाग ऊपरी भाग की अपेक्षा कम सावधानी से बना है। बड़े घड़े दो तीन भागो मे बनाये गए थे और गीले मे ही उन्हे काफी सफाई से जोड़ दिया गया था और साधारण जोड नही दिखते है। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि सिंधु सभ्यता के बर्तनो में गोलाई अधिक है और सीधे कोने कम।

साधारणत. सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्ड भली-भाति तैयार की गई मिट्टी से बने है। अधिकाश मृद्भाण्ड बिना चित्रण वाले है। उन पर हलका दूधिया रग का लेप मिलता है, कुछ उदाहरणो में, लेप का रंग पीलापन लिए या सफेदी

लिए है, और अत्यल्प उदाहरण गुलाबी लेप के भी हैं। चित्रित बर्तनों (फ० XIX, 1, 2, 4, 5, XX, 1, 3) की संख्या अपेक्षाकृत कम है और इनमें से अधिकाश खंडित मिले है। चित्रित बर्तनो की सख्या निचले स्तरों में ऊपरी स्तरों की अपेक्षा अधिक है। चित्रित तथा सादे दोनों ही मृद्भाण्ड एक ही तरह की मिट्टी से बने है। यह रोचक तथ्य है कि सर लियोनार्ड वूली ने मोहेजोदड़ो मे पुनरुत्खनन न किये जाने की सलाह मुख्यत: इस आधार पर दी कि यहा पर मेसोपोटामिया की तरह विशाल संख्या मे चित्रित मृद्भाण्ड नही मिलते। साधारणतया चित्रित बर्तनो पर लाल लेप लगा है। लेप लगाने का उद्देश्य सुन्दरता के अतिरिक्त बर्तन को जलाभेद्य बनाना भी था। कहीं पर तो लेप से बर्तन इतना चिकना बना दिया गया कि एक विद्वान् का सुझाव है कि इसमें चूहों से भी सुरक्षा हो सकती थी, क्योकि चूहे ऐसे भाण्डो पर फिसल जाते रहे होगे और उसके मुंह तक नही पहुंच पाते रहे होंगे।

दुधिया, गुलाबी और लाल सभी, रंगो के लेप के लिए रंगीन प्राकृतिक मिट्टी ही प्रयुक्त लगती है। लेप को, विशेषत गाढे लाल रंग को, पालिश कर चमकाया गया है। अक्सर गाढा लेप पूरे बर्तन पर नही लगाया गया और लेप वाले भाग पर ही चित्रकारी की गई है, बाकी भाग सादा छोड दिया गया है।

चित्रण साधारणतया काले रग से किया जाता था जो मेग्निफेरस हाइमेटाइट से तैयार किया जाता था। लाल लेप पर काले रग से चित्रण की विद्या की दृष्टि से उत्तरी बलूचिस्तान के रानाघुंडई-तृतीय चरण से प्रेरित लगते है किंतु जहा तक अभिप्रायो और डिजाइनो का प्रश्न है इनमें उत्तरी बलूचिस्तान का प्रभाव नगण्य है। कुछ अर्थो मे दक्षिणी बलूचिस्तान की कुल्ली शैली का भी कुछ प्रभाव दिखता है। आकार प्रकार के समान चित्रण विद्या मे भी सिंधु सभ्यता भाण्डो की अपनी अलग विशिष्टता है।

चित्रित बर्तनो के ऐसे बहुत कम उदाहरण (फ० XIX, 1) है जिनका सम्पूर्ण वाह्य भाग चित्रित किया गया हो। साधारणतया चित्रित मृद्भाण्ड के लगभग तीन चौथाई या उससे भी कम हिस्सो पर चित्रकारी की गई है। छोटे आकार के मृद्भाण्डो के मध्य मे काले रंग से केवल धारी या धारिया बना दी गई है। अधिकाश मृद्भाण्डो मे चित्रण काले रंग से किया गया है। चित्रित अभिप्रायो मे विविधता है और अधिकाश डिजाइन परंपरागत शैली मे है। काले रग की आड़ी धारिया सबसे अधिक मिलती है (आ० 12, 17) कुछ धारियां मोटी और कुछ पतली हैं। साधारणतया चित्रण के लिए बर्तन को कुछ खण्डों में बाट लेते थे और फिर उन्हे खडे और पडे खण्डों मे विभाजित करते थे। अभिप्रायों में प्रतिच्छेदी वृत्त विशेष उल्लेखनीय है। यह अभिप्राय एलम ओर सुमेर

के मृद्भाण्डों पर तो नहीं मिलता, लेकिन सिंधु और बलूचिस्तान के प्राग् हड़प्पा संस्कृतियों में ऐसे चित्रण के अत्यल्प उदाहरण मिलते है। तिकोन (आ० 14, 3) शंकु, चेक डिजाइन (आ० 14, 6), जाली (आ० 15, 1), मनकों का बार्डर (आ० 14, 13), अर्धचन्द्र, अंदर की ओर मुडे तिकोन, सीढीदार तिकोन, वृक्क के आकार का डिजाइन (आ० 13, 10), लहरदार रेखाएं (आ० 14, 5), लटकन (आ० 13, 8), मत्स्य शल्क (आ० 13, 1, 2) आदि उल्लेखनीय है। कितने ही अभिप्रायों पर छाया की गई है।

कई बर्तनों पर बनस्पति (फ० XIX, 4, 5; XX, 1, 3, आ० 14, 7, 8, 9) चित्रित है। अधिकांशतया वनस्पति का चित्रण पारम्परिक शैली में है और उनकी पहिचान करना कठिन है किंतु पीपल (आ० 14, 9), ताड़, नीम, केला, और बाजरा पहचाने जा सकते है। फूल का सा अलंकरण कुछ मृत्पात्रो पर है और कुछ पर सूरज की तरह का अभिप्राय है।

मछली का चित्रण भी कुछ भाण्ड खण्डो पर है (आ० 15, 6) पक्षियो में मोर की आकृति कुछ बर्तनों पर मिलती है (आ० 15, 5)। अग्रेजी अक्षर 'वी' (V) की आकृति का डिजाइन पक्षी का द्योतक लगता है। पशुओं की आकृतियो का अकन अधिक नही है, जो है भी वे स्वाभाविक नही है। कुछ मृद्भाण्ड खण्डो पर बडे सीग वाला बकरा और हिरण है (आ० 13, 7, 8) पशुओं के साथ वनस्पति का भी चित्रण है। मोहेंजोदड़ो के एक उदाहरण मे कनखजूरे का-सा चित्रण मिलता है। कुछ उदाहरणों में पक्षी वृक्ष की शाखा पर बैठे और कुछ पर उसके समीप दिखलाये गये है (फ० XX, 1) कुछ थोडे से उदाहरणो मे सर्प का अंकन है। सिंधु सभ्यता के मृद्भाडों पर पशु-पक्षियों के चित्रण मे कुल्ली शैली से निकटता पाते है जिसमे शरीर की रूप-रेखा मोटी रेखाओं से दिखाकर भीतर भाग मे आडे-तिरछे छाया की गयी है। यद्यपि बाकी बातो मे दोनों में पर्याप्त भेद भी है। केवल एक मृद्भाण्ड पर पशुओं को एक पंक्ति में दिखाया गया है। इस तरह से अलकरण करने की विद्या एलम और सुमेर में विशेष रूप से लोकप्रिय थी। वैसे इस बर्तन का आकार और निर्माण मे प्रयुक्त मिट्टी अन्य भाण्डों से भिन्न लगते हैं। मृद्भाण्डो के खण्डो पर मानव आकृतियों के भी चित्रण है, किंतु इनकी संख्या अत्यल्प है ओर जो है भी वे अपेक्षाकृत भोडे है। जाने क्यो मुद्राओ पर भी, जिनमें जानवरो का स्वाभाविक चित्रण मिलता है, मानव आकृतिया सुन्दर नही बन पडी है। हड़प्पा से प्राप्त एक ही भाण्ड के तीन टुकडो पर अलग-अलग तीन दृश्यों का अंकन है। एक फलक (आ० 15, 2) में वृक्ष की शाखा दिखायी गयी है। दूसरे में एक हिरनी बच्चे को दूध पिला रही है। हिरनी से ऊपर वाले भाग मे दो पक्षी और

एक मछली है। इस दृश्य के बाद एक चेकर डिजाइन है। उसके बाद एक और दृश्य जिसमें एक हाथ उठाये और दूसरे हाथ से सिर को छूता हुआ एक मनुष्य, दोनो हाथ उठाये एक बालक, दो मछली और एक मुर्गा दिखाया गया है। तीसरे में एक तरफ पेड, मानव हाथ सिर और शायद नागफण, और दूसरी ओर एक पेड की शाखाए दिखायी गयी है। हड़प्पा से ही प्राप्त एक मृद्भाण्ड खण्ड पर एक मछुआ (आ० 15, 1) अकित है जो अपने कधे पर रखी बहगी में दो जाल लिये हुए है। उसके पैरो की सीध मे एक मछली और एक कछुआ भी दिखाया गया है। कुछ बर्तनो पर लेप को कंघी जैसी किसी वस्तु से हटाकर उसके नीचे के गहरे रग के धरातल को दिखाया गया है। उर और टेलअज्मर मे प्रारम्भिक राजवश काल मे इस तरह की विद्या प्रचलित थी।

सिधु सभ्यता के कुछ बर्तनो पर ठप्पे भी मिलते है, मोहेंजोदडो मे तो ठप्पे लगे बर्तन बहुत कम संख्या मे मिले है किंतु हडप्पा मे इस तरह के बर्तन काफी सख्या मे मिले है।[1] अधिकाश ठप्पो पर सिंधु लिपि के चिह्न मिलते है जो शायद कुम्हारो के अथवा उनके फर्मो के नाम है। कुछ पर ग्रैफिटी के चिह्न भी है। उत्कीर्ण अलकरण वाले बर्तन बहुत कम है और इस तरह का अलकरण गहरे बर्तन और साधारण तश्तरी पर ही मिलते है। कुछ पर प्रतिच्छेदी वृत्त का का अभिप्राय अकित है जो कभी नाखून से और कभी सरकडे से बनाया गया है। मोहेंजोदड़ो के एक बर्तन पर नाव का चित्र खुदा है। कालीबगा के कुछ बर्तनो पर सिधु लिपि के अक्षर खुदे है।

यह एक विचित्र सी बात है कि ये लोग लाल रग का प्रयोग लेप के लिये तो खूब करते थे किंतु चित्रकारी के लिए उन्होने इसका प्रयोग बहुत कम किया है। सिंधु सभ्यता मे बहुरगी चित्रण वाले भाण्ड बहुत कम मिले है और जो है वे आकार मे अपेक्षाकृत छोटे है। मोहेंजोदड़ो मे जो थोडे से बहुरगी भाण्ड है उन पर लाल और हरे रंग से पाण्डु सतह पर चित्र बनाये गये है। पीले रग का प्रयोग बहुत कम हुआ है। चन्हुदडो से प्राप्त कुछ भाण्डो पर काला सफेद और लाल रग से पीले (?) सतह पर चित्रण हुआ है, और पशु पक्षी चित्रित किये गए है। बहुरगी बर्तनो पर रंग कुछ धुधले है और लगता है कि इन पर रग पकाने के बाद ही किया गया होगा। चित्रण के लिये काले और लाल रग का प्रयोग तो कई प्राचीन सस्कृतियो मे मिलता है किंतु बहुरगी चित्रण वाले बर्तन

---

1. चंडीगढ से मिले एक सिंधु सभ्यता के पात्र पर भी ठप्पा मिला है। इस पर भी सिंधु सभ्यता के लिपि के चिह्न है।

बहुत कम मिलते हैं; केवल नाल (बलूचिस्तान) के कब्रिस्तान में ही बहुरंगी चित्रण वाले बर्तन काफी संख्या में मिले हैं। कुछ विद्वानो का मत है कि सिंधु सभ्यता के बहुरंगी चित्रण वाले बर्तन नाल संस्कृति के सम्पर्क का फल है। यह कहना कठिन है कि इनका निर्माण नाल की भाति शवों के साथ गाडने के लिए किया गया था, क्योकि इस तरह का कोई साक्ष्य सिंधु सस्कृति में नही मिला है।

सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्डों में आकार प्राकार को दृष्टि से पर्याप्त विविधता है (आ० 12)। इस सभ्यता के प्रायः सभी स्थलों से साधार तश्तरिया पायी गयी है (फ० XIX, 4, (2); आ० 12, 1)। इस तरह के बर्तन का ऊपरी भाग एक तश्तरी या प्याले जैसा तथा निचला भाग उलटी तुरही के समान है। कुछ का आधार लम्बा है और कुछ का छोटा। ये हडप्पा तथा मोहेजोदडो मे सभी स्तरो मे मिलती है। साधार तश्तरिया तत्कालीन कुछ अन्य संस्कृतियो एलम, सुमेर क्रीट और मिस्र में भी प्रचलित थी। मेसोपोटामिया मे तो कब्र मे यह विशेषरूप से अन्य सामग्री के साथ मिलता है और भारत मे ही सिंधु सभ्यता से इतर ताम्राश्म सस्कृतियो मे भी इस तरह के पात्रो से मिलती जुलती आकृति वाले बर्तनो के उदाहरण पाये गये हैं। सुमेर के कुम्हारों की भाति ही सिंधु सभ्यता के कुम्हार पहले इस बर्तन के दोनो भागो (तश्तरी) और उसका आधार) को अलग अलग बनाते थे और फिर उन्हे जोडकर एक बर्तन का रूप दे देते थे। किंतु सिंधु सभ्यता के भाण्ड का यह प्रकार उसकी मिट्टी, आकृति और पकाने की विधि कुछ इस तरह की है कि उपर्युक्त इतर संस्कृतियो के बर्तनो से इन्हे अलग ही पहचाना जा सकता है। कुछ विद्वानो के अनुसार झोब घाटी के रानाघुडई द्वितीय काल से प्राप्त आधार युक्त कटोरे ही मूलत सिंधु सभ्यता के इस प्रकार के भाण्डो के प्रेरणास्रोत रहे होंगे। सम्भवत लोग इस पर भोज्य सामग्री रखकर स्वय चौकी पर बैठकर भोजन करते रहे होंगे, ताकि भोजन करते समय झुकना न पडे। निश्चय ही यह उच्च वर्ग के लोगों की रुचि का द्योतक है। कब्रो में भी शव के साथ इस तरह का बर्तन मिलता है और यह यह भी सम्भव है कि इसका प्रयोग धार्मिक अनुष्ठान के संदर्भ मे किया जाता रहा हो।

मटकों के हत्थेदार प्याले जैसे ढक्कन मिले है, लगभग उसी तरह के जैसे कि जम्देत नस्र मे भी पाये गये हैं जो कालक्रम की दृष्टि से सुमेर के प्रारम्भिक राजवश युग के ठहरते है। हत्थेदार मृद्भाण्डो के उदाहरण हडप्पा तथा मोहे-जोदडो, दोनो से कम ही प्राप्त हुए है। केवल बच्चो को दूध और अन्य तरल पदार्थ पिलाने के लिए प्रयुक्त प्यालों में ही हत्थे मिले है। हत्थेदार मृद्भाण्ड मेसोपोटामिया मे काफी पहले से लोकप्रिय थे। सिंधु सभ्यता में टोटीदार बर्तन

भी बहुत कम उपलब्ध है। बड़े घड़े भी मिले हैं जिनमें अन्न या जल संग्रहीत
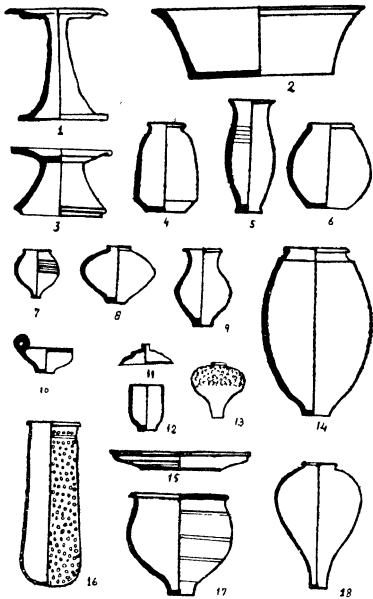
आरेख 12

किया जाता रहा होगा। कुछ घडों का प्रयोग शव की अस्थियों के विर्सजन के लिए भी होता था। कुछ छोटे मुख वाले काले रंग के मर्तबान भी है। कुछ बर्तनों के सिरे पर छिद्र हैं जिसमें रस्सी डालकर शायद बर्तनों को लटकाया जाता रहा होगा। शायद ढक्कन को भी इन छेदों मे रस्सो डालकर ठीक तरह कसा जाता रहा होगा। थालियों में मुख्य रूप से खाना परोसा जाता रहा होगा। नाद की तरह बर्तनो में पर्याप्त विविधता है। घडों और अन्य बर्तनों के ढक्कन भी पर्याप्त संख्या मे पाये गये हैं (आ० 12, 14, 17)।

कुछ मृत्पात्रों के बाहर उस तरह के छोटे-छोटे दानों के उभार हैं जैसे कटहल के फल पर होते है (आ० 12, 13), तेल अस्मार की खोदाई से प्राप्त इसी तरह के अलकरण वाले बर्तन सिधु सभ्यता के समकालीन है, और भारत से आयातित लगते हैं। लम्बे और बेलनाकार आकृति के कुछ बर्तन ऐसे भी पाये गये है जिन पर अनेक छेद है (फ० XX, 2, आ० 12, 16) छेदो का आकार बर्तनो के आकार के अनुपात मे भिन्नता लिये हैं जो गीले बर्तन पर ही लकडी से बनाये गये है। ये आकार मे लगभग पौने चार सेमी से लगभग 50 800 सेमी तक बडे है। कुछ छिद्रित बर्तनो पर दूधिया लेप है। आरेल स्टाइन को बलूचिस्तान से भी एक ऐसा ही मृद्भाण्ड उपलब्ध हुआ जिसके अन्दर राख थी। हो सकता है कि इनका उपयोग सिगडी के रूप मे किया जाता रहा हो। लेकिन साधारणत ऐसे बर्तनो पर आग जलाने के निशान नही हैं। बेबीलोनिया मे भी छिद्रित बर्तन अति प्राचीन काल से मिलते हैं, यद्यपि वे आकार मे सिंधु सभ्यता के छिद्रित बर्तनो से भिन्न है। बेबीलोनिया के इन भाण्डो का दूध छानने के लिए प्रयुक्त होना सुझाया गया है। कुछ विद्वान् इन बर्तनो की पहिचान ऋग्वेद मे उल्लिखित शतधार कलश[1] के रूप मे करते है।

कुछ चचुक (बीकर) की आकृति के बर्तन मिले हैं। ये अपेक्षाकृत पतले हैं। इन्हे भली-भाति तैयार की गई मिट्टी से बनाया गया है और अधिकाशतया बिना लेप के है, जिन पर लेप है भी वह सावधानी से नही लगाया गया है। ये ज्यादातर मध्य एव बाद के काल मे ही मिले हैं, मुख्यतया मध्यकाल मे।

हडप्पा संस्कृति के छोटे मृद्भाण्ड सुन्दर बन पडे हैं। कुछ भाण्डों की ऊंचाई तो केवल आधा इच ही है। यह मिट्टी अथवा काचली मिट्टी के बने है।

---

1 शतधारं उत्स, ऋग्वेद 9-206-9 शतधारकलश का उल्लेख वैदिक साहित्य मे सोमरस के निर्माण के सदर्भ में आया है इससे छन-छन कर सोमरस निकाला जाता था।

इनमें सम्भवतः इत्र तथा प्रसाधन की अन्य कोई बहुमूल्य सामग्री रखी जाती थी । एक प्रकार के कटोरे मिले हैं जिनके पेंदे में अन्दर की ओर घुंडी है । इस तरह

आरेख 13
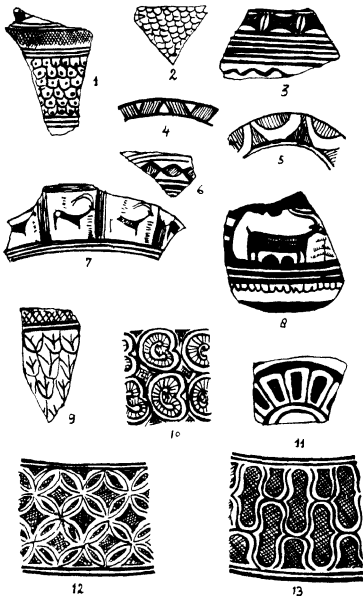
के कटोरे मेसोपोटामिया मे जमदेत नस्र काल में तथा अन्य संस्कृतियों में भी पाये गये है।

ऐसे बर्तन भी मिले है जिन पर विभिन्न सामग्री रखने के लिए अलग-अलग खाने है। आज भी इस तरह अलग-अलग खाने वाली थालियों का प्रचलन है। कुछ कुल्हड के तरह के पानपात्र मिले है। इनका पेंदा नुकीला है और ये सम्भवतः उलटे रखे जाते थे। इनका प्रयोग कुल्हड की तरह पानी पीने के लिए होता रहा होगा। यह भी सभावना व्यक्त की गई है कि इनका उपयोग रहट की भाति कुओ से पानी निकालने के लिए होता रहा होगा। किंतु इनका अपेक्षाकृत छोटा आकार इस कार्य के लिए उपयुक्त नही लगता और साथ ही उत्खनन मे जिस सदर्भ मे ये अधिकाशत मिले है उससे कही-कही तो प्याऊ जैसे स्थलों मे पानी पिलाने के लिए इनका उपयोग होना लगता है। इनमे कुछ पर ठप्पे भी मिलते है जो सम्भवत. कुभकारो के अथवा उनकी फर्म के नाम हो सकते है। वास्तव मे यह एक मात्र बर्तनो का प्रकार है जिस पर ठप्पे है। हडप्पा के दस ऐसे बर्तनो पर एक ही तरह के लेख वाले ठप्पे मिले है। हडप्पा और मोहेजोदडो मे ऐसे बर्तन ऊपरी स्तरो मे मिलते है। सौराष्ट्र के कुछ स्थलो से हडप्पा सस्कृति के सदर्भ मे इस तरह का बर्तन नही मिलता। थालीनुमा बर्तन भी मिले है (आ० 12, 15)। सम्भवत इनका प्रयोग भोजन परोसने के लिये किया जाता रहा होगा। ये थालिया काफी मोटी, उथली और एकदम सादी है। गीली मिट्टी से पशु अथवा मानवाकृति बनाकर गीली अवस्था मे ही बर्तनो पर जोडने का चलन नही था। केवल एक ही उदाहरण अपवाद स्वरूप उपलब्ध है जिस पर एक बैठे भेप की आकृति है। यह भाण्ड मसिपात्र-सा लगता है। समकालीन मेसोपोटामिया के बर्तनो पर विभिन्न पशुओं की आकृति बनाने का काफी चलन था।

धूसर रग की मिट्टी से बने बर्तनो की सख्या बहुत थोडी है। इन पर काला लेप है और इनमे से कई पर पालिश किये जाने से चमक है। मेसोपोटामिया की प्राचीन सस्कृति के सदर्भ मे भी इस तरह के बर्तन मिले है, पर वे तिथि की दृष्टि से सिधु सभ्यता से पहले के है। गुलाबी रग के पतले मृद्भाण्ड बहुत थोडे से है। ये हडप्पा सस्कृति के बर्तनो से भिन्न आकृति के है और शायद बाहर से लाये गये थे।

यहा पर सिधु सभ्यता के कुछ स्थलों के मृद्भाण्डों की विशेषताओ का उल्लेख समीचीन होगा। रोपड की खोदाई से हडप्पा और मोहेजोदडो के बर्तनों के समान ही साधार तश्तरिया, चंचुक (बीकर), चपटी थाली, उथले नाद और छिद्रित बर्तन उपलब्ध हुए है। पानपात्र बहुत कम सख्या मे मिले है और ऊपरी सतहों में तो यह बिल्कुल ही नही मिले।

आलमगीरपुर के बर्तनों में कोई विशेष बात नहीं दिखती। कुछ मिट्टी की बड़ी थालिया मिली हैं जिनके पेंदे छल्लेदार हैं। डा० यज्ञदत्त शर्मा के अनुसार,

आरेख 14

जिनके निर्देशन में यहा पर उत्खनन हुआ, इनका प्रयोग आटा सानने के लिए होता था। यहा चचुक (बीकर) तथा छिद्रित बर्तन भी अत्यल्प संख्या मे है

आरेख 15

और अंग्रेजी 'एस' ('S') अक्षर की आकृति के बर्तन, जो हड़प्पा मोहेंजोदड़ो में पर्याप्त संख्या मे मिलते हैं और जिन पर चित्रण भी मिलता है, नही मिलते हैं ।

सिंधु सभ्यता के मृद्‌भाण्डो के संदर्भ मे लोथल और गुजरात के अन्य स्थलो से प्राप्त मृद्‌भाण्डों का साक्ष्य विशेष महत्त्वपूर्ण है । यहा पर एक ओर हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो की तरह के मृद्‌भाण्ड मिले ही हैं, कुछ परिवर्तित और परिवर्धित और कुछ नये प्रकार के मृद्‌भाण्ड भी उपलब्ध हुए जो इस बात के द्योतक है कि संस्कृति का अत अचानक नही हुआ बल्कि समय के साथ और शायद अन्य सस्कृतियों से सपर्क के फलस्वरूप उसके मृद्‌भाण्डो के आकार-प्रकार मे परिवर्तन हुआ ।

प्रारंभिक सिंधु सभ्यता के चरण में लोथल मे साधारण तश्तरी, छिद्रित कलश, पानपात्र, चचुक, छोटे गर्दन वाला कलश, नाद, 'S' आकृति के भाण्ड, बडे गोल घडे इत्यादि सिंधु सभ्यता के प्रकार के है । अलंकरण के अभिप्राय यथा प्रतिच्छेदी वृत्त पीपल की पत्ती, मोर इत्यादि भी हड़प्पा प्रकार के ही रहे किंतु कही-कही चित्रण की शैली मे भेद भी दिखता है । अधिकाश बर्तन लाल रग के है किंतु कुछ पाण्डु रग के भी है । राव का मत है कि सिंधु सभ्यता के लोगो ने उन्नतोदर कटोरे, जिनमे कुछ पर हत्थे है (फ० XIX, 3) और कुछ पर नही, को लोथल के मूलवासियो से लिया, जो सिंधु सस्कृति से पहले वहा पर रहते थे ।

सिंधु सभ्यता के द्वितीय चरण में सिंधु सभ्यता के कुछ विशिष्ट भाण्ड यथा चचुक और पानपात्र का चलन समाप्त हो गया तथा बेलनाकार छिद्रित कलश का अब चलन कम हो गया । कुछ नये प्रकार के भाण्ड यथा नौतली स्कंध वाला कटोरा और ऊंची गर्दन वाला गोल भाण्ड प्रचलन मे आये जो क्रमश उन्नतोदर कटोरा और छोटी गर्दन वाले गोल भाण्ड से विकसित हुए । साधारण तश्तरिया अब नौतली नही रही और उनका आकार छोटा हो गया । स्टड कटोरे का हत्था कुछ लबा बनाया जाने लगा और दीपक का आकार भी बदला । बर्तनों के चित्रण मे कुछ सादगी आ गयी । जानवर और वनस्पति का चित्रण पारपरिक ढंग से होने लगा और लटकन जैसे सरल अलंकरण पहले के अपेक्षाकृत क्लिष्ट अलकरणो के स्थान पर अधिक प्रयुक्त हुए । छाया किये त्रिभुज और अपुष्पपर्ण (frond) का भी प्रयोग रहा । हड़प्पा और मोहेंजोदड़ों से प्राप्त सिंधु सभ्यता के अन्य अलंकरणों का प्रयोग कम मिलता है । पशु पक्षियों का अपेक्षाकृत विशाल पैमाने पर चित्रण द्वितीय काल की अन्य विशेषता है जो लोथल के मृद्‌भाण्डों को विशिष्टता प्रदान करता है । इस यर्थायवादी चित्रण का सर्वोत्तम उदाहरण एक

बहुत ही कलात्मक रूप से अंकित बारहसिंगे की आकृति है जिसे एक वृक्ष के नीचे दिखाया गया है (फ० XX, 3)। बारहसिंगे की गर्दन बहुत सुंदर ढंग से बनी है और पेड की झुकी शाखा और पत्तियाँ उसके साथ बहुत सुंदर सामंजस्य स्थापित करती हैं। इसकी पाण्डु सतह पर चाकलेटी रंग से चित्रित किया गया है। लोथल के बर्तनों से स्पष्ट है कि सिंधु सभ्यता के बर्तन निर्माण तथा उनके अलंकरण मे जो परिवर्तन और परिवर्धन हुए वे इस बात के प्रमाण हैं कि सिंधु सभ्यता के उपकरणों की एक रूपता वाली धारणा आंशिक रूप से ही सही है।

रगपुर का द्वितीय काल सिंधु सभ्यता का काल था। इस काल के प्रथम चरण में लाल भाण्ड में तश्तरी, व मर्तबान मिले हैं। चंचुक (बीकर) बहुत थोड़ी संख्या में है, और चित्रित बर्तन भी कम ही मिले है। रंगनाथ राव के अनुसार ये इस बात के द्योतक है कि सिंधु सभ्यता के लोग रंगपुर में उस समय आकर बसे जब कि उनकी संपन्नता ह्रासोन्मुखी थी। द्वितीय चरण में जो बर्तन मिले वे भलीभाति नही पकाए गये और छिद्रित बेलनाकार बर्तन का प्रयोग शनैः शनैः समाप्त हो गया। हडप्पा काल के तृतीय चरण में उन्नतोदर कटोरे से नौतली कटोरा और बल्व की आकृति के छोटी गर्दन वाले जार से ऊँची गर्दन वाले जार का विकास हुआ। हडप्पा सभ्यता के आधारयुक्त प्याले से चषक पानपात्र (wine cup) का विकास हुआ। इसी चरण में चमकीले लाल भाण्ड का अविर्भाव हुआ। मोर की आकृति को पारपरिक ढंग से चित्रित किया गया तथा बकरे और वृषभ जिनका चित्रण हडप्पा सभ्यता तथा मध्य-भारतीय सभ्यता मे भी मिलता है, का चित्रण किया गया। अन्य अलंकरणों में विकल्पत. छाया किये वर्ग, आमुख त्रिभुज, छाया किये ईंट के पत्ते की आकृति, लटकन, लहरी रेखाएं और अपुष्प पर्ण हैं। इस काल मे श्वेत रंग से अलंकृत काले और लाल भाण्ड और अधिक प्रयुक्त हुए और स्टड हत्थे वाले अभ्रकी बर्तन का हत्था पहले के काल की अपेक्षा कुछ लबा हो गया। इस स्थल के अतिम काल (तृतीय काल) मे चमकीले लाल भाण्ड, तथा काले और लाल भाण्ड अधिक संख्या मे बनने लगे।

सुरकोटडा (कच्छ) के प्रथम काल के प्रथम चरण में लाल भाडो पर काले रंग से चित्रण की विधा का प्रचलन रहा। पीपल पत्ती, मत्स्य शल्क, हिरन, सारस, बतख का चित्रण सुदर बन पडा है। पानपात्र (अल्प संख्या में), साधारण तश्तरिया, छिद्रित भाण्ड, 'चचुक' आदि सिंधु प्रकार के भाण्ड प्राप्त हुए हैं। लेकिन सिंधु प्रकार से भिन्न बर्तन यथा बहुरंगी (बैंजनी, सफेद और काले) चित्रण वाले, दुधिया लेप वाले, सोथी प्रकार के, रिर्जव्ड लेप वाले भाण्ड मिले है। अंतिम प्रकार लोथल, मोहेंजोदडो और भारत से बाहर टेलब्राक में मिले है। लोथल के प्रथम काल से प्राप्त सफेद रंग के चित्रण वाले काले और लाल

भाण्ड की तरह के भाण्ड इस चरण में नही मिलते । प्रथम काल के द्वितीय चरण में भी भाण्डों में कोई विशेष अंतर नही दिखता लेकिन तृतीय चरण में सिंधु सभ्यता के चित्रित भाण्ड, छिद्रित भाण्ड और पानपात्र के साथ ही आहाड प्रकार के श्वेत रंग से चित्रित काले और लाल भाण्ड मिले है जिनमे कटोरे तश्तरिया और हत्थेदार कटोरे उल्लेखनीय है । किंतु सौराष्ट्र के सिंधु सभ्यता के स्थलों में प्राप्त चमकीले लाल भाण्डों का अभाव है ।

मोहेजोदडो और हडप्पा में मार्शल के निर्देशन में हुए उत्खनन में परतों का अध्ययन नही किया गया था लेकिन ह्वीलर द्वारा 1950 मे मोहेजोदडो में किये उत्खनन में मृदभाण्डों में क्रमिक परिवर्तन के कुछ साक्ष्य मिले है और यह देखा गया कि परवर्ती चरण मे तकनीकी मानक मे ह्रास हुआ । एक विकसित सभ्यता के अनुरूप ही सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्डों मे आकार प्रकार की दृष्टि से पर्याप्त विविधता और विशिष्टता पाई जाती है और उनकी निर्माण-तकनीक भी काफी उन्नत है । इनके निर्माण में उपयोगिता का दृष्टिकोण अधिक और कल्पना-शीलता कम है । एक बार एक विशिष्ट आकार प्रकार का निर्धारण हो गया तो फिर लोग उसी तरह के बर्तन विशाल संख्या मे बनाने लगे और बर्तन बनाना कला के स्थान पर व्यवसाय बन गया । लेकिन कुछ भाण्ड सिंधु सभ्यता के कुभ-कारों की कलाकारिता के सुंदर उदाहरण हैं । मृद्भाण्डों की विशिष्टता के कारण ही, गार्डन चाइल्ड ने यह व्यक्त किया कि सिंधु सभ्यता के बर्तन उसे अन्य सभ्यताओं से जोडने के बजाय उसके अलग व्यक्तित्व को दर्शाने मे अधिक महायक है ।

•

अध्याय 9

युद्ध संबंधी उपकरण

सिंधु सभ्यता का मूल आधार कृषि तथा व्यापार था। इस तरह का कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नही है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि इस सभ्यता के लोगो ने आक्रमण के बल पर धन-सम्पत्ति एकत्र की थी और राज्य-विस्तार किया था। मार्शल, मैके आदि पुराविदों का मत है कि ये लोग युद्ध-विमुख शातिप्रिय लोग थे। इस तथ्य मे कुछ सचाई हो सकती है, किंतु कालातर में ह्वीलर द्वारा की गई खोदाइयों से यह स्पष्ट हो गया है कि वे लोग आक्रामक भले ही न रहे हो किंतु अपनी सुरक्षा के प्रति बडे सजग थे। उन्होंने मोहेंजोदडो, हडप्पा, कालीबगा इत्यादि कई नगरों की गढियों को विशाल रक्षा-प्राचीरों से सुरक्षित किया था जिसके वास्तुविन्यास के सबंध में विस्तार से अन्यत्र उल्लेख किया गया है। इस सुरक्षा दीवार के साथ बुर्ज भी सबद्ध थे। द्वारो की सुरक्षा का विशेष प्रबध था। सुरक्षा दीवार का मुख्य प्रयोजन आक्रमण से सुरक्षा ही रहा होगा। यो यह बाढ से भी बचाव कर सकती थी। कौन जाने शासक वर्ग ने इसका निर्माण निचले नगर के लोगों पर अपनी श्रेष्ठता जताने के उद्देश्य से अथवा किसी सभाव्य आतरिक विद्रोह से सुरक्षा के उपाय के रूप में भी किया हो। खोदाइयों मे प्राप्त अधिकाश सामग्री इस तरह की है जिसका युद्ध, शिकार या बढईगीरी मे से किसी भी कार्य के लिए प्रयोग किया जा सकता था। ऐसी सामग्री बहुत कम प्राप्त हुई है जिसे निश्चयपूर्वक अस्त्र-शस्त्र की श्रेणी मे रखा जा सके।

सिंधु सभ्यता के अवशेषों मे कोई भी वस्तु ऐसी नही मिली जिसकी पहिचान किसी रक्षात्मक अस्त्र, यथा कवच, ढाल अथवा शिरस्त्राण से की जा सकती हो। वैसे बटन जैसी आकृति के कुछ ताबे के टुकडे उपलब्ध हुए है जिनके बारे मे कतिपय विद्वानो का विचार है कि इन्हे शत्रुओ के प्रहार से शरीर की सुरक्षा के लिए सैनिक भूषा मे सिल दिया गया होगा।

अस्त्र-शस्त्रो (आ० 16) मे ताबे और कासे के बने भाले, चाकू, बाणाग्र तथा कुल्हाडिया पायी गयी है। कुछ पत्थर के और तांबे के गदा सिर तथा मिट्टी की कुछ गोलिया मिली है। पत्थर के कुछ फलकों (ब्लेड) का उपयोग उनके दैनिक कार्यों के लिए होता रहा होगा, सैनिक उपकरण के तौर पर नही। कुछ

ताम्र उपकरणों पर लेख भी मिले हैं। मोहेंजोदडो से ताम्र आयुधों की एक निधि प्रारंभिक स्तरों से मिली थी। उसमे से एक उपकरण पर चित्रलिपि में लेख अंकित है। लेखयुक्त उपकरण मोहेंजोदडो की अपेक्षा हड़प्पा से अधिक पाये गये हैं।

मोहेंजोदड़ो और हडप्पा मे भाले के जो फल प्राप्त हुए है वे लंबे, पतले, चपटे तथा कुछ आदिम प्रकार के है। उनके हत्थे लकडी के रहे होंगे जो अब नष्ट हो गए हैं। इनकी मध्यशिरा मजबूत नही है। मैके ने सुझाया है कि नोकों को लकडी का सहारा दिया गया होगा जो कि मध्यशिरा का काम देती रही होगी। जो लोग काफी भारी कुल्हाडिया बनाते थ उन्होने भालो की नोक इतनी पतली क्यो बनाई यह समझ में नही आता। समकालीन बल्कि उससे कुछ पहले मेसोपोटामिया और मिस्र मे प्रयुक्त भाले कही अधिक विकसित प्रकार के थे। सिंधु सभ्यता के भाले चूलदार है और इनके उस भाग मे जो दस्ते में जडा गया था, छेद हैं। मूंठ काठ की रही होगी। मोहेंजोदडो मे बहुत थोडे से ही भाले के ऐसे फल मिले है जिनमे मध्यशिरा है। इनकी तुलना विद्वानों ने सीरिया तथा फिलस्तीन के लगभग 2200–1750 ई. पू. के भालों के फलों से की है। पत्ती की आकृति से मिलते-जुलते भालो का प्रयोग कई संस्कृतियो द्वारा किया गया था। मोहेंजोदडो की एक मुद्रा पर एक कटीला भाले का अकन है। ऐसा भाला ताम्र-निधि संस्कृति के साथ विशेष रूप से पाया जाता है।

कुल्हाड़ियों के फाल

कुल्हाडियों के फाल ताबे और कासे के मिले है। कासे की अपेक्षा ताबे की कुल्हाडियो की संख्या अधिक है। लगता है कि पहले कुल्हाडियो को साचे मे ढाल फिर ठोक पीट कर आवश्यक आकार दिया जाता था। तत्पश्चात् उन्हे रगड-रगड कर समतल किया जाता था जिससे हथौडे के निशान भी मिट गये। स्वाभाविक रूप से कासे की कुल्हाडियो मे ताबे की कुल्हाडियों से अधिक सफाई है। बनावट की दृष्टि से इनके दो प्रकार है—(1) लबी तथा सकरी, (2) छोटी तथा चौडी। मध्यपूर्व और निकटपूर्व के देशों की प्राचीन संस्कृतियो मे भी दोनो प्रकार मिलते हैं।

पहले प्रकार की कुल्हाडियो के फाल एक ओर धार वाले है। इनमे किनारो की ओर ढलान है। अधिकतर फाल दोहरे ढलान वाले है जिसकी किनारे की आकृति अर्धचद्राकार जैसी है। कुछ के किनारे फैलाव लिए है। किंतु अधिकाश फालों के दो किनारे समानातर है। इनका ऊपरी छोर गोलाई लिए है। जिन फालों की धार कुछ कुंठित या टूट-फूट से खराब हो जाती थी उन्हे आवश्यकता-

नुसार ठीक कर लिया जाता था। दूसरे प्रकार के फाल के अर्धचंद्राकार किनारे अधिक फैलाव लिए हैं। इस वर्ग की कुछ कुल्हाडिया नतोदर (concave) है तथा हत्थे की ओर अधिक संकरी है। उन्हे शायद लकड़ी के हत्थे मे दरार बना, उसमें कुंद भाग को फंसा उसे रस्सी से बाध कर प्रयोग किया जाता था। ताबे के छल्ले नही मिले अतः इस बात की संभावना नही लगती कि इन्हे छल्लों से स्थिर किया गया था। इनका उपयोग शिकार, युद्ध या लकडी काटने मे, अथवा इन सभी कार्यों में हो सकता था।

कुछ छेददार कुल्हाडियों की प्रतिकृतिया मिट्टी मे पायी गयी है। हो सकता है इनका उद्गम स्रोत पश्चिमी एशिया रहा हो। कुल्हाडी की मिट्टी मे प्रतिकृतिया मेसोपोटामिया मे अल-उवैद काल से मिलने लगती है। चहुदडो से एक ताबे की छिद्रदार कुल्हाडी हडप्पा सस्कृति के अतिम स्तर अथवा झूकर सस्कृति के सदर्भ मे उपलब्ध हुई है। सिंधु सम्यता के स्थलों से हत्थे के लिए छेद वाले औजार बहुत कम पाये गये है। मोहेंजोदडो से हत्थे के लिए छेद वाला एक कुल्हाडा-बसूला मिला (आ० 16, 14) जो सिधु सम्यता मे अपने ढग का एक मात्र उदाहरण है जो लगभग 2 मी० गहराई मे पाया गया।[1] इस तरह के कुल्हाडा-बसूला उत्तरी ईरान मे हिस्सार III C (जिसकी तिथि विद्वान 2000 से 1000 ई पू के बीच मानते है) मे और इसका लघु रूप असीरी राजा सालमनेसर III (859–324 ई. पू) द्वारा असुर में बनाये अनुअदद मदिर के नीव के नीचे, और क्रीट मे 2000-1900 ई पू. के स्तर मे और यूक्रेन मे लगभग 1500 ई पू के संदर्भ मे मिलते है। ह्वीलर मोहेंजोदडो के कुल्हाडे-बसूले की तिथि द्वितीय सहस्राब्दी ई. पू. मानते है। वे हाइने गेल्डर्न के मत से सहमत है कि यह कुल्हाडा-बसूला मोहेजोदडो मे व्यापारिक कारणो से नही आया बल्कि नये लोगों के आगमन का द्योतक है।

चाकू

सिंधु सम्यता काल के चाकुओं और कटारों की आकृति बहुत कुछ समान है। अत इनमे प्रभेद करना कठिन है। किसी भी उदाहरण मे मूंठ नही प्राप्त

1. मैके इसे सिंधु सम्यता से बाद के काल का उपकरण मानते है। उन्होंने यह भी सभावना व्यक्त की है कि बौद्ध स्तूप के निर्माण के लिए जो परवर्ती काल मे सिंधु सम्यता की ईंटें खोदी गईं उसी सिलसिले मे किसी के हाथ से यह उपकरण यहा छूट गया, कुछ अन्य विद्वान भी इसे सिंधु सम्यता की कृति नही मानते किंतु वे इसे इस सम्यता के अंतिम चरण में बाहर से आने वाले लोगों द्वारा मोहेंजोदड़ो मे लय मानते है।

हुई है, लकड़ी की होने के कारण वे नष्ट हो गयी है । मोहेंजोदडो की खोदाई में मैके को एक चाकू प्राप्त हुआ था जिसकी मूठ चमडे या किसी अन्य पदार्थ की
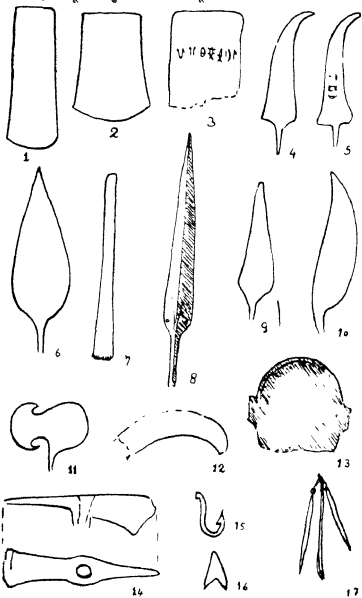
आरेख 16

बनी थी। इसे जिस पदार्थ से जोड़ा गया था उसकी पहचान नहीं हो पायी है। मैके द्वारा किया मोहेंजोदड़ो में प्राप्त चाकुओ का वर्गीकरण इस प्रकार है— (1) चौडे, पत्ती जैसी फाल और लंबी चूल वाले (आ० 16, 6), जो मोहें-जोदडो में काफी संख्या में मिले हैं; (2) पत्ती सदृश फाल वाले जिनकी नोक मुडी है; (3) सकरे तथा सीधी फाल वाले, (4) ऊपर उठे नुकीले अग्रभाग वाले त्रिभुजाकार, जो मिस्र के छठे राजवंश कालीन चाकुओं से मिलते जुलते है और संभवत चमडा काटने के काम आते थे, (5) संकरे वक्र धार वाले, जिनके सदृश कुछ चाकू भी मिस्र के छठे राजवंश के संदर्भ में मिले है; (6) चौडे वक्रधार वाले, (7) चूल के पिछला भाग खोखले वाले, (8) कासे के दोहरे वक्रधार वाले, (9) वडे, जो कटार की तरह है।

तलवार या किर्च

मोहेंजोदडो से कुछ दोहरे धार वाले उपकरणों की पहिचान तलवार (किर्च) से की गयी है। ये आकार मे अच्छे बने है और वजन मे भारी है। दो उपकरण काफी अच्छी दशा मे एक मकान से पाये गये। एक सुंदर उदाहरण ताबे-कासे के आयुधो तथा बर्तनों के निधान के साथ मकान के फर्श के नीचे से मिला था। इसकी लबाई फाल तथा चूल सहित 480 सेमी है। इसमे मूठ के स्थान पर दो छेद बने है जिनसे मूठ जडी गई होगी। तलवार का एक अधूरा उदाहरण भी प्राप्त हुआ है जिसके किनारे कुंद है। मैके का विचार है कि तलवार का विकास कटार मे स्वाभाविक रूप मे हुआ था। सबसे पहले किस देश ने इसका निर्माण प्रारभ किया यह कहना कठिन है। शायद विभिन्न देशों मे इस उपकरण का विकास स्वतत्र रूप से और अलग-अलग समय मे हुआ। कुछ छोटे आकार की तलवारे है जिन्हे कटार की सज्ञा दी जा सकती है।

बाणाग्र (आ० 16, 16)

सिधु सभ्यता के स्थलों के उत्खननों से बाणाग्र बहुत अल्प सख्या मे पाये गये है।[1] ये ताबे के है जो पतले और चपटे है। थोड़े से लंबे और सकरे काटेदार बाणाग्र भी मिले है। इनमे चूल नहीं हैं। ये बाणाग्र चकमक पत्थर के बने ऐसे बाणाग्रों से मिलते जुलते है जो मिस्र, उत्तरी फारस तथा मिनोअन काल के क्रीट मे पाये गये है। सिधु सभ्यता मे साधारणतया पत्थर के बने बाणाग्रो का अभाव है। केवल कोटदीजो और पेरियानोघुंडई (उत्तरी बलूचिस्तान) में

1. मार्शल के निर्देशन के मोहेंजोदडो में किये गये उत्खननों मे केवल एक ही ताबे का बाणाग्र मिला था।

मिले कुछ बाणाग्र इसके अपवाद हैं । लेकिन विद्वानों का अनुमान है कि सिंधु सभ्यता के जो ताबे के बाणाग्र है उनके पूर्व रूप पाषाण के बाणाग्र ही रहे होंगे । सिंधु सभ्यता के इन बाणाग्रों का कुछ भाग उनसे संबद्ध डंडे पर दबा दिया गया होगा और यह लकड़ी का भाग मध्य शिरा का काम दिया होगा ।

गदा

गदासिर विभिन्न प्रकार के पत्थरों के बने है, जैसे अलावास्टर, बलुआ पत्थर, चूना पत्थर और स्लेट से मिलता जुलता पत्थर इत्यादि । ताबे के गदासिर नगण्य है । गदा का उपयोग युद्ध मे तो होता ही होगा, जगल मे व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए भी इसके उपयोग की सभावना अस्वीकार नही की जा सकती । इनमें दोनों ओर से छेद किया गया था और जिससे काट (सेक्शन) मे वह डमरू की तरह दिखता है । ऐसा अनुमान है कि इन्हे चमड़े की रस्सी या डोरी से हत्थे पर कसकर बाधा जाता था । हत्था शायद लकडी का रहा होगा अथवा (जैसे पीट्री ने मिस्र के गदासिरो के सदर्भ मे सुझाया है) खाल का । खाल के हत्थे मे थोडा लोच होने से इसके प्रयोग को कुछ और अधिक प्रभावपूर्ण बना देता रहा होगा । गदाए वीक्षाकार, नाशपाती की आकृति की, गोल या गोल छल्ले की तरह की है । नाशपाती की आकृति के गदासिर एलम, मेसोपोटामिया, मिस्र आदि अनेक प्राचीन सस्कृतियो के सदर्भ मे मिलते है । क्रीट, काकेशस, थिसैली और डेन्यूब क्षेत्र से भी इस तरह की आकृति वाले गदासिरो के उदाहरण मिले है । वीक्षाकार प्रकार के गदासिर का काल और क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है और वे अल्प संख्या मे सूसा, मिस्र और काकेशस के क्षेत्रो मे की गई खोदाइयो मे मिले है । मेसोपोटामिया मे इस तरह के गदासिर नही मिलते । तीसरे प्रकार के गदा सिर का मोहेंजोदडो से एक ही उदाहरण है । हडप्पा से एक ताबे के बर्तन के भीतर मिला गदासिर इसी प्रकार का है । इसकी ऊँचाई और व्यास 4.57 सेमी है । आकार मे छोटा होते हुए भी यह पर्याप्त वजनी था और इसलिए आयुध के रूप मे प्रयुक्त किये जाने के लिए पूर्णतया उपयुक्त था । चन्हुदडो से एक कासे या ताबे का गदा-सिर मिला है जो या तो हडप्पा सभ्यता के अतिम चरण का है या झूकर सस्कृति के काल का । इनकी तुलना ईरान मे प्राप्त द्वितीय सहस्राब्दी ई० पू० के इसी तरह के गदासिरो से की जा सकती है ।

गोफन-गोलियां

पक्की मिट्टी की गोलिया और गोले मिले है जिन्हे अस्त्र के रूप मे प्रयोग किये जाने की पूरी सभावना लगती है । इन्हे कदाचित् गोफन मे रख कर फेंका जाता था । व्हीलर ने इन्हे दो वर्गों मे बांटा है :—

पहले वर्ग में भी दो आकार की गोलियां है (1) गोल, जिनका व्यास लगभग 2.54 सेमी है, और (2) अंडाकार जिनकी लंबाई 6.34 सेमी तक है। इस वर्ग की गोलियां अस्त्र की तरह प्रयुक्त हो सकती थी, यह संदिग्ध है। सिधु सभ्यता के अतिरिक्त प्राचीन सुमेर और तुर्किस्तान मे गोल और अण्डाकार दोनों ही प्रकार की मिट्टी की गोलियां मिलती हैं। फिलिस्तीन और सीरिया मे भी इनका प्रयोग हुआ, पर सुमेर से कुछ बाद में मिस्र में इस तरह के गोलों का प्रयोग अपेक्षाकृत और बाद में हुआ। विद्वानों का अनुमान है कि इस तरह के गोले पहले पत्थर के बनाए गए होंगे और स्वाभाविक है कि उसके उद्गम का ऐसा क्षेत्र रहा होगा जहां पत्थर बहुत मात्रा में मिलता था। बाद में ऐसे क्षेत्रो में जहा पत्थर नही था, लोगों ने मिट्टी के गोले बनाने प्रारंभ किये।

दूसरे वर्ग में ऐसे मिट्टी के गोले हैं जिन्हें पहले हाथ से दबा कर आकार दिया गया है और फिर थोडा बहुत आग में पकाया भी गया है। इस तरह के गोलों के अस्त्र की तरह प्रयुक्त होने के बारे में संदेह की गुंजाइश नही लगती। ये दो तरह के वजन वाले हैं—एक प्रकार वह जिसका वजन लगभग 6 आउस और दूसरा प्रकार वह जिसका वजन लगभग 12 आउंस है। व्हीलर द्वार मोहेंजोदडो के 1950 मे किये उत्खनन में गढी वाले टीले मे विशाल अन्नागार के पास कई गोले मिले और अट्ठानवे 6 आउस वाले गढी वाले टीले मे ही दक्षिण-पूर्वी दो बुर्जों को जोडने वाले मार्ग मे पाये गये। उससे पहले मार्शल के निर्देशन मे किये उत्खनन मे एक बडे मिट्टी के बर्तन मे इस तरह के पचास के लगभग गोले रखे मिले थे। यह बर्तन गढी वाले टीले के दक्षिणी अर्द्ध के एक हाल मे रखा था। और दक्षिण मे इसी क्षेत्र में कुछ बडे आकार के मिट्टी के गोले मोटे घेरे वाली दीवाल के बाहर बिखरे पड़े थे। इनका आकार, निर्माण-वस्तु तथा प्राप्ति-स्थल इनके अस्त्र होने का समर्थन करते है। इन्हे या तो ये लोग हाथ से ही फेंकते रहे होंगे या ढेलबांस से।

निश्चय ही उपर्युक्त विवरण से सिंधु सभ्यता के अस्त्र-शस्त्रो के बारे मे जो जानकारी मिलती है उससे यह स्पष्ट होता है कि सैधव सभ्यता के लोगों ने आर्थिक समृद्धि की ओर विशेष ध्यान दिया और उन्होंने अस्त्र-शस्त्रों के निर्माण की ओर अपेक्षाकृत कुछ उदासीनता सी बरती।

●

अध्याय 10

धातु, पाषाण, हाथीदांत इत्यादि के कुछ उपकरण तथा वस्तुएं

उपकरणो के निर्माण के लिए धातु-प्रयोग का ज्ञान मानव की महान् प्रगति का परिचायक है ।[1] धातु के प्रयोग के ज्ञान ने संस्कृतियो के नागरीकरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है । धातु के बने उपकरण मजबूत तो होते ही हैं, वे काफी तेज धार वाले बनाये जा सकते हैं और धार के कुंद होने पर उपकरणों को फेकना नही पडता, बल्कि उन्हे ठोक पीट कर पुन: पैना बनाया जा सकता है । अथवा उसे गला कर नया उपकरण भी बनाया जा सकता है । पुरातात्विक साक्ष्यो के अनुसार ईरान और मध्यपूर्व मे धातु का प्रयोग सिंधु सभ्यता से कुछ शताब्दी पहले प्रारंभ हो गया था । कुछ विशेषज्ञों का अनुमान है कि धातु को प्रयोग का प्रचलन ईरान से अफगानिस्तान मे और तत्पश्चात् बलूचिस्तान और सिंध मे हुआ । बलूचिस्तान, सिंध और राजस्थान मे प्राग् सिंधु सभ्यता की संस्कृतियो मे धातु का प्रयोग ज्ञात था किंतु सिंधु सभ्यता मे धातु के उपकरण उनसे कही अधिक सख्या मे मिले है और उनमे पर्याप्त विविधता भी है ।

सिंधु सभ्यता के लोग मोम द्रवी विधि, धातु पर पानी चढाने की विधि और धातु-मिश्रण से भलीभाति परिचित थे । उनके उपकरण तकनीकी दृष्टि से वहा के धातु कर्मकारो की दक्षता के परिचायक है । इस सिलसिले मे नालीदार बर्मा और दातेदार आरी का विशेष उल्लेख किया जा सकता है । निश्चय ही धातुकर्म मे दक्षता तभी आ सकती थी जबकि लोग पेशेवर धातु का काम करने वाले रहे होंगे और उन्हे पर्याप्त मात्रा मे खनिज प्राप्त होता रहा होगा । और कुछ लोगो का पेशेवर धातुकर्मी होना तभी सभव हो सकता था जबकि वहा के कृषक अपनी आवश्यकतानुसार भरण-पोषण के लिए पर्याप्त अनाज से कही अधिक अन्न उपजाने लगे हों ।

ऐसा लगता है कि सिधु सभ्यता के लोग अपने नगरो मे ताबे को अयस्क के रूप मे नही लाते थे । इस सभ्यता के नगरो मे न तो अयस्क ही मिले हैं और न

1. धातु की तकनीक के बारे मे देखिये धर्मपाल अग्रवाल को कृति Copper Bronge Aze in India.

उनको गलाने के लिए प्रयुक्त भट्ठे ही। संक्षेप में तांबा इन रूपों में पाया गया है—(1) अपरिष्कृत तांबा, (2) परिष्कृत तांबा, (3) आर्सेनिक मिश्रित तांबा और टिन मिश्रित तांबा।

टिन, आर्सेनिक आदि धातुएं अतिन्यून मात्रा में तो खान से ही तांबे के साथ मिली रही होंगी, किंतु कुछ उपकरणों में इन धातुओं का मिश्रण पर्याप्त मात्रा मे मिलता है, जो निश्चय ही जानबूझ कर मिलाया गया था। तांबा एक अपेक्षाकृत कोमल धातु है और टिन आदि के मिश्रण से उसमे मजबूती आ जाती है। उपलब्ध साक्ष्य से पता लगता है कि सिंधु सभ्यता मे टिन मिला कर कांसा बनाने की विधि सभ्यता के प्रथम चरण से ही ज्ञात थी, लेकिन यह देखा गया है कि टिन का मिश्रण नीचे के स्तरो की अपेक्षा ऊपरी स्तरों मे अधिक है। यों अपवाद-स्वरूप काफी गहरे निक्षेप से प्राप्त एक कासे के उपकरण में 22% टिन पाया गया। मेसोपोटामिया और मिस्र में भी कासे का प्रयोग काफी प्राचीन समय से प्रचलित था।

अग्रवाल धातु मिश्रण का विश्लेषण कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि काँसे के जो उपकरण मिले है उनमे लगभग 14% ही ऐसे है जिनमे टिन की मात्रा 8% से 12% तक है। उनकी दृष्टि मे यों लगभग ग्यारह प्रतिशत टिन मिलाना ही अधिक उपयोगी है। मैके के अनुसार तांबे में तीन प्रतिशत टिन के मिश्रण से भी उसके शुद्ध रूप की अपेक्षा बहुत कुछ मजबूती आ जाती है। अग्रवाल ने विभिन्न उपकरणो के रासायानिक विश्लेषण के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि या तो सिंधु सभ्यता के लोगों को इस बात का ठीक ज्ञान न था कि अच्छे उपकरण बनाने के लिए तांबे मे कितना प्रतिशत टिन मिलाना ठीक रहेगा, या वे ठीक मात्रा मे टिन के मिश्रण को नियंत्रित नही कर सके। उन्होने यह भी मत व्यक्त किया कि सिंधु सभ्यता के लगभग 70% उपकरण लगभग शुद्ध तांबे के ही है। सभवत इसका कारण यह था कि टिन उन्हे पर्याप्त मात्रा मे सुलभ नही था, अन्यथा टिन मिला कर कासा बनाने की तकनीक सीखने के बाद भी वे लोग टिन मिलाये बिना तांबे का इतना अधिक उपयोग उपकरणों के निर्माण के लिए नही करते। उन्होंने कांसे का प्रयोग मुख्यतः ऐसे ही उपकरणों मे किया जिनमे मजबूत धार अपेक्षित थी।

जहा तक तांबे के साथ अन्य धातुओं के मिश्रण करने का प्रश्न है अग्रवाल के अनुसार केवल लगभग आठ प्रतिशत उपकरणों में आर्सेनिक, चार प्रतिशत मे निकल और छह प्रतिशत में सीसे का प्रयोग हुआ है। तांबे और आर्सेनिक के मिश्रण से बने उपकरण तांबे की अपेक्षा तो अधिक किंतु कांसे की अपेक्षा कम

मजबूत होते है। मैंके का कहना है कि शायद सिंधु सभ्यता वालों ने तांबे में आर्सेनिक अलग से नही मिलाया, वह खान से ही ताबे के साथ मिला हुआ था। अधिकाशतया धातु के उपकरण जीर्ण-शीर्ण अथवा खंडित अवस्था में मिले है।

ताबे अथवा कासे की कुल्हाडियों, कुल्हाड़ा-बसूला, बरछे, भालों की नोंक, बाणाग्र, चाकू और कटार का विवरण हमने युद्ध संबंधी उपकरण वाले अध्याय मे, सोने-चादी, ताबे आदि के आभूषणों, मनके, वलय, अंगूठी और दर्पण इत्यादि प्रसाधनोपकरण का विवरण 'परिधान तथा आभूषण' अध्याय मे, ताबे और कांसे की मानव तथा पशु आकृतियों का विवरण 'पाषाण तथा धातु की मूर्तियां' वाले अध्याय मे दिया है, और उनकी पुनरावृत्ति यहा आवश्यक नही। कुछ अन्य प्रकार की वस्तुओं का विवरण नीचे दिया गया है।

बर्तन

ताबे के कई छोटे-बडे बर्तन मिले है। तांबे के बर्तन बनाने की एक सरल विधि है धातु की चादर को काट कर उसे ठोक पीट कर इच्छित रूप देना। यों कासे के बर्तनों को भी इस तरह बनाया जा सकता है पर ताबे की अपेक्षा कांसे के बर्तनों को इस तरह बनाना अधिक श्रमसाध्य है। दूसरी विधि है धातु को गला कर साचे से बनाना। तांबा अपेक्षाकृत मुलायम धातु होने के कारण उसके बर्तनो पर दबाव पडने पर आसानी से गड्ढे पड जाते है। कासे के बर्तनों को बनाने मे श्रम भले ही अधिक पडे, वे तांबे के बर्तनो मे कही अधिक मजबूत होते है। अधिकाश धातु के बर्तनों का आकार-प्रकार मिट्टी के बर्तनों के आकार-प्रकार के अनुरूप है। किंतु मिट्टी और धातु के बर्तनों के निर्माण मे तकनीक का अंतर होने के कारण धातु मे मिट्टी के जैसे बर्तन बनाने मे भाण्ड-निर्माता को कुछ कठिनाई महसूस होना स्वाभाविक था। अपेक्षाकृत बडे बर्तनों के निर्माण मे सारे बर्तन को एक साथ न बना कर पेंदे को अलग से बनाया गया। कुछ बर्तनों पर मजबूती के लिए मोटा बनाने की इच्छा से बर्तन के पेंदे पर अलग से चादर का टुकडा जोड़ दिया गया। कुछ बर्तन ऐसे है जिनके अनुरूप मिट्टी के बर्तन नही मिले है। मैंके का मत है कि उनकी तरह के मृद्भाण्ड अवश्य रहे होंगे लेकिन वे अभी तक उपलब्ध नही हो सके है। कुछ तांबे और कासे के बर्तनो के कोर (रिम) ज्यादा पतले है, उपयोगिता की दृष्टि से इन्हे इतना पतला बनाना ठीक नही कहा जा सकता।

साधारण बर्तनों के अतिरिक्त ताबे की तश्तरियों के ढक्कन, घड़े के ढक्कन, तवा और कुछ बहुत छोटे बर्तन (जिनका प्रयोग अनुमानत. काजल रखने के लिए होता था) इत्यादि भी मिले है। एक ताबे के भीतर कार्नीलियन के मनकों की

लडी और सोने तथा चांदी के आभूषण मिले। कासे के भी बर्तन, कटोरे तथा ढक्कन मिले है, लेकिन तांबे के बर्तनो की अपेक्षा इनकी संख्या अत्यंत कम है। बहुत थोडे से चादी के भी बर्तन और उनके ढक्कन मिले है जिनके भीतर सोने और चादी के आभूषण मिले। लेकिन जब हम सख्या की दृष्टि से धातु के बर्तनों की तुलना मृद्भाण्डों से करते है तो स्पष्ट हो जाता है कि धातु के बर्तन अपेक्षाकृत बहुत कम है। मैंके का मत है कि इस विकसित सभ्यता मे धातु के बर्तन काफी रहे होंगे; उनके कम संख्या में प्राप्त होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि जब मोहेजोदडो निर्जन हुआ तो लोग शहर छोडते समय अपने साथ धातु के बर्तन भी ले गये होंगे।

आरी

मैंके के उत्खनन में मोहेंजोदडो से दो आरिया मिली। एक ताबे की है जो लगभग 42 सेमी लम्बी है। इसके दात नियमित फासले पर नही है। दूसरी आरी कासे की है, यह लगभग 32 सेमी लम्बी है। तकनीकी दृष्टि से ये दोनों आरिया पर्याप्त विकसित है और विश्व मे झुकाव लिये तथा तिरछे दात वाली आरियो के प्राचीनतम उदाहरण लगते है। मैंके की धारणा है कि इस तरह की विकसित आरिया रोमनकाल से पहले कही और नही मिलती। मोहेजोदडो से एक अन्य कासे की आरी मिली है जिसकी लम्बाई 46·5 सेमी और अधिकतम चौडाई 16 सेमी है तथा मोटाई 125 सेमी है। इसके चूल में दो छेद हैं जिनसे उसे हत्थो मे जोडा गया था। इसी स्थल से एक और खंडित आरी मिली है। लोथल से भी एक आरी मिली है जो वक्राकार है और तकनीकी दृष्टि से पर्याप्त विकसित होने के कारण महत्त्वपूर्ण है।

छेनियां

सिधु सभ्यता मे, विशेषत मोहेजोदडो मे, छेनियां काफी संख्या मे मिली है। इनमे से कुछ साचे से बनी है और कुछ को ठोक-पीट कर ही छेनी का आकार दिया गया है। इनके आकार प्रकार मे पर्याप्त विविधता है। मैंके ने इनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया है —

(1) आयताकार या वर्गाकार काट वाली छेनियां; ऐसी छेनियों की मोटाई पूरी लम्बाई में एक सी है,

(2) आयताकार या वर्गाकार काट की छेनिया जिनके चूल चपटे है,

(3) गोल काट वाली छेनियां, इन्हे साधारण छड से काट कर बनाय गया है,

(4) छोटी मजबूत छेनिया जिनकी काट गोल, आयताकार या वर्गाकार है,

(5) छोटी नुकीली छेनिया।

पहले प्रकार की छेनिया पर्याप्त संख्या में मिली हैं और यह प्रकार कई अन्य प्राचीन संस्कृतियों में भी पाया गया है। इन्हें आयताकार ढाली हुई छडों को पीट कर बनाया गया था। कुछ उदाहरणों में उनका सिरा भी पतला है जो हथौडे से पीट-पीट कर बनाया गया था। शीर्ष और धार को अधिक मजबूत बनाना आवश्यक था क्योंकि छेनी को ठोकते समय इन्ही दो हिस्सो पर विशेष जोर पडता था। दूसरे प्रकार की छेनिया सिंधु सभ्यता की अपनी विशिष्टता है और अन्यत्र नही पाई गईं। मैके का अनुमान है कि संभवत' इसके शीर्ष पर हत्था लगा था और हथौडे की चोट सीधे छेनी के शीर्ष पर न पडकर इस हत्थे पर पडती थी। किंतु कुछ इस प्रकार की छेनियों के हत्थो पर छेनी के निशान है जो इस बात के द्योतक है कि हथौडे की चोट सीधे उनके सिर पर की गई थी। मैके का यह भी मत है कि पहले तीन प्रकार की छेनियों का प्रयोग बहुत सख्त वस्तुओं पर नही होता था। या तो लकडी के काम में या सेलखडी जैसे मुलायम पत्थर की वस्तुओं के निर्माण के संदर्भ मे ही इनका प्रयोग होता था। शेष दो प्रकार की छेनिया अपेक्षाकृत अधिक मजबूत थी।

अन्य वस्तुएं

ताबे के बने 'सर्जरी सेट', (आ॰ 16,17) अजन लगाने की सलाइया, नहन्नी, उस्तरा (आ॰ 16,11) सूजा आदि मिले है। इस संदर्भ मे लोथल मे प्राप्त उस सुई का विशेष उल्लेख करना समीचीन होगा जिसमे नोक की ओर छेद है। तकनीकी दृष्टि से यह एक अत्यंत विकसित उपकरण है। इन उस्तरो के लंबे चूल है जिन्हे हत्थे मे लगाया गया रहा होगा। ताबे का एक हसिया का फाल मोहेंजोदडो मे मिला है। मछली पकडने के काटो को (आ॰ 16,15) ताबे की चादर मे काट कर फिर ठोक-पीट कर आकार दिया गया था। लोथल मे प्राप्त खाचे वाला बर्मा विशेष उल्लेखनीय है। इसी स्थल से एक अन्य महत्त्वपूर्ण तक्षणी यंत्र का भाग भी मिला है।

मैके का कहना है कि मोहेंजोदडो के ऊपरी सतह में जो ताम्र उपकरणों की निधिया उपलब्ध हुई है वे इस बात की द्योतक है कि लोगों को इस बात की सूचना थी कि शीघ्र ही बाह्य आक्रमण होने वाला है। लगता है कि उपकरणों को तो उन्होने गाड दिया लेकिन वे अपना जीवन नही बचा सके और ये उपकरण गडे ही रह गये। यह भी हो सकता है कि लोग किसी संक्रामक रोग के फैलने पर उससे बचत के लिए नगर छोड़ कर अन्यत्र चले गये, किंतु जीवित न लौट सके।

पत्थर के उपकरण तथा वस्तुएं

पाषाण की मूर्तियों, मुद्राओं, मनकों, सिल-बट्टों, बाट-बटखरों, हल के फालों (?), छल्लों इत्यादि का कुछ विस्तार से उल्लेख हम इसी कृति में अन्यत्र किये हैं।[1] कुछ अन्य पाषाण उपकरणों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

उत्खननों से चकमक पत्थर के शल्क और क्रोड मिले हैं (फ० XXI, 1) ये दोनों ही प्रकार कई घरों के भीतर मे भी मिले हैं। मैके ने इससे अनुमान लगाया है कि लोग घरो में क्रोड रखते थे और जैसे ही औजार की जरूरत हुई घर पर ही नौकर या घर का कोई सदस्य क्रोड से शल्क निकाल लेता था। जिन क्रोड से ये शल्क निकले हैं उन्हें शल्क निकालने के लिए भलीभांति तराशा कर तैयार किया गया है। इन क्रोडों से शल्क निकालना कठिन कार्य न था। परीक्षण से देखा गया है कि लकडी का हथौडा ही फलक निकालने के लिए पर्याप्त था। मोहेंजोदडो में चकमक पत्थर लगभग 56 मील दूर स्थित सक्कर से लाया गया था। पत्थर के पालिश करने के उपकरण भी मिले हैं। सख्त पत्थर के चमकाने वाले उपकरण मिले है जिनसे धातु की वस्तुओं को चमकाया जाता रहा होगा। सान के लिए प्रयुक्त पत्थर बहुत कम प्राप्त हुए। इनकी कम संख्या से अनुमान लगाया गया है कि लोग घरो मे इस तरह के पत्थर नही रखते थे और औजार तेज करने के लिए धातुकर्मियों के पास ले जाते थे।

पत्थर के बने वर्तन मोहेंजोदडो मे बहुत कम हैं और इनमे से अधिकाशत मुलायम श्वेत अलावास्टर पत्थर के है। इस तरह का अलाबास्टर पत्थर मोहे-जोदडो के समीप ही उपलब्ध था। ये बर्तन अधिकाशत खडित अवस्था में मिले हैं। इनमे केवल सूखी वस्तुएं या बहुत गाढे तेल ही रखे जा सकते थे। कुछ तो निश्चय ही प्रसाधन-पेटिका की तरह प्रयुक्त होते थे। मैके का अनुमान है कि शायद इन्हे सान पर बनाया जाता था। मोहेंजोदडो मे हरिताभ धूसर सेलखडी के बर्तन का टुकडा निम्न स्तर से मिला है। मैके का अनुमान है कि मूलत बर्तन मे दो खाने रहे होंगे। इसकी बाहरी सतह पर चटाई का सा डिजाइन है। यह टुकड़ा 5 सेमी × 3.81 सेमी × 75 सेमी है। इस टुकडे पर प्राप्त डिजाइन सूसा की प्राचीन संस्कृति के संदर्भ मे प्राप्त टुकडे से मिलता जुलता है। किश में भी

1 पाषाण-मूर्तियों के लिए 'पाषाण तथा धातु की मूर्तिया' मुद्राओं के विवरण के लिए 'मुद्राए', सिल-बट्टों, बाट-बटखरों और हल के फाल के लिए 'आर्थिक जीवन', तथा छल्लों के लिए 'धार्मिक विश्वास और अनुष्ठान' अध्याय देखिए।

इस तरह के बर्तनों के टुकड़े मिले हैं । दो छोटे बर्तन ऐसे पत्थर के बने हैं जो आरोगैनाइट (Aroganite) पत्थर से मिलता जुलता है । आरोगैनाइट पत्थर प्राचीन मिस्र और सुमेर मे काफी प्रयोग मे लाया जाता था । मोहेंजोदड़ो से प्राप्त एक बर्तन तो मिस्र में प्राप्त बर्तनों से मिलता जुलता है । एक फुक्साइट पत्थर का बर्तन मिला है । इस तरह का पत्थर मैसूर मे मिलता है और शायद यह वही से लाया गया होगा ।

कांचली मिट्टी के उपकरण

काचली मिट्टी का प्रयोग सिंधु सभ्यता मे विभिन्न निर्माण कार्यों के लिए होता था । यद्यपि यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि काचली मिट्टी बनाने की विधि सबसे पहले किस देश ने ज्ञात की, तथापि उपलब्ध साक्ष्य इसके पक्ष मे है कि मिस्र मे ही इस विधि का आविष्कार हुआ होगा । मिस्र मे राजवंश से पहले के काल मे और सुमेर मे चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० मे, लगभग तीन हजार ई० पू० मे पश्चिमी एशिया के एक बडे क्षेत्र मे, और तृतीय सहस्राब्दी के मध्य क्रीट मे इसका प्रयोग होता था । इसमे पत्थर के चूरे को आटे की तरह सान कर वस्तुएं बनाई जाती थी और फिर उन पर ग्लेज़ कर उन्हे पकाया जाता था । सिंधु सभ्यता की काचली मिट्टी की वस्तुएं साधारणत सफेद या भूरे पेस्ट की बनी है जो शायद भूमिगत लवण या नमी से हल्के नीले या हरी हो गयी हैं । मिस्र में काचली मिट्टी कैसे तैयार की जाती थी यह ठीक तरह से ज्ञात नही । कुछ का कहना है कि यह स्फटिक (क्वार्ट्ज) पत्थर का चूरा है । सिंधु सभ्यता के लोगो ने इसके लिए सेलखडी का चूरा प्रयोग किया । मिस्र और सिंधु दोनो सभ्यताओ मे ही पत्थर से आकृति बना कर उस पर ग्लेज करने की प्रथा थी । सेलखडी से आकृति बना कर ग्लेज करने की अपेक्षा सेलखडी के चूरे मे वस्तुएं बनाना अधिक उन्नत तकनीकी ज्ञान का द्योतक है । एक उदाहरण मे ग्लेज के ऊपर चित्रण भी किया गया था ।

सिंधु सभ्यता मे काचली मिट्टी से बने विभिन्न जानवरों, यथा भेड, बन्दर, कुत्ता, गिलहरी की आकृतिया बहुत सुदर बन पडी हैं । काचली मिट्टी के बने मनके विशाल संख्या में प्राप्त हुए है । कुछ छोटे आकार के बर्तन भी मिले हैं । ये या तो देवताओं को चढाए जाते थे या फिर इनमें प्रसाधन के लिए कीमती तैल, इत्र इत्यादि रखे जाते थे । ये बहुत सावधानी से बने है और आसानी से टूटने वाले है, अत इन्हे बच्चों के खिलौने मानना ठीक नही होगा । क्रीट को छोड कर अन्य प्राचीन सभ्यताओ मे काचली मिट्टी के बर्तन उपलब्ध नही । काचली मिट्टी के थोडे से उत्खचन भी मिले हैं । कुछ उत्खचन पेस्ट के भी मिले

है। इनमें से कुछ बर्तनों को अलग टुकडों में बना कर उसे पेस्ट से जोड़ा गया है।

हाथी दांत और हड्डी के उपकरण

यद्यपि अनेक मुद्राओं पर हाथी का चित्रण है, जिससे सिधु सभ्यता के लोगों का भलीभांति परिचित होने और उनके काफी संख्या में होने की संभावना लगती है, फिर भी सिंधु सभ्यता मे हाथीदात की बनी वस्तुए अपेक्षाकृत कम हैं। मोहे-जोदडो की अपेक्षा हडप्पा में ये अधिक मिली है। इनके कम मिलने के कारण के बारे मे मैके ने यह अनुमान लगाया है कि शायद हाथी पवित्र माना जाता था और इसलिए केवल इसके मरने के बाद ही जो हाथी दात पडे रहते थे उन्ही का उप-योग होता था, पर ऐसी सभावना कम है। हाथीदात-निर्मित कुछ वस्तुएं तो काफी अच्छी दशा मे मिली है लेकिन कुछ क्षतिग्रस्त है। मोहेजोदडो के एल (L) क्षेत्र मे एक खंडित हाथीदात के फलक (Plaque), जो लगभग 4 86 सेमी लंबा, 2 55 सेमी चौडा और 1 सेमी मोटा है, के मुख-भाग मे एक पुरुष आकृति बायी ओर मुख किये है, उसके हाथ कमर पर है। यह पुरुष बहुत कुछ मुद्राओं मे अकित मानवाकृति वाले लिपिचिह्न के समान है। यह एक टोपी पहने है और एक छोटा लगोटा। उसकी पीठ पर धनुष जैसी वस्तु है। हाथीदात की कुछ ऐसी वस्तुएं मिली है जो संभवत किसी धार्मिक अनुष्ठानो मे प्रयुक्त होती थी। हाथीदात की कंघी भी मिली है। कुछ बेलनदार लेखयुक्त हाथीदात की कृतिया शायद मुद्राएं थी। बालो पर लगाने की पिनें और सुइया भी बहुत अल्प संख्या मे मिली है। हाथीदांत के कुछ हत्थे भी है। हाथी दात की पैनी नोक वाली मोटी सुई की तरह के उपकरणो का प्रयोग भोजपत्र जैसी वस्तु पर लिखने के लिए भी हो सकता था। मोहेजोदडो से हड्डी की बनी सुइयो जैसे उपकरण प्राप्त हुए है। हिरन के सीग मिले है। शायद इनका प्रयोग औषधि के लिए होता था, हिरन के सीग के ही अत्यल्प संख्या में हत्थे भी उपलब्ध है।

शंख

सिधु सभ्यता के लोगों को शख अपार मात्रा में उपलब्ध था और यद्यपि इसकी भंगुरता के कारण इसकी वस्तुएं बनाना हाथीदात की अपेक्षा कुछ कठिन होता है, पर कुछ मानों मे यह उपकरणो के निर्माण के लिए हाथीदात से भी बढिया वस्तु है। सिधु सभ्यता के कारीगर शख से वस्तुए बनाने मे अत्यंत दक्ष थे। मोहेजोदडो के एल क्षेत्र मे अनेक स्थलों पर थोडी संख्या मे पूरे और आधा काम किये शंख पाये गये जिससे स्पष्ट है कि वहा पर शंख का काम होता था। शख की मुख्यत चूडिया व मनके बने है। उत्खनन के लिए भी शख का प्रयोग

होता था। उत्खनन मे पंखुडियां (जो फूल के डिजाइन का अंग रही होंगी); सीढ़ीनुमा डिजाइन, क्रास डिजाइन, फुल्लिका, हृदय की आकृति का डिजाइन, पत्ती आदि डिजाइन मिलते है। शख के बडे चमचे काफी संख्या मे प्राप्त हुए। मेसोपोटामिया मे भी इस तरह के चमचे मिले है। शंख के तश्तरी की जैसी आकृति के बहुत थोडे बर्तन भी है। सुमेर मे इस तरह के बर्तन अपेक्षाकृत अधिक मिले हैं। लोथल से शंख का बना एक दिशामापक यंत्र मिला है। यह बेलनाकार और अंदर से खोखला है। उसके छोरों पर चार दरारे हैं। इस उपकरण की सहायता नगर-निर्माण मे भवनो तथा नालियो की सीध बाधने में और भूमि की पैमाइश मे ली जाती रही होगी।

●

अध्याय 11

धार्मिक विश्वास और अनुष्ठान

सिधु सम्यता काल के धार्मिक जीवन से संबंधित कोई साहित्यिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। जानकारी के सभी स्रोत पुरातत्व संबंधी है। मुद्राओं, मृद्-भाण्डों आदि पर जो लेख मिले है, वे पढे नही जा सके है। धार्मिक जीवन के संबंध में ज्ञान प्राप्ति के पुरातात्विक स्रोतों मे मूर्तिया, मुद्राए, मृद्भाण्ड, पत्थर अन्य पदार्थों की बनी लिग और चक्र की आकृतिया, ताम्र फलक, कुछ विशिष्ट भवन तथा कब्रिस्तान मुख्य है। सिधु सम्यता जैसी विकसित सम्यता मे धार्मिक कर्मकाण्डो के साथ-साथ दार्शनिक विचारधारा भी रही होगी। किंतु पुरातात्विक स्रोतों से धर्म के गूढ तथा दार्शनिक पक्ष का उद्घाटन नही हो सकता, केवल तत्कालीन लोकप्रिय धार्मिक विश्वासों तथा मान्यताओं पर ही कुछ प्रकाश पडता है और इस सबध मे भी जो मत विद्वानो ने व्यक्त किये है वे सब अनुमान पर आधारित है और विवादास्पद है। तत्कालीन धर्म के स्वरूप का अनुमान लगाने के लिए दो मुख्य आधार है—एक तो समकालीन अथवा लगभग समकालीन मेसोपोटामिया का साक्ष्य और दूसरा ऐतिहासिक कालीन भारतीय साक्ष्य। सिधु सम्यता के लोगों और सुमेरी तथा तत्कालीन अन्य सम्कृतियो के लोगों मे परस्पर व्यापारिक सबंध थे और उन्होने एक दूसरे की सस्कृति तथा धर्म को भी प्रभावित किया होगा। चूँकि प्राचीन मेसोपोटामिया के लेखो की लिपि पढ लिए जाने के कारण वहा पर उस समय प्रचलित धर्म के विषय मे बहुत कुछ निश्चित जानकारी प्राप्त है, अत. लिखित साक्ष्यो के अभाव मे सिधु सम्यता के अवशेषो का, मेसोपोटामिया के अवशेषो के सबध में प्राप्त हुई जानकारी से तुलनात्मक अध्ययन सिंधु सम्यता के लोगों के धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालने मे सहायक सिद्ध हो सकता है परंपरा की कडिया मज-बूत होती है, वे कठिनाई से मिटती है। अत जब हम पुरैतिहासिक काल के अवशेषों मे ऐतिहासिक कालीन मूर्तियो के जैसे कुछ लक्षण पाते है अथवा धार्मिक आख्यानो का कुछ प्रतिरूप देखते है तो उनके एक ही धार्मिक परपरा पर आधारित होने की सभावना मानना स्वाभाविक-सा है। दूसरे शब्दों में ज्ञात (ऐतिहासिक काल के) साक्ष्य से हम अज्ञात (पुरैतिहासिक काल) के बारे अनुमान लगा सकते है। किंतु इस तरह के साक्ष्यों पर आधारित निष्कर्ष

निश्चित नही कहे जा सकते अत उन पर मतभेद होना स्वाभाविक है। सिंधु सभ्यता के उद्घाटन से पूर्व अधिकाश विद्वानो की यह धारणा रही है कि भारतीय धर्म और संस्कृति के अन्य क्षेत्रों मे जो भी अच्छी और महत्त्वपूर्ण बातें है वे सब आर्यों की देन है और अनार्यों का संस्कृति के निर्माण मे अत्यल्प और महत्त्व-हीन योगदान रहा है और उनके इस योगदान मे बर्बर तथा निम्नकोटि के तत्त्व ही अधिक है। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इसका खण्डन भी किया था और उन्होंने हिन्दू-धर्म के कुछ महत्त्वपूर्ण धार्मिक एव दार्शनिक विश्वासों को अनार्यों की देन माना, तथापि निश्चित साक्ष्यों के अभाव मे उनके मत की पुष्टि न होने के कारण यह मत अधिकाश लोगों को ग्राह्य नही हो सका। अत सिंधु सभ्यता के विभिन्न उपकरणो मे उस काल के धर्म का स्वरूप निर्धारण करना इस संदर्भ मे और भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

हडप्पा संस्कृति मे ऐसा कोई भवन नही मिला है जिसे सर्वमान्य-रूप से मदिर की सज्ञा दी जा सके, जबकि समकालीन मेसोपोटामिया के उत्खननो से मदिरो के अनेक निश्चित और महत्त्वपूर्ण अवशेष मिले है। व्हीलर का कहना है कि मोहेंजोदडो के उत्खात क्षेत्र मे दो या तीन ऐसे भवन है जो मंदिर हो सकते थे.—एच आर क्षेत्र मे एक आयातकार घर, जो एक छोटा किन्तु सुदृढ और महत्त्वपूर्ण है, मे प्रवेश के लिए बाहरी द्वार और दो सीढियाँ है। इस भवन से दो पत्थर की मूर्तियाँ मिली थी। उन्होने उसी क्षेत्र में अन्यत्र स्थित अलग-अलग वास्तुखंडो मे निर्मित भवन को पुरोहितों का 'कालेज' और उसके समीप स्थित भवन को मदिर अथवा पुलिस स्टेशन माना है। मोहेंजोदडो के गढी मे जिस स्थान पर परवर्ती (कुषाण) काल मे एक स्तूप का निर्माण किया गया वह सभवत सिंधु सभ्यता के समय मे भी पवित्र स्थल रहा हो, और इस धारणा के आधार पर उसके नीचे प्राचीन धार्मिक भवन के अवशेष मिलने की संभावनाएं व्यक्त की गई है। किन्तु जबतक इस स्थल पर उत्खनन द्वारा नीचे की परतो को उद्घाटित नही किया जाता तब तक इस विषय मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। यह भी सुझाव दिया गया है कि मंदिर लकडी के बने थे, जो अब नष्ट हो गये है। लेकिन यह तर्क बहुत प्रभावशाली नही है। यह उल्लेखनीय है कि हडप्पा सभ्यता के लगभग सभी क्षेत्रो मे परम्परा और रूढिवादिता का प्रभाव दिखता है। कुछ विद्वानो की यह धारणा है कि सिंधु सभ्यता का शासन तंत्र भी प्राचीन मेसोपोटामिया (जहाँ के बारे मे निश्चित अभिलेखीय साक्ष्य उपलब्ध है) के समान ऐसे शासक द्वारा चलाया जाता था जो धर्म का भी सर्वोच्च अधिकारी था और शासन के क्षेत्र मे भी। यदि यह धारणा सही है तो धार्मिक क्रिया-कलापों और अनुष्ठानो का इस सभ्यता मे अत्यत महत्त्वपूर्ण स्थान

होना स्वाभाविक था। उत्खननों से कोई मूर्ति ऐसी नहीं मिली है जिसे निश्चय-पूर्वक देवता की मूर्ति निर्धारित किया जा सके। वैसे कुछ ऐसी मूर्तिया है जिन्हे धार्मिक उद्घोषित किया गया है। उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर सिधु सभ्यता के लोगो के धर्म के बारे मे जो भी अनुमान लगाये गये हैं, उनका विवरण निम्न-लिखित पृष्ठों मे दिया गया है।

भारत मे पुराकल से ही जल की पवित्रता का विशेष महत्त्व रहा है। शुभ तिथियो और पुनीत अवसरों पर तीर्थ-स्थान पुण्य-कर्म माना जाता रहा है। केवल दैनिक स्नान ही नही अपितु दिन मे दो तीन बार स्नान करने का विधान शास्त्रों मे मिलता है। साधारणतया प्रत्येक महत्त्वपूर्ण मंदिर के साथ एक तालाब भी जुड़ा रहता है। मोहेंजोदडो के उत्खननो से मोटी दीवालो से बनी विशाल तथा सुदृढ इमारत मिली जिसे 'विशाल स्नानागार' नाम दिया गया है। इसके आँगन मे जो कुण्ड है उसका प्रयोग कदाचित् धार्मिक पर्व मे विशिष्ट व्यक्तियों के स्नान-कार्य के लिए होता था। इस भवन के चारों ओर कुछ अन्य इमारते और स्नानागार थे। स्नानागारों के ऊपर भी एक मंजिल थी। कुछ पुराविदो का अनुमान है कि यहा पुजारी लोग निवास करते थे और विशेष अवसरों पर ही स्नान के लिए नीचे उतरते थे। जैसा कि मार्शल ने लिखा है 'स्नान का जितना प्रबंध सिंधु सभ्यता मे किया गया था उतना शायद ही विश्व की किसी प्राचीन सभ्यता मे रहा हो।' यह सही है कि अधिकाश मेसोपोटामिया के मंदिरो के पास भी एक एक कुआ पाया गया है जो इस बात का द्योतक है कि मंदिर मे लोग हाथ-पाव धोकर प्रवेश करते थे लेकिन सिधु सभ्यता मे तो स्नानकक्ष हर घर का आवश्यक अग था। विद्वानो का मत है प्रत्येक घर मे स्नानकक्ष का निर्माण केवल स्वच्छता के कारण ही नही किया गया था बल्कि इसके पीछे धार्मिक भावना भी अंतर्विष्ट रही होगी।[1]

हड़प्पा, मोहेजोदडो, चंहुदडो इत्यादि स्थलों की खोदाई मे मिट्टी की अनेक नारी आकृतिया उपलब्ध हुई है (फ० XI, XII) वे प्राय. पखाकार शिरो-भूषा, कई कई लडी वाले हार, चूडियां, मेखला तथा कर्णाभरण पहने है। पंखाकार शिरोभूषा के दोनो ओर दाये बाये दीपक जैसी आकृतिया बनी है जिनमे कालिख लगी मिली है। कालिख इस बात का द्योतक लगती है कि इनमे दीप-बाती या

1. ऋग्वेदिक युग में नदियों का लोगों के जीवन मे पर्याप्त महत्त्व रहा। वे इन्हे 'विश्वस्य मातरा.' मानते थे। परवर्ती काल मे भी सिंधु क्षेत्र मे जल-पूजा का विशेष प्रचलन रहा है; यहाँ पर एक संप्रदाय 'दरियापंथी' था जो 'नदी पूजक' थे।

धूप जलायी गयी होगी । मैंके का मत है कि संभवत इनमें तेल बाती डालकर इनका प्रयोग दिये की तरह किया गया होगा । यद्यपि वे यह स्वीकार करते हैं कि आधुनिक काल में मूर्ति को ही दिया की तरह जलाने की प्रथा नही मिलती । यह धारणा कि ये धब्बे मूर्ति पर घी जैसी किसी चीज के लगाने से पड़े हैं इसलिए ठीक नही मालूम देती कि ऐसे धब्बो का भूमि में लंबे समय तक मूर्ति के दबे रहने के कारण बने रहना कठिन था । किसी किसी मूर्ति मे नारी आकृति के साथ शिशु भी दिखलाया गया है । मैंके का कहना है कि ये मूर्तिया दीवारो के आलों में रखकर पूजी जाती थी। उनका पृष्ठ भाग सफाई के साथ न बना होना इस बात का द्योतक है कि वह भाग दिखलायी नही देता था, और यह भी मैंके के उपर्युक्त मत की पुष्टि करता है । जैसे मैंके ने व्यक्त किया है, जन साधारण के लिए मातृदेवी की पूजा पुरुष देवताओ की अपेक्षा अधिक सहज है क्यों कि मां के रूप मे वह अन्य देवताओं की अपेक्षा, भक्त के अधिक निकट हो सकती है । प्राय. सभी विद्वान सिंधु सभ्यता काल की अधिकाश नारी मृण्मूर्तियो को मातृ-देवी की मूर्तिया मानते हैं ।

जिन मृणमूर्तियों मे गर्भिणी नारी का रूपाकन है उन्हे पुत्र-प्राप्ति हेतु-चढाई गई उद्देशिक भेट माना जा सकता है । चहुदडो से प्राप्त इस वर्ग की मूर्तिया विशेष आकर्षक हैं । इनमे से कुछ मृण्मूर्तिया मात्र खिलौने के लिए भी अभिप्रेत हो सकती थी ।

बलूचिस्तान स्थित कुल्ली नामक स्थान मे पायी गयी नारी मृण्मूर्तियो मे सौम्य रूप मिलता है लेकिन बलूचिस्तान की ही झोब सस्कृति की नारी मृण्मूर्तियों मे रौद्र रूप व्यक्त हुआ है । ये मृण्मूर्तिया मातृ-देवी के सौम्य तथा रौद्र रूप की परिचायक लगती हैं । अफगानिस्तान के मुण्डीगाक की मूर्तियों तथा हड़प्पा सस्कृति की मृण्मूर्तियों मे पर्याप्त साम्य है। ये विशेष सुंदर नही हैं और सौम्य रूप की परिचायक लगती है । भारत के बाहर प्राचीन एलम, मेसोपोटामिया, ट्रान्स-काकेशिया, एशिया-माइनर, सीरिया, फिलस्तीन, क्रीट, बल्कान और मिस्र मे विशाल सख्या मे प्राप्त हुई नारी आकृतियाँ इस बात के प्रमाण है कि पुराकाल मे पश्चिमी एशिया मिस्र आदि देशों मे मातृदेवी की उपासना प्रचलित थी । कुछ विद्वानो की धारणा है कि एशिया-माइनर के अनातोलिया क्षेत्र से ही मातृ-देवी की पूजा का प्रारंभ हुआ है ।

जैसा कि पुराविद् मार्शल का मत है भारत में मातृदेवी मान्यता की जडें बहुत गहरी हैं । आज भी ग्राम देवता के रूप मे अधिकाशत· मातृदेवी ही प्रतिष्ठित मिलती है आदिम भारतीय जातियों और अधिकांश ग्रामीणों के धर्म मे मातृ-

देवी की उपासना सर्वोपरि है और उनमें उसकी पूजा के लिए पुजारी का काम ज्यादातर नीची जाति के लोग करते हैं, ब्राह्मण नही। उसे प्रकृति, सृष्टि की अनादि शक्ति और पुरुष की सहचारिणी के रूप में मान्यता प्राप्त है। वैदिक काल में 'पृथ्वी' 'अदिति' आदि देवियों का उल्लेख है लेकिन वैदिक काल में मातृदेवियों की संख्या और उनका महत्त्व इतना नही था जितना कि इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि पुरुष देवताओं का। बाद मे शाक्त धर्म में देवी को सृष्टि-कर्त्री तथा विनाशकर्त्री कहा गया है और यह धारणा दृढ होती गयी कि वही पुरुष के साहचर्य से विश्व की सृष्टि करती है। वह अत्यन्त अतीत युग से 'शक्ति' के रूप मे पूजनीय है। दुर्गा, गौरी, पार्वती, काली तथा चामुण्डा उसी के विभिन्न रूप है। शाक्तों के अनुसार वह प्राण-शक्ति है, जिसके बिना जीवन संभव नही। शिव भी बिना देवी की शक्ति के शव मात्र है। सिंधु सभ्यता में भी इस तरह की कोई धारणा थी, यह कहना अत्यन्त कठिन है। लेकिन यह उल्लेखनीय है कि मिस्र, फिनीशिया, एशिया-माइनर और अन्य देशों की प्राचीन सस्कृतियो में देवी के सहचर की कल्पना की गयी है जिसकी सृष्टि भी देवी स्वयं करती है। क्या पता समकालीन सिधु सभ्यता मे भी ऐसे ही देवी के सहचर की धारणा रही हो।

यह कहना कठिन है कि उस काल मे मातृदेवी की पूजा स्वतंत्र रूप से होती थी अथवा किसी देवता की शक्ति के रूप मे। वैसे इन आकृतियों के अवि-कसित वक्ष-स्थल के निरूपण के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि अधि-काशत कुमारी के रूप मे ही उसकी पूजा की जाती थी। अन्य समकालीन सभ्यताओ मे देवी की पूजा पुरुष देवता की सह-धर्मिणी या माता के रूप मे प्रचलित थी। अधिकाश पुराविदो का विचार है कि आर्यो ने भी (जिनके देव शास्त्र मे देवियो का स्थान पुरुष देवताओ की अपेक्षा गौण है) प्राग् आर्य लोगों से सास्कृतिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप मातृदेवो को एक महान देवता के रूप मे अपना लिया।

मृण्यमूर्तियो के अतिरिक्त कुछ मुद्राओं के अध्ययन से भी पृथ्वी या मातृ देवी की उपासना पर प्रकाश पडता है। हडप्पा से प्राप्त एक अभिलेख वाली मुद्रा पर दाहिनी ओर स्त्री सिर के बल खडी है। उसकी योनि से एक पौधा प्रस्फुटित होता दिखलाया गया है। बाये ओर दो बाघ है। इस चित्रण में संभ-वतः मातृदेवी की प्रजनन शक्ति वाले स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यह आकृति पृथ्वी देवी की हो सकती है जो कि संपूर्ण वनस्पति जगत की उत्पत्ति का आधार है। इस तरह के मातृदेवी के उदाहरण मेसोपाटा-

मिया से भी उपलब्ध हैं। भीटा के एक कुषाणकालीन गोल चपटे फलक पर जिसमें नारी के शरीर से पुष्प निकलता दिखलाया गया है, इसी भाव की अभिव्यक्ति हुई लगती है। इसी (मोहेंजोदडो से प्राप्त) मुद्रा के दूसरी ओर एक नारी और पुरुष दिखाए गये है। पुरुष के हाथ में हंसिया जैसी कोई वस्तु है। स्त्री बैठी है और उसके हाथ ऊपर को उठे हैं तथा बाल बिखरे हुए है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुष बैठी हुई स्त्री का वध करने वाला है। मार्शल का सुझाव है कि कदाचित् यह मुद्रा के दूसरी ओर दिखाई गई पृथिवी देवी को बलि दिये जाने का अंकन है।

मोहेंजोदडो तथा हडप्पा से विभिन्न पदार्थों से बने चक्र (फ०XXV, 1) विशाल संख्या मे पाये गये है। इनका व्यास 1 27 सेमी से 1 21 मीटर तक है। बडे चक्र पत्थर के हैं तथा छोटे पत्थर, काचली मिट्टी, शख तथा कार्नीलियन के है। कुछ चक्रों का निचला हिस्सा चपटा है, ऊपर चतुर्पन्नी है, और कुछ के ऊपर और नीचे की सतह नतोन्नत है। हेनरी कज़िन्स के अनुसार इनका उपयोग सभवत स्तभों के शीर्ष भाग को अलंकृत करने मे किया जाता था। बडे चक्रों के लिए तो ऐसा सोचा जा सकता है किन्तु कुछ चक्र तो इतने छोटे है कि उनका स्तम्भ के शीर्ष के रूप मे उपयोग का प्रश्न हो नही उठता। कुछ विद्वान् इस तरह के चक्रो को पाषाण-मुद्रा होने का सुझाव देते है। पाषाण-मुद्रा के प्रचलन के साक्ष्य कुछ आदिम सभ्यताओं मे अवश्य मिलते है, किन्तु सिधु जैसी विकसित नगर सभ्यता मे, जिसका व्यापारिक तथा सास्कृतिक सबध सुदूर देशों के साथ था और जिसके निवासी सोना, चाँदी, ताँबा आदि अनेक धातुओ का विभिन्न वस्तुओं के निर्माण के लिए प्रयोग करते थे, विनियम के लिए पाषाण-मुद्रा अपनाये जाने की सभावना कम लगती है।

पाषाण एवं अन्य पदार्थों मे निर्मित बीच मे छेद वाले चक्र भारत मे अति प्राचीन काल से दैवी शक्ति से संपन्न माने जाते है। मौर्य और शुङ्ग काल के पाषाण-चक्र तक्षशिला, रोपड, अहिच्छत्र, मथुरा और पाटलिपुत्र आदि अनेक ऐतिहासिक स्थानों से पाये गये हैं। इनमें मे कुछ चक्रो पर वृक्षों तथा पशुओं के साथ-साथ नग्न नारी आकृतिया दिखाई गई है। संभवत इनका सबध भी मातृ-देवी की उपासना मे था। यह चक्र योनि के प्रतीक भी हो सकते हैं। यहां यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि आरेल स्टाइन को बलूचिस्तान के पेरियानो घुडई नामक स्थल मे योनि का यथार्थ अंकन मिला है जो इस बात का द्योतक है कि पुरैतिहासिक काल मे योनि का यथार्थ तथा प्रतीक दोनों रूप मे ही अकन होता था। हो सकता है कि सिधु सभ्यता के कुछ चक्र स्तम्भ-शीर्ष की तरह

प्रयुक्त होते रहे हों किंतु जिन चक्रों का इस तरह का कोई उपयोग नहीं सुझाया जा सकता उनका धार्मिक महत्त्व स्वीकार करना ही समीचीन लगता है और इन्हें प्रजनन शक्ति का प्रतीक मानना गलत न होगा। आज शैव मन्दिरों में लिंग-योनि की संयुक्त आकृतियां स्थापित की जाती है, किन्तु यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि हड़प्पा सभ्यता में लिंग और योनि सबद्ध नही मिलते।

मोहेंजोदड़ो के उत्खननों से एक महत्त्वपूर्ण मुद्रा (मार्शल, स० 420) की उपलब्धि हुई (फ० XVI, 1) जिससे हडप्पा सस्कृति के लोगों के धार्मिक विश्वास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पडा है। इस मुद्रा पर एक पुरुष आकृति अकित है जो त्रिमुखी लगती है। वह योगासन मे एक चौकी पर बैठी है। उसके सिर पर सींग की सी आकृति बनी है। कलाई से कधे तक उसकी भुजाए चूडियो से लदी है। मार्शल के अनुसार उसका वक्ष कवच से आवृत्त है। आकृति की दायी ओर हाथी और बाघ तथा बायी ओर गैंडा और महिष है। आसन के नीचे दो हरिण दिखलाये गये थे जिनमें से एक की आकृति खंडित है। मुद्रा पर लेख भी है जो पढा नही जा सका है। मार्शल इस अकन को शिव पशुपति का प्राग् रूप मानते है।

साहित्य मे शिव को 'त्रिवक्त्र', 'त्रिशीर्ष' कहा गया है। ऐतिहासिक काल मे शिव की मूर्तिया तीन,-चार अथवा पाच मुख वाली बनायी जाती थी, उनको त्रिनेत्र भी दिखाया जाता है। वे 'त्र्यम्बक' भी कहलाते है। 'त्रिक्' की कल्पना मेसोपोटामिया और भारत मे प्राचीन काल से प्रचलित थी। मेसोपोटामिया मे सिन, शमेश और इश्तर तथा अनु, इनिल और इअ की तिकडिया थी।

आकृति को योगासन मे दिखलाया जाना महत्त्वपूर्ण है। ऐतिहासिक काल मे देवताओ मे, योगी के रूप मे, मुख्यतया शिव ही विख्यात है। वह 'महातप', 'महायोगी', 'योगीश्वर', 'योगाध्यक्ष' कहे गये है। भारत मे दैवी शक्ति प्राप्त करने के अनेक माध्यम माने गये है जिसमे मानसिक अनुशासन तथा ध्यान-समाधि का विशेष महत्त्व होता है। शैव धर्म के मुख्य तत्व तथा योग दोनों ही प्राग् आर्य-कालीन विशेषतायें प्रतीत होती है, जो आगे चलकर भारतीय धर्म एव दर्शन के महत्वपूर्ण अग हो गये।

शिव योगीश्वर होने के साथ-साथ पशुपति भी कहे जाते है। वैदिक काल मे रुद्र, शिव, वन्य तथा पालतू पशुओ के देवता थे। मिनिआन-क्रीट की कलाकृति मे एक देवी और एक देवता को जिसकी पहिचान ठीक से नही हो सकी है, सिंह अथवा चीते के साथ अनेकशः दिखलाया गया है। अनातोलिया मे सिबेल (Cybele) देवी को भी सिंहों के साथ दिखाया गया है। कुछ के अनुसार मोहे-जोदड़ो की मुद्रा पर प्राप्त चार पशु चार दिशाओं के द्योतक हो सकते है और

प्रतीकात्मक रूप से देवता को चारों दिशाओं का स्वामी दिखाना हो सकता है। इस संदर्भ मे पशुओं की अशोक के सारनाथ स्तंभ के शीर्ष की चौकी पर अंकित पशुओं के प्रतीकवाद से तुलना की गई है और यह भी संभावना व्यक्त की गई है कि संभवतः शिव को भी चार मुख वाला दिखाने की चेष्टा की गई है और चतुर्थ मुख के पीछे की ओर होने की कल्पना करनी पडेगी। बाघ को आक्रामक मुद्रा में शिव की ओर झपटते हुए अंकित किया गया है। हरिणों को छोडकर बाकी पशुओं के अंकन में भी यही हिंसा भावना दिखाना अभिप्रेत लगता है। महायोगी समाधिस्थ आसीन है। इस पुस्तक के प्रथम लेखक ने कुछ वर्ष पूर्व सुझाया था कि क्या पता इस काल मे, बाद के काल की भांति शिव से संबधित कोई ऐसा आख्यान रहा हो जिसमे शिव की आक्रामक पशुओं पर विजय की बात हो जिसके उपलक्ष मे उन्हे 'पशुपति' नाम मे विभूषित किया गया हो, और बाद मे शिव भक्तों ने पशुपति का दार्शनिक अर्थ किया हो जिसके अनुसार सभी मानव पशु है और शिव उनके स्वामी है।

श्रृंग का भी शिव के साथ सबध है। महाभारत मे शिव को 'त्रिश्रृंग शीर्ष' कहा गया है। बगाल मे शिव की कुछ मूर्तियो मे शिव के हाथ मे सीग का एक वाद्य यत्र दिखाया जाता है। मोहेजोदडो की कुछ मृण्मूर्तियो मे भी श्रृंग दिखलाया गया है। हडप्पा की मुद्राओं पर श्रृगयुक्त आकृति का अकन है। सुमेर तथा बेबीलोन मे श्रृग देवत्व का सूचक माना जाता था। मानव रूप मे जन्म लेने के पहले देवता पशु रूप मे होते हैं, ऐसी धारणा पुराकाल में कुछ देशो मे प्रचलित थी। इसी परपरा की अभिव्यक्ति उनकी मूर्तियो मे भी हुई है। मार्शल का अनुमान है कि सभवत. इसी दो सीग के अभिप्राय को परवर्ती काल मे शिव के त्रिशूल का रूप दे दिया गया। (अगर दोनों सीगों के बीच मे एक नोक और हो तो त्रिशूल की आकृति बन जाती है)। ऐसा भी मत है कि कालातर मे बौद्धो ने त्रिक् के भाव को त्रिरत्न के रूप मे व्यक्त किया।

इस मुद्रा पर आसन के नीचे हरिण युग्म का होना कम महत्त्व का नही है। शिव की मध्यकालीन योगदक्षिणा मूर्तियो मे शिव हरिण पकडे दिखलाये गये है। हरिण युग्म को बुद्ध की धर्मचक्रप्रवर्तन मूर्तियों मे भी दिखलाया गया है।

इस प्रकार मोहेजोदडो की इस मुद्रा पर शिव की ऐतिहासिक कालीन कुछ विशेषताओं का अंकन हुआ लगता है, और इसीलिए मार्शल ने इसे ऐतिहासिक शिव-पशुपति का प्राग् रूप की सज्ञा दी। उस युग मे यह देवता किस नाम से जाना जाता था, यह ज्ञात नही।

यद्यपि अधिकांश विद्वानो ने मार्शल की धारणाओं से सहमति प्रकट की है

तथापि कुछ ने इससे भिन्न मत भी प्रकट किये है। सॅलेतोरे ने इस आकृति को अग्नि पहचाना है। रायचौधुरी का कहना है कि पशुओं में शिव के वाहन वृषभ की अनुपस्थिति के कारण इस आकृति की पहिचान शिव (पशुपति) से करना समुचित नही है। उनके अनुसार शिव-पशुपति का प्राग् रूप हिताइत देव-मंडलों में प्राप्त है हिताइत लोगों के प्रमुख देवता तेशुब वैदिक रुद्र की भाति ही है; वह आंधी से सबंधित हैं, वृषभारूढ और त्रिशूल-धारी है। उनकी पत्नी हेपत, शिव-पत्नी दुर्गा की भांति त्रिशूलधारिणी और सिंहवाहिनी है।

इस आकृति की पहचान के संबंध में केदार नाथ शास्त्री का मत सर्वथा भिन्न है। उनके अनुसार मुद्रा पर जो आकृति उभारी गई है वह तीन-मुखी तो है ही नही, मानवमुखी भी नही है। उनके अनुसार यह महिष-सिर वाला देवता है। इसके अंग अलग-अलग पशुओं के है। इसकी भुजाए कनखजूरे और पैर सर्प से बने है। इसका धड बाघ का और सिर महिष का है। उनके अनुसार इस देवता को विभिन्न पशुओं के अंगों से बनाने की कल्पना का आधार यह था कि भक्त लोग देवता को इन सभी पशुओं की विशेषताओं से युक्त देखना चाहते थे और उससे उन गुणों की प्राप्ति हेतु प्रार्थना करते थे। वे इस सदर्भ मे यह भी उल्लेख करते है कि ऐतरेय ब्राह्मण में रुद्र को अत्यन्त भयानक तत्त्वो से बना हुआ बताया गया है। टी० एन० रामचन्द्रन, ऋग्वेद के एक मंत्र के आधार पर इसे सोम की आकृति के रूप मे पहचानते है। ऋग्वेद मे सोम के विषय मे लिखा है कि वह देवताओ मे ब्रह्मा है, कवियो मे श्रेष्ठ, ऋषियो मे ऋषि, पशुओ मे महिष और पक्षियो मे बाज है। रामचन्द्रन के अनुसार इस मोहेंजोदडो की मुद्रा पर अकित देवता को ऋग्वेद में पशुपति, अधिक मुख वाले होने के कारण ब्रह्मा और भैस के सीग के कारण महिष कहा है। हर्बर्ट सुल्लिवान का कहना है कि सभवत आकृति पुरुष की नही नारी की है। उनके अनुसार इस मुद्रा पर नारी आकृति को पशुओ मे घिरे दिखाने का उद्देश्य संभवत. मातृदेवी को पशु-जगत की स्वामिनी दिखाना था। लेकिन यदि उनका यह तर्क मान लिया जाय कि इसमें आकृति ऊर्ध्वलिंग नही दिखायी गयी है, तो यह भी स्वीकार करना पडेगा कि नारी के विशिष्ट अंग भी इसमे स्पष्ट रूप से नही दिखलाये गये है। कुछ विद्वानो ने इसकी पहिचान विश्वरूप त्वाष्ट्र से की है जिसका विवरण ऋग्वेद (10 99 6) मे है और जिसमे उसे तीन शिर और छह आख वाला बताया गया है। दीनबन्धु पाण्डेय ने इस आकृति को ऋग्वेद मे संदर्भित शृंग-शिरोभूषण धारण करने वाले विषाणिनों का देवता मानने का सुझाव दिया है।

मोहेंजोदडो से प्राप्त दो अन्य मुद्राओं पर भी इससे मिलती-जुलती आकृतिया है। इनमें से एक (आरेख 9.6) में देवता चौकीपर योगासन मुद्रा मे बैठा

है, हाथ दोनों ओर फैलाये है और दोनों हाथों में कई चूडिया पहने है । आकृति शृंगयुक्त है । मैके के अनुसार ये सीग (?) सिर से जुडे नही है शिरोभूषा के रूप में एक टहनी है जिससे पीपल के जैसी पत्तिया निकलती दिखाई गई है । आकृति त्रिमुखी है, एक मध्यवर्ती और दो पार्श्ववर्ती मुख है । दूसरी (मैके नं० 235) मुद्रा पर की आकृति भी शृंगयुक्त है तथा उसके सिर से वनस्पति निकलती दिखायी गयी है लेकिन वह एक मुखी है और भूमि पर बैठी है । इन आकृतियों की वनस्पति के देवता होने की संभावना है और शिव का भी वनस्पति जगत से बहुत कुछ सबंध रहा है जिसका उल्लेख वैदिक साहित्य मे आया है । यों उपर्युक्त इन दोनो आकृतियों और 'शिव पशुपति' की आकृति में पर्याप्त समानता है, यथा तीनो लंगोट जैसे वस्त्र को छोडकर नग्न है, तीनों हाथों मे कई ककण पहने है, तीनो शृगयुक्त है । किंतु केवल दो के सिर से ही वनस्पति निकलती दिखाई गई है; दो त्रिमुखी है एक एकाक मुखी। कालीबगा के एक मृत्पिड पर एक ओर सीग वाले देवता का अकन है दूसरी ओर मानव द्वारा बलि के लिए लाई बकरी को दिखाया है । यह भी शिव जैसे किसी देवता का अकन लगता है[1] । हडप्पा से प्राप्त एक मुद्रा (वत्स न० 307) मे एक देवता जैसी आकृति के शिरोभूषा मे तीन पख जैसे दिखाई गई है । यह भी कई भुजबंध पहने है । एक यही से प्राप्त अन्य मुद्रा (न० 318) मे भी देवता की इसी तरह की शिरोभूषा है । मोहेंजोदडो की एक मुद्रा (मैके न० 347) मे एक आकृति है जो आधा मानव आधा बाघ है इसके सीग है जिनके बीच मे फल-पत्ती निकल रही है । चोटी भी है । अगर आकृति पुरुप है तो यह भी 'शिव' का प्राग्रूप हो सकता है, अन्यथा यह शिव की सहचरी सिंहवाहिनी दुर्गा के समान देवी का अंकन है ।

हडप्पा की एक मुद्रा पर मध्य मे कोई आकृति बैठी हुई अकित है जो किसी देवता की लगती है । कुछ जानवर भी दिखाये गये है जिनकी पहचान करना कठिन है । एक पेड भी दिखाया गया है जिस पर बने मचान पर एक आदमी बैठा है । पेड के नीचे बाघ है । इस मुद्रा की दूसरी ओर एक बैल त्रिशूल के सम्मुख खडा है । फिर एक खडी आकृति एक काठ (?) की इमारत के सामने दिखाई गई है । बैठी आकृति की पहचान शिव से की गई है। बैल उसका वाहन है, त्रिशूल उसका आयुध तथा इमारत उसका पूजा गृह है । खडी आकृति भी शायद उसी देवता का अकन है ।

---

1 माकलिया इस सिलसिले मे यह सभावना व्यक्त करते है कि हिसार (ईरान) मे सोने के शृगयुक्त सिर और कोटदीजी, गुमला और बुर्जाहोम के बर्तनो पर वृषभ के सिर का अकन कालीबंगा के इस शृंगयुक्त शीर्ष वाली आकृति के पूर्व रूप हो सकते है ।

मोहेंजोदडो से प्राप्त मिट्टी की एक मुद्रा पर योगासीन मानवाकृति के दोनों ओर एक एक पुरुष खड़े अंकित है। पुरुष हाथ जोड़े है, उनके शरीर के पीछे सर्प फन दिखाए गये हैं। ये पुरुष नाग देवता हो सकते हैं। ऐतिहासिक काल में शिव का संबंध सर्पों के साथ अनिवार्य रूप में मिलता है। नागोपासना भी संभवत प्रागार्य कालीन भारत में प्रचलित थी जिसे कालान्तर मे सांस्कृतिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप शैव धर्म मे भी स्थान मिल गया।

एक ताम्र फलक पर एक पत्तों के बने वस्त्र पहने पुरुष हाथ मे धनुष-बाण लिए अंकित है (आ० 9,4) यह वनस्पति या उत्पादिका शक्ति से संबंधित देवता हो सकता है। ऐतिहासिक काल में शिव के किरात रूप की भी कल्पना की गई है जिसमे उन्हे शिकारी के रूप में दिखाया गया। हो सकता है कि ऐतिहासिक काल की इस धारणा के पीछे प्रागैतिहासिक काल की कोई परपरा रही हो। वैसे मार्शल ने इस आकृति के बारे मे कहा है कि यह मेसोपाटामिया के आख्यानों के गिल्गामेश का भी अकन हो सकता है। लेकिन वे इसके बारे मे निश्चित नही हैं। एक मुद्रा पर एक व्यक्ति बर्छे मे भैंसे पर वार कर रहा है। मैके के अनुसार यह बाद की शिव द्वारा दुंदुभी राक्षस को मानने के आख्यान से मिलते-जुलते आख्यान का द्योतक हो सकता है। जितेन्द्र नाथ बनर्जी ने तुलना के लिए इस सदर्भ मे मारकण्डेय पुराण मे वर्णित दुर्गा द्वारा महिषासुर वध का वर्णन उद्धृत किया है।

आज शिव के विभिन्न प्रकार की मानवाकृतिया निर्मित होती है लेकिन मदिरो मे पूजा के लिए शिव की मूर्ति नही अपितु शिवलिग को स्थापना की जाती है। मार्शल का कहना है कि यह निर्धारित करना कठिन है कि शिव की मानव रूप मे पूजा की जाती थी अथवा पूजा के लिए उनके प्रतीक का ही प्रयोग होता था।

सिंधु सभ्यता की सीगवाली पुरुष मृण्मूर्तिया देवता की परिचायक लगती हैं। कुछ विद्वानों की धारणा है कि एक समय ऐसा था जब देवता को पशु के रूप में पूजा जाता था। कालान्तर मे जब उन्हे मानव रूप में दिखाया जाने लगा तो पशु के सीगो को देवता के परिचायक के रूप मे बनाये रखा गया और मानव आकृति के साथ उन्हे सबद्ध कर दिया गया। लिंग के समान आकृतियाँ बलूचिस्तान और हडप्पा संस्कृति के मोहेंजोदडो, हडप्पा तथा लेथल इत्यादि स्थानों से पर्याप्त संख्या मे उपलब्ध हुई है (फ० XXV, 2, 3)। ये पत्थर, सीप, काचली मिट्टी और पेस्ट की बनी है। ये विभिन्न आकार की है जिनकी ऊँचाई लगभग 1.27 सेमी से लेकर लगभग 1 मीटर तक है। बड़े आकार के लिंग भी पत्थर के बने

हैं। कुछ तो लिंग का यथार्थवादी मूर्त रूप है और इस बात के निश्चित प्रमाण हैं कि भारत में प्रागैतिहासिक काल मे लिंग पूजा प्रचलित थी। बहुत से तो परंपरागत ढंग से बने लिंग लगते हैं। आज अधिकाश लिंग परपरागत शैली में ही बनते है जिन्हे आसानी से लिंग नही पहिचाना जा सकता। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि ऑरल स्टाइन को बलूचिस्तान के मोगल घुंडई नामक पुरैतिहासिक स्थल से लिंग का यथार्थ रूपाङ्कन मिला है। सिंधु सभ्यता के कुछ लिंगो के नीचे हिस्से मे छेद दिखता है और मार्शल का सुझाव है कि शायद नीचे की ओर के इस छिद्र की सहायता से लिंग को योनि से जोडा रहा होगा। आजकल तो लिंग को योनि के ऊपर ही बनाने की प्रथा है। विद्वानों का यह भी मत है कि कुछ छोटे आकार के लिंगो को ताबीज की तरह शरीर पर बाँधा जाता रहा होगा। लेकिन पारपरिक लिंग की तरह के छोटे-छोटे उप-करणो में से कुछ शतरंज की तरह के किसी खेल की गोटियाँ भी हो सकती हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है यह निर्धारित करना कठिन है कि लिंग की पूजा शिव पूजा का ही अंग थी या स्वतत्र रूप से प्रचलित थी। वैसे पाषाण-पूजा की परपरा भारत तथा इतर देशो मे अति प्राचीन है। कुछ पाषाणों को उनके विशिष्ट आकार प्रकार के कारण आदि काल से ही लोगों द्वारा धार्मिक महत्त्व दिया जाने लगा था। बाद में उन पर देवी-देवताओं और मृतको की आत्माओं का निवास मान लिया गया और उन्हे जीवन्त भी समझा गया। यह धारणा प्रचलित रही है कि मानव द्वारा पूजे जाने पर ये उनके खेतो मे फसल की रखवाली करते हैं और मानव तथा पशुओ के स्वास्थ्य की रक्षा करते हैं। आज भी पत्थर शालिग्राम के रूप मे विष्णु, लिंग के रूप मे शिव और योनि के रूप मे देवी के प्रतीक माने जाते हैं। ऐतिहासिक काल मे लिंगों का वर्गीकरण अनेक धार्मिक ग्रंथो मे मिलता है और प्राकृतिक रूप मे प्राप्त लिंग की सी आकृति वाला पत्थर स्वयभू लिंग कहा गया है।

सफेद सेलखडी का एक धड़ जिसका विस्तृत विवरण 'पाषाण तथा धातु की मूर्तियां' अध्याय मे दिया गया है, धार्मिक महत्त्व की लगती है। उसके नेत्रो का अधखुला होना और दृष्टि नासिका पर केन्द्रित होना उसके योगी होने का परिचायक है (मैंके इसे निश्चित रूप से ऐसा नही मानते) और शाल पर तिपतिया अलंकरण भी जो धार्मिक अभिप्राय लगता है, उसे धर्म से संबद्ध करता है। कुछ विद्वान इसे योगी की मूर्ति मानते हैं। कुछ देवता की और कुछ पुजारी की।[1]

---

1. टी०एन० रामचन्द्रन की पहचान इन सबसे भिन्न है। उनके अनुसार यह वैदिक यज्ञ करने वाले राजा की आकृति है जिसमें वह यज्ञ के अवसर के उपयुक्त सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण पहने हुये है।

वृक्ष-पूजा

ऐतिहासिक काल की भाँति सिंधु सभ्यता युग में भी वृक्ष पूजा प्रचलित थी। मार्शल ने विभिन्न मुद्राओ पर चित्रित वृक्षों से अनुमान लगाया है कि ऐतिहासिक कालीन लोगों के समान सिंधु सभ्यता के लोग वृक्षों को दो तरह से पूजते थे— एक तो उसकी जीवन्त रूप में कल्पना कर और दूसरे प्राकृतिक रूप में। भरहुत और साँची की कला मे भी इन दोनों ही रूपों मे वृक्षो को दिखाया गया है। सिंधु सभ्यता के अवशेष ऐसे प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इस सभ्यता में भी वृक्ष पूजा प्रचलित थी। एक मुद्रा (फ० XVII, 3) पर एक देवता को एक बृक्ष की शाखाओं के मध्य खडी अकित किया गया है। देवता नग्न है, उसके बाल लबे है उसके सीग त्रिशूल की आकृति के हैं और वह भुज-बध पहने हैं। उसके सामने एक व्यक्ति (उपासक या लघु-देवता) हाथ जोड़े बैठा है। उसके भी बाल लम्बे और सिर पर सीग है। इसके पीछे एक मिश्र पशु है जिसकी मुखाकृति पुरुप की, शरीर का कुछ भाग बकरी का तथा बाकी भाग बैल का है। इसके बाद सात नारी आकृतियों की एक कतार है। नारी आकृतियाँ घुटनों तक वस्त्र पहने है। उनके केश लंबे है और सिर के पीछे लटक रहे है। सिर पर वृक्ष की टहनिया है, जो पीपल की लगती है। पीपल अति प्राचीन काल से पवित्र वृक्ष माना जाता है। ये सात नारी आकृतिया ऐतिहासिक काल की 'सप्तमातृका' की याद दिलाती है। यो मैके ने इस सन्दर्भ मे शीतला देवी और उनकी छह बहनो का उल्लेख किया है। मानवी सिर वाली पशु आकृति देवता और भक्त के मध्यस्थ के रूप मे हो सकती है। लेकिन टी० एन० रामचन्द्रन इसे अग्नि देवता की पूजा से सम्बद्ध मानते है मैके के मोहेंजोदडो से प्राप्त एक अन्य मुद्रा का विवरण इस प्रकार है—दाये एक शृंगयुक्त आकृति है जो हाथ में कगन पहने हैं। यह आकृति दो पीपल के वृक्षो के मध्य है बायी ओर मालाओं से अलकृत बकरा है। इसके पीछे एक दूसरी शृंगयुक्त देवता (देवी ?) की आकृति है। शायद इस अकन मे वृक्ष देवता का ही निरूपण है। मेसोपोटामिया की सस्कृति मे पशुओ के देवता और उपासक के बीच मध्यस्थ होने की धारणा प्रच-लित थी। कुछ का यह भी मत है कि उसे पशु की बलि दिए जाने के संदर्भ मे पहचानना चाहिए लेकिन जैसा वत्स ने कहा है, यदि पशु का बलि के निमित दिखाना होता तो मुद्रा पर उसे बंधा दिखाया गया होता। एक अन्य मुद्रा (आ० 9, 1) पर पीपल वृक्ष के दो तनो के सगम स्थान से एक शृंगी पशु का सिर निकलते दिखाया गया है। ऊपर सात नारी आकृतियों के संदर्भ मे पीपल वृक्ष का उल्लेख आ चुका है। अन्य मुद्राओं तथा मृद्भाण्डो पर भी पीपल वृक्ष दिखाया गया है। एक मृण्मुद्रा पर एक वृक्ष है जो पूजा पदार्थ के साथ संबद्ध है,

जिसके सिरे पर पशु का सिर है और सीगों के बीच से वनस्पति निकलती दिखायी गयी है। वृक्ष ऊँचे चबूतरे पर दिखाया गया है। यहाँ पर एक भैंसे द्वारा एक मनुष्य उछाला जाता दिखाया गया है। शायद यह भैसा इस वृक्ष का रक्षक था। एक दूसरी मुद्रा पर भी उसी तरह का पूजा पदार्थ है जो वृक्ष और नुकीले स्तंभ से संबद्ध है। इसके साथ ही दो बकरे हैं और दो व्यक्ति भी दिखाये गये हैं। हड़प्पा से प्राप्त एक मुद्रा छाप पर पीपल की टहनी को मेहराव की आकृति में झुका दिखाया गया है और इस मेहराव के भीतर देवता दिखाया गया है जो जांघिया-सा पहने हैं और सिर से मोर की कलगी की तरह तीन नुकीली-सी वस्तुएं निकली दिखाई गई हैं।

एक अन्य मुद्रा पर दो व्यक्ति अकित हैं जिनमे से प्रत्येक के हाथ मे एक-एक पेड है। ऐसी संभावना व्यक्त की गई है कि सभवतः इस अकन के पीछे महाभारत मे उल्लिखित कृष्ण द्वारा यमलार्जुन वृक्ष को उखाड कर उनकी आत्मा मुक्त करने जैसी कोई कहानी रही हो। यह भी हो सकता है कि वृक्षों को देवता की पूजा मे रोपा जा रहा हो। इस मुद्रा के दूसरी ओर एक झुका व्यक्ति एक पेड (जो नीम-सा लगता है) की पूजा कर रहा है। वृक्षों की पूजा प्राकृतिक रूप मे भी की जाती थी। कुछ वृक्षो (जैसे पीपल) को वेदिका मे वेष्ठित दिखलाया गया है। ऐतिहासिक काल मे सिक्को पर वेष्ठित वृक्ष का अकन अत्यंत लोकप्रिय रहा है। पीपल की पवित्रता आज तक वर्तमान है। इसकी परिक्रमा की जाती है। बहरीन द्वीप की खोदाई मे प्राचीन सस्कृतियों के सदर्भ मे प्राप्त पत्थर के वृत्ताकार अवशेषो को कुछ विद्वानो ने खजूर वृक्ष के लिए बनाया घेरा माना है। उनका मत है कि मध्य पूर्व और कुछ अन्य क्षेत्रो मे भी खजूर के वृक्ष का पर्याप्त धार्मिक महत्त्व था। मोहेंजोदडो के एच आर क्षेत्र के एक भवन के पास 1 22 मीटर व्यास का घेरा मिला। अन्यत्र भी इस सभ्यता मे इस तरह के घेरे मिले हैं जो वृक्षों की पवित्रा के साक्ष्य प्रस्तुत करते है। पुत्र-प्राप्ति हेतु इसकी पूजा आज भी की जाती है। पितरो के तर्पण के लिए इन पर मिट्टी के वर्तनों मे पानी रखा जाता है। पीपल के नीचे बुद्ध भगवान को ज्ञाउ प्राप्त हुआ था। प्राचीन मेसोपोटामिया मे ज्ञान तरु और जीवन-तरु की धारणा विद्यमान थी। आज वृक्षों को जीवन्त मानने का सबसे वडा साक्ष्य यह है कि लोग प्रतीक रूप मे उनका विवाह भी करते हैं, और कभी तो प्रतीक रूप में कुछ जातिया कन्या का विवाह किसी पुरुष से पहले उसका वृक्ष से विवाह करते है। यह कहना कठिन है कि यही धारणा सिधु सभ्यता के काल मे भी थी। जिस पारपरिक शैली में पीपल का चित्रण सिंधु सभ्यता के काल हुआहै वह वह बेबीलोन मे प्राप्त 'जीवन तरु' के चित्रण की शैली से मिलती

जुलती है। इस संदर्भ में एक मुद्रा (मार्शल सख्या 387) में किये गये अंकन का उल्लेख समीचीन होगा जिसमे कि पीपल का वृक्ष की टहनी दो एक श्रृंगी पशुओं के संयुक्त सिर से निकलता हुआ दिखलाया गया है। मार्शल ने सुझाव दिया है कि शायद एक श्रृंगी पशु उस समय पीपल देवता का वाहन माना जाता था। मृद्भाण्डों पर पीपल की पत्तियों का चित्रण मिला है तथा जिन अन्य वृक्षों के चित्रण बर्तनो और मुद्राओं पर मिले हैं उनमे नीम और बबूल (acacia) उल्लेखनीय हैं।

पशु-पूजा

वृक्ष-पूजा की अपेक्षा सिधु सभ्यता में पशु-पूजा के अधिक साक्ष्य उपलब्ध हैं। यह साक्ष्य मुद्राओं और उनकी छापो, मिट्टी, काचली मिट्टी और पत्थर के उपकरणो के माध्यम से हम तक पहुँचे हैं। पशु दो तरह के दिखाये गये है—वास्तविक और काल्पनिक। केवल एक श्रृगी पशु का चित्रण ही ऐसा है जिसके बारे मे विद्वानो मे मतभेद है कि यह चित्रण वास्तविक है या काल्पनिक।

मेसोपोटामिया की प्राचीन संस्कृति मे मानव-मुखी सिंहों को देवता का रूप माना जाता था। कीलाकार अभिलेखों मे इन्हे देवता कहा गया है। सिंधु सभ्यता की कुछ मुद्राओ पर मिश्र जीवों का अंकन है (फ० XVI,4,5,6) जिन पशुओ के अंगो के समाकलन से मिश्र पशु आकृतिया बनायी गयी है उनमे मेढा, बकरा, बैल, बाघ और हाथी हैं। इनमे से कुछ मिश्र-जीवों की मुखाकृति मानवीय लगती है।[1] हो सकता है कि इनमे दो या अधिक शक्तियो का समन्वित रूप दिखाने का आशय रहा हो।[2] यह भी सभव है कि जिन मुद्राओ पर इस तरह के जानवर रूपाकित हैं वे तावीज की तरह भी प्रयोग में लाये जाते रहे हो। शायद मिश्र पशुओं की मूर्तिया को पूजा-ठौर मे रख कर उनकी पूजा की जाती रही होगी। संभवत मिश्र पशु आकृतियाँ पहले अलग-अलग रूप मे पूजे

1 इस सदर्भ मे ऐतिहासिक काल के साहित्य एवं कला मे शिव के प्रमथों और गणो का उल्लेख करना समीचीन होगा जिन्हें कभी मानवमुखी और पशु शरीर वाला दिखाया जाता है। इस तरह से गरुड, गधर्व, किन्नर कुम्भाण्ड आदि को भी मानव और पशु के समाकलित रूप में साहित्य मे वर्णित और कला में अकित किया गया है।

2. ऊपर उस मुद्रा के संबध मे, जिसे मार्शल ने 'शिव-पशुपति' की संज्ञा दी है, केदारनाथ शास्त्री की इस धारणा का उल्लेख किया जा चुका है कि इस मुद्रा पर अकित आकृति एक ऐसी मिश्र आकृति है जिसके अवयवों को भिन्न-भिन्न पशुओं अथवा उनके अवयवों जैसा बनाया गया है।

जाने वाले पशुओं का धार्मिक सहिष्णुता एव धार्मिक एकता के फलस्वरूप बाद में सम्मिलित रूप से पूजे जाने का प्रमाण प्रस्तुत करती है । मुखाकृति मानवीय दिखाना इस बात को इंगित करता है कि देवताओं को पशु रूप में दिखाने की परंपरा से उन्हे मानव रूप में दिखाने की परंपरा का विकास होने लगा था ।

एक मुद्रा (मार्शल सं० 382) में एक शृंगी पशु के तीन सिर दिखाये गये हैं । इसमें सबसे नीचे के सीग भैसे के और बीच और ऊपर के सिर के सीग बकरे के है । एक दूसरे उदाहरण में एक शृंगी पशु के सरीर से निकले तीन सिरों में सबसे नीचे वाला भैसे का, उसके ऊपर वाला एक शृंगी पशु का और उसके ऊपर बकरे का । एक अन्य मुद्रा मे तीन बाघों के शरीर एक दूसरे मे गुथे हुए दिखाए गए है । (फ०XVI,7)

मोहेंजोदडो से मैके को एक ऐसी मुद्रा मिली है जिस पर एक शृंगी पशु और गैडे के शरीर के अवयवों का समाकलित रूप है । इसका शरीर तो एक शृंगी पशु का है किंतु कान, सीग और पैर गैडे के है । इसके आगे भी उसी तरह का अभिप्राय है जैसे एक शृंगी पशु के आगे मिलता है ।

मोहेंजोदडो की कुछ मुद्राओं पर अर्ध-मानव अर्ध-पशु आकृति को शृंगयुक्त बाघ पर आक्रमण करते अंकित किया गया है । (फ० XVI,6) सुमेरी धर्मगाथा में एक ऐसा आख्यान मिलता है जिसके अनुसार गिल्गामेश को पराजित करने के लिए देवता ने आधा-मानव आधा-दैत्य शरीर धारी इंकिडू उत्पन्न किया, किंतु उसने गिल्गामेश को पराजित करने के बजाय उससे मित्रता करली और वह उसके साथ मिल कर जंगली पशुओं के साथ लडा । मेसोपोटामिया मे गिल्गामश और इंकिडू को जगली जानवरों से लडते जाने की परपरा सिंधु सभ्यता से काफी पहले से प्रचलित थी । कुछ विद्वान इसे मेसोपोटामिया की सस्कृति का धर्म के क्षेत्र मे सिंधु संस्कृति पर प्रभाव का सूचक मानते है । कुछ इसे स्वतंत्र रूप से विकसित धार्मिक परपरा का द्योतक मानते है जो सयोगवश ही मेसोपोटामिया परपरा से मेल रखता है ।

एकशृंगी पशु की आकृति (फ० XVII, 1) सिंधु सभ्यता की सबसे अधिक मुद्राओ पर मिली है । इसके बारे मे यह निश्चय करना कठिन है कि वे वास्तविक है या काल्पनिक । इसकी पीठ पर काठी दिखायी गयी है, और गले मे छल्ले । यों तो ऐसा सोचा जा सकता है कि चूकि कलाकार ने पशु का पार्श्व-चित्र बनाया है अत: पशु के दूसरे सीग को उसके पहले सीग से ढका हुआ मान कर उसे एक ही सीगवाला दिखाया हो । किंतु इसकी संभावना कम है क्योंकि मुद्राओं पर साड बैल की आकृति पार्श्ववर्ती दिखाये जाने पर भी उसके दोनों

शृंग स्पष्टतया प्रदर्शित है। अधिक संभावना यही है कि कलाकार ने जानबूझ कर एक शृंगी पशु का ही चित्रण किया है। यह असंभव तो नही कि हड़प्पा काल में इस तरह का कोई पशु रहा हो जिसकी नस्ल पूर्णतया विनष्ट हो गयी हो, तथापि इस सबंध मे कोई पुष्ट साक्ष्यों के अभाव मे निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। इस पशु के सामने जैसा कि अक्सर इस जानवर के साथ दिखाया जाता है, एक विशिष्ट पात्र रखा मिलता है जो एक छोटे से डंडे पर बनाया गया है। यह पात्रों एक के ऊपर एक दो पात्र का समन्वित रूप सा है। मार्शल का कहना है कि यह धूपदानी का अकन लगता है और इससे इस पशु की पूजा मे धूप का उपयोग किये जाने के बारे मे जानकारी मिलती है। सहूलियत के लिए हमने भी इसे धूपदानी ही लिखा है। तीसरा व्यक्ति उसके पीछे ध्वज लिए है। ऐसा प्रतीत होता है कि पशु रूपी देवता को प्रसन्न करने के लिए खाद्य-सामग्री भेंट की जा रही है। इसके अतिरिक्त उसकी पीठ पर काठी कसी होना और गले पर मालाओं का होना भी उसके धार्मिक महत्त्व का सूचक प्रतीत होता है। राव का कहना है कि बाद के साहित्य मे विष्णु को 'एक-शृग' कहना शायद एकशृगी पशु से देवता का संबध जोड़ता है। दो मुद्राओ पर एकशृगी पशु को आकृति को चौकी पर रख कर ले जाते दिखाया गया है। मिस्र मे भी धार्मिक उत्सवो में पशु आकृतियो को उत्सव मे ध्वज के रूप मे ले जाने की परपरा थी। इस बात के साक्ष्य है कि ऊपर वर्णित धूपदानी की अलग से पूजा होती थी और शायद बाद मे इसे एकशृगी पशु के साथ जोड दिया गया।

सिधु सभ्यता की मुद्राओ पर कुछ जानवरों का देव (genii) की तरह चित्रण हुआ है। सिह भी देव माने जाते है। इनकी पूजा मेसोपोटामिया, भारत और यूनान मे प्रचलित थी। इनका उद्भव पूर्व अथवा पश्चिम में हुआ, यह विवादास्पद विषय है। जल-भैस (waterbuffalo), कूबडवाला बैल (फ० XVII, 2), गैडा (फ० XVII, 4), छोटे सीग वाला बैल, बाघ, हाथी (फ० XVIII, 1), और घडियाल शायद महान शक्ति सपन्न होने के कारण पूजे जाते थे। रामचद्रन ने गैडे को वैदिक वराह या यज्ञवराह माना है। मुद्राओ के अंकन मे इनके सामने प्राय. एक पात्र रखा हुआ मिलता है। चूंकि यह पात्र जंगली और पालतू दोनों ही प्रकार के जानवरों के सामने रखा अंकित है अत इसे उनका पालतू होना जताने के लिए नही दिखाया गया बल्कि यह उनके धार्मिक महत्त्व के कारण उन्हें भोग लगाने का प्रतीक लगता है।

ऐतिहासिक काल में वास्तविक पशुओं मे बैल सर्वाधिक धार्मिक महत्त्व का

पशु रहा है। मध्य तथा मध्य-पूर्व की संस्कृतियो मे इसे सौम्य और रौद्र रूप में पूजनीय माना जाता था। उसे रक्षक और आंधी का दैत्य माना जाता था। हड़प्पा संस्कृति मे बैल 'शिव-पशुपति' के प्राग् रूप वाले देवता से संबंधित था, यह निश्चयत: ज्ञात नही है। रामचंद्रन बैल को वैदिक परपरा मे धर्म-विजय की घोषणा करने वाला कहते है। वैसे परवर्ती काल मे बैल का शैव धर्म के संदर्भ मे महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। कभी-कभी तो शिव को ही वृषभ के रूप में कल्पना की गयी। एक मुद्रा पर एक भैसा व्यक्ति को उछाले हुए दिखाया गया है दूसरी मुद्रा पर एक भैसा कुछ लोगों के समूह पर आक्रमण करने के पश्चात् विजेता की तरह खडा दिख रहा है। मैके का अनुमान है कि यह किसी देवता द्वारा शत्रुओ पर विजय प्राप्ति का प्रतीक है। बकरा आज बलि के लिए विशेष रूप से चढाया जाता है। कुछ प्राचीन सभ्यताओ मे बकरा प्रजनन शक्ति के प्रतीक के रूप मे देवी के साथ संबद्ध मिलता है।

आज के हिंदू धर्म मे कुछ पशु-पक्षी देव-वाहन के रूप में ख्यात है, जैसे भैसा यम का, बैल शिव का, गरुड विष्णु का, हाथी इन्द्र का और मकर गगा का, इत्यादि। हो सकता है कि उस युग मे भी ऐसी ही कोई कल्पना रही हो और मुद्राओं पर चित्रित कुछ पशु तत्कालीन देवताओ के वाहन के रूप मे जाने जाते रहे हो।

छोटे सीग वाले बैल को क्रुद्ध मुद्रा मे दिखाने का कारण यह हो सकता है कि उसकी कल्पना एक सहारकारी देवता के वाहन अथवा किसी अन्य रूप मे की गई हो। प्राचीन सुमेर मे कभी-कभी जल देवता इअ (Ea) और एंकि (Enki) को कछुए की आकृति द्वारा दिखाया जाता था। यह कहना कठिन है कि सिंधु सभ्यता में भी किसी देवता का रूपांकन कछुए की आकृति द्वारा किया जाता था। यो ऐतिहासिक काल मे कछुए की यमुना नदी वाहन के रूप मे कल्पना की गई है और विष्णु का एक अवतार भी कच्छप (कछुआ) है। चूना-पत्थर से बनो कुछ जानवरो, तथा मेढा, बैल इत्यादि की आकृतिया आयताकार पीठिका पर स्थित है। मैके के अनुमार ये पशुओं के रूप मे देवताओं को दर्शाते है और इन मूर्तियो को मंदिरों मे स्थापित किया गया होगा। ये पशु-आकृतिया तथा मानवाकृतिया भी क्षतिग्रस्त है और इस बात की संभावना व्यक्त की गयी है है कि किसी आक्राता ने धार्मिक भेद-भाव के कारण जानबूझ कर इन्हे क्षतिग्रस्त किया हो।

हड़प्पा मे बैल, भेड आदि पशुओ की हड्डियो का ढेर मिला जो सामूहिक पशुबलि दिये जाने का द्योतक लगता है। कालीबंगा में भी पशुबलि के साक्ष्य मिले है। मोहेंजोदडो और हड़प्पा की मुद्राओं की कुछ आकृतिया सुमेरी कथा-

नक से पर्याप्त साम्य रखती है । इनमे तीन पर मनुष्यों को दो बाघो से लडता दिखाया गया है (आ० 9, 3) । मनुष्य की आकृति सुमेरी गिल्गामेश (जो सुमेरिया के आख्यानो के अनुसार इंकिडू का मित्र था) की आकृति से कुछ मिलती है । इतना अतर अवश्य है कि सुमेरी अंकनों मे गिल्गामेश को दो सिंहों के साथ दिखाया गया है ।[1] चू कि इस तरह के कथानक मेसोपोटामिया में बहुत पहले से मिलते हैं और यदि हम इसे सुमेरी प्रभाव स्वीकार कर ले तो इस अभिप्राय का उद्‌भव स्थान होने का श्रेय मेसोपोटामिया को ही दिया जा सकता है । ये अभिप्राय परस्पर सबधो के फलस्वरूप हड़प्पा सस्कृति तक पहुँचे होंगे और सिंधु सभ्यता के लोगों ने सिहो से विशेष परिचय न होने के कारण ही सिंहो के स्थान पर बाघो को अकित किया होगा ।

नाग-पूजा अति प्राचीन काल से भारत मे चली आ रही है । सिंधु सभ्यता मे इसके अधिक उदाहरण नही मिले । सिधु सभ्यता के मिट्टी के बर्तनों पर साप के कुछ चित्रण है । लोथल के तीन मृद्‌भाण्ड के टुकडो पर प्रत्येक पर दो सर्प बने है । मोहेंजोदडो की एक मुद्रा पर देवता के दोनों ओर एक-एक सर्प दिखाया गया है जो परवर्ती काल मे बौद्ध धर्म से संबधित शिल्प मे नागो के बुद्ध को पूजने के अंकन की याद दिलाता है ।[2] वैदिक काल मे भी नाग-पूजा का प्रचलन था ।

फाख्तो की मिट्टी की बनी बहुत-सी आकृतियाँ मिली है । मेसोपेटामिया मे प्राप्त इस तरह की आकृतियो मे ये मिलती-जुलती है । मेसोपोटामिया मे इस पक्षी को धार्मिक महत्त्व का माना जाता था, शायद सिंधु सभ्यता मे भी ऐसी ही कोई धारणा रही हो । अनुमानत कुछ पशु-देवता कुछ विशिष्ट गुणों से युक्त, कुछ देवताओ के वाहन, और कुछ देवताओ के दूत या माध्यम माने जाते रहे हों ।

पुराविदों का विचार है कि सिंधु संस्कृति के काल मे प्रचलित धर्म मे भी मेसोपोटामिया की ही भाति यदि मदिर होने की कल्पना कर ली जाय तो यह सोचना गलत न होगा कि नृत्य भी धार्मिक अनुष्ठानों का एक अंग रहा होगा । मोहेंजोदडो की कास्य नर्तकी और स्लेटी पत्थर की नृत्य मुद्रा मे निर्मित मूर्ति इस संबंध मे उल्लेखनीय है । भारत मे परवर्ती काल मे देवता को नृत्य द्वारा

---

1. वत्स के अनुसार तो हड़प्पा की एक तिकोन मुद्राछाप पर पशु का शरीर तो खंडित हो गया है लेकिन पंजों से पशु के सिंह होने की संभावना लगती है ।

2. इस मुद्रा में अंकन स्पष्ट नहीं है । मार्शल ने इस बात की संभावना व्यक्त की है कि नाग का पुच्छ संभवतः भक्त के पैरों से जुडा था ।

प्रसन्न करने के उद्देश्य से मंदिरो मे देवदासियां रखी जाती थी। एक काचली मिट्टी पर एक व्यक्ति को ढोल बजाते हुए दिखाया गया है और कुछ को नाचते हुए। दूसरी मुद्रा पर एक व्यक्ति बाघ के सामने ढोल बजा रहा है। मनोरंजन के अतिरिक्त धार्मिक क्रिया-कलाप से भी इसका सबध हो सकता है। संभवतः सिंधु सभ्यता मे आज की ही भांति मानव और पशुओ की मूर्तियों का देवता के लिए चढावे के रूप मे भी प्रयोग होता था। गर्भवती स्त्रियों और गोद मे बच्चा लिये स्त्रियो की मूर्तियां सभवत उस काल की नारियों द्वारा क्रमश पुत्रवती बनाये जाने के लिए और पुत्रवती बनने के पश्चात् धन्यवाद के रूप मे मंदिरो अथवा धार्मिक स्थानो मे चढाई जाती थी।

बलि हेतु प्रयुक्त गर्त और अग्निवेदियां

हड़प्पा तथा मोहेंजोदडो से अग्निकुण्डो या वेदी के निश्चित् प्रमाण नही प्राप्त हुए हैं। वैसे मार्शल ने मोहेंजोदडो के एच आर क्षेत्र मे एक गड्ढा पाये जाने का उल्लेख किया है, किंतु उन्होने इस साक्ष्य को संदिग्ध प्रमाण माना है। लेकिन कालीबगा और लोथल के उत्खनन इस सदर्भ मे महत्वपूर्ण और साक्ष्य प्रस्तुत करते है, जो सिंधु सभ्यता के युग मे यज्ञ-बलि प्रथा होने का संकेत करते हैं।

कालीबगा मे गढी वाले टीले मे एक चबूतरे पर एक कुआ, अग्निवेदी (Fire altar) और एक आयताकार गर्त मिला है जिसके भीतर चारों ओर पालतू पशु की हड्डी और हिरन के सींग मिले हैं (फ० XXVI, 2) अनुमानत इनका धार्मिक अनुष्ठान मे पशुबलि से सबध था। कुछ विद्वानो ने जो सिंधु सभ्यता को आर्य सभ्यता मानते हैं इस साक्ष्य को वैदिक बलि-प्रथा से जोडने का प्रयास किया है।

कालीबगा मे ही एक चबूतरे के ऊपर कुए के पास सात आयताकार अग्नि-वेदियां एक कतार मे मिली।[1] निचले नगर के अनेक घरो मे भी अग्नि वेदिकाएं प्राप्त हुई है। अग्नि वेदिकाओ का भी धार्मिक महत्त्व लगता है। गर्तो मे प्राप्त सामग्री के आधार पर ब्रजवासी लाल और बालकृष्ण थापर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इन उथले गड्ढो को खोद कर इनमे आग जलाई जाती थी, फिर उसे बुझा दिया जाता था जैसा इनमे प्राप्त कोयले के साक्ष्य से स्पष्ट है। मध्य मे

1. राव ने लोथल मे (देखिए नीचे), इसमे मिलते जुलते उदाहरण पाये और कसाल ने भी आमरी मे इस तरह के अवशेष पाये। साकलिया का कहना है कि संभवत हड़प्पा और मोहेंजोदडो मे भी ऐसे उदाहरण रहे होगे, किंतु तीव्र गति से लिए उत्खननो मे उनकी पहचान नही हो पाई। देखिए साकलिया, **प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री आफ इंडिया एंड पाकिस्तान,** द्वितीय संस्करण, पृष्ठ, 350।

बेलनाकार या आयताकार धूप में सुखाया मिट्टी का एक खण्ड खडा कर दिया जाता था। और फिर किसी धार्मिक अनुष्ठान की पूर्ति हेतु उनमे पक्की मिट्टी के तिकोन पिण्ड रख दिये जाते थे। इनका धार्मिक महत्त्व इससे और अधिक स्पष्ट हो जाता है जब हम देखते है कि एक केक पर ऐसा दृश्य अंकित है (फ० XVIII, 2) जिसे विद्वानो ने मानव द्वारा बकरी की बलि दिए जाने का चित्रण माना है। दूसरी ओर एक देवता का अंकन है जिसके सिर पर सीग है। सीग के कारण शिव-पशुपति जैसे देवता से पहचान समीचीन है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि कालीबंगा के चबूतरो का धार्मिक महत्त्व था और सभवत इनके ऊपर जो भवन रहे होंगे वे पुरोहितों के आवास रहे होगे। हडप्पा, मोहेंजोदडो और लोथल के संदर्भ मे विद्वानों ने चबूतरो के निर्माण को बाढ से सुरक्षा के लिए माना किंतु कालीबगा मे बाढ के कोई साक्ष्य नही है। या तो हडप्पा और मोहेंजोदडो में भी इनका धार्मिक महत्त्व स्वीकार करना होगा या फिर मानना होगा कि कालीबंगा के लोगो ने हडप्पा और मोहेंजोदडो के नगर निर्माण की शैली का अंधानुकरण किया। लोथल मे एक चबूतरे पर ईटों की बनी वेदी मिली। इसमे बैल (या गाय) की जली हड्डियां और उसके साथ सोने का लटकन कार्नीलियन का मनका, चित्रित मृद्भाण्ड के खंड और राख मिली। यह लोथलवासियों द्वारा पशुबलि दिए जाने का साक्ष्य लगता है। वैदिक काल मे भी बैल की बलि दिये जाने के साक्ष्य मिलते है। कालीबगा मे निचले नगर के बाहर पूर्व मे एक छोटे से टीले के उत्खनन से ईटो के घेरे के भीतर पाच अग्निवेदिकाओं का समूह मिला। यहा पर आवासीय स्तरो का कोई साक्ष्य न था।

लोथल के निचले नगर मे कई घरो मे फर्श के नीचे, या कच्ची ईंटो के चबूतरे के ऊपर आयताकार या वृत्ताकार मिट्टी के घेरे बने थे। इनमे से कुछ मे राख, पक्की मिट्टी के तिकोने केक, और कभी-कभी मिट्टी के बर्तन भी मिलते है। इनके आकार-प्रकार से स्पष्ट है कि इनका प्रयोग चूल्हे की तरह नही होता था, और ये इतने बडे है कि इनका भाण्ड के रखने के लिए भी उपयोग नही लगता।

शि० रगनाथ राव के विवरण के अनुसार लोथल मे घरों मे ही नही अपितु कुछ सार्वजनिक स्थानों मे भी थोडी ही ऊंची वेदियों के समान पक्की ईंटों के घेरे मिले है। इनके भीतर भी तिकोन मिट्टी के केक, अंडाकार मिट्टी की गोलिया, राख और मृद्भाण्ड के टुकडे मिले है। इनमे से कुछ में गड्ढे (post-holes) मिले है जिनमे मूलत. लकडी के खंभे लगे रहे होंगे। एक स्थान पर वेदी के साथ पक्की मिट्टी का चमच्च (ladle) भी मिला जिस पर धुए के धब्बे

थे। रंगनाथ राव का अनुमान है कि इनका प्रयोग आग में तरल पदार्थ डालने के लिए किया जाता था। गढी मे इस तरह के अग्निकुण्ड बनने निचले नगर से बाद मे प्रारंभ हुए। एक स्थल के समीप तो एक सुदर चित्रित बर्तन भी मिला जिसका सबध भी अग्निपूजा मे लगता है। साकलिया परवर्ती भारतीय साक्ष्य के आधार पर इन अग्निवेदियो को सार्वजनिक धार्मिक अनुष्ठान मानने के पक्ष मे नही है, और पारिवारिक अनुष्ठानो के लिये प्रयुक्त मानते है।

कुछ विद्वानो का कहना है कि कुछ मुद्राछापे और मुद्राए भी ताबीज की तरह इस्तेमाल की जाती थी। इनमे से कुछ ताबीज प्रजनन शक्ति के प्रतीक के रूप मे पहने जाते रहे होगे। सीप के एक उपकरण मे गाठदार अभिप्राय चित्रित है। गाठ का पूर्व और पश्चिम दोनो मे धार्मिक महत्व रहा है और इस गाठ पर दो छेद है जो सभवत इस बात के द्योतक लगते है कि उसे कपडे पर सिया गया होगा। कदाचित कुछ मनके भी, विशेषत वे जिन पर त्रिपत्र अलंकरण है, तावीज की तरह प्रयोग मे लाये जाते रहे थे। त्रिपत्र डिजाइन का धार्मिक महत्त्व था और कुछ के अनुसार शायद वह तारे का द्योतक था। मिट्टी के कुछ मुखौटे मिले है जिनका प्रयोग धार्मिक उत्सवो पर किसी नाटक की भूमिका मे पात्रो द्वारा किया जाता रहा होगा। मुद्राओ पर एकशृंगी पशु के सामने जो वस्तु दिखाई गई है उसकी पहिचान कुछ लोगो ने धूपदानी से की है। जो भी हो, इसका एकशृगी पशु के सदभ म अलग भी धार्मिक महत्त्व था ? यह कुछ मुद्राछापो पर उसके स्वतत्र रूप मे अकित होने से स्पष्ट है। दो काचली मिट्टी की मुद्राछापो पर एक ही तरह की छाप है और पाच अन्य काचली मिट्टी की मुद्राछापो पर अलग ढग से धूपदानी (?) दिखाई गई है।

स्वस्तिक और ग्रीक सलीब (क्राम) काफी सख्या मे अंकित मिले है। ये एलम और कुछ अन्य प्राचीन सभ्यताओ की कलाकृतियो मे भी अकित मिलते है। मोहेंजोदडो मे वामवर्ती और दक्षिणवर्ती दोनो ही प्रकार के स्वास्तिक पर्याप्त सख्या मे मिलते है लेकिन हडप्पा मे कुछ अपवादो को छोड कर ऐतिहासिक काल के समान ही स्वास्तिक दक्षिणवर्ती है। स्वास्तिक का सबध सूर्यपूजा से हो सकता है। कुछ विद्वान तो इसे निश्चित रूप मे सूर्य का प्रतीक मानते है। चक्र की तरह के कुछ आकार भी सूर्य के प्रतीक हो सकते है। एक मुद्रा पर एकशृगी पशु के आगे सूर्य सा बना है जिससे बहुत-सी किरणे फूट रही है। स्वय एकशृंगी पशु भी मानो उसकी ही एक किरण हो। मैके के अनुसार इस मुद्रा के साक्ष्य से एक शृगी पशु का सूर्य से सबध ज्ञात होता है।

शवो के साथ मिट्टी के बर्तन एव अन्य सामग्री रखी मिली है। इससे उनकी

मृत्यु के पश्चात् के जीवन की धारणा होने के बारे मे जानकारी मिलती है। शवों को साधारणत' उत्तर-दक्षिण दिशा मे लिटाया गया है, जो धार्मिक विश्वास का ही फल हो सकता है। लोथल के तीन कब्रों में दो-दो शवों को गाडा गया है। यदि इनमें एक स्त्री और एक पुरुष साथ-साथ गाडे गये है तो ये पति के मरण के साथ पत्नी के भी जीवन-त्याग का साक्ष्य हो सकती है।

सिंधु सभ्यता के लोगों के धार्मिक जीवन के संबंध में लिखित साक्ष्य प्राप्त न होने से यह कहना कठिन है कि किस देवता का उनके जीवन मे सर्वाधिक प्रभुत्व एव मान्यता थी। मार्शल, मैके, व्हीलर आदि विद्वानों का मत है कि संभवतः उस अतीत युग में मातृदेवी की उपासना सबसे अधिक प्रचलित थी और देवताओं में उसका स्थान सर्वोपरि था। के० एन० शास्त्री ने वैदिक धर्म की भांति ही हड़प्पा-वासियों के धर्म में भी पुरुष देवताओ का अधिक महत्त्व माना है। उनके अनुसार सिंधु सभ्यताकाल मे मातृदेवी की अपेक्षा पीपल देवता की अधिक महत्ता थी जिसका अंकन मुद्राओं पर सर्वाधिक लोकप्रिय रहा। कालीबंगां और लोथल की खोदाइयों से प्राप्त कुछ अग्निकुण्ड कौतूहलवर्धक साक्ष्य उपस्थित करते है। इनमे प्राप्त पशुओं की हड्डियों और मिट्टी के पिण्ड, जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, पशु बलि के सूचक लगते है।

लोथल मे नारी मृण्मूर्तिया बहुत कम मिली है। रंगनाथ राव तो इन थोडी-सी नारी आकृतियों मे से केवल एक मृण्मूर्ति को ही मातृदेवी की मूर्ति मानते है। कोटदीजी मे मातृदेवी की मूर्तिया तो मिली है किंतु लिंग और योनि नही मिले। आमरी कालीबंगा, रगपुर, रोपड, आलमगीरपुर मे भी मातृदेवी की उपासना लोकप्रिय नही लगती वल्कि यह भी संभव है कि इसका प्रचलन ही नही था। कालीबगा मे तो 'लिंग' और 'योनि' भी नही मिले। वहा पर न पत्थर की ही देवता की कोई मूर्ति मिली है और न मुद्राओ पर ही किसी देवता का अकन है। अन्य क्षेत्रो की मुद्राओं पर मोहेजोदडो की मुद्रा पर प्राप्त शिव-पशुपति जैसा देवता नही मिलता। इसका अर्थ यह हुआ कि भौगोलिक तथा अन्य भिन्नता के कारण सिंधु सभ्यता मे भी परिवर्तन व परिवर्धन हुए। यह भी संभव है कि परिवर्तन का कारण अन्य सस्कृति के लोगो के साथ सपर्क रहा हो। इस सबंध में साक्ष्य इतने पुष्ट नही है कि कोई सर्वमान्य और निश्चित अभिमत व्यक्त किया जा सके। यह कहना भी कठिन है कि धर्म के क्षेत्र में सिंधु सभ्यता ने अन्य सस्कृतियों से कब और कितना ग्रहण किया, किंतु इतना कहा जा सकता है कि परवर्ती भारतीय धार्मिक विश्वासों मे अनेक तत्व ऐसे है जिनका मूल सिंधु सभ्यता मे ढूंढा जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन उस युग के धर्म के बारे में एकागी और अपर्याप्त सूचना

देते है । वास्तव मे ये साक्ष्य धर्म की जीवन्त रूपरेखा प्रस्तुत करने की बात तो दूर रही उसका पूरा ढाचा भी नही प्रस्तुत करते है । भौतिक प्रतीकों की धार्मिक धारणाओं और विश्वासों को अभिव्यक्त करने की अपनी सीमा है । फिर अनेकश एक ही वस्तु एक संदर्भ मे धार्मिक हो सकती है और दूसरे संदर्भ में लौकिक, मानिये तो देवता न मानिये तो पत्थर वाली बात सिंधु सभ्यता के कई संदर्भों मे लागू रही होगी । ऐतिहासिक काल मे भी अक्सर धार्मिक और लौकिक का भेद करना कठिन हो जाता है; फिर साहित्यिक साक्ष्य-रहित प्रागैतिहासिक काल की तो बात ही अलग है । जैसे व्हीलर लिखते है एक माता-पुत्र का अकन एक ओर साधारण लौकिक अंकन हो सकता है, दूसरी ओर धार्मिक देवी का । अनेक प्राचीन सस्कृतियों मे राजत्व और देवत्व का अभिन्न सबध था । वही व्यक्ति जो शासक था वह देवताओ का विशेष कृपापात्र, दैवी शक्ति से संपन्न, अथवा देवता का अवतार मान कर पूजा भी जा सकता था, आज के शासक के बारे मे जनता की जो धारणा है वह प्राचीन काल की धारणा से पूरा मेल नही खाती । जो भी जानकारी मिलती है उसमे कुछ ऐसे निष्कर्ष निकाले जा सकते है और निकाले गये है जो सर्वमान्य भले ही नही बहुमान्य अवश्य हो ।

सिंधु सभ्यता के धर्म मे देवी-देवताओ की मानव, पशु और प्रतीक तीनो रूपों मे कल्पना की गई है, इस तरह उनके स्वरूप के बारे मे तीनो प्रकार की धारणाओ का प्रचलन साथ-साथ था । नागो को अर्धमानव अर्धसर्प दिखाने की जो धारणा ऐतिहासिक काल मे मिलती है उसका मूल सिंधु सभ्यता मे प्राप्त होता है । ऐतिहासिक काल मे हिन्दू धर्म मे कुछ ऐसे तत्व है जो एक ओर सिंधु सभ्यता मे विद्यमान लगते है किंतु वैदिक धर्म मे नही मिलते या अपेक्षाकृत गौण रूप मे मिलते है । इनमे शिव, मातृदेवी, नाग, वृक्ष, पशु, लिंग आदि की पूजा और योग उल्लेखनीय है । और यदि मान लिया जाय कि बाद के लोगो ने आर्यो से पूर्व की इस सस्कृति के तत्वो को ग्रहण किया तो यह भी ध्यान मे रखना आवश्यक है कि ये तत्त्व उन्होने एक आदिम सस्कृति से नही वरन् प्राचीन विश्व की एक अत्यधिक विकसित सस्कृति से ग्रहण किये थे, और यह भी असभव नही कि हिंदू धर्म के कुछ दार्शनिक सिद्धात भी इस सस्कृति की देन हों । यद्यपि इस तरह के सिद्धान्तो को निश्चित रूप से पहिचान सकना कठिन है किंतु आर्यो के साहित्य मे दर्शन के जो तत्व नही मिलते उनमे से कुछ का स्रोत इस सभ्यता को मानना अनुपयुक्त न होगा । सिंधु सभ्यता के धर्म से मिलते जुलते अनेक तत्व मेसोपोटामिया के धर्म मे मिलते है । इस सदर्भ मे गिल्गामेश और इंकिडू की तरह की आकृतिया, जानवरों को देवता का माध्यम मानना, सीगों को देवत्व

का चिह्न मानना, और तिपतिया अलंकरण विशेष उल्लेखनीय हैं। किंतु इस निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है कि ये भावना और अभिप्राय की समानता प्राचीन मेसोपोटामिया और सिधु संस्कृति के मध्य संपर्क का फल या स्वतत्र रूप से विकसित हुए, और समानता मात्र आकस्मिक है।

होज़नी (Hrozny) के मतानुसार तो कई आद्य भारतीय देवता हित्ताइत देवशास्त्र से आये हैं, कुछ हुरी देवशास्त्र से और कुछबेबी लोनी देवशास्त्र से। यदि परस्पर संपर्क के ही कारण समानता है तो चूकि कालक्रम का दृष्टि से मेसोपोटामिया के देवशास्त्र मे ये देवता सिधु सभ्यता के काल से पहले ही मिलने लगते हैं, अत सिधु सभ्यता ने इन्हे मेसोपोटामिया से ग्रहण किया होगा। यह भी हो सकता है कि किसी तीसरे स्रोत से दोनों क्षेत्रो की सभ्यताओ ने ये तत्व ग्रहण किये हो। यह भी संभव है कि सिधु सभ्यता के कोई खास धार्मिक विश्वास समाज के किसी खास वर्ग मे प्रचलित थे। हो सकता है कि आजकल के कुछ हिंदुओं की तरह उस काल मे भी कुछ लोग किन्ही खास धार्मिक विश्वासों को विशेष रूप से मानते हुए भी अन्य कई धार्मिक विश्वासो को भी अपने धर्म का ही अग मानते थे। यह बात भी कुछ विचित्र है कि मातृदेवी की मिट्टी की तो अनेक मूर्तिया मिली है किंतु पत्थर में उसकी एक भी मूर्ति नही नही मिली, और न मुद्राओ पर ही उस रूप का अकन है जिसे मृण्मूर्तियो मे पाते है।

●

अध्याय 12

आर्थिक जीवन

सिंधु सभ्यता के नगरो के मकानों के भग्नावशेषों से अनुमान लगाया जा सकता है कि अधिकाश लोगों का जीवन सामान्य रूप से समृद्ध था। सुख और समृद्धि के लिए लोगों ने विभिन्न साधनों का उपयोग किया था। वे कृषि करना जानते थे। कलात्मक वस्तुओं के प्रति उनकी अभिरुचि थी, उनकी कुछ वस्तुओ की विदेशों में भी खपत थी। विदेशों को किये गये निर्यात से प्राप्त आय से लोगों की खुशहाली में और भी वृद्धि हुई होगी। संभवत तावे के खान पर और सक्कर रोहरी के चर्ट भंडार पर सिंधु सभ्यता के लोगों ने अपना नियत्रण रक्खा था ताकि उपकरण बनाने के लिए ये ताम्र और पाषाण वाछित मात्रा मे और अबाध रूप मे प्राप्त होते रहे।

सिंधु सभ्यता-काल मे कौन-कौन से पशु पाले जाते थे, इसका पता हमे उस सभ्यता के सदर्भ मे पाए जाने वाले पशुओं के अस्थि-अवशेषो, मृद्भाण्ड-चित्रणों, मुद्रा-अकनो तथा खिलौनो मे होता है। बकरी उसी नस्ल की थी जो आज काश्मीर मे पाई जाती है और जो अपनी अच्छी ऊन के लिए सुविख्यात है। भेड मियान्क प्रथम मे प्राप्त भेडो की तरह की थी। भेड-बकरी का पालन मास, दूध और ऊन के लिए होता रहा होगा। गाय-बैल की हड्डिया प्रभूत मात्रा मे मिली है। गाय का दूध पीते रहे होगे। त्स्वाइनर के लेनुसार कूबडवाला बैल का विकास 'बास नोमेडिकस' से हुआ जो भारत मे अभिनूतन (प्लीस्टोसीन) काल मे पाया जाता है। ऐसा प्राय माना जाता है कि इस पशु का सबसे पहले पालन दक्षिणी एशिया मे प्रारभ हुआ। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि कही कूबडा बैल भी तो मध्य-पूर्व से नही लाया गया था। वैसे यह भी सभव है कि यह मूलत सिंधु प्रदेश की नस्ल हो। बलूचिस्तान मे रानाघुडई के दूसरे काल मे इस तरह के बैल की हड्डिया मिली है। तावे और मिट्टी की बनी भैसे की मूर्तिया पायी गयी है। भैसे का उपयोग आज भी सामान ढोने, गाडी खीचने और हल चलाने मे होता है। भैस से दूध और घी की प्राप्ति होती रही होगी। सुअर पालतू भी था और वन्य भी। और इन दोनो तरह के सुअरों का मास लोग खाते रहे होगें। सुअर के बाल आज ब्रश बनाने मे काम आते है। उस समय भी उनका कोई ऐसा ही उपयोग रहा था, यह निश्चित रूप से कहा नही

जा सकता। ऊँट का अंकन सिंधु सभ्यता की एक भी मुद्रा पर नहीं है, परंतु उसकी थोडी सी हड्डियां खोदाइयों में पायी गयी हैं। ये हड्डिया कूबड वाले ऊँट की हैं। इसका प्रयोग सवारी के लिए और माल ढोने के लिए होता रहा होगा। ऊँट की हड्डियों की अल्पता और मुद्राओ पर उसके चित्रण का अभाव इस बात के द्योतक है कि ये अधिक संख्या में नही रहे होंगे। फारसी मकरान के खुसरो की एक कब्र मे प्राप्त एक ताबे की गैती पर ऊँट का चित्रण मिला है जिसकी तिथि द्वितीय सहस्राब्दी ई पू. आकी गई है। हाथी वैभव और संपन्नता का प्रतीक माना जाता है। इस पशु का अंकन मुद्राओं पर हुआ है। सिंधु सभ्यता में आजकल भारत मे प्राप्त दोनो ही नस्लो के हाथी उस समय होने के साक्ष्य मिले है। बारहसिंघा, साभर, हरिण इत्यादि का उपयोग मास तथा खाल के लिए रहा होगा। ताबे के बने मछली पकडने के काटे उपलब्ध हुए है। मछली पकडना यहा के निवासियो का एक प्रमुख उद्योग रहा होगा खोदाई मे मछली की हड्डियों के कई ढेर मिले हैं जिससे स्पष्ट है कि मछली भोजन का महत्त्व-पूर्ण अग रही होगी। मछली के अतिरिक्त लोगों के भोजन मे कछुए का मास भी सम्मिलित रहा होगा। हडप्पा, लोथल और मोहेंजोदडो इत्यादि सिंधु सभ्यता के स्थलो पर खोदाइयो मे तरह-तरह के कछुओं की हड्डिया मिली है।

मुद्राओ पर अकित पशुओ में गैडे का सर्वथम अकन आमरी के मृत्पात्रों पर मिलता है। सिंधु संस्कृति की मुद्राओ पर इसका विशेष रूप से अकन है। सिंधु नदी की घाटी मे यह 18वी शती तक पाया जाता रहा। ऐतिहासिक काल में इसके चर्म से ढाल बनायी जाती थी। वे लोग कुत्ता भी पालते थे। कुत्ते की कई नस्ले थी जैसा कि इस पशु की मूर्तियो से स्पष्ट है। कुत्ते रखवाली के लिए और शायद शिकार मे सहायता के लिए भी पाले जाते रहे होंगे। हडप्पा से एक मूर्ति मे कुत्ते को मुंह मे एक खरगोश पकडे हुए दिखाया गया है। सिंधु सभ्यता के लोगो को अश्व की जानकारी थी या नही इसके बारे मे प्रारंभ से ही विद्वानो मे मतभेद रहा है। रानाघुण्डई प्रथम से प्राप्त हुए दातो की पहचान कुछ विद्वानो ने घोडे के दात से की है, किंतु त्स्वाइनर का मत है कि ये घोडे के न होकर एक प्रकार के गधे के है। मोहेंजोदडो मे ऊपर की सतह पर प्राप्त घोडे की हड्डियो को कुछ विद्वान् सिंधु संस्कृतिकाल की, और कुछ परवर्ती काल की मानते है। मोहेंजोदडो से प्राप्त मिट्टी की बनी घोडे जैसी एक आकृति के बारे मे भी निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि वह घोडा ही है, यद्यपि कुछ विद्वानों ने उसे घोडा ही माना है। लोथल से भी ऐसे तीन मृण्मय खिलौने मिले है जिन्हें कुछ विद्वान् घोडे की अनुकृति मानते है। सुरकोटडा मे भी सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण मे घोडे की अस्थिया मिली है। इन साक्ष्यो से इस सभ्यता को

अनार्य सिद्ध करने वाले प्रमुख तर्कों में से एक कम हो जाता है। हड़प्पा में गधे की हड्डियां मिली हैं। इस पशु का, प्रयोग बोझा ढोने और शायद रथ चलाने में होता रहा होगा। खच्चर के उपयोग के साक्ष्य नही मिलते।

बतख का चित्रण लोथल के बर्तनो पर बहुत मिलता है। मोर का चित्रण तो प्राय. सभी महत्त्वपूर्ण सिंधु-संस्कृति के स्थलों से प्राप्त बर्तनों पर किया गया है। शायद बत्तख और मोर का भी मास लोग खाते रहे होंगे। आज तो लोग आम तौर से मोर का मास खाना अच्छा नही मानते, किंतु कम से कम अशोक के समय में (तृतीय शती ई. पू.) इसका मास राजा की रसोई तक मे बनता था। अत आश्चर्य नहीं कि सिंधु सभ्यता-काल मे इसका प्रयोग भोज्य सामग्री के रूप मे होता रहा हो।

सिंध और पंजाब में प्रतिवर्ष नदियो द्वारा लाई उपजाऊ मिट्टी मे कृषि कार्य अधिक श्रमसाध्य नही रहा होगा। इस नरम मिट्टी मे कृषि के लिए शायद तांबे की पतली कुल्हाडियों को लकडी के हत्थे पर बाध कर तत्कालीन किसान भूमि खोदते रहे होंगे। चर्ट के फलकों को लकडी के हत्थे पर चिपक कर हँसिये की तरह उनका प्रयोग किया गया होगा। ऐसा भी सुझाव दिया गया है कि पत्थर की कुछ छड़ियो का भी लकडी के हत्थे पर लगा कर भूमि खोदने के लिए उपयोग होता रहा हो। मोहेंजोदडो म पत्थर के तीन ऐसे उपकरण मिले है जिनके आकार-प्रकार और भारीपन से इनके शस्त्र के रूप मे प्रयुक्त होने की संभावना कम लगती है। इन्हे कुछ लापरवाही के साथ बनाया गया है। 25.91 सेमी लम्बा, 8.13 सेमी से लेकर 10.92 सेमी तक चौडा और 5 33 सेमी मोटा है। दूसरा 25.15 सेमी लबा, 7.62 सेमी से 10.52 सेमी चौडा और 3.55 सेमी मोटा है। तीसरा कुछ टूट गया है। ये पर्याप्त भारी हैं। ऐसा सुझाव दिया गया है कि ये हल के फाल थे। नदियो द्वारा लाई गई बिना ककड-पत्थर की मिट्टी वाली जमीन को जोतने के लिए इसका प्रयोग भलीभाति किया जा सकता था। हल लकडी के रहे होंगे जो अब नष्ट हो गये है। थोलल की एक पकाई मिट्टी की प्लेट पर बीज वपित्र का अंकन है जो राव के मतानुसार कृषि का महत्त्वपूर्ण उपकरण था। कालीबंगा मे सिंधु संस्कृति से पूर्व की सस्कृति के सदर्भ में नगर की सुरक्षा दीवार के बाहर जुते हुए खेत के चिन्ह मिले।[1]

---

1. इस खेत मे जो सीतें थे वे पूर्व पश्चिम मे 30 सेंटी मीटर की दूरी पर और उत्तर दक्षिण की दिशा मे 190 सेंटी मीटर की दूरी पर। जुताई का यह तरीका आज भी कलीबगा के आसपास के क्षेत्र मे प्रचलित है, जिसमे एक ही खेत मे दो तरह के अनाज बोए जाते हैं।

हडप्पा सभ्यता मे, जो उससे भी अधिक विकसित थी, निश्चय ही हल का प्रयोग होता रहा होगा। सिचाई के लिए बाध और नहर थी जो अब बाढ द्वारा लाई मिट्टी के नीचे दब गई है। नगर के आसपास की भूमि मे इतना अनाज पैदा होता था कि वहाँ के लोग अपनी जरूरत के लिए अनाज रख लेने के बाद शेष अनाज इन नगरो के लोगो के लिए भेज सकते थे।

सिधु जैसी समृद्ध सभ्यता के पर्याप्त जनसंख्या वाले महानगरों की स्थिति और विकास एक अत्यत उपजाऊ प्रदेश की पृष्ठभूमि मे ही सभव था। नागरिक सभ्यता के पनपने के लिए लोगों को धातु मे विभिन्न प्रकार के उपकरण बनाने का ज्ञान अत्यन्त सहायक है। विभिन्न प्रकार की धातुओ और अन्य प्रकार के उपकरणो मे दक्षता तभी प्राप्त हो सकती है जब कुछ लोग पेशे के तौर पर एक-मात्र वही कार्य करे। और पेशेवर शिल्पी तभी हो सकते है जब किसान लोग अपने भरण-पोषण के पश्चात् इतना अतिरिक्त अन्न पैदा करें कि शिल्पियो का भी भरण-पोषण हो सके। सिधु सभ्यता के विकसित तकनीक से बने विभिन्न उपकरणो से स्पष्ट है कि वे पेशेवर शिल्पियो की कृतिया है और उस समय के कृषक निश्चय ही पर्याप्त मात्रा मे अतिरिक्त अन्न पैदा करते थे। सिधु सभ्यता के लोग गेहू उपजाते थे जो रोटी बनाने के लिए उपयुक्त था। गेहूँ की दो प्रजातियां थी—ट्रिटीकम कम्पेक्टम और स्फेरोकोकम। जौ की भी दो प्रजातियां, होरडियम वल्गेर और हैक्सास्टिकम उगाई जाती थी। मेसोपोटामिया और मिस्र के साक्ष्य से स्पष्ट है कि वहा पर जौ की खेती सिधु सभ्यता मे पहले से होती थी। जिस जगली जौ के प्रकार से यह खेती द्वारा उपजाया जौ प्राप्त हुआ है वह अब भी तुर्किस्तान, ईरान और उत्तरी अफगानिस्तान मे मिलता है। वेवि-लोव (Vavilov) ने सुझाया है कि मानव द्वारा प्रयुक्त गेहूं का मूल स्थान हिमालय के पश्चिमी छोर पर अफगानिस्तान मे रहा होगा, जबकि कुछ विद्वान जगरोस (Zagros) पवत और कैस्पियन सागर के बीच वाले क्षेत्र को इसका मूल स्थल मानते है।

गेहूँ और जौ तो सिधु सभ्यता के लोगो के मुख्य खाद्यान्न थे ही, वे खजूर, सरसो, तिल और मटर भी उगाते थे। सरसों तथा तिल की खेती मुख्य रूप से तेल के लिए करते रहे होंगे। वे राई भी उपजाते थे। हडप्पा मे तरबूज के बीज मिले। सेलखड़ी की बनी नीबू की पत्ती से स्पष्ट है कि वे लोग नीबू से परिचित थे। यहाँ से एक चित्रित बतन की आकृति अनार की ओर दूसरे चित्रित बर्तन की नारियल की तरह है जो सिधु सभ्यता के लोगो का इन दोनो फलो से परि-चित होने की सूचक है। लोथल और रगपुर से धान (चावल) की उपज के बारे

में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिली है। वहां से प्राप्त मुद्रा-छापों के पीछे धान की भूसी लगी पायी गयी है। परीक्षण से पता चला है कि यह धान निम्न-कोटि का था। वैसे यह उल्लेखनीय है कि सिंधु सभ्यता के प्रमुख नगरों–यथा हड़प्पा तथा मोहेंजोदडो मे धान की जानकारी होने का कोई साक्ष्य नही प्राप्त हुआ है। सौराष्ट्र में बाजरे की खेती होती थी। लोथल मे बाजरे के दाने मिले है। वहा के लोग अनार के फल से भी परिचित थे।

राजकीय स्तर पर अनाज के सरक्षण के लिए हड़प्पा, मोहेंजोदडो और लोथल मे विशाल अन्नागारो में अन्न का आगमन और निर्गमन शासन द्वारा नियंत्रित रहा होगा। इसके लिए शासन की ओर से उच्च पदाधिकारी, लिपिक, लेखाकार, मजदूर आदि नियुक्त रहे होगे। कर के रूप मे वसूल किया गया अनाज इन अन्नागारो मे सग्रहीत होता रहा होगा और एक तरह से ये अन्नागार उस समय के सरकारी बैंक या खजाने का कार्य करते रहे होगे। उस युग में सिक्को के प्रचलन का कोई निश्चित साक्ष्य नही मिलता, कदाचित् अनाज के रूप में ही राजकर्मचारियो को वेतन भी दिया जाता रहा होगा। यही नही, अनाज विनियम का एक सबसे महत्त्वपूर्ण साधन भी रहा होगा। अन्नागारो का परिपूर्ण होना या खाली होना तत्कालीन शासक की समृद्धि अथवा विपन्नता का द्योतक रहा होगा। समकालीन दजला-फरात की घाटी मे प्राय सभी महत्त्वपूर्ण नगरो मे अन्नागार थे जिनमे से कुछ तो अत्यन्त विशाल थे[1]। इनमे से कुछ मदिरो से सबद्ध थे और कुछ नहरों के किनारे स्थित थे। इस सदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि हडप्पा के विशाल अन्नागार नदी-तट पर स्थित थे। मिस्र के प्राचीन लेखो मे भी राजकीय अन्नागारो का और राजा के निजी अन्नागारो का विशद उल्लेख है।[2]

---

1 उर के एक लेख मे इस बात का उल्लेख है कि एक अन्नागार इतना बडा था कि उसमे 4020 दिवस की मजदूरी मे देय अन्न सग्रहीत था। दूसरे लेख मे अन्नागार के अधीक्षक का उल्लेख है जिसके अन्नागार मे 10,930 दिवस की मजदूरी देने के लिए पर्याप्त अन्न सग्रह मे था। एक तीसरे लेख मे राजकीय अन्नागारो से उधार लिए अन्न को ब्याज सहित लौटाने का उल्लेख है। इन उपर्युक्त लेखो की तिथि 2130-2000 ई० पू० के लगभग है और हड़प्पा सभ्यता के चरम विकास के समकालीन है। देखिए, व्हीलर **'इंडस सिविलिजेशन'** तृतीय संस्करण, पृ० 35।

2. यह उल्लेखनीय है कि हड़प्पा, मोहेंजोदडो और लोथल में जो अन्नागार मिले है जो निर्माण की दृष्टि से ऐतिहासिक काल से पूर्व अपनी सानी नही

हड़प्पा में अन्नागारों के समीप ही अनाज कूटने के लिए बने चबूतरे और मजदूरों (?) के निवास भी मिले है जो इस बात के द्योतक है कि शासन द्वारा अन्नागारों को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था और उनमे कार्य करने वालों के निवास की व्यवस्था समीप ही की गयी थी। लोग अपने लिए बडे-बडे घडों में अनाजो सग्रह करके रखते थे। यह भी सभव है कि अनाज गड्ढों मे भी रखा जाता हो। हड़प्पा मे भूमिगत तीन बडे बडे बर्तन पाये गये जिनके किनारे पर ईंटों का चपटा घेरा था। शायद इनका उपयोग ऐसे ही काम के लिए होता था। अनाज और अन्य वस्तुओ को चूहो से बचाने के लिए लोगो ने चूहेदानियों का प्रयोग किया था। मिट्टी की बनी हुई चूहेदानिया उत्खनन से मिली है। हड़प्पा और मोहेंजोदड मे आटा पीसने की चक्की नही मिली। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अनाज को ओखली मे (राजकीय स्तर पर कई विशाल ओखलियों की व्यवस्था किये जाने के प्रमाण मिले है) कूट कर या सिल-बट्टे[1] (फ० XXI,2) द्वारा पीस कर आटा बनाया जाता था। सिल पर पीसने मे आटे के साथ कुछ पत्थर के टुकडे मिल जाते थे और इस तरह के आटे की रोटी खाने से दातों पर दुष्प्रभाव पडना स्वाभाविक था। इस सिलसिले मे यह उल्लेखनीय है कि उत्खनन से प्राप्त कुछ मानव दातो के अत्यधिक घिसे होने के लिए मार्शल ने इस तरह के ही पत्थर मिश्रित आटे का निरतर प्रयोग को कारण बताया है। लेकिन लोथल में एक वृत्ताकार चक्की के दो पाट मिले है। ऊपर वाले पाट मे अनाज डालने के लिए छेद है। इस तरह की चक्की के प्रयोग से अनाज के महीन और शीघ्र पीसने मे सिल पर पीसने की तुलना मे काफी सहूलियत होती है। साकलिया ने लोथल के इन चक्की के पाटो को सिधु सभ्यता के काल के होने मे संदेह व्यक्त किया

रखते, लेकिन इनके स्वामित्व, उपयोग आदि के बारे मे कुछ भी लिखित सामग्री उपलब्ध नही है, केवल अनुमान से ही कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते है। दूसरी ओर मेसोपोटामिया और मिस्र में वहा के प्राचीन अन्नागारो के बारे मे तत्कालीन लेखों मे विस्तृत उल्लेख है, किन्तु अभी तक उत्खनन से भवनो से ऐसे अवशेष वहा नही मिले है जिन्हे उनकी विशिष्टता के कारण निश्चित रूप से अन्नागार के रूप में पहचाना जा सके।

1 सिंधु सभ्यता के प्राय सभी स्थलो से सिल-बट्टे प्राप्त हुए है। कई सिल लबे समय तक प्रयोग किये जाने के कारण काफी गहरे भी हो गये है। मोहेंजोदडो के सिल औसतन 53.34 सेमी लबे और 22.86 सेमी चौडे है। ये अधिकतर अलाबास्टर पत्थर के हैं लेकिन अन्य पत्थरों के बने सिल भी मिले है। बट्टे ओसतन ग्यारह इंच लबे और चार इच व्यास वाले है।

है। उनका कहना है कि यह न केवल लोथल अपितु पूरी सिंधु सभ्यता मे इस तरह का एकमात्र उदाहरण है, यदि लोग इस तरह की चक्की के प्रयोग से अवगत थे तो उन्होने तकनीकी दृष्टि से अत्यधिक सुविधाजनक होने के कारण ऐसी चक्किया विशाल सख्या मे बनायी होती। साथ ही सिंधु सभ्यता के अन्य स्थलों से, विशेषतया लोथल की अपेक्षा कही अधिक विकसित एव समृद्ध नगरो—हड़प्पा और मोहेंजोदडो से भी, जिनसे लोथल का सपर्क था, इसके अवशेष मिलते। यह भी ध्यान देने योग्य है कि मध्य-भारत तथा महाराष्ट्र की ताम्राश्मयुगीन संस्कृतियों मे भी इस तरह की चक्की के अवशेष नही मिलते। ईरान, ईराक और अनातोलियता मे भी इतनी प्राचीन संस्कृतियों के सदर्भ मे चक्की नही मिलती। माकलिया का कहना है कि प्रकार-विज्ञान (Typology) मे तो यह लोथल की चक्की ईसवी सन् की पहली शताब्दियो की कृति लगती है। यह उल्लेखनीय है कि लोथल का उदाहरण टीले की सतह पर मिला, उत्खनन के दौरान नही। यद्यपि लोथल में प्रारभ से अत तक सिंधु अथवा उपसिंधु सभ्यता के ही अवशेष मिले हैं तथापि यह असभव नही कि प्रथम शती या उसके बाद यहा पर छोटी-मोटी बस्ती रही हो जिसके अवशेष बह गए लेकिन चक्की का पाट भारी होने से बचा रह गया हो।

कपास की खेती होती थी और वस्त्र-निर्माण एक महत्वपूर्ण व्यवसाय रहा होगा। मोहेंजोदडो से एक चादी के बर्तन मे भी कपडे के अवशेष पाये गए है। यह मजीठ से लाल रगा हुआ था। बाद मे वही से दो उदाहरणो मे तांबे के उपकरणो को लपेटे सूत का कपडा और धागा मिला है। यह साधारण किस्म की कपास का बना है जो भारत मे आज भी उगायी जाती है। कालीबगा मे एक बर्तन का टुकडा मिला है जिस पर सूती कपडे के निशान है। यही एक उस्तरे पर भी कपास का वस्त्र लिपटा हुआ मिला। लोथल मे मद्राछापो के पृष्ठ भाग पर कपास के बने कपडे के निशान है। लोथल और रगपुर के आसपास का क्षेत्र कपास उपजाने के लिए बहुत ही उपयुक्त था। शायद कपास का क्षेत्र होने के कारण यहा पर सिंधु सभ्यता के लोगो को अपनी बस्ती बसाने की प्रेरणा मिली हो। आलमगीरपुर मे एक मिट्टी की नाद पर बुने कपडे के निशान है। मेसोपोटामिया के लगश के समीप स्थित उम्मा (Umma) से सिंधु सभ्यता की मुहर पर कपास से बना कपडा लगा था।

कताई-बुनाई के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले तकुए छोटे-बडे सभी तरह के घरो मे पाये गये है। ये साधारणतया मिट्टी, काचली मिट्टी, शख, पेस्ट आदि के बने है जो इस बात के द्योतक है कि सपन्न और गरीब दोनो ही कताई बुनाई

करते थे। इनमे से कुछ पर दो और कुछ पर तीन छेद है। अधिकाश पर बारीक छेद हैं जो मैके के अनुसार इस बात के द्योतक है कि इन पर लगी डडी लकडी की न होकर धातु की रही होगी। इनमे से अधिकाश काफी हल्के है जो इस बात के द्योतक हैं कि इन पर अपेक्षाकृत पतला सूत काता जाता था। कुछ चरखिया भी मिली है। सिधु सभ्यता के मेसोपोटामिया के साथ व्यापार मे, सूती वस्त्रों का महत्त्वपूर्ण भाग रहा होगा।[1] सूती वस्त्र कितनी मात्रा मे निर्यात किये जाते थे इसका अनुमान लगाना कठिन है। समकालीन मेसोपोटामिया मे अतसी (फ्लैक्स) का प्रयोग होता था। पुरोहित (?) की शिल्प-मूर्ति मे शाल पर तिपतिया अलकरण दिखाया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि वस्त्रों पर कढाई भी होती रही होगी। स्वाभाविक है कि वस्त्र उद्योग एक महत्त्वपूर्ण उद्योग रहा होगा और कुछ लोग जुलाहे का काम पेशे के तौर पर करते होगे। सिधु सभ्यता से कपास की बनी वस्तुओ का निर्यात मेसोपोटामिया को होता था।

हडप्पा संस्कृति मे कला-कौशल का पर्याप्त विकास हुआ था। सभवत ईटो का उद्योग भी राज-नियत्रित था। सिधु सभ्यता के किसी भी स्थल के उत्खनन मे ईट पकाने के भट्ठो के अवशेषो का न मिलना इस बात का द्योतक है कि धुए के दुष्प्रभाव से बचने के हेतु भट्ठे नगर से बाहर लगाये गये थे। यह ध्यान देने योग्य है कि मोहेंजोदडो मे अतिम प्रकाल (जबकि नागरिक स्तर मे अत्यधिक ह्रास हो चुका था) को छोड कर नगर के भीतर मृद्भाण्ड बनाने के भट्ठे तक नही मिलते। बर्तन बनाने वाले कुम्हारो का एक अलग वर्ग रहा होगा। अतिम प्रकाल मे तो इनका नगर मे ही एक अलग मुहल्ला रहा होगा, ऐसा विद्वानो का अनुमान है। यहा के कुम्हारो ने कुछ विशेष आकार-प्रकार के बर्तनो का ही निर्माण किया, जो अन्य सभ्यता के बर्तनों से अलग पहचाने जाते है।

पत्थर, धातु और मिट्टी की मूर्तियां का निर्माण भी महत्त्वपूर्ण उद्योग रहे होगे। मनके बनाने वालों की दूकानो और कारखानो के बारे मे चन्हुदडो और लोथल के उत्खननो से जानकारी मिली है। मुद्राओ को तैयार करने वालो का एक विशेष वर्ग रहा होगा। कुछ लोग हाथीदात का काम करते थे। हाथीदात के प्राप्तिस्थलो मे उस काल मे गुजरात भी रहा होगा और हाथीदात की वस्तुओं के निर्माण और व्यापार मे लोथल का महत्त्वपूर्ण हाथ रहा होगा। सिधु सभ्यता से कीमती पत्थरो के मनके और हाथीदात की वस्तुएं पश्चिमी एशिया मे निर्यात

---

1. इस सदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक काल मे मेसोपोटामिया मे कपास के लिए "सिंधु" शब्द का प्रयोग हुआ है जिसे ग्रीक भाषा मे Sindon का रूप दिया गया।

की जाती थीं। मछुओं की संख्या भी कम नहीं रही होगी। व्यापारी वर्ग संपन्न वर्ग रहा होगा। पुरोहितों, वैद्यों, ज्योतिषियों के भी वर्ग रहे होंगे और संभवतः उनका समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा होगा।

सिंधु सभ्यता के हड़प्पा, मोहेंजोदड़ो, लोथल आदि नगरों की समृद्धि का मुख्य स्रोत व्यापार और वाणिज्य था जो भारत के अन्य क्षेत्रों तथा विदेशों से जल-स्थल दोनो मार्गों द्वारा हुआ करता था। निश्चय ही इतनी दूर के देशों से बड़े पैमाने पर इतर क्षेत्रों मे व्यापार के लिए अच्छा व्यापारिक संगठन रहा होगा और व्यापार मे पर्याप्त लाभ ही इस विदेशी व्यापार के लिए प्रेरणा-स्रोत रहा होगा। नगरों मे कच्चा माल आस-पड़ौस तथा सुदूर स्थानो से उपलब्ध किया जाता था। किन-किन स्थानो से कच्चे माल का मोहेंजोदड़ो मे आयात किया जाता था ऐसा अनुमान विद्वानो ने लगाया है। इसका संक्षिप्त उल्लेख निम्न है—

बिटूमिन (डामर)—मार्शल के अनुसार सिंधु के दाहिने तीर पर स्थित इसा खेल (Isa Khel) या बलूचिस्तान से, या फरात नदी के तीर पर स्थित (Hit) से बिटूमिन लाया जाता रहा होगा।

अलाबास्टर—यह संभवत बलूचिस्तान से प्राप्त किया जाता था।

सेलखड़ी—अधिकाश सेलखड़ी बलूचिस्तान और राजस्थान से लायी जाती थी। राव का कहना है कि भूरे (ग्रे) और कुछ पाण्डुता लिए प्रकार की सेलखड़ी शायद दक्कन से आती थी। लेकिन साकलिया इसे सही नहीं मानते। वे इस बात की संभावना मानते है कि लोथल मे सेलखड़ी उत्तरी गुजरात के देवनी मोरी या किसी अन्य स्थल से लायी गयी होगी।

चांदी—मुख्यत अफगानिस्तान अथवा ईरान से आयातित होती थी। आभूषणो के अतिरिक्त इसके थोड़े मे बर्तन भी मिले है। राव का कहना है कि यदि कोलार खदान से सोना निकालने वाले चांदी व सोना अलग कर सकते थे तो लोथल मे, जहा पर चांदी का प्रयोग बहुत कम मिलता है (केवल एक चूड़ी और एक अन्य वस्तु जिसकी पहचान कठिन है, ही मिली है), चांदी कोलार की खान से आयी होगी। दूसरा संभावित स्रोत वे राजस्थान से उदयपुर के समीप जवार-खान को मानते हैं।

सोना—जैसा इडविन पारको ने सुझाया है, सोना अधिकतर दक्षिण भारत से आयात किया गया। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो से प्राप्त सोने मे चांदी का मिश्रण है जो दक्षिण के कोलार की स्वर्ण-

खानों की विशेषता है। मास्की, पिक्लिहल, तेक्कल कोटा जैसे कोलार स्वर्ण-क्षेत्र के निकटवर्ती स्थलों में नवपाषाण युगीन संस्कृति के संदर्भ मे सिंधु सभ्यता-प्रकार के सेलखडी के चक्राकार मनके मिले है और तेक्कल कोटा से तांबे की कुल्हाडी भी। इससे दक्षिणी क्षेत्र से सिंधु सभ्यता का संपर्क होना लगता है। यों ईरान और अफगानिस्तान से भी कुछ सोना आ सकता था और कुछ नदियों की बालू को छान कर प्राप्त किया जाता था। विभिन्न प्रकार के आभूषणों, मुख्यत. मनके और फीतो के निर्माण हेतु इसका प्रयोग किया जाता था।

तांबा—सिंधु घाटी और राजस्थान के हडप्पा स्थलों मे तांबा मुख्यत. राजस्थान के खेत्री क्षेत्र से आता रहा होगा। तांबे का प्रयोग अस्त्र-शस्त्र, दैनिक जीवन में उपयोग के उपकरण, बर्तन और आभूषण बनाने मे होता था। रासायनिक विश्लेषणों से खेत्री के ताम्र अयस्क और हडप्पा व मोहेंजोदडो के ताम्र उपकरणो मे पर्याप्त समानता दृष्टिगोचर हुई। खेत्री के तांबे मे आर्सेनिक और निकिल पर्याप्त मात्रा मे मिलता है और हडप्पा-मोहेंजोदडो के ताम्र उपकरणों के विश्लेषण से उनमे भी यही बात पायी गई। लोथल मे प्राप्त तांबा ऐसे खान मे आता था जिसमे आर्सेनिक नही है। राव का अनुमान है कि शायद दक्षिणी अरब के ओमन मे लोथल मे तांबा आयात किया जाता था। लोथल से प्राप्त तांबे की सिल का आकार और तौल सूसा मे प्राप्त तांबे की सिलो के समान है। लेकिन साकलिया का मत है कि संभवत लोथल का तांबा, कम से कम उसका कुछ भाग, स्थानीय खान या खानो से प्राप्त हुआ होगा।

टीन—यह धातु शायद अफगानिस्तान या ईरान मे आयातित होती थी। कुछ का कहना है कि हजारी बाग (बंगाल) मे भी कुछ टीन आता होगा। लेकिन हजारीबाग से सीधा व्यापारिक मार्ग उस काल मे था और वहा से पर्याप्त मात्रा मे यह धातु प्राप्त हो सकती थी इस पर कुछ विद्वानों ने संदेह व्यक्त किया है। दूसरी ओर ईरान से तो सिंधु सभ्यता के लोगों का संपर्क था ही, अत वहा से इसका आयातित होना अधिक आसान था। टिन का स्वतंत्र रूप मे उपयोग न करके 6 से 13 प्रतिशत तक तांबे मे मिलाकर कांसा बनाया जाता था। इस मिश्रित धातु से निर्मित उपकरण शुद्ध तांबे के बने उपकरणों से कही अधिक मजबूत है और उनकी धार भी अधिक प्रखर होती थी।

सीसा—ईरान, अफगानिस्तान और मुख्यत. राजस्थान (अजमेर) से लाया गया होगा। इसका प्रयोग बहुत कम था।

टर्क्वाइज—खोरासान (उत्तर-पूर्वी फारस) या अफगानिस्तान से प्राप्त होता था। मोहेंजोदडो मे इसकी थोडी-सी ही मुद्राएं मिली है।

जेडाइट—पामीर या और पूर्वी तुर्किस्तान से आया होगा। यों तिब्बत और उत्तरी बर्मा मे भी यह उपलब्ध है। इसके भी मनके मिले है जो अत्यल्प सख्या मे है।

लाजवर्द—बदख्शा (अफगानिस्तान के उत्तरी क्षेत्र) से यह लाया गया होगा। इसका प्रयोग अत्यल्प मात्रा मे हुआ है। लाजवर्द के बने मोहेजोदडो से दो मनके और एक गोटी, हडप्पा से तीन मनके और खचित करने के लिए प्रयुक्त एक टुकडा, चन्हुदडो से दो अधबने मनके और लोथल से दो मनके मिले है। लाजवर्द के मनके मेसोपोटामिया म पर्याप्त संख्या मे मिले है, अत यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि सिंधु सभ्यता की लाजवर्द की वस्तुए मेसोपोटामिया से आयी होगी, किंतु चन्हुदडो के अधूरे बने मनके इस बात के द्योतक है कि इनका निर्माण वही पर हुआ था। यह भी उल्लेखनीय है कि नाल में सिंधु सभ्यता के विकसित चरण मे पूर्व की तिथि वाले स्तर मे लाजवर्द के मनको से बनी कई लडियो के हार मिले है। यह लाजवर्द उत्तरी-पूर्वी अफगानिस्तान में स्थित बदख्शा से प्राप्त किया गया होगा।

लाल रग—यो तो यह कच्छ और मध्य भारत मे भी मिलता है, किंतु फारस की खाडी के द्वीप होरमुज मे बहुत चमकदार लाल रग मिलता है, अत इसके वही से लाये जाने की अधिक सभावना है।

हीमाटाइट—यह राजपूताना मे आता था।

शख घोंघे—ये भारत के पश्चिमी समुद्रतट से और फारस की खाडी से प्राप्त किये जाते थे।

गोमेद कार्नीलियन(तामडा) सुलेमानी (Onyx) कैल्सेडोनी स्फटिक	ये राजपूताना, पजाब, मध्य भारत और काठियावाड मे मिलते है। काठियावाड मे सिंधु सभ्यता के महत्वपूर्ण स्थल लोथल, रगपुर आदि के होने से इस क्षेत्र से उनके आयात किये जाने की सभावना अधिक है।

स्लेटी पत्थर—यह राजस्थान से लाया गया होगा।

जैस्पर—अधिकाश विद्वानो के अनुसार इसका राजस्थान से आयात होता था। लेकिन राव का कहना है कि रगपुर के समीप भादर नदी के तल मे जैस्पर मिलता है।

सगमरमर—1950 मे व्हीलर द्वारा की गई खुदाइयो मे मोहेजोदडो मे संगमरमर के कुछ टुकडे मिले जो किसी भवन मे प्रयुक्त रहे होगे। यह राजस्थान से लाया गया होगा।

चर्ट—यह सक्कर-रोहरी से प्राप्त होता था ।

ब्लड स्टोन—यह राजस्थान से लाया गया होगा ।

फुक्साइट (Fuchsite)—मोहेंजोदडो से एक साढे चार इच ऊँचा जेड की तरह के रग का प्याला मिला है जिसके निर्माण-वस्तु की पहिचान फुक्साइट से की गई है । इसको मैसूर से प्राप्त किया गया होगा ।

जमुनिया—यह दक्कन की पहाडियो (टैप) से लाया जाता रहा होगा ।

अमेजोनाइट—पहले यह धारणा थी कि सभवत सिधु सभ्यता के लोगो द्वारा यह पत्थर दक्षिणी नीलगिरि पहाडी या काश्मीर से प्राप्त किया गया होगा, लेकिन आज यह मान्य है कि वह अहमदाबाद के उत्तर मे हीरापुर पठार से लाया गया होगा जो कि सौराष्ट्र के सिधु सभ्यता के स्थलो के अत्यत समीप है ।

देवदार
शिलाजीत } ये दोनो हिमालय मे लाये जाते थे ।

'पुए' के आकार की ताबे की सिल—ये लोथल मे मिली है । ये फारस की खाडी के द्वीपों से लायी जाती थी ।

सिधु सभ्यता के नगरो का व्यापारिक सबध मेसोपोटामिया तथा फारस की खाडी मे होने के बारे मे पर्याप्त पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त है । सबसे महत्त्वपूर्ण साक्ष्य सिधु सभ्यता की वे मुद्राएँ है (देखिये अ० काल-निर्धारण) जो मेसो-पोटामिया के विभिन्न नगरो से पायी गयी है । ये वस्तुत व्यापार के माध्यम से वहा पहुची थी । कुछ विद्वानो का मत है कि मेसोपोटामिया मे सिधु सभ्यता के व्यापारियों की एक बस्ती थी ।[1] मेसोपोटामिया के लोग भी सिधु सभ्यता के नगरो मे आते थे इसकी जानकारी हमे उस शवाधान से होती है जिसमे शव को मेसोपोटामिया की परपरा मे सरकडों से ढक कर लकडी के ताबूत मे रख कर दफनाया गया था (देखिए अध्याय 'शव-विसर्जन') । लोथल मे सेलखडी की वृत्ताकार बटन जैसी मुद्राएँ मिली है (फ० X II, 5) । ऐसी ही मुद्राएँ बहरीन द्वीप और अन्य फारस की खाडी के स्थलो मे विशेष रूप से मिली है (विस्तार के लिये देखिये अध्याय 'मुद्राएँ') । इसी तरह की कुछ मोहरे मेसोपोटामिया से भी मिली है । ऐसा लगता है कि बहरीन के व्यापारी भारत और मेसो-पोटामिया के व्यापारियो के बीच बिचौलिया का काम करते थे और उन्ही के

---

1 शि रगनाथ राव के अनुसार सिधु सभ्यता के व्यापारियो की बस्तिया न केवल मेसोपोटामिया मे अपितु बहरीन द्वीप और दियाला घाटी मे भी थी ।

माध्यम से ये मुद्राएँ लोथल पहुँची होंगी। इसके अतिरिक्त और भी कई वस्तुएँ पायी गयी हैं जो अपने निर्माण-क्षेत्र से दूर किसी दूसरे देश या क्षेत्र के अवशेषों के साथ मिली हैं, जिनका अन्यत्र उल्लेख किया गया है। उत्तरी सीरिया में रास शम्रा (Ras Shamra) की खोदाइयों से हाथीदांत की छड़ मिली है जिन्हें सिंधु सभ्यता का माना गया है सूसा (ईरान) से सिंधु सभ्यता निर्मित एक मुद्रा, एक घनाकार बाट हाथीदात की एक गोटी व रेखांकित मनके मिले हैं। तांबे की मिल, बैल के आकार का ताबीज, स्वस्तिक चिह्न अंकित मिट्टी के बर्तनों के ढक्कन लोथल तथा सूसा दोनों ही स्थलों में पाये गये हैं।

मेसोपोटामिया से प्राप्त एक प्राचीन लिखित साक्ष्य मे मेलुहृह, तिल्मुन (डिल्मुन) तथा मगन से मेसोपोटामिया मे विभिन्न आयात की जाने वाली वस्तुओं की सूची दी हुई है। उसमे कुछ वस्तुए ऐसी है जिन्हे सुलभता से निर्यात करने वाला सिंधु सभ्यता का कोई क्षेत्र ही हो सकता है। यह सही है कि तिल्मुन, मेलुहृह और मगन की पहिचान के बारे मे मतभेद है और विद्वानो ने अलग-अलग स्थलो मे इनकी पहचान सुझाई है जिसका कुछ विस्तार से उल्लेख परिशिष्ट मे किया गया है (परिशिष्ट)। लेकिन इससे प्राय सभी सहमत हैं कि मेसोपोटामिया की वस्तुओ के निर्यात करने के स्रोत इन स्थलों में से कम से कम एक की पहचान सिंधु सभ्यता से करनी चाहिए और अन्य भी सिंधु और मेसोपोटामिया के बीच के ही किसी क्षेत्र के द्योतक हैं।

सुमेरी ताम्रपट्टिकाओं पर अंकित लेखों का साक्ष्य बताते हैं कि डिल्मुन से जहाज लगश के उर-नन्शे (2450 ई पू) के काल मे काठलेकर और अक्कद के सारगान के काल (लगभग 2350 ई पू) मे डिल्मुन मगन और मेलुहृह से विभिन्न सामग्री लेकर जहाज राजधानी अगेड (बेबीलोन) मे आते थे। 2100 ई पू के लगभग उर और मेलुहृह के बीच सीधा संपर्क टूट चुका था तथापि तांबा, हाथीदात, कीमती पत्थर और कुछ खास जानवर फिर भी वहा से लाये जा रहे थे। लेकिन पुन लार्सा राजवश (लगभग 1950 ई पू) के समय डिल्मुन से लौटे व्यापारियो ने निन्गल देवी को व्यापार के लिए लाई वस्तुओं-सोना, चांदी, तांबा, हाथीदात की कघी, उत्खचन, लाजवर्द, कीमती पत्थरों के मनके, लकड़ी और मोती-मे से कुछ अश चढाए। ओपेनहाइम ने निष्कर्ष निकाला कि 2350 ई पू उर का मगन और मेलुहृह के साथ सीधा सपर्क था लेकिन 2100 ई पू के लगभग मेलुहृह और 1900 ई पू मे मगन के साथ उसका सीधा सपर्क टूट गया। इन सदर्भो से ऐसा लगता है कि उर की तरफ से डिल्मुन, मगन और मेलुहृह एक दूसरे से अधिक दूरी पर स्थित थे।

उपर्युक्त विवेचन के अंतर्गत उल्लिखित बलूचिस्तान, राजस्थान, गुजरात आदि क्षेत्र में सिंधु सभ्यता के कई स्थल मिले हैं और इसलिए वहां से विभिन्न प्रकार की निर्माण-वस्तुओं को प्राप्त करना कठिन नही रहा होगा। मध्य एशिया, फारस, अफगानिस्तान भी सिधु सभ्यता के क्षेत्र के बहुत ही निकट स्थित थे। मेसोपोटामिया से संपर्क स्थल और जल दोनों ही मार्गों से रहा होगा। सिंधु सभ्यता के स्थल और मेसोपोटामिया के मध्य थल मार्ग होने वाले व्यापार मे बलूचिस्तान और ईरान ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सिधु सभ्यता के स्थलों का मेसोपोटामिया की अपेक्षा मिस्र से कम संपर्क था। मिस्र के संपर्क मे लोथल की ही विशेष भूमिका रही। रगनाथ राव ने लोथल से प्राप्त एक मृण्मूर्ति को गुरिल्ला की आकृति पहचाना है। पूर्वी अफ्रीका के क्षेत्र से सपर्क के फलस्वरूप इस पशु की आकृति बनाने की प्रेरणा मिली होगी। 'ममी' का माडल बनाने का प्रेरणा-स्रोत भी मिस्र ही रहा होगा। राव का कथन है कि लोथल की समुद्र-देवी का नाम सिकोतरी माता है जो पूर्वी अफ्रीका के समुद्र तट के द्वीप सकोतरो (Sakotaro) के नाम पर आधारित लगता है। पूर्वी अफ्रीका के समुद्रतट के स्थलों मे कीमती पत्थरों के भारतीय मनके मिले है।

भारतीय और भारतेतर प्रदेशों मे व्यापार के कारण एक सुसगठित व्यापारी वर्ग का उदय हो गया होगा। ऐसा लगता है कि ये व्यापारी अपने माल को पैक कर बडलों पर अपनी मुद्रा अंकित कर देते थे जिससे यह पहचान हो सके कि माल किसने भेजा। मुद्रा-छाप का बंडल पर लगे रहना इस बात का भी द्योतक होता है कि वह बडल पहले किसी ने खोला नही है। यह भी हो सकता है कि राजकीय अधिकारी अथवा व्यापारिक सगठनों के कर्मचारी माल का निरीक्षण कर उस पर मुद्रा लगाते थे। ऐसी स्थिति मे बंडल पर मुद्रा का लगा होना इस बात का भी द्योतक रहा होगा कि माल निर्धारित कोटि का है। लोथल के अन्नागार या भाडागार मे लगभग सत्तर मुद्रा-छापे मिली जिनके पीछे चटाई जैसे कपडे के और बटी रस्सी के निशान मिले है। स्पष्ट है कि वस्तुओं के बडलों को कपड़े या टाट जैसी वस्तु मे रख कर और रस्सी से बाध कर रस्सी की गाठ पर मोहर लगाई गई थी। इसी जगह कुछ मिट्टी के लौंदे पर कई मुद्रा-छापें है, जिससे लगता है कि कई व्यापारियों का साझा व्यापार भी चलता था और किसी साझे लेन-देन के सिलसिले में उन सभी ने अपनी-अपनी मुहर लगाई थी। अनेक मुद्राओ पर एक ही प्रकार के लेख अभिप्राय है जो किसी व्यापारी विशेष या राजकर्मचारी के लगते है।

व्यापारियो के कारवा व्यापार के सिलसिले मे तत्कालीन व्यापारिक पथों पर

आते-जाते रहे होंगे। उनके इन मार्गों पर रुकने के लिए सराय इत्यादि की व्यवस्था रही होगी, और इस संदर्भ में पिगट अमीलानो नामक स्थल को ऐसे ही एक व्यापारिक मार्ग पर स्थित एक सराय होने का उल्लेख करते हैं। व्यापार में सामान की ढुलाई के लिए ऊंट का प्रयोग होता रहा होगा। बैल और भैंसे पर भी सामान लाद कर ले जाया जाता होगा। यदि घोड़े से विकसित सिंधु सभ्यता के लोग परिचित थे तो उनका भी, विशेषत पहाड़ी क्षेत्र में, इस सदर्भ में उपयोग होता रहा होगा। और आजकल के रिवाज को देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि पहाड़ी क्षेत्र में बकरियों का भी प्रयोग इस काम में हो सकता था। इस सदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पिगट के अनुसार सिंधु नदी द्वारा निरंतर अपना मार्ग बदलते रहने के कारण उसका मुहाना, जहां दलदल बढ़ जाता था, समुद्री व्यापार के लिए अधिक उपयुक्त न था और मेसोपोटामिया के साथ थल मार्ग से होने वाले व्यापार में कुल्ली के व्यापारियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की होगी।

भारी किन्तु धीमे यातायात के लिए बैलगाड़ी निश्चित रूप से प्रयुक्त होती थी। इनके चक्के ठोस होते थे और वे आकार-प्रकार में, जैसा कि बैलगाड़ी के मिट्टी के माडलों से अनुमान लगाया जा सकता है, सिंधु क्षेत्र में आजकल प्रयुक्त की जा रही बैलगाड़ियों से अधिक भिन्न नहीं थी। खोदाई के दौरान पहियों के जो निशान प्राप्त हुए हैं उनमें दो पहियों के बीच की दूरी एक मीटर से थोड़ी अधिक है। यही दूरी इस क्षेत्र में आजकल प्रयुक्त बैलगाड़ियों में भी समान्यतया पायी जाती है। मोहेंजोदड़ो के साक्ष्य दो-पहियों वाली गाड़ी के ही अधिक हैं। काम की भी दो पहियों वाली खिलौना-गाड़िया मिली हैं। चन्हु-दड़ो से जो मिट्टी की खिलौना गाड़िया मिली हैं वे चार पहिये वाली गाड़ी की नकल लगती हैं, जिनमें आगे के पहिए पीछे के पहियों से कुछ बड़े हैं। कुछ खिलौना-गाड़िया कांसे तथा तांबे की बनी भी मिली हैं। हड़प्पा और चन्हुदड़ो की ये खिलौना गाड़िया सुंदर ढंग से बनी हैं। इनके ऊपर चदोवा भी है। आज की इक्का-गाड़ियों से इनकी सहज तुलना की जा सकती है। इनका प्रयोग लोगों के आने-जाने के लिए और सामान ढोने के लिए किया जाता रहा होगा। लोथल में कुछ मिट्टी की खिलौना-गाड़िया तो मिली ही हैं, अलाबास्टर का एक पहिया भी मिला है। एक मृद्भाण्ड के टुकड़े पर एक व्यक्ति को दो पहियों पर खड़ा दिखाया है जो असीरिया के मृद्भाण्डों पर चित्रित रथ हांकने की आकृति से मिलता-जुलता है। राव का मत है कि लोथल के वे लोग घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले रथों से भी परिचित थे।

उस काल मे जल मार्ग से भी पर्याप्त मात्रा में व्यापार होता था। किसी नाव के अवशेष नही मिले। लकडी की बनी होने के कारण नावे इतने समय तक सुरक्षित नही रह सकती थी। अत. इनकी प्राप्ति की सभावना कम ही थी। लेकिन नाव के चित्रण मिले है। नाव का एक चित्रण मोहेजोदडो से लापरवाही से निर्मित एक बर्तन (आ० 10, 1) पर मिला है जिसमे ऊँचा पौताग्र और पौतपार्श्व, मस्तूल, लपेटी हुई पाल और एक लंबी सचालन-पतवार दिखायी गयी है। दूसरा चित्रण मोहेजोदडो की ही एक मुद्रा (आ० 10,1) पर है जो अपेक्षाकृत सावधानी से बना है। इसमे भी नाव का ऊँचा पोताग्र और पोत-पार्श्व दिखाए गए है। डेल्म को मोहेंजोदडो की एक मुद्रा पर नाव का चित्रण पक्षियों तथा जल जीवो के साथ। नाव के बीच घर जैसा बना है (आ० 10,3)। ये नाव के चित्रण इस बात के द्योतक है कि सिंधु सभ्यता की नावे प्राचीन क्रीट और मेसोपोटामिया की नावों से बहुत कुछ मिलती जुलती थी और यद्यापि उनका उपयोग अधिकतर नदियो मे ही रहा होगा, तथापि समुद्र मे भी उनका उपयोग हो सकता था। आज भी अरब लोग छोटी-छोटी नौकाओ को भी समुद्र मे चलाते हैं। लोथल से नावो के पाच माडल मिले है। इनमे कुछ पर पाल दिखाये गये है और कुछ पर नही। इनमे से केवल एक ही ऐसा है जो समूचा बचा है, बाकी टूटे हैं। इसकी 'काल' सुस्पष्ट और नुकीली है। पोताग्र नुकीला और पृष्ठभाग ऊँचा व चपटा है। नाव में तीन छेद है। एक पृष्ठभाग के पास मस्तूल स्थापित करने के लिए, दूसरा पोताग्र (प्रो) के सामने वाला रस्सी के लिए और तीसरे मे एक खभा है जो पतवार को सहारा दिये था। लोथल मे प्राप्त मृद्भाण्ड के टुकडे पर भी नाव के चित्रण मिले है। मेके ने (फ.ए.पृ 647) आधुनिक युग के साक्ष्य के आधार पर सिंधु सभ्यता के व्यापारियो द्वारा दजला-फरात तक पहुँचने के बारे मे निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले है। कराची के बन्दरगाह से बसरा की समुद्रयात्रा मे लगभग 1400 मील की की दूरी है। प्राचीन काल मे दजला और फरात तथा सिंध नदियो के मुहाने आज की अपेक्षा समुद्र तट से काफी अंदर थे और इसलिए यात्रा कुछ और अधिक मील दूर की रही होगी। फिर सिंधु सभ्यता के काल में नावे समुद्र तट के निकट चलती रही होगी जिससे यात्रा की दूरी और बढ़ जाती होगी। आजकल की बडी नावो (लगभग 60 टन वाली) को बसरा से कराची आने मे करीब दो मास लगते है और ये साल के हर मौसम मे यात्रा कर सकती है, किंतु छोटी (लगभग 5 टन वाली) नावे केवल दिसबर, जनवरी और फरवरी में ही चल पाती है। मैके का अनुमान है कि सिंधु सभ्यता के काल में भी काफी बडी नावे, जो वर्षभर यात्रा के उपयुक्त थी, प्रयुक्त होती रही होंगी।

जब तक सिंधु सभ्यता के हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो ही प्रमुख नगर ज्ञात थे, लोगों का यही मत था कि मेसोपोटामिया और सिंधु सभ्यता के मध्य व्यापारिक तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान में इन्ही दो नगरों का योगदान रहा होगा। इन दो नगरों की विशालता एवं सपन्नता तो अभी भी सिंधु सभ्यता के स्थलो मे अप्रतिम है, और इन्हें तो व्यापारिक एव सांस्कृतिक आदान-प्रदान का श्रेय देना ही होगा, लेकिन कुछ श्रेय हमको स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद ज्ञात और उत्खनित स्थलो को भी देना होगा। इस सिलसिले में लोथल का अपना विशिष्ट महत्त्व है। यहा पर उत्खनन एक विशाल, लगभग आयताकार, पकाई ईटो का घेरा मिला है (जिसका वर्णन हमने विस्तार से परिशिष्ट मे किया है)। रंगनाथ राव ने इसकी पहिचान गोदी बाडा (फ० VI, 2) से की है और यह मत व्यक्त किया है कि लोथल पहले भोगावा और साबरमती नदियों के सगम पर था और ज्वार के समय गोदी मे जहाज आते-जाते थे। यद्यपि कुछ लोगो ने इसे गोदी स्वीकारने मे हिचकिचाहट और कुछ ने असहमति भी व्यक्त की है, तथापि अधिकांश पुरातत्ववेत्ता अपनी कृतियो मे इसका उल्लेख गोदी के रूप मे किया है।

समुद्री व्यापार के सिलसिले मे सिंधु सभ्यता के वासियो ने समुद्र तट पर कई व्यापारिक केन्द्र (स्टेशन) स्थापित किये थे जहा पर वे सामान की अदला-बदली कर सकते थे। रात का पडाव डाल सकते थे, और आवश्यक खाद्य-सामग्री प्राप्त कर सकते थे। संभवत सौराष्ट्र के तट और उसके समीप किम नदी के तट पर भगत्राव, नर्मदा तट पर मेधम, हिरण्य नदी के तट पर प्रभास, साबरमती पर लोथल, और मकरान के तटपर सुत्कजेन्डोर, सोत्काकोह इत्यादि समुद्रतटीय व्यापारिक पडाव थे। उस काल मे समुद्रयात्रा बडा जोखिम का कार्य था और ये लोग निश्चय ही सामुद्रिक हवाओ और अन्य समस्याओ के बारे मे पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर चुके थे।

विदेशी व्यापार म कौन सी वस्तुएँ आयात निर्यात की जाती थी, इसका ठीक ठीक अनुमान लगाना आसान नही। यह कहना कठिन है कि सिंधु सभ्यता काल मे भी भारत मे मसाले और मिर्च का निर्यात होता था, जैसा कि ऐतिहासिक काल मे होता रहा। क्या धूप भी उस समय भारत से निर्यातित होती थी इसका निश्चित उत्तर देना कठिन है। पिगट का कहना है कि शायद दासो का व्यापार भी होता रहा हो। वे मोहेंजोदडो मे प्राप्त नर्तकी की विख्यात कास्य-मूर्ति के सबंध मे यह धारणा व्यक्त करते है कि मोहेंजोदडो के व्यापारी व्यापारिक यात्रा के दौरान बलूस्तान से किसी नर्तकी को अपने साथ ले आये थे और उसकी

आकृति से प्रेरणा लेकर मोहेंजोदड़ो के किसी कलाकार ने नर्तकी की यह मूर्ति बनाई होगी।

सिंधु सभ्यता के विभिन्न स्थलों से जो निर्मित वस्तुएं पाई गई हैं उनमें बहुत कुछ समरूपता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि आर्थिक क्षेत्र में भी सुसंगठित शासनतंत्र का कड़ा नियंत्रण था। किंतु मात्र शासकीय नियंत्रण से ही ऐसी समरूपता आना संभव नही लगता, जैसा कि पिगट ने लिखा है। इसके साथ ही कोई वाणिज्यिक सहिता और वस्तुओ के मानकीकरण की कोई व्यवस्था भी रही होगी जिनके द्वारा ईटों के आकार, बर्तनो के आकार-प्रकार, बाट-बटखरो की तौल का निर्धारण और उन पर नियत्रण रखा जाता रहा होगा। शायद वणिको के अपने सगठन थे, वैसे ही जैसे कि ऐतिहासिक काछ मे श्रेणी और निगम थे, और वस्तुओ के निर्माण और व्यापार मे इन आर्थिक संगठनो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा होगा। सडको को सीधा बनाये रखना इस बात का द्योतक है कि भूमि पीढी दर पीढी एक ही परिवार मे रहती थी।

हडप्पा और मोहेजोदडो दोनो ही स्थलो पर श्रमिको (दासो ?) के लिए निर्मित आवास महत्वपूर्ण है। भारत ही नही अपितु एशिया के देशो मे एक तरह के व्यवसाय-उद्योग वाले लोग एक क्षेत्र मे ही साधारणत रहते है, और यह आर्थिक जीवन का एक सुविदित पक्ष है। किंतु सिंधु सभ्यता के सदर्भ मे महत्वपूर्ण बात यह है कि एक ही प्रकार के कार्य करने वाले श्रमिकों के एक साथ रहने के लिए एक ही प्रकार के आवास के निर्माण की योजना स्वय शासन द्वारा तैयार और क्रियान्वित की गई लगती है। इस बात की सभावना कम है कि ये मकान किसी आर्थिक सगठन द्वारा निर्मित किये थे, यद्यपि ऐसा असभव नही है। पिगट तो पश्चिमी एशिया मे इन्हे अपने ढग का सर्वप्रथम सुसगठित उद्योग का उदाहरण मानते है।

मापदण्ड (स्केल)

मोहेजोदडो से जो मापदण्ड मिला था वह सीप का है। यह खण्डित है। मैंके द्वारा उसका विवरण प्रस्तुत किया गया है जो संक्षेप मे इस प्रकार है। यह 16.55 सेमी लबा, 1 55 सेमी चौडा और ·675 सेमी मोटा और है और इसके केवल एक ही तरफ निशान अकित है। इस पर बराबर बराबर दूरी पर नौ निशान बने है किन्ही दो निशानो के बीच की दूरी 0·66 सेमी है, (जब यह मापदण्ड साबूत रहा होगा तब वह कितने भागो मे विभाजित रहा होगा, यह कहना कठिन है) और पाच ऐसी इकाइयों को दूसरे प्रकार की विभाजक रेखाओ से अलग किया गया है जिसकी माप 3.3 सेमी है। इसके दशमवलव प्रणाली के 33 सेमी

मापदण्ड (स्केल) का खण्डित भाग है, की संभावना लगती है। इस तरह के पैमाना मिस्र, एशियामाइनर, यूनान, सीरिया इत्यादि की प्राचीन संस्कृतियों में भी प्रचलन में था। जैसे मैके का कहना है, पैमाने के लिए सीप का प्रयोग इसलिए विशेष उपयुक्त है कि इसमें सिलवटें (Warp) अथवा दरारें पड़ने की संभावना नहीं रहती और साथ ही तापमान के परिवर्तन का भी इस पर खास प्रभाव नहीं पड़ता। हां सीप के पैमाने बहुत बड़े आकार के नहीं बन सकते। विभिन्न टुकड़ों को धातु से जोड़ कर लंबा पैमाना बनाया तो जा सकता है पर यह श्रमसाध्य है और इस बात की संभावना ही अधिक है कि बड़े पैमाने कांसे या तांबे के बने थे। भाग्यवश हड़प्पा से इस तरह के पैमाने का साक्ष्य मिला है। निम्नलिखित विवरण मुख्यतः माधोस्वरूप वत्स के विवरण पर आधारित है 3.75 सेमी लंबा है, इस पर 0.93 सेमी की विभाजन रेखाएं खिंची हैं जो शायद 51.55 सेमी के हस्त-परिमाण पर आधारित लगती है। इन दो पैमानों का 150 उत्खात भवनों के उदाहरणों पर प्रयोग किया गया और यह पता चला कि दो तरह के नाप के पैमाने थे—एक हस्त-मापदण्ड जिसका लंबाई 50.75 सेमी से 52 सेमी तक होती थी और दूसरा 'फुट' की तरह का पैमाना जो 32.5 सेमी से 33 सेमी तक का होता था। साधारणतः भवनों की माप इन्हीं गुणाक में पाई गई।[1]

लोथल से एक हाथी-दांत का पैमाना मिला है (फ० XXII, 4)। राव का कहना है कि इस पैमाने पर अंकित विभाजन की इकाइयां मोहेंजोदड़ो के पैमाने पर अंकित इकाइयों से छोटी है। और यह पैमाना मोहेंजोदड़ो के पैमाने से अधिक सही है। इसकी चौड़ाई पंद्रह मिलीमीटर और मोटाई छह मिलीमीटर है। इसका कुछ भाग टूट गया है, जो बचा हुआ भाग मिला है उसका लंबाई मिलीमीटर 128 मिलीमीटर है। इस पर 46 मिलीमीटर की लंबाई में 27 विभाजक रेखाएं ही बची हैं। दो रेखाओं के बीच की दूरी 1.7 मिलीमीटर है। कालीबंगा से भी एक पैमाना मिला है पर अभी उसके बारे में विस्तृत विवरण प्रकाशित नहीं हुआ है।

बाट-बटखरे

शायद ही विश्व की किसी प्राचीन सभ्यता के उत्खनन में इतने बाट मिले

1 उदाहरणार्थ मोहेंजोदड़ो का विशाल स्नानागार 32.75 सेमी पैमाने की इकाई में 36 × 21 था और हड़प्पा में अन्न कूटने के लिए निर्मित वृत्ताकार चबूतरों का व्यास 33 सेमी पैमाने की इकाई से 10 इकाई था। फ्लिंडर्स पीट्री ने अपने गहन अनुभव के आधार पर यह बताया कि एशिया में भी प्राचीन काल में 33 सेमी का माप ही अधिकांशतः प्रयुक्त होता था।

हों जितने कि सिंधु सभ्यता में मिले हैं। कई स्थानों से विशाल संख्या में बाट मिले है ऐसा नही कि ये नगर के कुछ ही स्थानों में ही (जिन्हे व्यापारिक केन्द्र या कारखाने-फैक्टरी का स्थल माना जा सकता है) काफी सख्या में मिले हों; ये नगर के विभिन्न क्षेत्रों मे कही कम कही अधिक संख्या मे मिले हैं। ये छोटे और बडे (फ० XXII 2) दोनों ही तरह के घरों मे पाये गये हैं। इससे यह अनुमान लगाया गया है कि गृहणियां इन्हे अपने घरो मे रखती थी और इनसे इसकी जाच किया करती थी कि बाजार में बनिये ने सामान ठीक तौला है या नही। इनका उपयोग घर की पुरानी टूटी-फूटी चीजों को कबाडी के हाथ बेचने में भी होता रहा होगा। सिंधु सभ्यता में मोहेंजोदडो जैसे समृद्ध नगरों में आबादी का एक बडा भाग व्यापारियो का था जो दूकानों मे तो बाट रखते ही रहे होंगे, घरों मे भी, जिनका गोदाम की तरह भी उपयोग हो सकता था, वे कुछ बाट रखते रहे होंगे।

क्रय-विक्रय मे नाप तौल मे एकरूपता रहे इसका सिंधु सभ्यता के लोगों ने पूरा प्रयास किया था, और इसमे उन्हे पर्याप्त सफलता मिली थी। हडप्पा, मोहेंजोदडो, चन्हुदडो और अन्य सिंधु सभ्यता के स्थलों से संस्कृति के विभिन्न चरणों मे प्राप्त बाट लगभग एक ही तौल-प्रणाली पर आधारित थे। ये बाट कई प्रकार के पत्थरों के बने है, किंतु भूरे चर्ट पत्थर के बाट सबसे अधिक सख्या मे मिले है। अन्य पत्थरो मे चूना-पत्थर, सेलखडी, स्लेट पत्थर, कैल्सोडोनी इत्यादि उल्लेखनीय है। इनके बनाने के लिए काफी कठोर पत्थर का चुनाव करना और इनके निर्माण मे अत्यत सावधानी व सतर्कता बरतना इस बात का द्योतक है कि इनके निर्माण मे शासकीय नियत्रण था। नीचे मैके के वर्गीकरण के आधार पर बाटो का विवरण दिया गया है :—

1. घनाकार—ये सर्वाधिक संख्या में मिले है (फ० XXII, 2)। अधिकाशत इनके छहो फलक लगभग बराबर हैं। मोहेंजोदडो मे प्राप्त इस तरह का सबसे छोटे बाट का आकार 0.75 × 0 75 × 6 25 सेमी और सबसे बडे का 17 × 15 × 9.5 सेमी है। ये चर्ट पत्थर के बने हैं जिनमे से कुछ पर धारिया है। उनको पहले छील-तराश कर समतल बनाया गया है और बाद मे पालिश कर दी गयी है।

2. ऊपर और नीचे की ओर चपटे वर्तुलाकार बाट—ऐसे बाटों की संख्या अधिक नही है। ये कैल्सोडोनी, चूना-पत्थर, चकमक, गोमेद आदि पत्थरों के है। मोहेंजोदडो मे इस प्रकार के बाट केवल छह मिले है। ये छोटे बड़े आकार के है। उपलब्ध बाटों मे से अधिकाश भलीभाति बनाये गये है। इनकी

संख्या कम होने से ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इन्हे किसी खास उद्देश्य से बनाया गया था। मिस्र और मेसोपोटामिया में इस तरह के बाट नही मिलते।

3 ऊपर और नीचे की ओर चपटे बेलनाकार बाट—मोहेंजोदडो मे इस तरह के बाट के मात्र दो उदाहरण हैं। इनकी ऊँचाई 3.5 सेमी और व्यास 4.5 सेमी है।

4. छेद-वाले शंक्वाकार बाट—मोहेंजोदडो मे इस तरह के बाटों के चार उदाहरण मिले हैं। ये ऊपर की ओर शंक्वाकार हैं। ये भलीभाँति तराश कर बनाये गये है। इनमे से एक 10 262 किलोग्राम वजन का है। यह 24 75 सेमी ऊँचा हैं और इसके चपटे पेंदे का व्यास 13 75 इंच है। भारी होने के कारण प्रयोग करने और प्रयोग के बाद हटाने मे इसे घसीट कर ले जाया जाता था, जिसमें इस पर टूटने-फूटने के चिह्न हैं। इस तरह के बाट भारतेतर सभ्यताओं में नही मिलते। हड़प्पा मे भी इस तरह के बाट मिले हैं और इस तरह का एक बाट नाल (बलूचिस्तान) में भी मिला है।

5 ढोलाकार—मोहेंजोदडो मे पहले (मार्शल के निदेशन मे किये उत्खनन में) इस तरह के आठ उदाहरण और बाद मे (मैंके के निदेशन मे) तीन मिले। हड़प्पा मे ऐसे बाट अपेक्षाकृत अधिक संख्या में पाये गये हैं। मोहेंजोदडो के बाट एक किलो से कम वजन के है। मिस्र और मेसोपोटामिया की समकालीन और पूर्ववर्ती संस्कृतियो के लोग ऐसे बाटो का प्रयोग करते थे। मैंके ने सुझाया है कि मोहेंजोदडो मे शायद इस तरह के बाट किसी ऐसे समुद्रतटीय स्थल से, जिसका सुमेर और एलम से संपर्क था, लाये गये होंगे, क्योंकि सुमेर और एलम में इस तरह के बाट बहुत लोकप्रिय थे।

इसके अतिरिक्त कुछ पत्थर की शंक्वाकार वस्तुएँ भी मैंके के अनुसार बाट हो सकते हैं। ये अपेक्षाकृत बहुत कम (कुछ ग्राम) ही वजन के है। मोहेंजोदडो मे प्राप्त चूना-पत्थर की चपटे पेंदे वाली एक वस्तु मिली है, यह 21 25 सेमी ऊँचाई, 2 62 सेमी व्यास और 26 5 ग्राम वजन वाली है। मैंके इसके भी बाट होने की संभावना मानते हैं। निर्धन लोग कदाचित् बिना तराशे पत्थर की गिट्टियो का ही बाट के तौर पर प्रयोग करते रहे होंगे।

इन बाटो का क्रम-विन्यास विश्व की अन्य प्रचलित तौल प्रणालियो से भिन्न और विशिष्टता लिए है, और इसे यत्नपूर्वक हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न स्थलो पर लागू किया गया था। विभिन्न बाटों की तौल का अनुपात इस तरह है —1, 2, 8/3, 4, 8, 16, 32, 64, 160, 200, 320, 640। इससे यह

निर्धारित किया जा सकता है कि इकाई 16 के अनुपात में थी, जो वजन में 13.625 ग्राम थी। छोटे तौल वाले माप में द्वयागी (द्विन-प्रणाली) और बड़े तौल वाले दशमलव प्रणाली पर आधारित थे। प्रभाजित तौल मे तिहाई की तौल के बाट भी थे। पिगट ने 16 के गुणक की तौल के आधार को इसलिए भी विशिष्ट बताया है कि आधुनिक काल में भी (मीट्रिक प्रणाली के प्रचलन से पूर्व) रुपये मे सोलह आने होते है। किंतु तौल के संदर्भ मे (मीट्रिक प्रणाली से पूर्व) भारत मे प्रचलित सोलह छटाक का एक सेर का उदाहरण देना अधिक उपयुक्त होगा। मोहेंजोदडो से सात ऐसे बाट मिले है जो उपर्युक्त तौल प्रणाली मे ठीक नही बैठते और किसी दूसरी तौल प्रणाली पर आधारित थे। रंगनाथ राव का कहना है कि लोथल के विकसित प्रकाल मे जब उसका बेबीलोन के साथ व्यापार चरम विकास पर था, लोथल के व्यापारियो ने सामान्य सिंधु प्रकार के बाटो के अतिरिक्त बेबीलोन के तौल पर बाट भी बनवा कर प्रयोग किये।

छोटे तौल के बाटो का प्रयोग गहने और मनके बनाने वाले करते रहे होगे। चन्हुदडो के मनके बनाने वाले की दूकान पर इस तरह के कई बाट मिले है। बाटो पर कोई तौल के द्योतक लेख या चिह्न अंकित नही मिले है। इससे यह अर्थ लगाया गया है कि जो व्यापारी-दूकानदार इनका प्रयोग करते थे वे पढ़े-लिखे नही थे। किंतु, जैसा कि पिगट का कहना है, यह निष्कर्ष समीचीन नही लगता।

मिट्टी और धातु के बने तराजू के पलडे थोडी संख्या मे मिले है। एक तांबे या कांसे की छड भी मिली है जिस पर संभवत पलडे लगाए गए होगे। इसके किनारे पर पलडो को टांगने के लिए बांधी गई रस्से के चिह्न भी स्पष्ट थे। तराजुओ का बाटो की तुलना मे अत्यंत कम संख्या मे पाया जाना यह स्पष्ट करता है कि लोग अधिकांशत पलडे और डंडी लकडी के बनाते रहे होगे।

•

अध्याय 13

परिधान तथा आभूषण

परिधान तथा आभूषणो के संबध मे जानकारी के स्रोत है—कुछ पत्थर की प्रतिमाए (फ० IX, X, 2), कास्य प्रतिमा (फ० X, 1) और मृण्मूर्तिया (फ० XI, XII) जिन्हे वस्त्र और आभूषण पहने दिखाया गया है, कपडे के वे टुकडे जो नष्ट होने से बच गये है और विभिन्न प्रकार के आभूषण जो खोदाई से प्राप्त हुए है। जिस क्षेत्र मे हडप्पा सस्कृति पनपी वह प्राचीन काल मे अच्छी कपास की खेती के लिए प्रसिद्ध रहा है। अत आशा यही की जाती है कि सिधु सभ्यता के लोग भी कपास के सूती वस्त्रो का प्रयोग करते थे, और उपलब्ध साक्ष्य इसकी पुष्टि करते है। दयाराम साहनी को 1926 मे सूत से लिपटा एक बर्तन मिला था जिसके अदर गहने थे। मैके को मोहेंजोदडो मे ताबे की वस्तुएँ सूत के धागे और कपडे मे लिपटी मिली। मोहेंजोदडो मे ही एक मछली मारने का काटा धागे से लिपटा उपलब्ध हुआ। आलमगीरपुर की खुदाई मे सिधु सभ्यता के सदर्भ मे वस्त्र का जो टुकडा प्राप्त हुआ है वह अच्छे किस्म की कपास से बनाये गये सूत का नही है। सूती वस्त्रों के अलावा ऊनी वस्त्र भी प्रचलित रहे होंगे। प्राचीन मिस्र की सभ्यता मे सन (फ्लैक्स) का प्रयोग वस्त्र निर्माण मे होता था। या तो सिधु सभ्यता के लोगो को सन के उपयोग के बारे मे ज्ञान नही था अथवा सन के वस्त्र भूमिगत लवणो के प्रभाव से नष्ट होने के कारण खोदाई से इस विषय मे कोई साक्ष्य उपलब्ध नही हो सका है। सन सूत से अधिक मजबूत होता है, किंतु वस्त्र बनाने के लिए इसे तैय्यार करना अपेक्षाकृत कठिन होता है। हो सकता है कि इसी कारण सन का उपयोग न किया गया हो। उच्च वर्ग और निम्नवर्ग के लोगो के वस्त्रो मे अतर रहा होगा, यद्यपि उपलब्ध साक्ष्यो से इस विषय पर कोई प्रकाश नही पडता है।

उत्खननो से प्राप्त पुरुष मूर्तियो की सख्या अधिक नही है और जो प्राप्त हुई भी है वे अधिकाशत मस्तक अथवा अधोभाग से खण्डित है। अतः उस काल के पुरुषो द्वारा धारण किये जाने वाले वस्त्र तथा आभूषणों के विषय मे पर्याप्त जानकारी प्राप्त करना कठिन है। मोहेंजोदडो की प्रसिद्ध योगी अथवा पुरोहित की मूर्ति (फ० IX, 1) को शाल ओढे दिखाया गया है जो सिधु सभ्यता के लोगो के सुदर वस्त्र निर्माण के ज्ञान का उत्तम उदाहरण है। उसने शाल

को बाएं कधे को ढकते हुए ओढ रखा है तथा दाया कंधा खुला छोड रखा है। मेसोपोटामिया की कई कब्रों के पास पिनें पायी गयी हैं। अनुमान है कि पिने वस्त्र को शरीर पर बाधने के लिए प्रयुक्त होती थी। हो सकता है कि सिधु सभ्यता के लोग भी शाल को पिन से बाधते रहे हो। शाल के नीचे अधोवस्त्र पहना जाता होगा, किंतु इस सबध मे कोई साक्ष्य उपलब्ध नही है। जिस तरह से पुरोहित मूर्ति को शाल ओढे दिखाया गया है, उस तरह शाल ओढने की प्रथा आज भी प्रचलित है। इस शाल पर तिपतिया अभिप्राय है जो काढा हुआ लगता है। यह अभिप्राय, जैसा कि हम पहले देख चुके है, कई प्राचीन सस्कृतियों के संदर्भ मे अलकरण के रूप में मिलता है। पुरुषो के प्रिय आभूषणो के विषय में इतना ही ज्ञात है कि वे मस्तक पर बालो को केश-पाश से बाधते थे और कुछ लोग बाहु भुजबंद से विभूषित करते थे। पुरुषो द्वारा वर्गाकार दाढी रखने के साक्ष्य भी सिधु सभ्यता की मूर्तियो मे प्राप्त है। इस तरह से दाढी रखने की परंपरा सुमेर मे भी प्रचलित थी। ताबे और कासे के बने उस्तरे मिले है जिनसे हजामत बनायी जाती रही होगी। इस कार्य मे प्रवीण लोगो का एक अलग वर्ग भी रहा होगा।

नारी मृण्मूर्तियो (फ० XI, XII) मे, जिन्हे मातृदेवी पहचाना गया है, प्राय विपुल आभूषण एव कुछ वस्त्रो के धारण करने के चिह्न पाये जाते है। वे सिर, कान, कण्ठ, भुजा, कटि और पावो के आभूषण पहने दिखाई गई है जो आकार और आकृति में रोचक विविधता लिए है। कुछ नारी आकृतियों को घुटने तक या घुटनो से कुछ ऊपर तक लम्बाई वाला स्कर्ट की तरह का वस्त्र पहने दिखलाया गया है। यह निश्चय कर सकना कठिन है कि यह वस्त्र सिला हुआ है अथवा यू ही चारो ओर लपेट लिया गया है। ऐतिहासिक काल मे हमे इसी तरह के अधोवस्त्र के दर्शन गुप्त-कालीन मृण्मूर्तियो और अजता की चित्र-कला मे मिलते है। कुछ नारी मूर्तिया पखे की तरह का शिरोवस्त्र पहने दिखाई गई है। कटि से ऊपरी भाग मे वस्त्र नही दिखाये गये है। लेकिन केवल इसी साक्ष्य से यह निश्चित निष्कर्ष निकालना कि वे ऊपर के वस्त्र पहिनती ही नही थी, समीचीन नही होगा। वैसे आज भी कुछ जनजातिया ऐसी है जिनमे स्त्रिया कटि से ऊपर नग्न रहती है।

खोदाइयो मे प्राय: सभी सिधु सभ्यता के स्थलो से आभूषणों के समूचे और खण्डित भाग मिले है जिनमे सिधु-सभ्यता के लोगों की आभूषणों के विषय मे रुचि एव कारीगरो की कार्य कुशलता का परिचय प्राप्त होता है। ये आभूषण सोना, चादी और अर्ध-बहुमूल्य पत्थरों से बने है। आज कीमती पत्थर ग्रहों को शात करने के लिये भी धारण किये जाते है। साथ ही धातुओं से बने कुछ वस्तुओ

का भी कुछ ऐसा ही महत्व रहा है। उस काल में भी कुछ आभूषण धारण करने के संबंध में ऐसी ही धारणा थी या नही कुछ कहा नहीं जा सकता।

आरेख 17
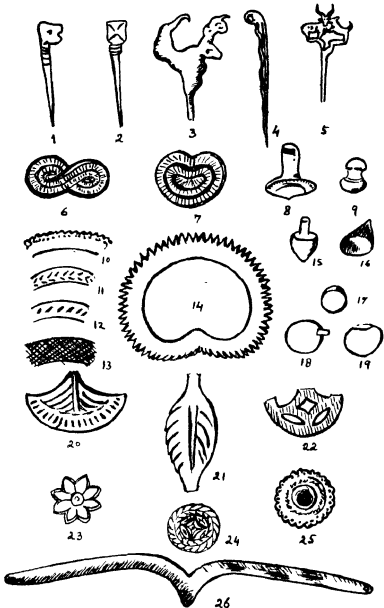
लेकिन मिस्र और बेबीलोन में लोग आभू षणों को उसमे जादुई शक्ति होने की धारणा से भी पहिनते थे। कुछ आभूषणों पर धार्मिक चिह्न भी मिलते है।

सिर से लेकर पैर तक कई आकार-प्रकार के आभूषण कारीगरों ने गढ डाले थे। इनसे स्पष्ट है कि सिधु सभ्यता मे स्त्रियो का आभूषण प्रेम आजकल की स्त्रियो, विशेषत ग्रामीण स्त्रियों, के आभूषण-प्रेम से कम नहा था।

स्त्रिया बालों को काटे और शंखाकार आभूषणो से सजाती थी। खोदाइयो से प्राप्त काटे (आ० 17, 1–5) मिट्टी, ताबा, कासा और शख के बने है। मोहेंजोदडो से वत्स की एक ताम्र-निर्मित बालपिन का ऊपरी भाग मिला; उस पर हिरन के कान को काटते हुए कुत्ते का अकन है। वही से प्राप्त एक हाथी-दात के पिन का ऊपरी भाग कुत्ते के सिर के समान बना है। कांचली मिट्टी के बने ऐसे ही बालपिन पर ताली बजाते हुए तीन बंदर अंकित है। कुछ बालपिन सादे भी है।

कर्णाभरण (आ० 17,8,1,24,25) भी कई तरह के थे। वैसे सामान्यतया दोनो कानो मे एक ही तरह का आभूषण पहना जाता था, किंतु मोहेनजोदडो की कुछ नारी मृणमूर्तियो को दोनो कानों मे अलग-अलग तरह का आभूषण पहने दिखाया गया है। कुछ कर्णफूल मे पत्ती का सा किनारा है। काचली मिट्टी के बने कान की कील और झाले पाये गये हैं। मोहेंजोदडो के एक बुदे पर चार कोने वाला तारा है। मैके के अनुसार इसका कुछ जादुई महत्व रहा होगा। मेसोपोटामिया की एक मृणमूर्ति मे भी ऐसा ही आभूषण दिखलाया गया है। काचली मिट्टी के कुछ कान के छोटे बुदे उपलब्ध हुए है। कानों मे बाली पहनी जाती थी। बालिया ताबे, कासे और चादी की मिली है। मोहेजोदडो से एक बच्चे की ताबे की बाली मिली है।

कुछ आभूषणो की पहिचान जाडाऊ टीका से की गई है। ये मिट्टी, हाथीदात, काचली मिट्टी और शंख के बने है। ये आकृति मे कुछ पखे जैसी कुछ अर्धचन्द्राकार, कुछ तिपतिया जैसी, कुछ ऊँची टोपी के समान है और कुछ पर तीन बूटे अकित है। केश सँभाले रखने के लिए फीते (आ० 17,26) का उपयोग, स्त्री और पुरुष दोनो ही करते थे। इस तरह के प्रयोग के लिए सोने की पत्ती के फीते मिले है। एक उदाहरण मे पत्ती के मध्य भाग मे छिद्र है, एक अन्य उदाहरण मे मध्य भाग अग्रेजी के V आकार के समान कटाव लिए है। स्त्रिया कानो मे विभिन्न प्रकार के कर्णाभरण धारण करती थं। मातृदेवी की प्राय. सभी मृणमूर्तियो को कर्णाभरण धारण किये हुए दिखलाया गया है। इनमे से कुछ कर्णफूल जैसी और कुछ ठोस डाट जैसी आकृति के है।

साधारणतः भारत में नाक मे आभूषण पहनने का रिवाज मुसलमानों के आने से माना जाता है। प्राचीन काल की किसी मूर्ति, चित्र अथवा साहित्य में इस संबंध में कोई निश्चित साक्ष्य नही मिलता। सिंधु सभ्यता के अवशेषों मे कुछ इस तरह की शख, सेलखडी या काचली मिट्टी की वस्तुयें मिली है जिनकी नाक के आभूषण के रूप मे पहचान की गई है।

खोदाइयों से कुछ आभूषणो के निधान मिले है जिनमे तरह-तरह के आभूषण पाये गये। कुछ तो ऐसे हो सकते है जो लोगों ने सभवत. चोरों के भय से भूमि में छिपा कर रखे होंगे। गावो मे आज भी लोग सुरक्षा के लिए आभूषण जमीन में गाड कर रखते है, और महिलाएं विशेष उत्सव के अवसर पर ही उन्हें निकाल कर धारण करती हैं। इन निधानों में जो हारों के अवशेष मिले हैं उनसे पूरे हार की रूपरेखा पुनर्निर्मित की जा सकी है (फ० XXIII,1,2) हारों मे रोचक विविधता पाई जाई जाती है। इनमें 17,20,48 और 53 मनको का प्रयोग हुआ है। मनके हरे जैस्पर, जेड, नीली काचली मिट्टी, पकाई सेलखडी, हैमाटाइट इत्यादि के बने है। जिस हार मे 48 मनके है उनमे 13 हरे जेड के, नौ काचली मिट्टी के, और 26 सेलखडी के है। सेलखडी के मनकों के किनारे सोने के है। और जिस हार मे 53 मनके है उसमें 7 लोलक है, 26 वर्तुलाकार सोने के किनारो वाले सेलखडो के मनके, 2 काचली मिट्टी के और 18 गोमेद तथा हैमाटाइट के मनके हैं।

हडप्पा से सोने के मनकों वाला एक सुन्दर 6 लड़ी का हार मिला है। इसमे छह छेद वाले अतरक है। छोटे-छोटे सोने तथा सेलखडी के बने मनकों और लोलकों वाला हार भी पर्याप्त आकर्षक है। मोहेंजोदडो से मार्शल को एक काफी बडे आकार वाला हार प्राप्त हुआ है। हार के बीच में नलीदार ढोलाकार गोमेद के मनके है। ये मनके एक दूसरे से पाच चपटे गोल सोने के मनकों द्वारा अलग अलग गुथे थे। इसके अलावा इसमे सात गोमेद के लोलक है जिनके बीच-बीच सोने मे मढे किनारों वाले सेलखडी के मनके गुंथे है। मोहेंजोदडो से ही एक कार्नीलियन के मनको से बना पर्याप्त लम्बा हार उपलब्ध हुआ है। इसकी डोरिया तो नष्ट हो गई किंतु मनके अपने स्थान पर मिले है। इसमे दोनों किनारों पर छ छ ताबे के अतरक (spacers) है। हर कर्नीलियन मनके के बाद एक ताबे का मनका गुथा है। हार के एक सिरे पर ताम्र-निर्मित अर्धचन्द्राकार और दूसरे सिरे पर नली जैसा अंतक है।

हारो के लोलक, अंतक और अंतरक अलग-अलग आकार के तथा पदार्थों के बनाये गये थे। इनमें से कुछ तो बडे आकर्षक हैं जैसे गोमेद का अर्धचन्द्राकार,

कांचली मिट्टी का पंखाकार, नीली कांचली मिट्टी का पत्राकार, साधारण कांचली मिट्टी का हृदयाकार, सेलखडी का पुष्पाकार लोलक। हड़प्पा से एक ऐसा अंतक मिला है जिसमें तीन छिद्र हैं जो अन्ततः एक ही छिद्र में मिल जाते हैं। अंतरक दो तरह के है—लंबी चपटी पट्टी की तरह जिसमें इच्छानुसार कम या अधिक छिद्र किये गये है, और वे जो साधारण मनकों की तरह के हैं।

मोहेंजोदडो से कांचली मिट्टी, शख, मिट्टी और सेलखडी से बनी चूडिया मिली है। स्त्रिया कई चूडिया पहिनती थी। आज चूडिया सुहाग (पति के जीवित होने) का सूचक मानी जाती है। शायद इनका ऐसा ही कुछ महत्व उस काल में भी रहा हो। ताम्र नर्तकी की मूर्ति में उसकी बायी भुजा चूडियों से बोझिल दिखायी गयी है। नर्तकी के दाये हाथ की कलाई में केवल तीन-चार चूडिया है और भुजबन्ध के रूप में तीन। मृण्मूर्तियों के हाथों मे तीन, चार या पाच चूडिया मिलती है। असमान या समान सख्या में चूडियो को पहने दिखाने के पीछे कोई आशय था या नही, यह कहना कठिन है।

काशीनाथ दीक्षित को मोहेजोदडो से दो सोने के पतले पत्र मिले जो मूलत. चूडिया रहे होंगे। कगन और चूडिया प्राय सभी पदार्थों की बनी उपलब्ध हुई है। हड़प्पा के एक निधान मे सोने का बना एक कगन प्राप्त हुआ है। इसके दोनों किनारे अदर की ओर मुडे है। इसका व्यास 4 41 सेमी है। वत्स को यहा से एक अंडाकार चूडी मिली थी। कुछ मृतको को आभूषण पहने ही दफनाया गया था। मोहेंजोदडो से सोने की चूड़ियां मिली है। मैके को एक निधान मे चार चूडिया मिली थी जिनमे से एक चूड़ी मे अंदर लाख होने के भी प्रमाण है। चादी की चूडिया भी बनायी जाती थी। मोहेजोदडो से प्राप्त एक चादी की अण्डाकार चूड़ी को मार्शल ने प्रकाशित किया है। इसके दोनों कोने अदर की ओर झुके है। इससे मिलती-जुलती चूडिया सीरिया मे भी मिली है जिन्हे अमेनम्हत II (1938-1904 ई० पू०) की चूड़ियों से पहिचान गया है।

कासे को बनी चूडिया चपटे या गोल तार से बनाई गई हैं। अधिकाश उदाहरणों मे तार को गोलाई देकर चूडी तैयार कर ली गई है। इस तरह की बनी हुई कांसे की चूडिया किश हिसार और शह टेप से भी पायी गयी है। काचली मिट्टी की बनी कुछ चूडिया सादी है और कुछ पर अभिप्राय उत्कीर्ण है कुछ पर V अक्षर जैसा अलंकरण है। हृदय जैसे आकार वाली भी चूडिया प्राप्त हुई है। त्रि-अरीय डिजाइन वाली चूडियां मोहेंजोदडो, लोहुँजोदडो और कोटला निहंग से पायी गयी हैं। सफेद पेस्ट की बनी चूड़िया खूब अलकृत है।

इस तरह की चूडिया मैसोपोटमिया मे भी लोकप्रिय थी। सेलखडी की चूडियों पर रेखांकन मिलता है। इन पर V के आकार का तिरछी रेखाओं का अलंकरण है। चूडियो में सर्वाधिक सख्या मिट्टी की चूडियो की है। यह सादी और अलंकृत दोनो तरह की पायी है। भूरी, काली और लाल रगो की चूडियां है। वत्स के अनुसार मिट्टी की चूडियो मे जो लाल भूरा रंग मिलता है उसका मुख्य कारण फैरस आक्साइड और मैगनीज तथा टीन आक्साइड का मिश्रण है। हृदय की आकृति मे मिलती जुलती मिट्टी की चूडिया बहुतायत से पायी गयी है मिट्टी की चूड़िया कुम्हारो ने बनाई होगी। शंख की चूडिया दो तरह की है। उन्हे या तो दो भागों मे बनाया गया है अथवा शंख मे काट कर चूडो की आकृति दी गयी है।

मिट्टी और ताबे की अगूठिया (आ० 17, 17, 19) भी उत्खनन मे मिली है। ये ताबे की अंगूठिया या तो साधारण तौर पर तार को मोड कर तैयार की गयी है या चपटा करके बनायी गयी है। अगूठिया तार के दो, तीन, चार, पाच या सात बल देकर बनी है। चादी के एक दो ही उदाहरण है, सोने की एक भी अंगूठी नही मिली। कुछ काचली मिट्टी के भी उदाहरण है। शंख के बहुत से उदाहरण मोहेंजोदडो मे प्राप्त है। इन पर कोई डिजाइन नही है।

स्त्रिया कर्धनी और पाद-भूषण भी पहनती थी जैसा कि मृण्मूर्तियो के अंकन से स्पष्ट है। मोहेंजोदडो से सिर की आकृति वाली एक काच की ढली हुई चकती मिली है। इसका व्याम 5 08 सेमी है। इसमे उपर से नीचे दो छिद्र है। इसके बारे मे यह अनुमान किया जाता है कि यह चकती किसी कर्धनी का भाग रही होगी। पैरो मे प्राय मोटे कडे पहने दिखलाये गये है। ये कडे किस धातु के बनाये जाते थे यह ज्ञात नही है क्योकि उत्खननो मे कोई कडा प्राप्त नही हुआ है। ये ठोस भी है और कुछ पोले। लखियो से मजूमदार को एक ताम्र-मूर्ति का पैर मिला जिसमे एक ही खड से निर्मित पाद-कटक दिखलाया गया है। क्नोसास के भित्ति चित्रो मे भी इस तरह के पाद-कटक का चित्रण है। मोहेंजोदडो की कांस्य नर्तकी की मूर्ति को कई कटक पहने दिखलाया गया है। बेबीलोन मे स्त्रिया तीन से पाच तक कटक धारण करती थी, जैसा कि खोदाई से प्राप्त अस्थि-पजरों के साथ मिले आभूषणो से स्पष्ट है। बेबीलोन मे हडप्पा से कुछ मिट्टी की बडे आकार (लगभग 3 8 व्याम) की चूडिया उपलब्ध हुई है। लखियोपीर से भी एक इसी व्याम का खण्डित मृण्मय छल्ला मिला था। यह अनुमान किया जाता है कि इन्हें शायद पैरो मे पहना जाता रहा हो।

स्त्रिया आभूपण पहनने के साथ साथ अपने को आकर्षक तरीके से सजाती

भी रही होंगी। तांबे की नर्तकी के बाल पीछे संवार कर दाहिनी ओर गिरे दिखाए है। वे अच्छी तरह सुलझे हुए हैं। नारी मृण्मूर्तिया विपुल शिरोभूषणों से मण्डित हैं। एकाध उदाहरण मे पुष्पों का शिरोलंकरण है। काचली मिट्टी के छोटे-छोटे पात्र हडप्पा, मोहेंजोदडो और चन्हुदड़ो की खोदाइयों से विभिन्न स्तरों से उपलब्ध हुए है। इनके अदर, यह अनुमान किया जाता है, कि कोई शृंगार से संबधित पदार्थ रखा जाता होगा। हडप्पा मोहेंजोदडो और कुछ अन्य स्थलों से प्राप्त अंजन रखने के पात्र और सलाइयों को प्राप्ति इस बात का साक्ष्य है कि स्त्रिया (और शायद पुरुष भी) काजल का प्रयोग करती थी। मोहेंजोदडो के उत्खननों से एक हरे रग का पदार्थ काफी मात्रा मे पाया गया है। अनुमान है कि यह आखों की सुंदरता बढाने के लिए प्रयोग किया जाने वाला कोई पदार्थ था।

आभूषणो मे ताबीजो की भी गणना की जा सकती है। सिंधु सभ्यता के आकार-प्रकार मे रोचक विभिन्नता मिलती है। ये या तो त्रिभुजाकार या चतुर्भुजाकार हैं अथवा पशु-आकृति के हैं। हडप्पा और मोहेंजोदडो दोनो स्थानों से त्रिभुजाकर शख के बने ताबीज मिले है। चूना-पत्थर का एक चतुर्भुजाकार पदक की आकृति का उदाहरण मोहेंजोदडो मे मिला है। इस पर स्वस्तिक और अनत सर्पिल रेखा है। हडप्पा मे एक पक्षी की आकृति का टूटा हुआ ताबीज काचली मिट्टी का पाया गया। पक्षियों की शक्ल के ताबीज अन्य स्थानों से भी मिले हैं। उर और किश मे फाख्ता पक्षी बहुत लोकप्रिय था। कार्नीलियन से बने पक्षी की आकृति के आभूषणो के उदाहरण पिपरावा और तक्षशिला से ऐतिहासिक युग के स्तरों मे मिले है। इसके अतिरिक्त काचली मिट्टी की मछली, गिलहरी और भेड, मिट्टी का बैल शख का बैल का सिर, मिट्टी का बदर की आकृति के ताबीज हडप्पा से उपलब्ध हुए है। अन्य पशु-पक्षियो मे कछुआ, सर्प, सुअर, हाथी, चीता, और उलूक है जो अधिकाशत काचली मिट्टी के है। इनमे मे भेड का धार्मिक महत्व मिस्र मे था। गार्डन चाइल्ड का विचार है कि हो सकता है सिधु सभ्यता के लोगो को भी ऐसी धारणा रही हो। ताबीजो के ऐसे उदाहरण चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० के है। कुछ क्रीट के मिनिओन II कालीन भी है। कीमती पत्थरों के बने पशुओं की आकृति के ताबीज पहिनने की प्रथा आज भी हमारे देश मे है।

सिंधु सभ्यता काल के लोग प्रसाधन प्रेमी थे। उत्खननो से ताबे के दर्पण (फ० XXII, 3) उस्तरे, कंघे, अंजन-शलाकाए, शृंगारदान, इत्यादि की प्राप्ति ‘ । दर्पण तांबे के थे। इन्हे पालिश कर चमकाया गया होगा जिससे

प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई देता रहा होगा । ये हत्थेदार थे । कंघे हाथीदांत के होते थे जो अधिकतर अंग्रेजी अक्षर V की आकृति के है । इसमे दात एक ओर है या दोनो ओर । इन पर एक दूसरे को घेरे वृत्तों का भी अलंकरण है । ऐसी कुछ अंजन शलाकायें मिली हैं जिनका ऊपरी भाग बतख के सिर के समान है । इनके भीतर अंजन या सुरमा रखा जाता रहा होगा ।

●

अध्याय 14

आमोद्-प्रमोद्

आमोद-प्रमोद भी जीवन का आवश्यक अंग है। अत यह स्वाभाविक है कि सिंधु सभ्यता के लोग भी जीवन को मधुर बनाने के लिए नाना प्रकार के मनोविनोद करते रहे होंगे। उनके साहित्यिक मनोविनोद, गोष्ठियाँ, कथा-कहानिया, नाटक इत्यादि के बारे में प्रमाण के अभाव में कुछ भी कहना कठिन है। लेकिन यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वे किसी-न-किसी रूप में इनका प्रयोग करते रहे होंगे। मनोविनोद से संबंधित काठ और अन्य ऐसे पदार्थों की बनी वस्तुएं जो शीघ्र नष्ट हो जाती है, उपलब्ध नही है, यद्यपि यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि लकडी के खिलौने इत्यादि उस समय भी बनते रहे होगे। इस संबंध मे जो सामग्री प्राप्त हुई है उसके आधार पर दूसरे प्रकार के आमोद-प्रमोद के साधनो के बारे मे अनुमान लगाये जा सकते है।

स्त्रियो तथा पुरुषो की कुछ मृणमयी आकृतियों का तो लगभग निश्चित रूप से धार्मिक महत्त्व लगता है, किंतु कुछ ऐसी भी है जो खिलौने के रूप मे प्रयुक्त होती रही होगी। उनमे कुछ के निर्माण शैली को देखकर ऐसा लगता है कि कुछ तो बच्चो की ही कृतिया रही होगी। मनुष्य आकृतियों मे इस सिलसिले मे बौनो की आकृतियों का मुख्य रूप से उल्लेख किया जा सकता है। जानवरों की मूर्तिया कुछ अपवादों को छोडकर निश्चय ही बच्चो के खिलौने थे। मिट्टी की बनी बैलों की कुछ आकृतिया मिली है जिनके कूबड और पीछे के भाग में छेद था जिसमें रस्सी डाल कर सिर को (जो अलग से बनाकर लगाया गया था) हिला-डुलाया जा सकता है। यह बच्चों का एक खिलौना रहा होगा। मिट्टी की बनी बदर की ऐसी एक आकृति मिली है जिसमे झुकाव लिए छेद था जिसके कारण वह रस्सी से खिसक सकता था। इसे देखकर बच्चे कौतूहल करते और प्रसन्न होते होंगे।

मिट्टी की खिलौना-गाडियो के पहिये बडी संख्या मे मिले है जिन्हे सिंधु सभ्यता के बच्चे गाडी से जोडकर मनोरंजन किया करते थे। पहियों मे एक ओर का धुरा (hub) उठा हुआ है। सुमेरी संस्कृति मे भी सिंधु सभ्यता से मिलते जुलते पहिये मिले है, पर उनमे दोनों ओर धुरा (hub) दिखाये गये है। खिलौना-गाड़ियों के कई ढाचे भी मिले हैं। इन पर छिद्र बने है जिनमें

डडे लगाये जाते थे । ये उस समय प्रचलित बैलगाडियों की ही अनुकृतियां होंगी । आज के सिंध में चलने वाली बैलगाडियों से वे बहुत कुछ मिलती जुलती है । कुछ गाडियो मे अग्रेजी के अक्षर 'वी' (V) आकार का उठान है । कुछ की आकृति अवतल (concave) तथा दीवार छोटी-छोटी है । हड़प्पा से प्राप्त एक मिट्टी और काँसे की गाडी का माडल आज के इक्के से कुछ मिलता-जुलता है । हड़प्पा के ही खिलोना गाडी की आकृति उल्टी काठी और दूसरी की नौका (canoe) के समान है । चहुदडो के उत्खनन मे भी मिट्टी की गाड़ी का प्रतिरूप मिला है । इनमे एक मे गाडी हाकने वाले को हाथ में कोड़ा पकडे दिखाया गया है ।

एक मिट्टी की बनी आकृति मे सिर और सीग तो मेढे के है किंतु शरीर तथा पूंछ चिडिया की है । यह लबाई मे साढे चार इंच है और अदर खोखली है । इस आकृति के दोनो पार्श्व मे छेद है जिसमे अनुमानत एक डंडी लगी रही होगी । या तो उस डण्डी पर पहिये लगाकर इसे गाडी बनाया गया होगा या डडी पर पशु को झुलाया जाता रहा होगा । इसकी गर्दन मे भी छेद है जिसमे रस्सी डालकर बच्चे इस आकृति को आगे खीच कर चलाते रहे होंगे । यह बच्चो की कृति नही लगती, किंतु इसका प्रयोजन बच्चों का मनोरजन ही था । पक्षी जुते गाडियो का प्रचलन योरप मे 1300 ई० पू० और चीन मे ऐतिहासिक काल मे विद्यमान था । भारत मे सिधु सभ्यता मे ही नही ऐतिहासिक काल मे भी इस तरह के खिलौने मिले है, (उदाहरण के लिए बसाढ़ (वैशाली) की खुदाई मे) । ननी गोपाल मजूमदार ने यह सुझाया है कि चीन ने इस प्रकार के खिलौने बनाना भारत से सीखा होगा क्योंकि ऐतिहासिक काल मे भारत-चीन सबध थे, और योरोपीय उदाहरणो के प्रेरणा स्रोत भी शायद यही भारतीय खिलौने रहे हों ।

लोग पक्षियो को पिजरो मे रखकर पालते भी थे । चोच खोलकर चहचहाती सी एक चिडिया को पिजरे के भीतर दिखाया गया है । इसमे किसी गाने वाली चिडिया को दिखाना अभिप्रेत लगता है । पिंजरे के भीतर दिखायी गयी चिडिया बुलबुल-सी लगती है । संस्कृत साहित्य मे पालतू पक्षियों के बडे रोचक उल्लेख मिलते है और नारी के साथ उनके अकन ऐतिहासिक काल की कई मूर्तियो मे मिलते है । पिंजरे नामपातो की आकृति के है । शायद ये लोग मुर्गा, तीतर इत्यादि भी लडाते थे जिहे पिजडो मे रखा जाता रहा होगा । मिट्टी के झुनझुने पर्याप्त सख्या मे पाये गये है । ये पोले है और इनके भीतर ककड भरे है । ये गेद की तरह गोल है । कुछ तो इनमें बिना चित्रण के है किंतु कुछ पर लाल रंग का कुछ डिजाइन बना हुआ है । फाख्ता की आकृति के खिलौने भी

बनाये जाते थे। इस आकृति के जो खिलौने मिले हैं वे खोखले हैं और पूंछ के पास पीठ पर इनमें छेद बना है। छेद पर मुँह लगाकर फूकने से सीटी की तरह की आवाज निकलती है। बच्चे इससे सीटी बजाते रहे होंगे और फाख्ता की आवाज की भी नकल करते रहे होंगे।[1] एक डंडे पर एक छोटा-सा जानवर स्थित है जिसकी पहचान कठिन है। यह भी एक प्रकार का खिलौना लगता है। अन्य प्राचीन सभ्यताओं मे जानवरों की आकृति वाले झुनझुने भी मिलते है पर सिंधु सभ्यता मे इस तरह के झुनझुनों का सर्वथा अभाव है।

हड़प्पा और मोहेंजोदडो मे मिट्टी के तराजू मिले है जिनसे बच्चे खेलते रहे होंगे। तराजू का मिट्टी का बना एक पलडा सुरकोटडा में पाया गया है। मिट्टी के मांचे भी मिले है जिनके बारे मे यह अनुमान है कि उनका उपयोग बच्चों द्वारा खेल के दौरान मिट्टी की खिलौना रोटिया (fancy bread) या खिलौना मिठाई बनाने के लिए किया जाता रहा होगा। मिट्टी की बनी सिले (mortor) और उनमे जुडे हुए मिट्टी के ही बट्टे भी मिले है, ये भी बच्चो के खिलौने रहे होगे। मिट्टी की बनी कुर्सी के छोटे-छोटे माडल भी मिले है। यह अधिकाशत भौडी आकृति के है, ये असावधानी मे बने है और बच्चों की कृतिया लगती है। गुडियो के खेल मे गुडियो को वे लोग कुर्सी पर बिठाते रहे होगे। मिट्टी की बनी हुई एक टोकरी हडप्पा के विशाल अन्नागार के पूर्वी भाग के समीप पायी गयी है। यह सिधु सभ्यता मे इस तरह का एकमात्र उदाहरण है और हो सकता है वह भी बच्चो के खेल की वस्तु रही होगी।

कुछ हार्न-ब्लेड, सेलखडी तथा लाजवर्द की बनी लटकन जैसी आकृतिया मिली है ऊपरी भाग मे एक खाचा बना है। ये समतलोत्तल (Plano-convex) है। आज भी बच्चे सिधु सभ्यता मे प्राप्त उपर्युक्त वस्तुओ से मिलते उपकरणों मे खेलते है और यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि उस काल में भी वे खेल मे प्रयोग की जाती रही हों।

सिधु सभ्यता के लोग पासे का भी खेल खेलते थे। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि उस काल मे भी पासे का खेल अत्यन्त लोकप्रिय था और ऐतिहासिक काल के साहित्य मे भी इस खेल के अनेक महत्त्वपूर्ण संदर्भ मिलते है। राजाओ के लिए तो यह लगभग अनिवार्य व्यसन था। हड़प्पा में कुल सात

---

1 जैसा वत्स ने उल्लेख किया है, आज पजाबी मे 'घुग्गु' शब्द का अर्थ ही फाख्ता की शकल की सीटी है। यह संभव है कि सिंधु सभ्यता मे भी इसी परंपरा के अनुसार सीटियों को फाख्ता की आकृति दी गई हो।

पांसे—चार मिट्टी के दो पत्थर के और एक कांचली मिट्टी के मिले हैं। मोहेंजोदडो में भी मिट्टी और पत्थर के बने घनाकार पासे (फ० XXII, 1) मिले है। ये पासे आजकल के पांसों से मिलते जुलते है। इनका आकार लगभग 3 सेमी × 3 सेमी × 3 सेमी से लेकर 3.81 सेमी × 3 81 सेमी × 3 81 सेमी तक है। मोहेंजोदडो के पासो का परीक्षण करने पर मैके ने यह पाया कि इन पासों के कुछ पक्ष समतल नही है और इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि यह सभवत ऐसा जानबूझकर इस उद्देश्य से किया गया था कि पासा फेंकने पर ज्यादातर अधिक नंबर वाला हिस्सा ही ऊपर की ओर दिखे। लगता है कि लोग जुआ खेलने में अपने-अपने पासे लाते थे और इस तरह उन्हे बनाते थे कि दाव अच्छा लगे और वे विजयी हो जाय। इनमे से कुछ पासे पर्याप्त कलात्मक है। इन पासों के छहो ओर नम्बर पडे है जो उथले छेदो के रूप मे है। इनकी सख्या एक से छ तक है मोहेंजोदडो के अधिकाश पासे इस तरह के बने है। अधिकाश पासे का वह पक्ष जिस पर एक छिद्र खुदा है उसके उस पक्ष के ठीक पीछे पडता है जिस पर दो छेद बने है। और इस तरह तीन छेद वाले पक्ष की उल्टी ओर चार, और पाच के विपरीत छ पडता है। यह उल्लेखनीय है कि इस तरह का एक पासा टेप गौरा (Tepe Gawra) मे मिला है जो भारतीय सपर्क का द्योतक लगता है। आधुनिक पासो मे इस तरह नबर होते है कि विपरीत दो पक्षों पर अकित छिद्रो का योग सात हो, यथा छ छिद्र वाले पक्ष मे उलटी ओर एक, पाच छिद्र वाले के उलटी ओर दो और चार छिद्र वाले पक्ष के उलटी ओर तीन। हडप्पा के चार पासो मे तो उपर्युक्त मोहेंजोदडो के पासो की तरह ही निशान बने है, लेकिन दो मे एक के उल्टी ओर दो, तीन के उल्टी ओर पाच और चार के उल्टी ओर छ है, और एक उदाहरण मे तो आधुनिक पासो की तरह एक छ. के विपरीत, दो पाच के उल्टी ओर और तीन चार के उल्टी ओर मिला है। अतिम प्रकार का एक पासा बेल्लासिस (Bellasis) को ब्राह्मणाबाद मे 1854 मे मिला था। पीट्री ने इस अंतिम प्रकार के पासे का मिस्र की प्राचीन सस्कृतियो के सदर्भ मे भी प्राप्त होने का उल्लेख किया है। लेकिन मिस्र के पासो पर अन्य प्रकार से भी नंबर दिया गया था और इसके लिए कोई निश्चित नियम नही मालूम पडता। मोहेंजोदडो मे दो पासे एक दूसरे से कुछ ही दूरी पर मिले, और हडप्पा मे पाये गये तीन पासे दो पकाई मिट्टी के और एक पत्थर का भी समान आकार के थे लेकिन ये तीनों एक दूसरे से काफी दूर मिले थे। यह कहना कठिन है कि वे खेल मे एक बार के दाव मे एक से अधिक पासो का प्रयोग करते थे या नही।

मोहेंजोदडो के लोग पांसो को विशेषत मिट्टी के पांसो को, मुलायम सतह-

वाली वस्तु, शायद कपड़े के ऊपर फेंकते रहे होंगे, क्योंकि इनमें ज्यादा टूट फूट नहीं है। लेकिन हड़प्पा के न केवल मिट्टी के बल्कि पत्थर के भी पासों पर टूट-फूट के स्पष्ट चिह्न हैं जिससे लगता है कि इन्हें किसी सख्त सतह या जमीन पर फेंक कर खेलते थे। वे लोग इन पासों से ही पूरा खेल खेलते थे अथवा इनकी सहायता से चौपड जैसा कोई खेल यह निश्चित रूप से ज्ञात नही है। हाथी दांत या हड्डी के बने कुछ आयताकार, कुछ वर्गाकार कुछ गोल काट वाले और कुछ तिकोन उपकरण पर्याप्त संख्या मे मिले हैं। ये सावधानी से बनाये गये हैं और कई पर पालिश भी है। इनके भी जुआ खेलने मे प्रयोग किये जाने की संभावना लगती है। उनके तीन पक्षों पर क्रमश. एक, दो और तीन निशान है बाकी पक्ष लंबी रेखाओं से अलंकृत हैं। कुछ पर खास तरह के चिह्न हैं जो अधिकतर सभी तरफ एक से हैं इन चिह्नों का अभिप्राय स्पष्ट नही है।

सिंधु सभ्यता के विभिन्न स्थलों के उत्खननो से मिट्टी काचली मिट्टी, शंख सगमरमर, स्लेट, सेलखडी आदि की बनी गोटी की तरह की वस्तुएं पायी गयी हैं। कभी-कभी इन्हे अलकृत भी किया गया है। ये विभिन्न आकार प्रकार के हैं। चतुष्कोण गोटियां मोहेंजोदडो में पर्याप्त संख्या मे मिली है। इस आकार में एक गोटी कासे की और अनेक पेस्ट की बनी मिली है। सुमेरी सस्कृति में भी इस तरह की गोटियां मिली हैं। इस तरह के आकार की गोटियो को उठाकर दूसरे खाने मे रखना सुविधाजनक नही होता इसलिए कदाचित् उन्हे सरकाकर चलाते रहे होंगे। एक चार भुजीय गोटी भी मिली है और एक तिकोन पार्श्व वाली भी जिसका सिरा और तल चपटा है। घनाकार हाथी दात के पासे भी कुछ मिले हैं जिनके सभी ओर एक ही तरह के निशान है। इनमे से कुछ तो विशिष्ट आकृति के हैं और परंपरागत शैली मे निर्मित लिंगो से मिलते हैं जो सम्भवत लिग ही थे और उनका धार्मिक महत्त्व भी रहा होगा, लेकिन बाकी गोटिया ही रही होगी। लोथल के उत्खनन से तो घोडा (?), मेढा, कुत्ता और बैल के सिर वाली गोटिया भी मिली है जो अपने में बहुत कौतूहलपूर्ण है (फ० XXIV, 1) और आज के शतरंज की गोटियो के अधिक निकट है। मोहेंजोदडो से थोडी सी मानव मृण्मूर्तियो को भी उनके आकार-प्रकार के आधार पर मैके ने तो गोटिया ही माना है। इनको खेलने के लिए लकडी के बोर्ड बनाये गये होंगे जो नष्ट हो गये है। बूली की उर में लगभग सिंधु सभ्यता के सम-कालीन सभ्यता के संदर्भ में लकडी के दो बोर्ड मिले है। एक में बीस खाने थे और दूसरे में केवल बारह। इनमें काफी मात्रा में शख से भराई की गई थी। इस तरह के खेल में आज के शतरंज से कही कम गोटिया प्रयुक्त होती रही होगी।

सिंधु सभ्यता के संदर्भ मे पर्याप्त संख्या मे प्राप्त हुई इन गोटियों मे एक ही आकार-प्राकार की गोटियाँ बहुत थोडी—तीन-चार ही मिली है। इससे भी यही अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ खेल थोडी ही गोटियों से खेला जाता था। मोहेंजोदडो में दो ईंटे मिली है जिन्हें खेल के बोर्ड की तरह इस्तेमाल किया जाता रहा होगा। ये खडित है। एक ईंट में चार कतारो में उथले गड्ढे हैं और एक किनारे पर चार (शायद मूलत पाँच) वर्गाकार छेद है। यह कहना कठिन है कि इस बोर्ड पर कितने छेद थे किंतु सर्वाधिक छेद वाली कतार मे कुल पंद्रह छेद है। इनमे गोटी की तरह प्रयोग के लिए गुठलियों का प्रयोग करते रहे होंगे। गड्ढों की संख्या से मैके ने अनुमान लगाया कि शायद चार या पाँच लोग इस खेल मे भाग लेते थे। मैके के अनुसार मेम्फिस मे प्राप्त एक बोर्ड समानता में इसके निकट है जिसमें चौदह छेदो वाली तीन कतारे है। मैके ने युगाण्डा (अफ्रीका) के आजकल के आठ छेद वाली चार कतारों वाले बोर्ड का भी तुलना के लिए उल्लेख किया है। इसे दो ही लोग खेलते है। मोहेंजोदडो मे प्राप्त दूसरी खंडित ईंट पर मैके के अनुसार मूलत तीन कतारे थी जिनमे मे प्रत्येक मे चार-चार खाने थे पर उन्होंने यह भी सभावना व्यक्त की है कि हो सकता है कि पूरा बोर्ड कई ईंटों को साथ जोडकर बनाया गया हो और यह ईंट उसका एक भाग ही हो। इस ईंट के एक आयत मे गुणा (×) का चिह्न था जो खेल मे 'घर' का परिचायक लगता है। मैके ने ठीक ही कहा है कि घर की फर्श की ईंट पर इस तरह का चौसर बना मिलना इस बात का द्योतक है कि घर के नौकर लोग विशेष रूप से उसका प्रयोग करते थे। एक ईंट पर चार कतारो में उथले गड्ढे से बनाये गये है जिनमे गोलियो की सहायता से आजकल के बच्चो की तरह खेल खेलते थे। लोथल से भी दो खेलने के बोर्ड के नमूने मिले है—एक मिट्टी का और एक ईंट का (फ० XXIV, 2)।

विभिन्न प्रकार के पत्थर, सीप, पेस्ट आदि की छोटी बडी गोलियाँ भी मिली हैं। कुछ गोलियो पर अलंकरण भी मिलता है। मिट्टी की गोलियो पर या तो कुछ उथले से छेद बने हैं या उनकी सतह पर मिट्टी के छोटे-छोटे टुकडे लगे है। सीप की गोलियों पर वृत्त-के-भीतर-वृत्त के डिजाइन है। काँचली मिट्टी के कंचो पर या तो इसी तरह का 'अलंकरण' है या फिर कुछ रेखाएँ 'छाया' के तौर पर हैं। इस तरह की गोलियाँ अनेक प्राचीन सभ्यताओं के उत्खननों मे पायी गयी है। वे मिस्र में, प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक काल की सस्कृतियों के संदर्भ मे पर्याप्त संख्या मे मिली है और सिंधु सभ्यता मे प्राप्त गोलियों मे मिलती जुलती हैं। शंख की गोलियो पर उभरा हुआ अलंकरण है जो बीच मे अभिप्राय के आकार की जगह छोड़कर शेष भाग को रगड़ने से बनाया गया था, यह विधि

निश्चय ही श्रमसाध्य थी। कुछ गोलिया एकदम चिकनी सतह की है। मैंके ने सुझाया है कि कंचे खेलने के लिए बनी गोलियो को इतनी सावधानी से बनाने की आवश्यकता नहीं थी।वे अमेरिका की मय सभ्यता का उल्लेख करते है जिनमें गोलियों का प्रयोग दैवी क्रियाओं के लिए किया जाता था। मिट्टी, सीप और पत्थर की बनी छोटी नुकीली कुछ शंखाकार वस्तुएँ उपलब्ध हुई है जिनकी कदाचित् आजकल के 'नौ पिनों' (नाइन पिंस) की सहायता से खेले जाने वाले जैसे किसी खेल में पिनों के स्थान पर प्रयोग किया जाता था। इनको कंचों से निशाना मार कर गिराया जाता रहा होगा।

नृत्य भी मनोरजन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। निस्संदेह सिंधु सभ्यता में यह कला लोकप्रिय थी। मोहेंजोदडो की कासे की नर्तकी की दो आकृतियाँ और पत्थर की नृत्य करती हुई आकृति (जिसे मार्शल ने नटराज का पूर्व रूप बताया था और वासुदेवशरण अग्रवाल ने नर्तकी) तो सुप्रसिद्ध है ही (देखिये पृष्ठ 68,70)। मोहेंजोदडो की एक मुद्रा पर एक व्यक्ति ढोल-की-सी आकृति की वस्तु बजा रहा है। एक दूसरी पुरुष मूर्ति के कंधे से भी ढोल जैसी कोई वस्तु लटकती है जिससे स्पष्ट है कि उस काल के लोग ढोल जैसे किसी वाद्य-यन्त्र से परिचित थे। इसमें कई व्यक्ति नृत्य करते भी दिखाये गये है (फ० ए० 356)। कुछ विद्वानों ने लिपि के कुछ चिह्नों को वीणा की तरह के किसी यंत्र का अकन माना है। राव ने लोथल से प्राप्त सीप के एक उपकरण को किसी वाद्य-यंत्र का अंग माना है। गायन भी मनोरंजन का एक साधन रहा होगा, लेकिन इसके बारे में केवल कल्पना ही की जा सकती है। तत्कालीन साहित्य के अभाव में इसके साक्ष्य प्राप्त होने का प्रश्न ही नही उठता। मिट्टी के बने कुछ मुखौटे मिले है जिन्हे कुछ विद्वानों ने नाटक के पात्रों द्वारा प्रयोग किये जाने की संभावना व्यक्त की है। मोहेंजोदडो मे प्राप्त एक मुद्रा पर एक आकृति हैं जो नृत्य की मुद्रा मे है। इसका चेहरा तो आदमी की तरह है किंतु दुम बंदर की सी। कान काफी बडे हैं और बदर के जैसे नही है। मैंके ने सुझाया है कि इसमें मुखौटा और नकली दुम लगाये हुए व्यक्ति का चित्रण अभीप्सित था।

मछली, जो समीपवर्ती नदियों से प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध थी, दैनिक भोजन का अंग अवश्य रही होगी। पर पशु-मास संभवत त्योहारों के अवसरों पर ही विशेष रूप से प्रयुक्त होता रहा हो। ऐसे अवसरो पर पशुबलि का भी आयोजन होता रहा होगा। शिकार खेलना (आ० 10, 4) और मछली पकड़ना मनोरजन का भी साधन रहा होगा, वैसे मुख्यत इनका आर्थिक महत्त्व था। मछली पकड़ने के कई काँटे खुदाई में प्राप्त हुए है। एक मुद्रा पर तीर से हिरन को मारते दिखाया गया है। एक अन्य मुद्रा पर एक मनुष्य पेड़ पर चढा है। नीचे

जमीन पर बाघ है। यह आखेट से संबंधित दृश्य लगता है। ताँबे के बने बाणाग्र (बाण के फल) मिले हैं जिनसे धनुष-बाण का प्रयोग स्पष्ट है। मिट्टी की छोटी-छोटी प्राप्त गोलियाँ मिली है जो गुलेल मे लगाकर पक्षी और छोटे-छोटे जानवर मारने के लिए प्रयुक्त की जा सकती थी। कुत्ते की कई नस्लो का रूपाकन मिलता है, किंतु यह कहना कठिन है कि शिकार के लिए कुत्तो का भी प्रयोग करते थे या नही। बाद में सिंध मे कुत्तों की सहायता से सूअर का शिकार करने की प्रथा रही और एलम मे भी ऐसी प्रथा थी। हो सकता है कि सिंधु घाटी मे भी ऐसी ही प्रथा रही हो।

कुछ मुद्राओ पर बैल की आकृति के आस-पास मनुष्य भी अंकित है। मोड ने इन दृश्यो को मनुष्य-वृष-युद्ध से संबंधित दृश्य का द्योतक माना है। मनोरंजन की यह प्रथा प्राचीन क्रीट की सभ्यता में बहुत लोकप्रिय थी। एक मुद्रा पर मनुष्य का दो व्याघ्रो से युद्ध (?) के दृश्य का अंकन संभवत धार्मिक महत्त्व का परिचायक है। यह कहना कठिन है कि आधुनिक सरकस की भाँति वे लोग हिंस्र पशुओ से इस तरह मल्ल-युद्ध कर लोक रंजन करते थे। एक मुद्रा (आ० 10, 6, सबसे ऊपर का दृश्य) पर दो बैलो को लडते दिखाया गया है।

कुओं के पास बैठने के लिए बेंचे बनी मिली है। नारियाँ आ-आकर अपनी बारी की प्रतीक्षा में वहा बैठती रहती होगी और गप-शप करके और गीत गाकर मन बहलाती रही होगी। मिट्टी के बर्तन के टुकडे और कुछ एक मुद्राओ पर नाव का चित्रण है। कोई आश्चर्य नही कि यातायात के अलावा इनका प्रयोग नौका-विहार के लिए भी होता रहा हो। विशाल स्नानागार का धार्मिक महत्त्व हो सकता है, किंतु जल विहार के लिए उसके प्रयोग की संभावना को नकारा नही जा सकता। उस विकसित नागरिक जीवन में विभिन्न अवसरो पर प्रीतिभोजो का आयोजन भी होता रहा होगा, विशेषत त्योहारों, धार्मिक उत्सवो और विवाह तथा अन्य विभिन्न संस्कारों के सपन्न करने मे। कुछ मुद्राओ के साक्ष्य से ज्ञात होता है कि कुछ उत्सवो मे पशुओ को भी शोभा-यात्रा मे ले जाया जाता रहा होगा।

●

अध्याय 15

सिंधु सभ्यता की लिपि

सिंधु सभ्यता की लिपि अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी और विद्वानों के लिए चुनौती बनी हुई है। महादेवन और विश्वनाथन द्वारा हाल ही के शोध कार्य के अनुसार अभी तक सभ्यता की कुल मिलाकर 2467 अभिलिखित वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इनमें से मोहेंजोदड़ो से 1398 तथा हड़प्पा से 891 प्राप्त हुई हैं जो कुल का क्रमश 56.67 और 36 12 प्रतिशत होता है। इस तरह अभिलिखित वस्तुओं का लगभग 93 प्रतिशत अकेले इन दो ही स्थलों से प्राप्त हुआ है। इसमें मुद्राएं और मुद्रा-छापें, जिनकी संख्या 2228 है, ही संपूर्ण (2467) का 90 32 प्रतिशत है। अभिलिखित ताम्रपट्टों की संख्या 113 और लेख वाले ठप्पों से अंकित मृद्भाण्डों की संख्या 83 है। सुरकोटडा और वणावली में कुछ बर्तनों के टुकड़ों पर हड़प्पा लिपि चित्रित मिली है। अनेक भारतीय और विदेशी विद्वानों ने सिंधु सभ्यता के लेखों को पढ़ने का प्रयास किया और कुछ ने तो उन्हें सही पढ़ लेने का दावा भी किया। इनमें से कुछ प्रयास तो निश्चय ही वैज्ञानिक विधि पर आधारित हैं, और कुछ केवल लेखक के पूर्वाग्रहों को सिद्ध करने का प्रयास मात्र लगते हैं। जहां तक पढ़ लेने के दावों का प्रश्न है अधिक से अधिक एक ही दावा सही हो सकता है, परंतु अधिक संभावना यही है कि इनमें से एक भी सही नहीं है।

लिपि पढ़ने के प्रयास

इन लेखों को सर्वप्रथम 1925 में वैडेल (Waddell) ने पढ़ने का प्रयास किया। वह सिंधु सभ्यता के लोगों को आर्य मान कर चले। उन्होंने सुमेरी लिपि से तुलना कर और सुमेरी सभ्यता के लोगों और आर्यों को एक ही समझ कर सिंधु सभ्यता के लेखों को पढ़ने की चेष्टा की। इन लेखों में उन्होंने वेद, रामायण, और महाभारत के महापुरुषों के नाम पढ़े हैं और पशुओं की आकृतियों को भी लेख का ही अंग माना है। 1931 में लैंगडन ने और बाद में सी० जे० गैड्स और सिडनी स्मिथ ने भी इन लेखों के बारे में यह धारणा व्यक्त की कि ये संस्कृत भाषा में लिखे हैं। स्मिथ ने तो मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा पर अंकित तीन पंक्तियों वाले लेख के अक्षरों के बारे में जो अनुमान लगाया है वह इस प्रकार है—पहली पंक्ति के सिरे पर `Ʋ` का जो चिह्न है वह उनके अनुसार किसी शब्द का अन्त करने के लिए प्रयुक्त किया गया लगता

है। तीसरी पंक्ति मे जो लेख है वह नाम लगता है। बीच की पंक्ति मे ⍏ |||⊔ तीन चिह्न हैं जो पुत्र के द्योतक लगते है। संक्षेप मे उनके अनुसार तीन पंक्तियों में से प्रथम में नाम, मध्य मे पुत्रार्थक शब्द और अंतिम पक्ति में नाम है। बीच की तीन लकीरों की उन्होने 'त्रि' (तीन) के द्योतक होने की सभावना मानी और वर्णमाला के संदर्भ मे 'त्रि' का त्र् का द्योतक माना। पहला अक्षर ⍏ = पु, ||| = त्र्, और ⊔ = अ, तीनों अक्षर = पु + त्र् + अ = पुत्र। स्मिथ का यह प्रयास रोचक अवश्य है किंतु मध्य के चिह्नों को यदि पुत्र अर्थ का द्योतक मान भी लिया जाय तो भी उसके लिए संस्कृत भाषा का शब्द 'पुत्र' ही प्रयुक्त हुआ है यह कहना कठिन है। पुनश्च तीन लकीरों को 'त्रि' फिर 'त्रि' से 'त्र्' और फिर अलग से 'अ' का जोडना यह एक क्लिष्ट कल्पना लगती है। इसे बिना किसी अन्य पुष्ट साक्ष्य के स्वीकार करना कठिन है।

प्राणनाथ ने ब्राह्मी लिपि के साथ सिंधु लिपि का तुलनात्मक अध्ययन कर ब्राह्मी लिपि के साथ सिंधु सभ्यता के लिपि चिह्नों का ध्वनि निर्धारण करने की चेष्टा की है। उनका अनुमान है कि अक्षर व्यंजन हैं और कुछ पर स्वर मात्राएं लगी है। उनके अनुसार भाषा सस्कृत या प्राकृत थी। फ्लिण्डर्स पीट्री, जो मिस्री सभ्यता के अधिकारी विद्वान् हैं, ने यह मत व्यक्त किया है कि ये मुद्राएं राजकर्मचारियो की हैं और मिस्र की प्राचीन लिपि के तुलनात्मक अध्ययन से इसे पढे जाने की संभावना है। इन्होने अपने ढग से कुछ राजपदो के नाम भी पढ डाले। मेरिग्गि (Meriggi) के अनुसार यह लेख केवल पदवाचक नही हो सकते। उनके अनुसार यह लिपि भाव-ध्वनि लेखन शैली पर आधारित लगती है और इसके कुछ चिह्न भावचित्र और कुछ phonem थे। इन्हे पहचानने के लिए उन्होने अधिकाशत हिताइत शब्दावली का सहारा लिया। हंवेजी (Hevesy) ने सिंधु लिपि और ईस्टर द्वीप की लिपि मे समानता बतायी है और यह मत व्यक्त किया है कि ईस्टर द्वीप की लिपि से सिंधु लिपि का विकास हुआ था। पर दो लिपियो की समानता ऊपरी लगती है और इस मत को स्वीकार करने मे सबसे कठिनाई यह है कि ईस्टर द्वीप की लिपि की तिथि ज्ञात नही है।

1934 मे हण्टर ने इस लिपि को पढने का प्रयास करते हुए उसका वैज्ञानिक विधि मे विश्लेषण किया। इन्होने कहा कि सिंधु लिपि एक विशिष्ट लिपि है, पर सुमेर और एलम की लिपियो से मिलती जुलती है। लेखो को उन्होंने नाम और पद का सूचक माना और अपना यह मत व्यक्त किया कि या तो इस सभ्यता के लोग द्रविड थे या फिर किसी नदी अथवा समुद्र तट वासी थे। हिता-

इस सम्यता के फ्रांससी विद्वान् ह्रोज़नी (Hrozny) के अनुसार ये लोग आदि हिताइत थे जो भा-योरपीय की एक शाखा थी । हिताइत भाषा के आधार पर उन्होंने सिंधु लिपि को पढने का प्रयास किया । मेसोपोटामिया के प्राचीन नगर उसकी प्रसिद्ध मुद्रा जिसे अधिकाश विद्वान् सिधु सम्यता का मूल मानते हैं, पर अंकित सुमेरी लिपि मे अकित लेख को वे सक् कुसि पढते है और इसे सक्कुसि के लिए प्रयुक्त मानते है । 'कुसि' को वे उस क्षेत्र का नाम मानते है जिसमे सिंधु सम्यता के नगर स्थित थे और उन्होंने सिधु सम्यता की उनसठ मुद्राओं पर 'कुसि' शब्द पढ डाला, जबकि इन सभी उनसठ मुद्राओं के चिह्न पूर्णत. समान नही है ।

फादर हेरास ने यह मत व्यक्त किया है कि हडप्पा वासी द्रविड थे, आर्य नही । ये लोग भूमध्यसागरीय जाति की शाखा के थे और द्रविड़ भाषा से संबद्ध भाषा का प्रयोग करते थे । हेरास इस भाषा को द्रविडी नाम देते है, जो उनके अनुसार आज की द्रविड भाषाओ के मूल मे थी । उनका मत है कि प्रत्येक चिह्न एक पूर्ण शब्द का द्योतक है, अक्षर या सिलेबल का नही । हेरास ने इन लेखों मे अपने ढग से कुछ नाम ही नही, अपितु कविताओ के अश भी पढ डाले ।

स्वामी शकरानन्द सिधु सम्यता के लोगो को आर्य मानकर चले और उन्होने तात्रिक प्रतीको के आधार पर लिपि को पढने का प्रयास किया । बेनी-माधव बरुआ ने भी इन चिह्नो को तात्रिक चिह्न माना है, किंतु उनके निष्कर्ष स्वामी शकरानन्द से भिन्न है । कृष्णराव भी लेखो की भाषा संस्कृत मानते है । एस० के० रे सिधु लिपि को आदि ब्राह्मी का मूल मानते है । टी० एन० राम चैन्द्रन भी मुद्रा लेखो को वैदिक कर्मकाण्ड से संबंधित मानते हैं ।

फतेह सिह का कहना है कि इन मुद्राओ का प्रयोग धार्मिक पुस्तकों की छपाई के लिए होता था । उनके अनुसार भाषा वैदिक संस्कृत के निकट है तथा प्रतीकात्मक है । उन्होंने ब्राह्मणों व उपनिषदो मे लिखे मत्र और वैदिक देवी-देवताओ के नाम पढे है । वे हडप्पा सम्यता मे एक नही अनेक लिपियो (कम से कम चार) के प्रयोग की बात कहते है । मुद्राओं पर अंकित एक-शृंगी पशु को विशिष्ट प्रकार का अज मानते है और उसके लिए वैदिक साहित्य से प्रमाण देते है ।

रूसी विद्वानो के एक दल ने, जिसके सदस्य वनोरोजोव वोल्कोव, गुरोव और अलेक्सेयेव थे, कम्प्यूटर की सहायता से यह जानने का प्रयास किया कि सिंधु लिपि के अमुक चिह्न विभक्ति, लिग, काल, रुपिम (morphemes) इत्यादि के द्योतक हो सकते हैं । अपने निष्कर्षों को विभिन्न ज्ञात भाषाओं के साथ तुलना करने पर वे इस परिणाम पर पहुँचे कि इस दृष्टि से सिंधु सम्यता के लेख द्रविड़

भाषा के अधिक निकट है। उन्होंने यह भी मत व्यक्त किया कि कुछ अपवादों को छोड कर, लिपि दाएँ मे बाएँ पढी जानी चाहिए।

फिनलैंड के चार विद्वानों की एक टोली ने हाल ही मे इस लिपि पर काम किया। इस टोली के सदस्य थे—भारतीय-विद्या-विशारद अस्को पर्पोला, भाषाविद् पी० आल्तो, असीरीय-विद्याविद् सिमोपार्पोला और गणितज्ञ एस० कोस्केन्नेमि। लिपि पढ लेने के इस टोली के दावे की काफी धूम रही और दिल्ली के एक प्रमुख अंग्रेजी दैनिक (स्टेट्समैन) ने तो उस पर सपादकीय ही लिख डाला। इस प्रयास का कुछ विस्तार से उल्लेख करना समीचीन होगा। उपर्युक्त विद्वान् हडप्पा सस्कृति के मूल को द्रविड ही मानते है। उन्होंने भी कौन सा चिह्न आदि या अंत मे कितनी बार आया है और कौन चिह्न जोड़े या समूह मे कितनी बार आते है इसका वैज्ञानिक विधि से विश्लेषण किया और इनके लिंग, कारक आदि का अर्थ लगाने की चेष्टा की। वे एक चिह्न को पूरे शब्द का वाचक (लोगोग्राफिक) मानते हैं।

सिंधु लिपि मे कंघी के आकार का एक चिह्न है। द्रविड भाषा मे कघी को पेटिका कहते है, और पेटि का अर्थ इसी भाषा मे 'स्त्री' है। अत इन फिन विद्वानो ने कघी जैसे चिह्न को स्त्री माना और लेख-संदर्भ मे उसे स्त्रीलिंग का द्योतक बताया। ये विद्वान् पहले के वैज्ञानिक प्रयासो के विश्लेषणो से भलीभाँति परिचित थे। उनका प्रयास नवीनतम वैज्ञानिक प्रयासो मे है। किंतु जैसा कि ब्रजबासी लाल और टी० बर्रो का मत है, ये प्रयास सराहनीय होते हुए भी विसगति पूर्ण हैं। यह भाषा द्रविड ही है और लिपि के चिह्नो की पहिचान सही की गई है, इसका कोई ठोस आधार नही है। कुछ चिह्न ऐसे भी है जिनकी पहिचान एक से अधिक वस्तुओ मे की जा सकती है और की भी गई है। यथा फिन विद्वान चिह्न को 'हाथ' मानते है और इसका अर्थ व्यापार से लेते है, जबकि उपर्युक्त रूसी विद्वान् इसे एक 'मुट्ठी-भर' का सूचक मानते है और इसे माप का पैमाना कहते है। इस सदर्भ मे हमे एक कहानी याद आती है जिसमे फ्रासीसी भाषा से अनभिज्ञ एक भूखे जर्मन ने वर्षा के दिन फ्रास के एक होटल मे बैठ कर कुकुरमुत्ता मे बनी एक खाद्य-सामग्री खाने की इच्छा से उसका चित्र बना कर होटल के परिचारक को दिया, और बेसब्री से वाछित भोज्य-सामग्री की प्रतीक्षा करता रहा। कुछ समय के बाद वह परिचारक आया और उसने उस जर्मन के हाथ मे एक छाता थमा दिया।

अगर सिंधु सभ्यता की भाषा को द्रविड मान लिया जाय तो आशा यही की जानी चाहिए कि उसका व्याकरण और प्राचीन तामील का व्याकरण एक जैसा होगा। फिन विद्वानो (जिन्होने इसे द्रविड़ो की कृति माना है) के निष्कर्ष

इस दृष्टि से खरे नही उतरते । फिन विद्वानों ने कंघी और बर्तन के चिह्नों को क्रमश लिंग और कारक का द्योतक माना है । किंतु विशेषज्ञों का कथन है कि वह द्रविड भाषाओं के व्याकरण के विपरीत है, जिसके अनुसार अत के चिह्न को कारकवाची चिह्न होना चाहिए, लिंगवाचक नही ।

शि० रंगनाथ का कहना है कि परवर्ती सिंधु लिपि, जैसा कि लोथल और काठियावाड के कुछ अन्य क्षेत्रों के साक्ष्य से स्पष्ट है, के लगभग 75 प्रतिशत वर्ण समकालीन सेमेटिक वर्णों से मिलते है और उनका भी वही उच्चारण करना ठीक होगा जो कि सेमेटिक वर्णों का है । सिंधु सभ्यता के लोगो का पश्चिमी एशिया मे घनिष्ठ सबंध था ही । वे उच्चारण की दृष्टि से (phonology) हिताइत और सिंधु सभ्यता की भाषा मे पर्याप्त समानता मानते है । उनका कहना है कि लेखो से ऐसा प्रतीत होता है कि इन मुद्राओ का प्रयोग मुख्यत· शासको ने ही किया था और इनमे कुछ नाम वैदिक साहित्य में वर्णित ऋषियो के है और कुछ भौगोलिक । उनकी भाषा भा-योरपीय थी । एक लेख मे वह मह्ल पढते है । उन्होने इसे मेसोपोटामिया के लेखो मे प्राप्त मेलुह् का द्योतक माना है, जिसे अधिकाश विद्वान हडप्पा सभ्यता के किसी स्थल का द्योतक मानते है ।

यो तो अगर लिपि पढ भी जाय पर लेख की भाषा का ज्ञान न हो तो पढ लेने पर भी लेख का अर्थ निकालना और भाषा की निश्चित रूप से जानकारी होने पर भी यदि जिस लिपि मे वह लिखा है उसका ज्ञान नही हो तो लेख पढना कठिन होता है । फिर भी ऐसे लेखो का पढना जिसकी न भाषा के बारे मे और न लिपि के बारे मे ही जानकारी हो[1] कितना कठिन कार्य है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है ।

लिपि की सामान्य विशेषताएं

लिपि पढने के लिए किये गये विभिन्न प्रयासो की जानकारी कराने के

1 पुराविद् साधारणतया यह मानते है कि लेखन कला का प्रारभ सर्वप्रथम मेसोपोटामिया मे हुआ और वही से फिर मिस्र वालो ने लेखनकला के विकास की प्रेरणा ली । जो विद्वान् इस बात की सभावना मानते है कि सिंधु सभ्यता ने भी प्रेरणा मेसोपोटामिया से ली, वे भी एक मत से यह घोषित करते है कि केवल भाव ही ग्रहण किया और जिस विकसित रूप मे हम सिंधु लिपि को अलग-अलग पाते है वह मेसोपोटामिया से पर्याप्त भिन्न है । विभिन्न विद्वानों ने सिंधु भाषा वलूचिस्तान मे द्रविड प्रकार की ब्राहुई भाषा की तरह [illegible] भाषा, मुण्डा वर्ग की भाषा, द्रविड़ भाषा और भा-योरोपीय भाषा माना है ।

पश्चात् लिपि के संबंध मे निम्नलिखित कुछ ऐसी तर्क संगत बातों का उल्लेख करना समीचीन होगा जो सामान्य विशेषताओं के रूप में स्वीकार की जा सकती हैं :

1. यह लिपि अपनी अलग विशिष्टता लिए है और अन्य प्राचीन अर्वाचीन देशी और विदेशी लिपियों से उसकी तुलना करने पर समानता की अपेक्षा उसमे भिन्नता ही अधिक दिखाई देती है। इसलिए इसके कुछ अक्षरो की तुलना जहा प्राचीन मेसोपोटामिया, मिस्र आदि की लिपि के अक्षरो से की गई है, वहा कुछ ने इसे सुमेरीय, पूर्व-एलैमाइट (प्रोटोएलेमाइट) से, कुछ ने मिनाअन से, कुछ ने हिताइत से और कुछ ने ईस्टर द्वीप की लिपि से जोडा है। ऐसी भी संभावना व्यक्त की गई है कि नव पाषाणकाल की कोई लिपि रही होगी जिसमे इन विभिन्न संस्कृतियो के लोगो ने अपने-अपने ढंग से विभिन्न लिपियो का विकास किया हो, फलस्वरूप उन लिपियो का अपना अलग-अलग व्यक्तित्व स्थिर हुआ हो।

2 जिस रूप मे यह प्राप्त है वह आदिम लिपि नही अपितु पर्याप्त विकसित लिपि का उदाहरण है, और इस विकसित स्थिति तक पहुँचने के लिए शताब्दियो का समय अपेक्षित है। साधारणत यह देखा गया है कि लिपि आदिम रूप मे जैसे जैसे विकसित होती जाती है वैसे ही उसके वर्णमाला के अक्षर कुछ सरल और उनकी सख्या कुछ कम होती जाती है। इस सदर्भ मे यह बताना समीचीन होगा कि मेसोपोटामिया मे हडप्पा सभ्यता के लगभग समकालीन पूर्व-राजवंश काल की लिपि मे लगभग 900 अक्षर-चिह्नों का प्रयोग होता था, वहाँ यदि हम अक्षरो के परिवर्तित रूपो को हटा दे तो हडप्पा सभ्यता के लेखो मे प्रयुक्त चिह्नों की सख्या लगभग तीन सौ ही रह जाती है। यों चिह्नों की संख्या के बारे मे भी विद्वानो मे मतैक्य नही है। दानी ने इनकी संख्या 537 बतायी है, किंतु यह भी स्पष्ट किया है कि अंको और कोष्ठ-चिह्नों और इसी तरह के कुछ अन्य चिह्नो को छोड दिया जाय तो कुल चलन चिह्न 27 चिह्न वस्तुओं के और 27 चिह्न ज्यामितीय ही बाकी बचते हैं। महादेवन ने 410, स्मिथ और गैड्ड ने 396, हण्टर ने 250, सोवियत और फिन विद्वानों ने 300, हेरास ने 241, फेयर सर्विस ने 350 और 425 के बीच चिह्नो की सख्या मानी है। चिह्नो की सख्या के सबध मे सबसे छोटी सख्या शि० रंगनाथ राव ने सुझाई है। उनका कहना है कि चिह्नो की सख्या अधिक इसलिए आकी गई कि संयुक्ताक्षरों को नही पहचाना गया। उनके अनुसार शुरू मे लगभग 52 ही मूल चिह्न थे और बाद मे हड़प्पा सभ्यता के अंतिम चरण मे इनकी संख्या केवल 20 ही रह गई।

विभिन्न संयुक्ताक्षरों के कारण चिह्न भिन्न-भिन्न लगते हैं। दूसरी बात यह है कि व्यंजनों पर स्वर की मात्राएं लगाई गई हैं जिससे भी अक्षर-चिह्नों में अंतर आ गया है जिन्हें विद्वानों ने भिन्न चिह्न मान लिया।

3 मोहेंजोदडो और हडप्पा में सभ्यता का जीवनकाल विद्वानों ने 500 वर्ष से 1000 वर्ष तक आका है। इस दीर्घ काल में इस सभ्यता की लिपि मे कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ नही दिखाई देता। हाल ही में लोथल और काठियावाड़ के हडप्पा संस्कृति के अन्य स्थलों से प्राप्त कुछ लेखो के आधार पर शि० रगनाथ राव ने यह मत व्यक्त किया है कि इस क्षेत्र में, समय के साथ-साथ लिपि में भी कुछ परिवर्तन हुए थे।

4 प्राप्त लेखों मे कोई विशाल सार्वजनिक लेख, कोई व्यक्तिगत या व्यापार संबंधी पत्र, ऐतिहासिक लेख, या प्रशस्ति, अथवा साहित्यिक कृति नही है। लेख जो मिले है वे सभी खुदे हुए है (या बर्तनों के सदर्भ मे लेखों के ठप्पे हैं), और बेलोच है। स्याही से भोजपत्र या कपडे पर लिखा हुआ या गीली मिट्टी पर कलम से लिखा हुआ एक भी लेख, जिसमे प्रवाह के साथ लिखने की सभावना होती है, नही मिलता। सुरकोटडा और बणावली से थोडे मे बर्तनों के टुकडे मिले है जिन पर स्याही से अक्षर चिह्नित हैं। पर उपलब्ध उदाहरणो मे बहुत थोडे ही एक साथ लिखे मिले है। यों ताबे या पत्थर पर बडे लेख का न मिलना इस बात का द्योतक हो सकता है कि लेख कपडा या भोजपत्र जैसी अपेक्षाकृत शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं पर लिखे जाते रहे होगे।[1] इसके विपरीत फेयरसर्विस का कहना है कि बडे लेख और प्रवाहमय लेखो का न मिलना इस बात का द्योतक है कि लेखन का प्रयोग सीमित उद्देश्य के लिए था। चूकि लेख अधिकाशत. मुद्राओ पर मिलते है अत. यह लिपि मात्र मुद्रा-लेखों के लिए प्रयुक्त लगती है।

5. जहा तक लिपि के स्वरूप का प्रश्न है संसार की विभिन्न लिपियो का अध्ययन करने के पश्चात् विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि लिपि का स्वरूप निम्नलिखित मे से ही एक रहा होगा—भाव-चित्रक (ideographic) जिसमे

---

1 यो मैके ने मोहेजोदड़ो से प्राप्त पक्की मिट्टी की दो पट्टिकाओ को पहचान लिखने की पट्टिका से की है, जिन पर उनके अनुसार स्याही से अक्षर लिखते थे तथा उन्हे साफ करके पुन प्रयोग करते थे। एक पट्टिका 17 5 सेमी लम्बी, 7·5 सेमी चौडी और 1 सेमी मोटी है, दूसरी 8 सेमी लम्बी 7 97 सेमी चौडी और 1 8 सेमी मोटी है। पर इनकी लेखन पट्टिकाओं के रूप मे पहचान संदेह से परे नही है।

प्रत्येक चिह्न एक शब्द का द्योतक होता है, अक्षर सूचक (syllabic) जिसमें एक चिह्नएक अक्षर (सिलेबिल) का द्योतक होता है और वर्णानुक्रमिक (alphabetic) जिसमें एक चिह्न एक वर्ण का द्योतक हो। लिपि के कुछ चिह्नों की पहिचान विभिन्न वस्तुओं से की जा सकती है, यथा, मनुष्य, मछली, पशु-पक्षी, कीडे-मकोडे, वनस्पति (जैसे पीपल की पत्ती), मानव हाथ और पाव और शरीर के अन्य अग, सीग, पहिया, घडा, छत्र, कुर्सी, मेज, धनुष-वाण इत्यादि। अक्षर-चिह्न की किसी वस्तु से ठीक पहचान कर भी ली जाय तब भी यह कहना कठिन है कि उसका उल्लेख किस संदर्भ मे हुआ है। सीधी लकीरों की अंको के द्योतक होने की सभावना है, पर अकों का प्रयोग किस सदर्भ मे हुआ है कहना कठिन है, ऐसा भी सभव है कि किसी सदर्भ में उनका प्रयाग बहुवचन दिखाने के लिए हुआ हो।

लिपि लिखने की दिशा

इस लिपि मे क्या लिखा है इस पर तो विवाद है ही, लेखन की दिशा के बारे मे भी विद्वान् एकमत नही है। कोई उसे ब्राह्मी की तरह बाये से दाये लिखी गई बताता है और कोई खरोष्ठी की तरह दायें से बाये। कोई उसे ऐसी (बूस्त्रोफेदन) लिपि मानता है जिसमे विभिन्न पंक्तियो मे लेखन की दिशा क्रमश बाये से दाये और दाये से बाये बदलती रहती है। विद्वानो ने कुछ चिह्नो को प्रारम्भ का, कुछ को अत का, और कुछ को सख्यावाचक निर्धारित करने का प्रयास किया है। उनके स्वरूप और लेख मे उनकी स्थिति मे इस तरह का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है, और इससे लिपि के लिखने के रुख का पता चल सकता है। अनेक लेखो मे एक ही प्रकार के क्रम मे आने वाले अक्षरो का भी विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। ये प्रयास निश्चय ही वैज्ञानिक विधि पर आधारित हैं।

लगभग 99% ऐसी मुद्राओं मे, जिन पर अभिप्राय और लेख दोनों ही अकित है, पशु को दाये मुख किये दिखाया गया है। चूकि साधारणत पशुओं का अ:न सिर के भाग से ही प्रारभ किया जाता है, अत दक्षिणाभिमुख सिर इस बात का द्योतक लगता है कि अक्षरो को दायी ओर से बायी ओर लिखा जाता रहा होगा। इस सदर्भ मे यह बताना समीचीन होगा कि परवर्ती ऐति-हासिक काल की मुद्राओ पर, जिनमे ब्राह्मी लिपि में लेख और पशुओं की आकृतिया है, पशु बाई ओर सिर किये दिखाये गये है, जो कि सिर से प्रारम्भ कर चित्र बनाने की विधा, बायें से दाये ओर को लिखी जाने वाली ब्राह्मी लिपि

के अनुरूप है। यह निष्कर्ष फतेह सिंह की उस धारणा से अधिक तर्क संगत लगता है जिसके अनुसार हड़प्पा सभ्यता की मुद्राओं पर दाईं ओर मुख वाले (दक्षिणाभिमुख) पशु देवत्व के प्रतीक हैं और बाईं ओर मुख वाले (वामाभिमुख) पशु दैत्यत्व के; विशेष रूप से इसलिए कि सिंह हड़प्पा संस्कृति और वैदिक संस्कृति मे अन्तर नही करते और उनकी इस धारणा को मान ऐतिहासिक काल की ब्राह्मी लिपि वाली मुद्राओं पर वामाभिमुख पशुओं से दैत्यत्व दिखाने का अभिप्राय मानना होगा जो ठीक नही लगता। मैंके ने अपनी पुस्तक 'फर्दर एक्सवेशंस ऐट मोहेंजोदडो' में दस या ग्यारह ऐसी मुद्राओं का उल्लेख किया है जिनकी छापों मे पशु वामाभिमुख दिखेंगे, बाकी (जिनकी सख्या कई सौ है) सब मे दक्षिणाभिमुख। उनका सुझाव है कि ये थोडे से अपवाद इसलिए हैं कि शायद कलाकार ने इन मुद्राओं में पशुओं की आकृति का आलेखन करने मे किसी अन्य मुद्रा की छाप की नकल कर दी। हमें मैंके का यह सुझाव काफी तर्कपूर्ण लगता है।

मोहेंजोदडो से प्राप्त एक मुद्रा पर दो पंक्तियों का लेख है। एक पूरी पंक्ति तो भरी है। दूसरी पक्ति मे पहली पक्ति के बायी ओर के अतिम अक्षर के नीचे ·ƖƑ का चिह्न है। यह चिह्न अन्यकई मुद्राओं के लेख-पंक्तियों मेंअत मे मिलता है। स्पष्टत जगह की कमी के कारण ही इस अक्षर को दूसरी पक्ति में लिखना पडा। निश्चय ही अंत में आने वाला यह चिह्न प्रारंभिक चिह्न नही हो सकता, क्योंकि यदि यह प्रारभिक चिह्न होता तो उसकी पहली पक्ति में किनारे से पहला अक्षर होना चाहिए था। मोहेंजोदडो की ही एक अन्य मुद्रा पर लेख लिखने वाले को जगह की कमी महसूस हुई तो उसने दाईं ओर के चिह्नों को एक दूसरे के काफी निकट लिखा, किंतु जब फिर भी जगह पूरी नही हुई तो एक अक्षर नीचे की पक्ति मे लिख दिया। इससे ही स्पष्ट हो जाता है कि लेख बाये से दाये लिखा गया, और दूसरी पक्ति मे जो चिह्न है वह लेख के अत के चिह्न का द्योतक है। अगर इस तरह का चिह्न अन्य लेखों के सदर्भ मे, लेख के बीच मे आता है तो इसका अर्थ यह लगाया जा सकता है कि वहा पर वह वाक्य के अंत का द्योतक है।

गैड्ड ने मोहेंजोदडो की एक ऐसी मुद्रा का उदाहरण दिया है जिस पर केवल लेख ही है, पशु की आकृति नही। लेख अपेक्षाकृत कुछ बडा है और मुद्रा के वर्गाकार क्षेत्र में तीन किनारों पर है। ऊपरी और बाएं किनारे मे पूरे और नीचे के किनारे के वड़े हिस्से पर है। इसके अक्षरों के सिरे को देखते हुए 90 अश के कोण पर मुद्रा घुमाने पर ही लेख को पढ़ने की सही स्थिति मिलती है। स्पष्ट है कि मुद्रा को हाथ से घुमा कर लेख पढ़ा गया और दूसरे तथा तीसरे वर्ग

(सेक्शन) की स्थिति इस बात की द्योतक है कि उसे दायी ओर घुमाया गया था। दूसरे शब्दों मे, पढने वाले ने ऊपर दिए क्रम में पहले और सबसे लम्बे दायीं से बायीं ओर पढना शुरु किया, फिर मुद्रा को 90 अंश पर घुमाया और दूसरे वर्ग को फिर दायें से बायें पढा और इसी तरह तीसरे वर्ग को भी पढा। यह मुद्रा लेख लिपि के दायें से बायें पढे जाने का यह महत्त्वपूर्ण प्रमाण लगता है।

लिपि की दिशा के निर्धारण में भी ब्रजवासी लाल के हाल ही के प्रयास बहुत महत्त्वपूर्ण है। कालीबंगा की खुदाई मे प्राप्त कुछ मिट्टी के बर्तनों पर उत्कीर्ण चिह्नों मे कुछ चिह्न अपने पार्श्ववर्ती दाएं चिह्न को काटते है। लाल ने निष्कर्ष निकाला है कि इससे चिह्नों के लिखने के पूर्वापर संबंध को निश्चित किया जा सकता है। ध्यानपूर्वक निरीक्षण से, जो रेखा पहले लिखे अक्षर को काटेगी वह लगातार एकसार चलती दिखेगी जबकि जिस रेखा को काटा गया है वह काटे हुए स्थान पर एक सार न दिख कर कटी दिखेगी। अणुवीक्षण यंत्र से यह और भी स्पष्ट दिखेगा। इस संदर्भ में उन्होंने खरोष्ठी लिपि (जिसके दाएं से बाएं ओर लिखा जाना निश्चित रूप से ज्ञात है) के ऐसे लेख का उदाहरण दिया है जिसमे कालीबगा के समान बाएं अक्षर की रेखा दाएं अक्षर की रेखा को काटती है। निश्चय ही श्री लाल का लिपि की दिशा के निर्धारण मे यह वैज्ञानिक प्रयास अत्यत महत्त्पूर्ण एव सराहनीय है।

लेखों का अनुमानित स्वरूप

एक प्रकार के जानवर की आकृति अनेक मुद्राओं पर मिली है, पर उन पर लेखो मे समानता नही है। ऐसा देखा गया है कि अनेकश विभिन्न प्रकार के लेखो पर एक ही अभिप्राय मिलता है और समान लेख वाली मुद्राओ पर विभिन्न अभिप्राय। निश्चय ही एक ही तरह के अभिप्राय वाली मुद्राओ के लेख की विभिन्नताओ का कारण पर्यायवाची शब्दो का प्रयोग नही माना जा सकता। इससे कम से कम इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि मुद्राओं पर अकित लेख और अभिप्राय मे परस्पर सामजस्य नही है। अथक प्रयास के बाद अगर कभी विद्वान् इस लिपि को पढने मे सफल हो भी गये तो भी हमे इतिहास निर्माण के लिए कोई बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री शायद ही मिल सके, क्योंकि इन छोटे लेखो मे अधिक अभिव्यक्ति की गुजाइश नही हो सकती। शायद व्यक्तियो के नाम, और कुछ मे उनके साथ शायद पद, पिता, संस्था या फर्म का नाम, या धार्मिक तंत्र-मत्र[1]

1 इस सिलसिले मे कालीबगा के गढी वाले टीले मे (जिसके दक्षिण मे अग्नि-वेदी युक्त चबूतरा है) सात एक जैसे लेख वाली मुद्राएं उल्लेखनीय है। लगता है कि इनमे धर्म सबधी कुछ फार्मूले लिखे है। उनकी पीठ पर मुहर बद करने के रस्सी के निशान नही है।

बस ऐसा ही कुछ होने की संभावना लगती है। यह भी संभावना व्यक्त की गई है कि विभिन्न पशुओं की ये आकृतिया या तो समाज की विभिन्न वर्ग द्वारा प्रयुक्त किये जाने के द्योतक हैं (इस संभावना के अंतर्गत जिन जानवरों का मुद्राओं पर अल्प संख्या में चित्रण है यथा जेबु (zebu) और हाथी, वह उच्च वर्ग, यथा पुरोहित वर्ग, के द्योतक है) अथवा विभिन्न व्यापारियो ने अपनी श्रेणी के प्रतीक के रूप मे इनका प्रयोग किया है। ऐसी भी संभावना व्यक्त की गई है कि हो सकता है कि कुछ जानवरों का कोई कर्मकाण्डी महत्त्व रहा हो और अन्यों का नही। यदि ऐसा था तो क्या लेख मंत्र माने जा सकते है ? फतेह सिंह का कहना है कि सिंधु सभ्यता मे मुद्राओं का प्रयोग धार्मिक पुस्तको की छपाई के लिए होता था। यो तो वैसे भी इतने प्राचीन काल में छापेखाने के होने की सभावना कम ही लगती है, और यदि छपाई मे इनका प्रयोग हुआ होता तो जहा पर छापेखाने रहे होगे वहा पर बडी सख्या मे मुद्राएं मिलनी चाहिए थं.। उत्खनन मे ये मुद्राए यत्र-तत्र, कम अधिक सख्या मे, मिली। ईराक में कपडे पर हडप्पा सभ्यता की मुद्रा छाप का मिलना इस बात का द्योतक है कि इनका प्रयोग मुद्रा-छाप लगाने के लिए होता था। यो प्राचीन ऐतिहासिक काल के भारतीय एवं विदेशी साक्ष्यों मे भी इनके मुद्रा के रूप मे प्रयुक्त होने की सभावना लगती है। शायद मुद्रा बनाने वाले विभिन्न आकार की और विभिन्न अभिप्राय वाली मुद्राए बना कर रखते थे और ग्राहक उनमे से किसी को पसंद कर उन पर मुद्रा-निर्माता से अपना नाम व पद आदि खुदवा लेते थे। यही कारण है कि कभी-कभी जगह की कमी के कारण लेख बराबर अक्षरो में ठीक तरह नही लिखे जा सके, और कभी लेखों के शेषाश के एक या दो अक्षरो को दूसरी पक्ति मे लिखना पडा। यदि ऐसी बात नही होती और मुद्रा बनाने वाले को पहले से ही मालूम होता कि लेख कितना बडा है तो वह अक्षरो को ठीक तरह लिखता और उसी हिसाब से जानवर की आकृति छोटी बना देता।

क्या सिंधु लिपि ब्राह्मी लिपि की मूल है ?

हडप्पा सभ्यता की खोज से पहले ही कनिंघम ने यह मत व्यक्त किया था कि ब्राह्मी लिपि का उद्भव किसी चित्रलिपि से हुआ है। भारत में ही इस तरह की लिपि हड़प्पा सभ्यता के अतर्गत मिलने से कनिंघम के मत को बल मिला। इस मत के मानने वाले अन्य विद्वानों मे स्मिथ, लैंग्डन गैड्ड, हंटर, सुधाशु कुमार राय आदि उल्लेखनीय है। उनका कहना है कि भारत की परंपरागत लिपिया और ब्राह्मी दोनो ही सिंधु लिपि से ली गई है। परंपरागत लिपिया सिंधु लिपि से सीधे ही ली गई है, जबकि ब्राह्मी मुख्य धारा से हटी हुई है। उनके अनुसार

ब्राह्मी को सभवत बुद्ध ने ही अपने उपदेशों (जो कि ब्राह्मण धर्म के सिद्धांतों से भिन्न थे) के प्रचार के लिए प्रयोग किया था। अशोक भी बौद्ध धर्म का अनुयायी था और इसीलिए उसने भी ब्राह्मी लिपि का ही प्रयोग किया। किंतु चूंकि अशोक के पहले के ब्राह्मी लेख न के बराबर हैं अत सिंधु लिपि के ब्राह्मी लिपि तक विकास होने के विभिन्न चरणों के लिए कोई साक्ष्य नही है, और साक्ष्यो के अभाव मे इस मत को विशेष तूल नही दिया जा सकता। लेकिन जैसे ब्रजवासी लाल ने दिखाया है सिंधु सभ्यता के लिपि के चिह्नों से मिलते जुलते कुछ चिह्न मध्य भारतीय ताम्र-पाषाण संस्कृति, ताम्र-निधि संस्कृति, और बृहद् पाषाण संस्कृति के मृद्भाण्डों पर भी ग्रेफिटी के तौर पर अंकित मिलते हैं। इनसे कुछ ऐसा आभास लगता है कि सिंधु सभ्यता की लिपि इस सभ्यता के साथ ही नष्ट हो गई। कुछ विद्वान्, जिनमे सी० एल० फाब्री प्रमुख है, आहत सिक्को (जिनका प्रचलन कम से कम छठी शताब्दी ई० पू० से अवश्य प्रारंभ हो गया था) पर अंकित चिह्नो और हड़प्पा लिपि-चिह्नों में कुछ साम्य पाते है। करीब 12 चिह्न पटना से प्राप्त एक ताम्रपट्टिका पर भी मिले है। किंतु कुछ समानता का यह साक्ष्य भी इतना पुष्ट नही कि इससे कोई निश्चित निष्कर्ष निकाला जा सके। दानी का कहना है कि उन्होंने सिंधु लिपि के सारे अक्षर चिह्नों (जो इनके अनुसार 537 है) और इन सिक्कों पर प्राप्त सभी चिह्नो (जिनकी संख्या उनके अनुसार लगभग उतनी ही हैं) का तुलनात्मक अध्ययन कर यह पाया कि केवल 15 ही चिह्न ऐसे हैं जो दोनों मे मिलते है। दानी ने इस बात पर बल दिया है कि यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि सिंधु सभ्यता के चिह्न निश्चित रूप से लेखन शैली के अंग हैं जब कि सिक्कों के चिह्न चिह्न मात्र ही है, वे किसी लेख के द्योतक नही हैं। उनका यह भी कहना है कि कुछ चिह्नो को संदर्भ से अलग कर सिंधु सभ्यता से उनकी समानता दर्शाने से ही सिंधु लिपि की ऐतिहासिक काल तक निरंतरता सिद्ध नही हो पाती। तांत्रिक चिह्नों के बारे मे वे कहते है कि ये ऐसे चिह्न है जिनमे तांत्रिक फार्मूला बहुत बाद को उस समय प्रयुक्त हुए जिसे भारतीय इतिहास का मध्य-काल कहते है। दोनों के बीच निरंतरता की कडी न मिलने से उसे सिंधु लिपि का उत्तरजीवी या अवशिष्ट मानना ठीक नही।

जो लोग यह मानते है कि ब्राह्मी सिंधु लिपि से ही विकसित हुई और साथ ही यह भी कि हड़प्पा लिपि, ब्राह्मी से भिन्न दिशा, अर्थात् दायें से बाएँ ओर को लिखी जाती थी, उनका यह कहना है कि ऐसा भी देखा गया है कि लिपि को दूसरे लोगों ने अपने लेखन का आधार बनाया, लेकिन उसमे इतने परिवर्तन ला दिये कि वह एक नयी लिपि का रूप ले बैठी। लैग्डन ने बताया है कि ग्रीक लोगों ने फिनीशिया के अक्षरों को अपनाया, थोडे दिनो तक तो

उसके रुख (लिखने की दिशा)—दाएँ से बाएँ—को भी बनाये रखा, और फिर अपनी सुविधा के अनुसार उसके रुख को बाएं से दाए बदल लिया। कुछ लोगों ने यह तर्क भी दिया है कि एरण से प्राप्त एक प्राचीन सिक्के पर अंकित ब्राह्मी लिपि के पाँच अक्षर दाएं से बाए दिशा मे लिखे है, जिससे ऐसा लगता है कि संभवत मूलत ब्राह्मी भी दाए से बाएं लिखी जाती थी।

लैंग्डन ने बलपूर्वक कहा है कि ब्राह्मी के मूल के लिए ब्यूह्लर के फिनीशियन सिद्धात की अपेक्षा सिंधु सभ्यता वाला सिद्धात कही अधिक तर्कसगत लगता है, क्योंकि तुलना करने पर इसके चिह्न फिनीशियन की अपेक्षा सिंधु लिपि के अक्षरों से कही अधिक मिलते-जुलते हैं। मार्शल का कहना है कि सिंधु लिपि को ब्राह्मी का मूल मानने की बात न केवल इसलिए तर्कपूर्ण लगती है कि ब्राह्मी लिपि के कुछ अक्षर हडप्पा लिपि से मिलते-जुलते है, बल्कि इसलिए भी कि ब्राह्मी लिपि स्वर-मात्रा और एक अक्षर-चिह्न को दूसरे चिह्न से जोडने की परपरा (सयुक्ताक्षर) के लिए विशेष विख्यात है, और हड़प्पा लिपि के चिह्नों में भी मात्राओ और संयुक्ताक्षरों का प्रयोग हुआ लगता है, अन्य किसी प्राचीन लिपि मे इतने स्पष्ट रूप मे और बडे पैमाने पर इनका प्रयोग नही दिखता। किंतु उनका यह भी कहना है कि इससे कोई निश्चित निष्कर्ष नही निकाला जा सकता क्योंकि ऐसा संयोग मात्र भी हो सकता है। फिर यह भी तो नही कहा जा सकता कि ब्राह्मी लिपि और सिधु लिपि के जो अक्षर समान लगते है उनके उच्चारण भी समान हैं। जब तक लगभग समान चिह्नों के उच्चारण भी समान होना निर्धारित नही किया जाता, ब्राह्मी के सिंधु लिपि से लिए जाने के विरुद्ध कुछ उसी तरह के तर्क दिये जा सकते है जैसे गौरीशकर हीरानन्द ओझा ने ब्यूह्लर के ब्राह्मी को विदेशी मूल का मानने के विरुद्ध दिये थे।[1]

लेख पढ़े जाने की संभावनाएं

इस लिपि के पढे जाने की काफी सभावना होती यदि एक ऐसा लेख मिलता जिसमें वही बात दो लिपियो—हडप्पा लिपि और एक ऐसी लिपि जो पढ़ी जा सकती हो—में लिखी होती और उसमे व्यक्तिवाचक शब्दो का प्रयोग अनेकशः हुआ होता। प्राचीन मिस्र की लिपि को इसी कारण पढा जा सका कि वहां के सुप्रसिद्ध 'रोजेटा पाषाण' पर अकित लेख प्राचीन मिस्री लिपि के साथ डेमोटिक

1 उन्होंने तर्क दिया था कि यदि बिना उच्चारण की समानता के केवल अक्षरो की बनावट ही ब्राह्मी लिपि के फिनीशिया की लिपि से लिए जाने की द्योतक है तो चूँकि ब्राह्मी के अनेक अक्षर अंग्रेजी के अक्षरों से भी मिलते हैं, तो क्या यह भी कहा जा सकता है कि ब्राह्मी अंग्रेजी लिपि से ली गई है।

और यूनानी लिपियों में भी था, और चूंकि यूनानी लेख में ऐण्टोनी और क्लियोपाट्रा का नाम बार-बार आता था और यही नाम मिस्री लिपि मे उसी प्रकार बार-बार होने के कारण प्राचीन मिस्री लिपि में भी इन दोनों के नाम के अक्षरों को पहचान लिया गया। यो माइकिल वेंट्रिस, जो पेशे से स्थापत्यशास्त्री है, ने 1952 मे क्रीट की मिनोअन 'लिनियर बी' लिपि, दो लिपियों वाले लेख के अभाव मे भी पढ ली। किंतु यह अब तक की प्राचीन लिपियो के पढे जाने के सदर्भ मे इस तरह का एकमात्र सफल प्रयास है। ऐसी भी आशा व्यक्त की गई है कि अतत विदेशी साक्ष्य, मुख्य रूप से सुमेरी साक्ष्य, ही हडप्पा लिपि के उद्घाटन मे काम आ सके। उर में प्राप्त सिंधु सभ्यता की मुद्रा पर सुमेरी कीलाक्षरों मे लेख है। यह लेख स्पष्ट नही है, किंतु उसे अनुमानत सक्-कु-षि, या क-लु-षि पढा गया है। ऐसी सभावना व्यक्त की गई है कि यह किसी व्यक्ति का नाम है। पर यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि यह हडप्पा के ही किसी व्यक्ति का नाम है, और यदि है भी तो भी इस छोटे से लेख से न लिपि की समस्या हल होती दिखती है और न भाषा की ही, क्योकि यह निश्चित नही किया जा सकता कि इस तरह के नाम को सिंधु लिपि मे कैसे लिखा जाता रहा होगा। द्विभाषीय लेख न सही, एक बडा कई पंक्तियों का लेख ही मिल जाता तो भी इस लिपि के पढे जाने की सभावना कुछ बढती। पर अभी तक जितने भी लेख मिले है वे तीन पक्तियों से अधिक के नही है, और जो सबसे लम्बा लेख है उसमे भी सब मिला कर सत्रह से अधिक अक्षर नही।

सिंधु लिपि के उद्घाटन के सबध मे उचित यह होगा कि विभिन्न सभावनाओं को एक एक करके तर्क की कसौटी पर कस कर देखा जाय कि उनमे से कोई इसका हल प्रस्तुत करने मे सहायक है। लिपि के स्वरूप के विषय मे पहले से ही कोई निश्चित धारणा बना कर येन-केन-प्रकारेण उसे सही सिद्ध करने के प्रयास किसी के अहं की तुष्टि भले ही कर ले, वे सर्वमान्य हल प्रस्तुत नही करते।

●

अध्याय 16

शवविसर्जन और कंकालों का जाति-निर्धारण

(अ) शव-विसर्जन

प्राचीन काल मे भी शव-विसर्जन की विभिन्न विधिया प्रचलित थी। अधिकाश लोगो का विश्वास था कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा जीवित रहती है और इस तरह जीवित तथा मृतक के मध्य सबंधों की निरतरता की कल्पना की गई। मृतकों की आत्माओं के संबंध मे स्नेह एवं भय मिश्रित धारणाए रही। मरने के बाद मनुष्य स्वर्ग अथवा नर्क मे रहता है, ऐसी धारणा प्राचीन काल मे अधिकाश लोगो मे व्याप्त थी। शव के साथ रखी भोज्य सामग्री को देखने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय यह भी धारणा थी कि मनुष्य को मरने के बाद भी, अपनी स्थिति के अनुरूप, जीवित अवस्था मे उपभोग की जाने वाली वस्तुओ की आवश्यकता पडती है। विभिन्न सस्कृतियो एव विभिन्न युगों के मृतक सस्कारो मे तो अंतर मिलता ही है, कभी-कभी विभिन्न कारणो से एक ही सस्कृति मे एक ही काल मे भी अनेक प्रकार की शव-विसर्जन की प्रथाये मिलती है। आज भी अनेक ऐसे समाज है जिनमे दुश्चरित्रो, खास तरह के अपराधियो अथवा रोगियों इत्यादि के लिए साधारण मे भिन्न शव-विसर्जन का विधान मिलता है। साधारणत सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अथवा राजनैतिक दृष्टि मे प्रतिष्ठित व्यक्तियो के शव-विसर्जन के तरीके अधिकाशत साधारण जनों के शव-विसर्जन के तरीकों से शानदार और विशिष्ट होने स्वाभाविक है। शव-विसर्जनों का वैज्ञानिक अध्ययन प्राचीन सस्कृति के अनेक पहलुओ पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है, और कुछ सस्कृतियो के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के एकमात्र साधन उनके कब्रिस्तान ही है। सिधु सभ्यता के शव-विसर्जन भी उस सभ्यता पर रोचक प्रकाश डालते है।

विभिन्न स्थलों से प्राप्त सिंधु संस्कृति के संदिग्ध शवाधान

हडप्पा सस्कृति के लोगो द्वारा प्रयुक्त शव-विसर्जन विधियों के बारे मे महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है। कुछ उदाहरणों के बारे मे निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि शवोत्सर्ग है, लेकिन कुछ इस तरह के भी अवशेष मिले है जिनके बारे मे निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है कि वे शव-विसर्जन से

संबंधित हैं अथवा नही । दूसरी कोटि के अंतर्गत हम मोहेंजोदडो के अंतिम चरण में प्राप्त इक्कीस मानव कंकालों को रख सकते हैं (फ० XXVII, 1) इनमे से चौदह एक घर के कमरे में पाये गये । छ. एक गली मे और एक दूसरी गली में पाये गये । कुछ ककालो पर पैने शस्त्रों के घाव के निशान हैं और अधिकांश कंकाल अस्त-व्यस्त दशा मे पडे पाये गये है । ये भयानक और आकस्मिक मृत्यु को प्राप्त हुए थे । इनके साथ बर्तन इत्यादि कुछ भी सामग्री नही मिलती । वे तत्कालीन परम्परा के अनुरूप गाडे हुए नही लगते ।[1] ह्वीलर का कहना है कि ये किसी बर्बर आक्रमण के शिकार हुए हडप्पा सभ्यता के वासियों के है । उनका यह भी मत है कि ये आक्रमणकारी आर्य रहे होंगे । मार्शल ने मोहेंजोदडो मे सिंधु सभ्यता के आंशिक शवोत्सर्ग का उल्लेख किया है । आंशिक शवोत्सर्ग का जो असदिग्ध उदाहरण मिला है उसे पिगट हडप्पा सभ्यता के बाद का मानते है । आंशिक शवोत्सर्ग के जो अन्य उदाहरण मार्शल ने दिये है वे सदिग्ध है क्योंकि एक को छोडकर उनमे से किसी मे भी मानव अस्थिया नही मिली हैं, केवल बहुत से बर्तन और कुछ आभूषण ही उनमे मिले हैं ।

मोहेंजोदडो और हडप्पा से कुछ चौडे मुँह के बडे पात्र मिले है (फ० XXVII, 2) जिनमे मृण्मय पिंड, छोटे-छोटे मृद्भाण्ड, आभूषण, पशुओं, चिडियो तथा मछलियों की हड्डिया, कोयला और राख भी मिली है । हडप्पा मे तो ए बी टीले मे 54 पात्र एक कतार मे मिले जो 33 223 मीटर लम्बी जगह मे थे । लेकिन इनमे से किसी किसी मे मानव अस्थिया भी पायी गयी हैं । मार्शल और मैके के अनुसार इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आज-कल की हिंदू-प्रथा के अनुसार शव को दाह करके उसकी अस्थिया विसर्जित रक दी जाती थी । किंतु वे लोग राख को मिट्टी के कलश मे रख देते थे । आज की भांति वे लोग अस्थियो को जल मे विसर्जित करते थे और बाद मे राख कलशो

---

1 कुछ विद्वानो का मत था कि ये शव जहा पर लोग मरे थे वही पर ऐसे ही पडे रह गये थे, किंतु मार्शल ने ठीक ही कहा है कि खुला छोडने से तो पशु और चिडिया इनका मास नोचकर हड्डियां को अलग कर दिये होते । इन्हे गाडा तो गया था किंतु तत्कालीन परम्परा के अनुसार विधिपूर्वक नही । मार्शल ने, कुछ व्यक्तियों के इस मत का, कि ये अस्थि-पंजर सिंधु सभ्यता के लोगों के नही बल्कि इस सभ्यता के समाप्त होने के बाद किसी जंगली जाति के हैं, तर्कपूर्ण खण्डन किया है । उनका कहना है कि मानव विज्ञान के आधार पर ककालों मे प्रोटो आस्ट्रेलायड, भूमध्यसागरीय और अल्पाइन जाति के लोग मिले है और जंगली जाति मे इन सभी का पाया जाना सम्भव नही है ।

में रख उन्हें गाड देते थे। उनका कहना है कि इसी कारण इनमें मानव अस्थिया नही मिलती। लेकिन ह्वीलर ओर पिगट के अनुसार इन पात्रों में मानव अस्थियों का न होना इस बात का द्योतक है कि इनका शवोत्सर्ग से कोई संबध नही था। पिगट का तो यह मत है कि इनमे से कुछ का प्रयोग निकास नालियों के शोष गर्त के रूप मे किया गया था क्योंकि इस तरह के कितने ही भाण्ड फर्श और सड़कों के नीचे दबे मिले है। जिस कारण इनके अंदर विभिन्न प्रकार की सामग्री कूड़ा-करकट की तरह भर गयी। मार्शल ने मोहेंजोदडो मे एक स्थान पर प्राप्त (?) जली मानव अस्थिया मिलने का उल्लेख किया है जिनके साथ आभूषण, मृद्‌भाण्ड, राख, कोयला आदि भी रखे थे जिसे वे निश्चित रूप से शवाधान की प्रथा का प्रतीक मानते है। मोहेंजोदड़ो मे कब्रिस्तान का न मिलना और अन्यत्र भी जहाँ कही कब्रिस्तान मिले है उनमे थोडे ही लोगो के शव गाडे मिलने से मार्शल की इस धारणा की पुष्टि होती है कि इस काल मे दाहकर्म ही सामान्य प्रथा थी।

हडप्पा मे 'जी' क्षेत्र मे एक साथ ही बीस सपूर्ण मानव खोपडियाँ और उनके साथ दस नीचे के जबडे, रीढ की हड्डियाँ, हाथ और पाँव की हड्डियाँ, जानवरों की हड्डियाँ और सिधु सभ्यता के बर्तन भी मिले है। इन खोपड़ियों के अध्ययन मे गुहा ने निष्कर्ष निकाला है कि इनमे कुछ खोपडियाँ पुरुषो की, 36 बच्चों की और कुछ शायद औरतो की है। केवल एक ही खोपड़ी ऐसी थी जिसका धड भी समीप ही था, दूसरी अस्थियो से कोई सबध नही था। इन अस्थियो के साथ आभूषण नही मिले। ये सतह से 1 28 मीटर से 1 77 मी० गहराई पर मिले है। स्पष्ट है कि पहले शवों को अन्यत्र खुला छोडकर विसर्जित किया गया था और फिर उनकी कुछ अस्थियाँ एकत्रित करके दफनायी गयी थी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के शव विसर्जन के सदर्भ मे कई व्यक्तियों की बलि दी गयी हो। लेकिन जैसे वत्स ने बताया है कोई भी ऐसा ककाल नही मिला जिसे अन्य ककालों से विशिष्ट माना जा सकता हो। एक खोपड़ी अन्य खोपडियों से कुछ अलग अवश्य मिली लेकिन केवल इसी कारण उसे विशिष्ट व्यक्ति की खोपडी मानना और उसके शव विसर्जन के संदर्भ मे शेष लोगों की बलि की कल्पना करना, समीचीन नही लगता। शायद ये उन लोगों की अस्थियाँ है जो किसी कत्ल के शिकार हुए हों या किसी महामारी के। कुछ भी हो इन अस्थियों को निश्चय ही विधिवत् दफनाया गया था। इनके साथ पाये गये मृद्‌भाड इसका प्रमाण है। चन्हुदड़ो के उत्खनन से एक पात्र के भीतर जला हुआ

एक कपाल पाया गया है । इसी पात्र मे एक बडा शंख, तांबे और कासे के उपकरण भी मिले है । शव-विसर्जन के सदर्भ में इनका महत्त्व संदेहास्पद है ।

हड़प्पा के शवाधान

हड़प्पा नगर की गढी के अवशेषों के बाहर, दक्षिण दिशा मे 'एच कब्रिस्तान' (जो सिंधु सभ्यता के बाद के काल का है) के समीप ही सिंधु सभ्यता के काल का एक कब्रिस्तात मिला है, उसे 'कब्रिस्तान आर-37' नाम दिया गया है । यहाँ पर पहले वत्स के निदेशन मे खोदाई हुई और फिर 1946 मे ह्वीलर के निदेशन मे । दोनो खुदाइयो मे कुल मिलाकर सत्तावन कब्रे प्रकाश मे आयी है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस कब्रिस्तान का प्रयोग एक लबी अवधि तक होता रहा था । लगभग 18 कब्रे ऐसी मिली है जिनसे यह प्रकट होता है कि उनकी खोदाई के दौरान उस काल से पूर्वकाल की कब्रें कट गई थी और 8 बाद की ऐसी कब्रे मिली है जो इन बाद की कब्रो को भी काट कर खोदी गई थी । इस तरह कुछ कब्रो का सापेक्ष काल-क्रम निर्धारित किया जा सकता है । किंतु इन सभी कब्रों के साथ जो सामग्री मिली है वह सिंधु सस्कृति की ही है, जिससे यह स्पष्ट है कि ये सभी उसी सस्कृति के काल की ही है ।

साधारण कब्र की माप 3 × 1 मीटर से 1 3 × 75 मीटर तक की है । लेकिन कब्रों की माप मे भिन्नता पाई गई है । वे 4 5 मीटर लबी, 3 मीटर चौडी और 1 मीटर गहरी भी मिली है । कब्रो मे पूरा पूरा शव गाडा गया था । कब्रे पाव की ओर की अपेक्षा सिर की ओर अधिक चौडी है, जिसका उद्देश्य अधिक बर्तनों के लिए स्थान बनाना लगता है क्योकि सिर की ओर पैर की अपेक्षा अधिक बर्तन रखे मिले है ।

साधारणत कब्रो मे शव को पूरा लबा लिटाया गया है, किन्तु कुछ मे उसे मुडा हुआ भी रखा गया है । कभी-कभी सर एक तरफ को मुडा है । शव प्राय उत्तर-दक्षिण दिशा मे लिटाये गये थे—सिर उत्तर की ओर और पैर दक्षिण की ओर । शव-दाह करते समय आज भी हिंदुओ में सिर को उत्तर की ओर रखने की प्रथा है । केवल एक उदाहरण ही ऐसा मिला है जिसमे शव के सर को दक्षिण की ओर रख कर दफनाया गया था ।

कुछ ही कब्रे ऐसी मिली है जिनमे किनारो पर कच्ची ईंटे लगाई गई है या जिनमे एक या दो रद्दों की वर्गाकार या आयताकार दीवार बनी हैं । बाकी सब सादी है । शव को गड्ढे मे लिटाने के बाद आस-पास खाली जगह मे बर्तन रख दिये जाते थे, अधिकाश कब्रो मे 15 से 20 तक मिट्टी के बर्तन मिले हैं । यो विभिन्न कब्रों मे रखी बर्तनों की सख्या मे काफी अंतर मिलता है । कम से

कम दो और अधिक से अधिक चालीस बर्तन पाये गये है। ये बर्तन 'आवास' क्षेत्र में प्राप्त बर्तनों से मिलते-जुलते है। एक उदाहरण मे शव के पाँव के पास हत्थेदार दीपक मिला है (?) जो कदाचित् उस काल के लोगो मे प्रचलित मानव की मृत्यु के उपरात भी जीवन होने की धारण के कारण मृतक के साथ किसी विशेष प्रयोजन से रखा गया होगा।

कुछ उदाहरणो में मृतक के साथ व्यक्तिगत आभूषण भी मिले है। इनमे शंख की चूडी, हार (कठमाला), पावों के कडे, सेलखड़ी और पेस्ट के मनके है। कुछ शवों के साथ आभूषण—यथा ताम्र की अगूठी और ताम्र के पतले कर्ण-वलय भी मिले है। प्रसाधन की सामग्री मे ताबे के बने दर्पण है जो बारह कब्रों मे एक एक मिले है। खूब पालिश किये जाने के कारण ये परावर्ती रहे होगे जिनमे लोग अपना प्रतिविम्ब देख सकते थे। एक कब्र मे अंजन लगाने की शलाका और एक अन्य मे शख का एक बडा चम्मच भी पाया गया है। कुछ मे किसी पक्षी की हड्डिया मिली है जो मृतक के लिए रक्खे गये भोजन सामग्री के द्योतक है। कुछ मे पत्थर की छुरिया भी मिली है। एक दीपक भी मिला। साधारणत कब्रो मे मिली वस्तुएं विशेष आकर्षक और मूल्यवान नही है, अत. ये कब्रें साधारण-जनो का ही प्रतीत होती है। कुछ ऐसे उदाहरण भी मिले है जिनमे यह प्रकट होता है कि कभी-कभी कब्रो को पाट कर उनके ऊपर मिट्टी ढेर कर दी जाती थी। हड़प्पा के एक उदाहरण मे कच्ची ईटो का चबूतरा बनाये जाने के भी प्रमाण है।

हड़प्पा के कब्रिस्तान की दो कब्रे विशेष महत्त्व की है। एक कब्र के किनारो पर चारो ओर कच्ची ईटे लगाई गई थी। (फ० XXVIII, 2) लोथल में (फ० XXIX,2) हड़प्पा संस्कृति के संदर्भ में और नाल (बलूचिस्तान) मे नाल सस्कृति के सन्दर्भ मे भी इस तरह की कब्रे पाई गई है। दूसरी कब्र मे शव को लकड़ी की पेटी मे रखकर दफनाया गया था (फ० XXVIII, 1)। काठ की होने के कारण यह पेटी अब नष्ट हो गयी है किंतु उत्खनन मे इसके चिह्न मिट्टी पर धब्बे के रूप मे स्पष्ट दिखाई दिये जिससे उसके आकार का भी ज्ञान होता है। इस पेटी की लम्बाई 2 13 मीटर, चौड़ाई 762 मीटर और ऊँचाई 457 मीटर थी। इस पेटी के ढक्कन की लकड़ी के बारे मे यह अनुमान है कि वह देवदारु की थी। देवदारु हिमालय की पहाड़ियों पर उगता है और सम्भवत. नदी-मार्ग द्वारा हड़प्पा मे लाया गया होगा। इसके अतिरिक्त शव के चारों ओर राख जैसे पाउडर की तह पायी गयी है। दफनाने से पूर्व शवों को सरकंडे से लपेटने की प्रथा सुमेर के प्रारंभिक राजवश और अक्कादी काल

मे प्रचलित थी। अक्कादीकाल तो सिंधु सभ्यता के काल का समकालीन है ही और प्रारम्भिक राजवश का अंतिम चरण सिंधु संस्कृति के प्रारंभिक चरण का समकालीन हो सकता था। अनुमानत यह पाउडर इसी तरह प्रयुक्त किये गये सरकंडों का होगा। हो सकता है कि यह शव किसी सुमेरीय का रहा हो जिसका दाह संस्कार उसके देश की परपरा के अनुसार ही हडप्पा मे किया गया हो। इस तरह यह दोनो सस्कृतियों के मध्य सम्पर्क का द्योतक लगता है। विद्वानों की धारणा है कि सम्भवत यह शव किसी नारी का है। उसके दाहिने हाथ वा है। उसके दाहिने हाथ की बीच अगुली मे एक ताम्र-अगूठी मिली है, सिर और कधे के समीप शख के तीन वलय पाये गये है। इस कब्र से प्राप्त मृद्भाण्डों की सख्या 37 है जो अधिकाशत. सिर के आस पास रखे गये है। शव-पेटी के भीतर केवल एक ही बर्तन रखा गया था।

कुछ मानव-शास्त्रियो ने इन अस्थियो का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि जिन लोगो के ये नर ककाल है वे शारीरिक गठन मे उस क्षेत्र के वर्तमान निवासियों से विशेष भिन्न नही थे। यदि यह सही है तो इस क्षेत्र मे विभिन्न जातियों के समय समय पर आक्रमणकारी अथवा किसी अन्य रूप मे आने के बावजूद हडप्पा सभ्यता के लोगो और आज के लोगो मे शारीरिक समानता काफी कौतूहलवर्धक है। कुछ भी हो, यह मानना पडेगा कि अभी तक हडप्पा सभ्यता के नर कंकालो का उनके महत्त्व के अनुरूप अध्ययन नही हुआ है, और इसलिए निष्कर्षों के सम्बध मे मत-मतातरो की काफी गुंजाइश है।

रोपड के शवाधान

रोपड मे कब्रिस्तान आवासित टीले के पश्चिमी छोर की ओर लगभग 53 मीटर की दूरी पर है। रोपड का हडप्पा-कालीन कब्रिस्तान काफी क्षतिग्रस्त दशा मे मिला है। यह भी हड़प्पा के कब्रिस्तान की भाति मुख्य आवास स्थल से कुछ दूरी पर स्थित है। यह कब्रिस्तान बाद मे वहा बसे चित्रित धूसर-भाण्ड का प्रयोग करने वाले लोगो द्वारा गड्ढे खोदने से काफी तोड फोड़ दिया गया है। इन कब्रों के अस्थिपजर खण्डित एव टूटे फूटे है। कभी तो लगभग समूचा अस्थिपंजर ही खोद कर फेक दिया गया। फलत. पुरातात्विक उत्खनन मे कुछ ही कब्रो मे अस्थिपजर मिले।

सबसे प्राचीन जो कब्रें मिली है वे अक्षत भूमि मे खोदी गयी थी। ये सभी एक ही आकार की नही है। अधिकाश अडाकार है। केवल एक कब्र मे कच्ची ईटों के एक रद्दे से कब्र को आयताकार रूप दे दिया गया है। औसतन कब्रें 2 54 × 91 × 61 मी० की है। एक कब्र मे केवल एक ही शव दफनाया

गया था। साधारणतया सिर उत्तर या पश्चिम की ओर रखकर दफनाया गया था। थोडी सी कब्रों को छोडकर सभी में मृद्भाण्ड मिले है। इन कब्रों में भी अस्थिपंजर के शीर्ष, मध्य-भाग और पैरों की ओर बर्तन पाये गये है। ये बर्तन गाडे गये शव के स्तर सतह पर ही रखे मिले है। बर्तनो की संख्या 2 से 26 तक है। मृद्भाण्ड रख दिये जाने के बाद शव को मिट्टी से ढक दिया जाता था। एक ऐसी कब्र भी मिली है जिससे यह पता चलता है कि पहले कब्र खोद कर उसमे वर्तन रख दिये गये थे फिर उसे मिट्टी से ढक दिया गया और तब फिर शव को रखकर गड्ढा पाट दिया गया था। व्यक्तिगत आभूषणों मे शंख की चूडिया, ताम्र-वलय और मनके विशेषकर पाये गये हैं। केवल दो उदाहरणों को छोडकर ये आभूषण शवों के शरीर पर नही मिले है। इन दो मे से एक में काचली मिट्टी की चूडी मृतक की बायी कलाई मे तथा दूसरे में तावे की अंगूठी दाहिने हाथ की बीच की अंगुली मे पहनी हुई मिली। हड़प्पा से मिली पेटिका के अन्दर दफनाए शव के कंकाल मे भी दाहिने हाथ की इसी (मध्यमा) अंगुली मे तावे की अगूठी मिलने का उल्लेख हम ऊपर कर चुके है। एक उदाहरण में मानव कंकाल के नीचे कुत्ते का कंकाल मिला है। या तो कुत्ता स्वामी की मृत्यु के बाद दुखी होकर मर गया और लोगों ने उसे भी उसके स्वामी के साथ गाड़ दिया, या फिर स्वामी का अतिप्रिय होने के कारण उसे भी, जीवित अवस्था मे या मार कर, स्वामी की ही कब्र मे गाड दिया गया होगा। मृतक के साथ प्रिय जनो और प्रिय पशुओ को भी दफनाने की प्रथा प्राचीन मिस्र और मेसोपोटामिया मे बहुत प्रचलित थी। कश्मीर के बुर्जाहोम नामक स्थल से भी नव-पाषाण कालीन शवोत्सर्ग मे मृतक के शव के साथ पशु के भी गाड़े जाने का उदाहरण मिलता है।

लोथल के शवाधान

लोथल के उत्खननों से हड़प्पा सस्कृति की शवोत्सग प्रणाली पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ा है। यहा कब्रिस्तान टीले के उत्तर-पश्चिमी छोर पर है। यहा पर कुल मिलाकर बीस कब्रे मिली है। चार कब्रों मे तो केवल गड्ढे भर मिले है उनमे विशेष अस्थ्यवशेष नही मिले। शेष कब्रों मे मानव कंकाल मिले, और ये मानव कंकाल वाली कब्रे दो प्रकार की है —(1) जिनमे केवल एक शव को दफनाया गया है। (2) जिनमे दो-दो शवों को एक साथ ही गाड़ा गया है।

एक शव वाली कब्रे—लोथल से प्राप्त ये सभी कब्रें तृतीय से पंचम काल की है। प्रथम-द्वितीय काल की कब्रों का अभी तक पता नही चल पाया है। पंचम काल की कब्रे आधुनिक काल मे उस क्षेत्र मे कृषि किये जाने के परिणाम-स्वरूप कुछ टूट-फूट गई है। कुछ कब्रे ऐसी भी है जो बाद की कब्रों को खोदते

स मय खण्डित हो गई थी। एक शव वाली कब्रें लगभग 3 2 × 0 75 मीटर है और 0.3 से 0 5 मीटर गहरी खुदी है। दो शवो वाली कब्रें कुछ अधिक चौडी हैं, लगभग एक मीटर उनकी चौड़ाई है। कुछ एक शव वाली कब्रे उत्तर दिशा में दक्षिण से अधिक चौडी है। लोथल की इन कब्रो मे भी अधिकतर शवों को, सिर उत्तर और पैर दक्षिण की ओर रखकर ही पीठ के बल लिटाया गया है, केवल एक उदाहरण मे ही शव का सिर पूर्व की ओर और उसके पैर पश्चिम की ओर है। हाथ शरीर मे चिपके हैं और शरीर को करवट लिटाया गया था। इन एक-एक शव वाले सभी कब्रो मे मृद्भाण्ड मिलते है जो कि आवास के क्षेत्र मे प्राप्त मिट्टी के बर्तनों के समान ही है। एक कब्र मे ताबे की अगूठी और शख के मनके भी मिले। दूसरी मे बकरी के सीग और हड्डिया मिली। सम्भवत इस बकरी का मृतक के लिए बलिदान किया गया था। एक कब्र की सतह पर कच्ची ईंटे और कुछ की सतह पर ककड मिले। एक कब्र मे मानव अस्थियों के साथ ही बकरे की अस्थिया मिली इससे लगता है कि मृतक के लिए बकरी का बलिदान किया गया था।[1]

दो शवो वाली कब्रे—जहा लोथल की एक-एक शव वाली कब्रे तृतीय मे पंचम काल तक की है, वहा दो शवो वाली तीनो कब्रे तृतीय काल की हैं। इनमे से एक कब्र के किनारे-किनारे कच्ची ईटो की चिनाई की गई है। लेकिन इसमे न लकडी के ताबूत और न आच्छादन होने के ही साक्ष्य मिलते है (तुलना कीजिए हडप्पा के उदाहरण मे)। एक कब्र मे तो दोनो ककाल अलग-अलग रखकर दफनाये गये थे। शेष दो उदाहरणो मे शवो को एक दूसरे मे लिपटा हुआ गाड़ा गया है (फ० XXIX, 1, 2)। इन दोनों उदाहरणो मे शवों के लिग के बारे मे मतभेद है। कुछ का मत है कि दोनों ही पुरुषो के शव है, जबकि कुछ का कहना है कि एक स्त्री और एक पुरुष का है।[2] यदि यह दूसरा वाला मत सही है तो यह पति के मरने के पश्चात् पत्नी द्वारा अपने प्राण त्याग करने की प्रथा का द्योतक हो सकता है। राव ने इसे 'सती' प्रथा का द्योतक होना सुझाया है किंतु, जैसे साकलिया ने कहा है, सती एक खास प्रकार की रीति का द्योतक है,

1 श्री राव ने इस संदर्भ मे ऋग्वेद के मत्र का उद्धरण दिया है जिसमे मृतक के लिए बकरे की बलि का उल्लेख है।

2. नृतत्व शास्त्री (Physical Anthropologist) प्रोफेसर सर्कार का कहना है कि एक शवाधान मे भी किसी शव की स्त्री के रूप मे पहिचान करना कठिन है, लेकिन इसी शास्त्र के अन्य दो विद्वानों वी० के० चटर्जी और आर० डी० कुमार ने दो दो शवों वाली कब्रो मे एक-एक ककाल को स्त्री का माना है।

जिसमें पत्नी अपने पति की चिता में स्वेच्छा से प्रविष्ट होकर प्राण त्यागती है। सती प्रथा मे पति के साथ गाड़े जाने का प्रश्न ही नही उठता। साथ ही सती की प्रथा वैदिक काल मे प्रचलित नही थी और अपेक्षाकृत बाद के काल में इसका चलन हुआ। प्राचीन मेसोपोटामिया और मिस्र मे मृतक के साथ उसकी पत्नी और अन्य लोगों के गाडे जाने के अनेक उदाहरण हैं। हो सकता है कि लोथल मे भी इन दो शवो वाली कब्रों के सदर्भ में इसी तरह की प्रथा का निर्वाह किया गया हो। इन दो शवों वाली कब्रो मे कोई सामान—मिट्टी के बर्तन, गहने इत्यादि नही मिला। कब्रों मे सामान का न होना या तो एक शव वाली कब्रों से भिन्न परम्परा के द्योतक है या फिर दो शव दफनाये जाने के कारण जगह का अभाव इसका कारण हो सकता है। युगल शवाधान के कुछ अन्य उदाहरण ज्ञात हैं। सिंध के दम्ब बूधी मे भी दो शवो को साथ-साथ गाड़ा पाया गया, मेसोपोटामिया के किश नामक स्थल में भी युगल शवाधान के साक्ष्य मिले है। दक्षिणी भारत मे नागार्जुनीकोण्ड मे भी इस तरह से दो शवों को साथ गाडा गया था। लेकिन यह निष्कर्ष निकालना कठिन है कि उपर्युक्त सभी उदाहरण एक ही परंपरा के द्योतक है।

लोथल मे प्राप्त अधिकाश शवो की खोपडिया मध्यमशिरस्क है जो कि आधुनिक काल मे गुजरात के मनुष्यों मे सामान्य है।

कालीबगा

कालीबंगा मे कब्रिस्तान गढी वाले टीले के पश्चिम-दक्षिण-पश्चिम मे लगभग 300 मीटर की दूरी पर स्थित है। घग्गर नदी में बाढ के समय उसका पानी कब्रिस्तान के क्षेत्र मे भी आ जाता है जिससे कुछ कब्रे क्षतिग्रस्त हो गई।

कब्रे अलग-अलग गहराई पर मिली है और इस से यह प्रमाणित होता है कि कब्रिस्तान का प्रयोग एक लम्बी अवधि तक चलता रहा और ये कब्रे कई प्रकालों की है। लेकिन इन कब्रो मे जो मृद्भाण्ड एव अन्य सामग्री मिली है उससे स्पष्ट है कि ये सभी हडप्पा काल की है। दो ऐसे भी उदाहरण मिले है जिनमे नई कब्रे खोदने के दौरान पहले की कब्रे कट गई है। कब्रिस्तान मे तीन प्रकार के शव-विसर्जन मिले है —

(1) आयताकार या अण्डाकार गड्ढे जिनमे अस्थिपजर एवं मृद्भाण्ड इत्यादि सामग्री है।

(2) आयताकार गड्ढे जिनमें सामग्री तो है किन्तु अस्थि अवशेष नही है।

(3) गोल-अण्डाकार (round oval) गड्ढे जिनमे केवल सामग्री है, अस्थि अवशेष नहीं।

कुल मिलाकर 37 शव-विसर्जन के उदाहरण मिले है 15 प्रथम प्रकार के,

5 द्वितीय प्रकार के और 17 तृतीय प्रकार के। उपर्युक्त सभी प्रकार के शव-विसर्जन एक ही काल के हैं, किंतु कब्रिस्तान मे उनके क्षेत्र लगभग अलग-अलग है। लगता है कि किन्ही कारणो से जान-बूझकर ही इन तीनों प्रकारों के लिए अलग-अलग क्षेत्र निर्धारित किए गये थे। यही नही पहले और तीसरे प्रकार में 6 से 7 शव-विसर्जन के अलग-अलग समूह हैं। इस तरह के भेद का निश्चित कारण तो ढूढना कठिन है किंतु, यह किसी परिवार विशेष की विशिष्टता, या किसी सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनैतिक वर्ग विशेष का द्योतक हो सकता है।

पूर्ण शव-विसर्जन मे शव को पीठ के बल लिटा कर सिर उत्तर की ओर रखा गया था। मृतक के साथ मिट्टी के बर्तन एवं अन्य वस्तुएं भी रखी गई थी जो सिर की ओर अधिक और पैरों की ओर कम मिली है। एक उदाहरण मे शव को पेट के बल लिटाया गया था और सिर दक्षिण की ओर रखा गया था जो साधारण से भिन्न परम्परा का द्योतक है। इस शव के हाथ और पाव मिले हुए है। शव गड्ढे के उत्तरी आधे भाग मे रखा गया था। एक आयताकार कब्र मे गड्ढे के चारो ओर कच्ची ईंटो की चिनाई की गई थी और ईंटो के ऊपर अदर की ओर पलस्तर लगा था। इस शव के साथ 72 बर्तन रखे थे, 37 उत्तर की ओर और 35 बीच के भाग मे। इसमे शव का सिर उत्तर की ओर रख कर उसे ऊर्ध्वमुख लिटाया गया था। बर्तनो की इतनी अधिक सख्या उस व्यक्ति के महत्त्व का प्रतीक है, यह कहना कठिन है। एक अन्य कब्र मे दफनाये गये शव के परीक्षण से उसके शारीरिक दोष का पता चला। उसके बाएं हाथ की कलाई की हड्डिया दाएं हाथ की हड्डियों की अपेक्षा छोटी थी। उसके बाएं कान के समीप एक सीप का कुडल मिला। एक अन्य कब्र मे शव का केवल ऊर्ध्व भाग ही प्राप्त हुआ। नीचे का भाग शायद बाद मे गड्ढे खोदने के दौरान खुद गया। इस कब्र मे बर्तन एवं मनके भी मिले-तीन मनके सोने के, तीन जैस्पर के, तीन गोमेद के और दो-दो कार्नीलियन और सेलखड़ी के। एक बच्चे की खोपडी मे 6 गोल छेद है जो शल्य चिकित्सा के उदाहरण लगते है (देखिए परिशिष्ट) एक अस्थिपजर पर जलाये जाने के निशान है। चूकि यह जले शव का एक मात्र उदाहरण है, अत शव का जलना आकस्मिक भी हो सकता है। एक कब्र मे तावे का दर्पण भी मिला है। शंख, सेलखड़ी और कीमती पत्थरों के आभूषण अनेक कब्रो में मिले है।

दूसरा प्रकार

आकार-प्राकार मे ये गड्ढे प्रथम प्रकार के समान है, किंतु उनमे अस्थि अवशेष नही मिले है। इन गड्ढो मे मिट्टी के बर्तन ही मुख्य रूप मे कब्र के तौरपर मिले है। केवल एक ही उदाहरण मे सीप की चूड़ियों के कुछ टुकड़े,

सेलखड़ी के अनेक मनके और एक कार्नीलियन का मनका मिला। इन गड्ढों में बालू और मिट्टी की एक के बाद दूसरी कई एकान्तरिक परतें मिली है। अनुमानत. गड्ढे मे बर्तनों को रखने के बाद गड्ढा या तो भरा नही गया या कुछ अंश तक ही भरा गया और वर्षा मे भी खुला रहा। बाद में शेष गड्ढा कच्ची ईंटों के टुकडो से भर दिया गया। मानव अस्थियो के अभाव में ऐसा सुझाया गया है कि या तो ये मृतकों के मात्र प्रतीक शव विसर्जन (Symbolic burial) थे, या ये उनकी यादगार के लिए बनाये गये थे जो अन्यत्र मरे और जिनका शव दफनाने के लिए नही लाया जा सका था। यह भी हो सकता है कि पहले मृतक के शव को जलाकर राख सचय किया गया हो फिर राख भी नदी में विर्सजित कर दी गयी हो।

तीसरा प्रकार

इस प्रकार के गड्ढे पहले और दूसरे प्रकार की अपेक्षा काफी उथले थे। ये गड्ढे मुश्किल मे एक मीटर गहरे थे और अधिकाश तो इससे भी काफी कम गहरे थे। उनका आकार भी अपेक्षीकृत छोटा था। इनमे से कुछ गड्ढे अण्डाकार थे।

गड्ढे मे साधारणत. बीच मे या केन्द्र से थोडा उत्तर या पूर्व की ओर एक बडा बर्तन और उसके आस पास 2 मे लेकर 29 तक बर्तन रखे मिले है। केवल कुछ ही गड्ढे ऐसे है जिनमे बर्तनों के साथ मनके, सीप की चूडिया और सेलखड़ी की बनी वस्तुए भी मिली है। एक में एक बर्तन की ग्रीवा में सेलखडी के छोटे मनकों की तीन लड़िया पडी थी। ये भी प्रतीक शव-विसर्जन के उदाहरण हो सकते है। शव-विसर्जन का यह प्रकार सिंधु सभ्यता के संदर्भ में प्रथम बार प्राप्त हुआ है।

शव-विसर्जन के उपर्युक्त प्रकारों का सापेक्ष कालक्रम निर्धारण कठिन है। एक सोपानित शवाधान का उदाहरण ऐसा मिला है जिसमें दूसरे प्रकार का शव-विसर्जन काल-क्रम की दृष्टि से पहले का है, और पहला प्रकार बाद का। इसी तरह एक उदाहरण मे दूसरे प्रकार के शवाधान के गर्त को तीसरे प्रकार के शवाधान के गर्त द्वारा काटा गया है। किंतु इन एक-एक उदाहरणों से ही हम इन तीनो प्रकारो की सापेक्ष तिथि के सबध मे कोई सामान्य निष्कर्ष नही निकाल सकते।

स्वराज्य प्रकाश गुप्त के अनुसार आवास की दृष्टि से कालीबंगा के लोगों को तीन वर्गों मे रखा जा सकता है:—

1. गढी मे रहने वाले,
2. गढी के पार्श्व में रहने वाले, और
3. निम्न नगर में रहने वाले।

उनका कहना है कि शायद ये समाज के तीन भिन्न वर्गों के द्योतक हो सकते हैं, और हो सकता है कि जिन तीन प्रकार के शव-विसर्जनों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, इन्ही तीन वर्गो से अलग-अलग रूप से संबंधित हों।

चण्डीगढ़

चण्डीगढ नगर के क्षेत्र में ही फरवरी 1970 मे एक भवन की नीव खोदते समय हडप्पा संस्कृति के अवशेष मिले। चण्डीगढ विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग द्वारा की गई खोदाई मे वहा पर पाच शव-ककाल खोदे गये। केवल एक ही शव को मुड़ा हुआ रखकर दफनाया गया था बाकी सभी पूरे के पूरे लबाई मे गाडे गये थे। एक कब्र मे शव का सिर दक्षिण की ओर था और शेष सभी मे उत्तर की ओर। कब्रों मे सादे और चित्रित मृद्भाण्ड भी रखे मिले हैं।

रण्डल हडवा

मध्य सौराष्ट्र मे स्थित रण्डल हडवा मे सर्वेक्षण करते समय एक अण्डाकार गड्ढे में अन्य वस्तुओं के साथ एक वयस्क का अस्थिपजर मिला है जो लम्बा लिटाया गया था और जिसका सिर एक तराशे तत्थर के ऊपर रखा था।

तरखानेवाला डेरा

राजस्थान के गंगानगर जिले मे तरखाने वाला डेरा नामक स्थल पर परीक्षण गर्त लगाते समय श्री अमलानन्द घोष को अन्य वस्तुओं के साथ एक चबूतरा मिला जिस पर शवदाह किये जाने के साक्ष्य मिले। इस चबूतरे पर कुछ कच्ची ईंटे चपटी बिछी थी। उस पर कम मे कम पाच बार शव दाह दिये जाने के प्रमाण थे। प्रत्येक शव-दाह के बाद राख और जली अस्थियों की सतह के ऊपर मिट्टी या कच्ची ईट की तह बिछाई जाती थी और उस पर दूसरा शव दाह किया जाता रहा। यह सिंधु सभ्यता के अधिकाश स्थलो मे कब्रिस्तान मे शव गाडने के साक्ष्यो से भिन्न प्रकार के शव-विसर्जन का साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

सुरकोटडा

इस स्थल पर कब्रिस्तान मे सीमित क्षेत्र मे ही उत्खनन किया गया। इसमे केवल चार कलश-शवाधान के उदाहरण मिले। वे लोग अण्डाकार गड्ढा खोदते थे और उसमे कुछ बर्तन रखते थे, इन बर्तनो मे कुछ मे हड्डिया मिली, कुछ मे नही। बर्तनो को मिट्टी से भर दिया गया और उसे कंकड़-पत्थर (rubble) से आच्छादित कर दिया गया। पश्चिम की ओर एक शिला को लबाकार रखा गया दूसरे प्रकार के शव विसर्जन मे बर्तनों से युक्त अण्डाकार गर्त को एक

विशाल शिलाखण्ड से ढक देते थे। यह विधि सिंधु सभ्यता के शव-विसर्जन की अबतक ज्ञात विधियों से भिन्न होने के कारण विशिष्ट है।

सुत्कगेंडोर

सुत्कगेंडोर मे रक्षा प्राचीर के उत्तरी क्षेत्र मे एक बडा मिट्टी का बर्तन मिला जिसमे राख थी। यह राख मृतक के शवदाह के बाद रखी भस्म हो सकती है। जली हुई अस्थ्यवशेषो से युक्त तीन बर्तन पूर्वी रक्षा-प्राचीर के पास भी पाये गये। इनके साथ ही एक सीप या शंख की चूडी, एक गोल चपटा आभूषण और कुछ छोटे-छोटे मृद्भाण्ड मिले। विशिष्ट हड्प्पा संस्कृति की साधार तश्तरी मिलने के कारण इनका हडप्पा सस्कृति के काल का होना निर्विवाद लगता है।

सिधु सभ्यता मे मेसोपोटामिया और मिस्र के समान भव्य कब्रे नही मिली है, और न ही सिधु सभ्यता के लोगो ने प्राचीन मिस्र की तरह शव को मसाले मे रखकर उसे सुरक्षित ही किया है। कब्रो के साथ जो सामग्री मिली है वह साधारण कोटि की है और मिस्र एवं मेसोपोटामिया की कुछ स्वर्ण, कीमती धातुए और रत्नो से युक्त सम्पन्न कब्रों की अपेक्षा अत्यन्त साधारण है। या तो सिधु सभ्यता मे कब्र-सामग्री के रूप मे बहुमूल्य वस्तुओं को रखने की प्रथा ही नही थी या जो कब्रे हमे मिली है वे साधारण जनो की है और शासको और अन्य सम्पन्न एव महत्त्वपूर्ण शासको की कब्रे किसी ऐसे स्थल मे है जिस पर अभी पुरातत्व की कुदाली नही चली। यों उस समय की अनुमानित काफी जनसख्या और लम्बी अवधि तक सिधु सस्कृति के बने रहने पर भी अभी तक ज्ञात कब्रों की सख्या बहुत कम है। और यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि शवाधान के अतिरिक्त शव-विसर्जन की अन्य विधिया भी प्रचलित थी।

(आ) जाति निर्धारण

मोहेंजोदडो से प्राप्त कंकालो की शारीरिक रचना के विचार से यहा के कुछ ककालों के अध्ययन से जाति सबधी निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले गये है। प्रारंभिक रिपोर्टों के अनुसार निम्न चार समूहो मे वर्गीकृत किया गया है —

1. आद्य-आस्ट्रेलायड—इसके तीन उदाहरण मिले।
2. भूमध्य-सागरीय—इसके छह उदाहरण मिले।
3. मगोलीय—इसका एक ही उदाहरण मिला।
4. अल्पाइन—इसका एक निश्चित और तीन संभावित उदाहरण मिले।

आद्य-आस्ट्रेलायड जाति के लोग नाटे होते है उनकी खोपडिया संकरी तथा लम्बी नाक कुछ चौडी तथा चपटी और ठुड्डी बाहर की ओर निकली होती है। इनका रंग काला तथा बाल घुंघराले होते है। कुछ विद्वानों का मत है कि ये

लोग आदिवासी थे। ऐसे सिरों वाले कुछ लोग आजकल लंका और दक्षिणी भारत में है। लंका के वेद्दा जाति के लोग इसी वर्ग के है। दूसरे भूमध्य-सागरीय प्रकार के उदाहरणों मे खोपड़िया कुछ लम्बी हैं, नाक छोटी लेकिन नुकीली है। इस तरह के कपाल बलूचिस्तान मे नाल (एक) और अनु (दो) मिले हैं। ये इस सभ्यता के मूल निर्माताओं मे से थे। मंगोलीय जाति सिंध प्रदेश की मूल निवासी नही थी। पिगट के अनुसार मगोलीय जाति का जो एक मात्र उदाहरण मिला है वह शायद कोई सैनिक था जो पर्वतीय क्षेत्र से आया था। मैके के अनुसार यह जाति सिंध प्रदेश मे ईरान के पठार से आयी। चौथे प्रकार के सिर अल्पाइन जाति के है। इनके केवल एक निश्चित तथा तीन सभावित उदाहरण है। पिगट ने उल्लेख किया है कि ईरान के सियाल्क में चतुर्थ सहस्राब्दी ई० पू० के संदर्भ मे अल्पाइन प्रकार के कंकाल मिले है।

उपरोक्त ककालों के अध्ययन से जो निष्कर्ष सेवेल और गुहा ने निकाले है वे सहज बोधगम्य है। सिधु नदी के किनारे पर बसे होने के कारण मोहेंजोदड़ो नगर थलमार्ग द्वारा उत्तर-पश्चिमी एशिया से संबद्ध था। उस अतीत काल मे यह नगर इन प्रदेशो की जातियो के लोगो का सगम स्थल रहा होगा। अत इस स्थान पर विभिन्न जातियो के शवो का पाया जाना कोई आश्चर्य की बात नही है।

कपालो के अध्ययन मे प्राप्त उक्त निष्कर्ष अब तक प्राप्त मूर्तियो के चेहरो से कुछ हद तक अनुमोदित लगते है। कास्य नर्तकी के नाक-नक्श आद्य-आस्ट्रेलायड लगते है। कुछ सिर चौडे और कुछ लम्बे लगते है। किंतु मूर्तिकार मानव शास्त्र के विशेषज्ञो के लिए मूर्ति निर्माण नही कर रहे थे। अत तत्कालीन मानव जातियो के ठीक-ठीक जानकारी के लिए इन्हे विशेष महत्त्व नही दिया जा सकता।

हाल ने द्रविड तथा सुमेरवासियो को एक ही जाति का स्वीकार किया है। उनके मतानुसार वे पहले दक्षिण ही नही पजाब, सिध और बलूचिस्तान मे भी फैले थे। ब्राहुई भाषा आज भी बलूचिस्तान के कुछ भाग मे बोली जाती है। किन्तु सुमेरी लोगो की शारीरिक रचना के विषय में विद्वानों मे मतभेद है और प्राचीन द्रविड भाषा के स्वरूप के विषय मे भी। यदि आदि द्रविडो को पश्चिम से आया माना जाय तो सभावना यही है कि वह आक्राता के रूप मे भारत मे प्रविष्ट हुए। भूमध्य-सागरीय लोगो के कंकाल किश, अनु, नाल और मोहेंजोदड़ो मे पाये गये है। वे अन्तत आद्य-आस्ट्रेलायड आदि जातियों से वैवाहिक संबंध स्थापित कर परिवर्तित हो गये। एस० के० चटर्जी के मतानुसार ब्राहुई मे द्रविड़ भाषा का एक लघु क्षेत्र होना इस बात का द्योतक है कि पहले द्रविड दक्षिण से लेकर उत्तर तक फैले थे। लेकिन बुद्ध प्रकाश का मत है कि कुषाण-काल मे

किही परिस्थितियों के कारण दक्षिण से द्रविड़-भाषी उत्तर की ओर गये और इन्ही की संतति ब्राहुई-भाषी लोग हैं।

हड़प्पा के मानव-अस्थि अवशेषों का एन० के० बोस और उनके सहयोगियों ने विस्तृत विवरण दिया है। आर-37 से 36 खोपडी और जबडे अच्छी दशा में मिले। उनमें पन्द्रह वयस्क पुरुष, 19 वयस्क नारी और दो छोटी आयु के थे। इन्हें दो वर्गों मे बाँटा गया है। पहले वर्ग (अ) में 21 वयस्क खोपड़ी और दूसरे (अ 1) में 10 वयस्क खोपडी है। चार की ठीक पहचान नही हो पाई है और एक असामान्य है। बाकी सब लम्बे सिरवाले है। 'अ 1' वर्ग की खोपड़ियां 'अ' वर्ग की खोपड़ियों से कुछ अधिक लम्बी है। 'अ' वर्ग की खोपड़ियों की तुलना उस जाति प्रकार से की गई है जिसे प्रोटो-आस्ट्रेलायड, काकेशिक या यूरेफ्रिकन नाम दिया जाता है। 'अ 1' वर्ग जो कुछ हल्की बनावट का है, उस प्रकार मे मिलता-जुलता है जिसे भूमध्यसागरीय या इण्डोयूरोपियन या कैस्पियन नाम दिया गया है। 'अ' वर्ग के लोगों की औसत ऊँचाई 1 मीटर 70-72·5 सेमी थी जबकि 'अ 1' की ऊँचाई 5-7·5 सेमी कम थी। इन वयस्कों की आयु 20 और 40 वर्ष के बीच थी।

गुजरात मे लोथल मे प्राप्त कपालों के अध्ययन से चटर्जी तथा कुमार ने कुछ निष्कर्ष निकाल कर तीन प्रजातियों मे परिगणन किया है —

1 आद्य-नार्दिक—(बड़े, खुरदरे और लम्बे सिरवाले),

2 आद्य-भूमध्यसागरीय (मध्य आकार के सिरवाले),

3 अल्पाइन आर्मेनियन (चौडे सिरवाले)।

सरकार ने लोथल के ककालो को दो मुख्य वर्गों में बाँटा है—दीर्घशिरस्क और लघुशिरस्क। लोथल के दीर्घशिरस्क और लघुशिरस्क की तुलना सियाल्क से प्राप्त क्रमश इसी प्रकार के दो प्रकार के खोपड़ियों से की है। कुछ विद्वानों ने दीर्घशिरस्क को आर्य तथा लघुशिरस्को को आर्मेनियन बताया है। लोथल मे एक कंकाल को आस्ट्रेलायड समूह का पहचाना गया है। ककालो के अध्ययन से प्राप्त साक्ष्यो का राव ने इस प्रकार अर्थ निकाला है। सिंधु घाटी में अति-लम्बे सिरवाल आदिवासी का साक्ष्य मिलता है, जिसकी वेद्दा या आस्ट्रेलायड प्रजाति समूह से पहिचान की गयी है। उन्नत सिंधु-सभ्यता प्रकाल मे, जिसका प्रतिनिधित्व हड़प्पा, मोहेजोदड़ो और चन्हुदडो करते है, इंडो-कैस्पियन की प्रमुखता रही। सिंधु-सभ्यता के मध्य प्रकाल में हड़प्पा के 'जी' क्षेत्र मे मध्यम आकार खोपड़ीवाले अल्पाइन प्रकार के कुछ लोग आकर बसे जिनकी सख्या आगे चल कर सबसे अधिक हो गयी। इनके कंकाल कब्रिस्तान 'एच' के प्रथम स्तर में पाये गये है। हड़प्पा और मोहेजोदड़ो मे कुछ संख्या छोटे सिरवालों की थी। लोथल

में सभ्यता के उन्नत युग (प्रकाल 'ए') से 4 दीर्घशिरस्क तथा 2 लघुशिरस्क लोगों के उदाहरण मिले हैं। लघुशिरस्क का उदाहरण अन्तिम प्रकाल 'बी' से भी मिला है। प्रकाल 'ए' से आस्ट्रेलायड समूह का एक कंकाल भी मिला। स्पष्ट है कि लोथल में उन्नत सिंधु सभ्यता युग में वहाँ की जनसंख्या मे दीर्घशिरस्क और लघुशिरस्क दोनों सम्मिलित थे। किंतु अधिक संख्या दीर्घशिरस्कों की रही। इनकी पहिचान सियाल्क (ग्रुप-II) से की गयी है। कुछ विद्वान सियाल्क II के कंकालों को आर्यों से जोड़ते हैं, और इसलिए राव का मत है कि 'ए' काल मे लोथल की जनसख्या मे आर्यों की बहुलता रही। किंतु इन अल्प साक्ष्यों से निश्चित निष्कर्ष निकालना कठिन है।

इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि बाद के काल की तरह ही सिंधु सभ्यता के काल मे मिश्रित जनसख्या थी। हाल ही में हड़प्पा के नरकंकालों के पुनर्परीक्षण के पश्चात् कुछ मानवशास्त्रियों ने यह मत व्यक्त किया है कि हड़प्पा और लोथल में सिंधु सभ्यता काल के लोग इस क्षेत्र मे बसे आज के इन वासियों से बहुत मिलते-जुलते थे। इन निष्कर्षों का अर्थ होगा कि इस क्षेत्र मे जो अनेकश. विदेशी आक्रमण हुए उनका यद्यपि भारतीय संस्कृति के विकास मे महत्व-पूर्ण हाथ था तथापि बाहरी आक्रमणकारियो की सख्या इतनी कम थी कि भारतीयों के साथ उनके वैवाहिक संबध स्थापित होने पर भी मूल जातियो के आधार-भूत गुणो मे आज भी अधिक परिवर्तन नही हुआ।

●

अध्याय 17

तिथि

किसी संस्कृति की उपलब्धियों के सही मूल्यांकन के लिए उसका तिथि-निर्धारण आवश्यक है। सिंधु सभ्यता की तिथि के बारे में पुराविदों में मतभेद है। सिंधु सभ्यता के लोगों के जो लघु लेख (देखिए पृष्ठ 197) मिले हैं, उन्हें अब तक सर्वमान्य रूप से पढ़ा नहीं जा सका है। इसलिए तिथि-निर्धारण के लिए साहित्यिक साक्ष्य का प्रश्न ही नहीं उठता। जब मार्शल ने हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो का उत्खनन कराया था उस समय भारतीय पुरातत्त्व में काल-निर्धारण के लिए उत्खात सामग्री का अध्ययन मुख्यतः गहराई के आधार पर ही किया जाता था, अर्थात् जितनी गहराई पर वस्तु मिले उसे उतना ही प्राचीन माना जाता था। किन्तु यह विधि दोषमुक्त नहीं है। इस पर आधारित निष्कर्ष संदिग्ध होते हैं। अब उत्खात सांस्कृतिक अवशेषों का तिथि-निर्धारण मुख्यतः स्तरीकरण के आधार पर होता है। अनेकशः किसी संस्कृति के संदर्भ में प्राप्त सामग्री का किसी अन्य संस्कृति के संदर्भ में प्राप्त हुई उससे मिलती-जुलती सामग्री से तुलना करना भी तिथि-निर्धारण में सहायक होता है। अन्य देशों, विशेषतः मेसोपोटामिया, ईरान, बहरीन द्वीप आदि से सिंधु सभ्यता के संपर्क थे। सिंधु सभ्यता के स्थलों में निर्मित वस्तुएं वहाँ पर मिली हैं। भाग्यवश मेसोपोटामिया की प्राचीन संस्कृतियों द्वारा प्रयुक्त लिपि का पढ़ना संभव हो गया है जिससे उनके संदर्भ में महत्वपूर्ण अभिलेखीय सामग्री उपलब्ध हुई है; उनके साक्ष्य के उपयोग से वहाँ की संस्कृतियों की लगभग निश्चित तिथियाँ निर्धारित की जा चुकी हैं। इस संदर्भ में अक्कादी सम्राट् सारगन का राज्यकाल (2730 ई० पू०-2284 ई० पू०) की तिथि महत्वपूर्ण काल-मापी आधार सिद्ध हुआ है। हाल ही से खोदाइयों में प्राप्त जैविक अवशेष यथा कोयला, हड्डी या लकड़ी, का रेडियो कार्बन या कार्बन-14 विधि से परीक्षण करके तिथि निर्धारित की जाने लगी है। इस विधि से अब तक हड़प्पा-संस्कृति के कई स्थलों से प्राप्त हुई इस तरह की सामग्री की तिथि निर्धारित की जा चुकी है।

यह सर्व-विदित है कि बेबीलोनी और सुमेरी सभ्यताओं की तरह हड़प्पा-संस्कृति भी ताम्राश्म संस्कृति थी। इसका तात्पर्य यह है कि उस समय अश्म-युगीन परंपरा के साथ-साथ कुछ धातुओं, यथा सोना, चाँदी, ताँबा और काँसा, का प्रचलन आरंभ हो गया था। किन्तु लोहे के प्रयोग से वे अपरिचित थे। अतः

सिंधु संस्कृति का विकास पाषाण काल के अंतिम चरण के पश्चात् तथा लौह युग के आविर्भाव से पूर्व हुआ था । जहा तक भारत मे पाषाण-युग के अंतिम चरण के काल निर्धारण का प्रश्न है, भारत जैसे विशाल एवं अत्यधिक भौगोलिक भिन्नता लिए देश में पाषाण-युग के अन्त का काल विभिन्न क्षेत्रों में एक ही न होकर अलग-अलग रहा, और किसी क्षेत्र विशेष के लिए भी पाषाण-युग के अन्त का कोई निश्चित काल निर्धारण करना अत्यन्त कठिन है । भारत मे लौह युग का प्रारभ कब हुआ, यह भी विवादास्पद विषय है । वैसे अनेक प्राचीन स्थलों पर पिछले कुछ वर्षों मे किये गये उत्खननों से जो साक्ष्य प्राप्त हुए हैं उनके आधार पर भारत मे विभिन्न उपकरणो के निर्माण के लिए लोहे के सर्वप्रथम प्रयोग की तिथि 1000 ई० पू० के आस-पास निर्धारित करना समीचीन लगता है । किन्तु यह तिथि भी भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लिए सही नही हो सकती, क्योंकि कुछ क्षेत्रो मे कई शताब्दियो के बाद ही लौह का प्रयोग प्रारंभ हुआ । सिंधु सभ्यता के अबतक कई स्थानो—हड़प्पा, मोहेंजोदडो, चन्हुदडो, रोपड, लोथल, रंगपुर, कालीबगा और सुरकोटडा इत्यादि मे खोदाई हो चुकी है । इन सभी स्थानों पर सिंधु सभ्यता का कालावधि एकदम एक ही हो ऐसा असभव है । सिंधु सभ्यता का समग्र प्रवर्तन-काल जानने के लिए इन विभिन्न स्थलो मे इस संस्कृति के प्रारंभ और अत की जानकारी आवश्यक है ।

जहा तक स्तर-विन्यास का प्रश्न है यह भी सभ्यता के तिथि-निर्धारण मे विशेष सहायक नही । मार्शल के निदेशन मे मोहेंजोदडो में किये गये उत्खननो में परतों के आधार पर उत्खनन नही हुए थे लेकिन उन्होंने वहा के अवशेषों को प्रारभिक, मध्य और अंतिम तीन प्रकालों मे नाटा है । मोहेंजोदडो के प्रारभिक चरण मे एक और मध्य और अंतिम प्रकाल मे तीन मुख्य निर्माण-चरणों का उल्लेख किया गया है । हड़प्पा में 6 निर्माण-चरण मिले जिनमे अतिम 'कब्रिस्तान एच' सस्कृति का है । कोटदीजी मे सिंधु सभ्यता के 6 निर्माण-चरण और कालीबगा मे इसी सभ्यता के 9 निर्माण-चरण मिले । लगभग सभी स्थलों में अतिम चरण मे ह्रास के चिह्न मिलने है । हड़प्पा मे सिंधु सभ्यता और 'कब्रिस्तान एच' सस्कृति के मध्य व्यवधान है ।[1] चन्हुदडो मे सिंधु सभ्यता और बाद की (झूकर) सस्कृति के बीच निरंतरता नही । रोपड और आलमगीरपुर में सिंधु सभ्यता के अत के कुछ काल पश्चात् चित्रित धूसरभाण्ड संस्कृति के लोग उन

1. ह्वीलर व्यवधान के पक्ष मे दिये तर्कों के औचित्य को स्वीकार करते हुए भी सिंधु सभ्यता और 'कब्रिस्तान एच' की सस्कृतियों के एक दूसरे के संपर्क मे आने की संभावना को नकारते नही ।

स्थानों पर बसे। किंतु इन परवर्ती संस्कृतियों की निश्चित तिथि भी तो ज्ञात नही। अनुमानत 'कब्रिस्तान एच' और 'झूकर' संस्कृतिया लगभग द्वितीय सहस्राब्दि के मध्य की है जबकि चित्रित धूसरभाण्ड का प्रारभ 1000 ई० पू० के लगभग या उसके कुछ बाद हुआ लगता है। फिर स्तर-प्रमाण इतना तो स्पष्ट करता है कि सिंधु सभ्यता इन संस्कृतियों 'कब्रिस्तान एच', 'झूकर' और 'चित्रित धूसर-भाण्ड' से पहले की है; किंतु कितनी पहले की है यह अब तक अनुमान का विषय बना है।

मार्शल द्वारा किये उत्खनन के विवरण के अनुसार मोहेंजोदडो मे सात बार एक के बाद दूसरी नगरी बसी और उजडी। जहा तक खोदा जा सका है संस्कृति के अवशेष है जो अब जल-स्तर ऊचा होने से खोदे नही जा सके। यह अनुमान नही लगाया जा सका कि अवशेषों की कितनी मोटी तह अभी जलमग्न है। यों टीले मे अवशेषो का बहुत गहराई तक मिलना और अनेक बार नगर का निर्माण, पुनर्निर्माण जिस तरह मोहेंजोदडो मे हुआ है उसका ट्राय, एथेन्स आदि दूसरे प्राचीन नगरो के साक्ष्य से तुलना करने पर ऐसा सोचना स्वाभाविक है कि यहा पर सस्कृति दीर्घकाल तक रही। किंतु मार्शल ने मत व्यक्त किया कि निरंतर बाढ के प्रकोप के कारण निर्माण और पुनर्निर्माण काफी जल्दी-जल्दी हुआ होगा और सस्कृति मे प्रारभ से लेकर अन्त तक जो मूल-भूत एकरूपता भवनों के निर्माण, मुद्राएं, मृद्भाण्ड आदि अनेक प्रकार के उपकरणो मे द्रष्टव्य है वह भी एक अपेक्षाकृत लघु-काल मे ही अधिक संभव हो सकती थी। इन दो बातों को ध्यान मे रखकर इसके लिए बहुत लबी अवधि का अनुमान लगाना ठीक नही। उन्होंने यह धारणा व्यक्त की कि दूसरे स्थलो मे यह सभ्यता मोहेंजोदडो के समाप्त होने के बाद भी चलती रही। मार्शल ने मोहेंजोदडो नगर की कालावधि 500 साल आकी। इस तिथि-निर्धारण में सिंधु सभ्यता का बेबोलोनी-सुमेरी संस्कृति के संदर्भ मे बेबोलोनी-सुमेरी सस्कृति की सिंधु सभ्यता के संदर्भ मे प्राप्त सामग्री को ध्यान मे रखकर उन्होंने इस सभ्यता का समय 3250-2750 ई० पू० प्रस्तावित किया। यह उल्लेखनीय है कि जब मार्शल ने यह तिथि निर्धारित की उस समय मेसोपोटामिया के इतिहास के विभिन्न कालों की तिथिया आज की अपेक्षा काफी पुरानी आंकी गयी थी। उदाहरण के लिए अक्काद में सम्राट् सारगन का काल उस समय लगभग 2800 ई० पू० माना जाता था जबकि आज वह लगभग 2370-2284 ई० पू० माना जाता है। मार्शल द्वारा निर्धारित यह तिथि उस समय के साक्ष्यों को देखते हुए तर्कपूर्ण थी, किंतु अब नये साक्ष्यों के संदर्भ मे इसका पुनरीक्षण आवश्यक है।

मैके ने फ्रैंकफर्ट द्वारा टेल अस्मर में की गयी खोदाइयों से उद्घाटित अक्काद काल (जिसे फ्रैंकफोर्ट ने 2500 ई० पू० रखा था) और मोहेंजोदडो के अंतिम काल की सस्कृतियों में समानता देखी और इसलिए उन्होंने मोहेंजोदडो के अंतिम चरण को 2500 ई० पू० रखा। अन्य साक्ष्यों के आधार पर मैके ने सिंधु सभ्यता के प्रारम्भ की तिथि 2800 ई० पू० आकी। उनका कहना है कि ईटें लवण के प्रभाव से जल्दी-जल्दी नष्ट हुई होगी। आज भी ऐसा होते देखा गया है। अतः इस सभ्यता की पूरी अवधि लगभग 300 साल उन्होंने आकी।

1921 से 1934 के बीच हडप्पा की खोदाई के दौरान माधो सरूप वत्स को यहाँ पर निम्नतम स्तरों से जो सामग्री प्राप्त हुई थी वह उन्हे मोहेंजोदड़ो से प्राप्त निम्नतम स्तरों की सामग्री से भी प्राचीन लगी और उसके आधार पर यह अनुमान लगाया गया कि हडप्पा नगर के शिलान्यास की तिथि मोहेंजोदडो से भी पीछे होनी चाहिए। एक टीले के मध्य प्रकाल की चौथी परत में और उससे नीचे भी कुछ ऐसी मुद्राएं मिली जो छोटी थी; मोहेंजोदडो मे इस तरह की मुद्राओ का अभाव है। उसके नीचे भी काफी गहराई तक अवशेष थे। वत्स ने इस चौथी परत के प्रारभ की तिथि मोहेंजोदडो के निम्नतम स्तरो से पूर्व का माना और चूकि मार्शल ने मोहेंजोदड़ो मे संस्कृति के प्रारंभ के लिए 3200 ई० पू० तिथि प्रस्तावित की थी वत्स, ने इसे 3500 ई० पू० का आका और उससे पहले, जिसे वे प्रारभिक प्रकाल की संज्ञा देते है, की तिथि चतुर्थ सहस्राब्दी का प्रथमार्द्ध मानते है। वह सिंधु सभ्यता के अन्तिम चरण की अन्तिम तिथि 2700 ई० पू० मानते है। 'एच कब्रिस्तान' की तिथि उन्होंने 2500-2000 ई० पू० मानी है। साथ ही उन्होने यह विशेष रूप से स्पष्ट किया कि यह तिथि उन्होने उस सस्कृति के अब तक उपलब्ध अवशेषो के लिए प्रस्तावित की है जो कि हमे विकसित रूप मे मिलती है। उनके अनुसार विकास की इस स्थिति तक पहुँचने मे जो समय लगा होगा उसका ठीक अनुमान लगाना कठिन है। केदारनाथ शास्त्री भी वत्स की तरह हडप्पा मे सिंधु सभ्यता का प्रारंभ चतुर्थ सहस्राब्दी के प्रथम चरण से मानते है।

व्हीलर ने, अक्काद के सम्राट् सारगन की संशोधित तिथि (लगभग 2370-2284 ई० पू०) के परिप्रेक्ष्य मे मेसोपोटामिया मे प्राप्त सिंधु सभ्यता की मुद्राओं के स्तर-संदर्भ की पुनर्विवेचना कर (देखिये नीचे पृष्ठ 236) सिधु सभ्यता का प्रारंभ 2500 ई० पू० के लगभग और उसका अन्त 1500 ई० पू० के आस-पास माना है। वे इस सभ्यता का अंत आर्य आक्रमण के फलस्वरूप मानने के पक्ष में है जो उनके मतानुसार लगभग 1500 ई० पू० में हुआ था। सिंधु सभ्यता की तिथि संबंधी व्हीलर का यह मत काफी समय तक अधिकांश विद्वानों को मान्य रहा।

पर कुछ विद्वानों ने प्रारंभ से ही उनके इस मत पर सदेह व्यक्त किया था। संदेह का एक मुख्य कारण हड्प्पा और मोहेंजोदडो में प्रारंभिक चरण से अंत तक संस्कृति की लगभग समरूपता थी। यह कुछ आसानी से स्वीकार करने वाली बात नही कि हजार साल तक किसी सभ्यता, विशेषतः सिधु जैसी विकसित सभ्यता के भौतिक उपकरणों मे विशेष परिवर्तन न हुए हों। संदेह करने का दूसरा कारण यह था कि नदियों में बाढों के कारण बस्तियों का उजड़ जाना और मोटी बलुई परतों का जमाव और एक ही स्थान पर बार-बार निर्माण और पुर्ननिर्माण होने से टीलो का काफी ऊंचा होना स्वाभाविक है। इसलिए इन विद्वानों का कहना है कि मात्र टीलों की ऊंचाई के आधार पर यह अनुमान लगाना समीचीन न होगा कि सिंधु सभ्यता लवी अवधि तक पनपती रही।

1955 में अलब्राइट (Albright) ने मत व्यक्त किया कि मेसोपोटामिया के साक्ष्यों के आधार पर इस सभ्यता का अंत ई० पू० 1750 के लगभग हुआ था। 1956 मे फेयरसर्विस को क्वेटा घाटी मे महत्त्वपूर्ण उत्खनन कराने का अवसर मिला। उत्खनन मे प्राप्त मामग्री के अध्ययन के बाद उन्होंने सिंधु सभ्यता की कालावधि 500 वर्ष लगभग 2000 से 1500 ई० पू० के मध्य निर्धारित की। इस सभ्यता के प्रारंभ के लिए फेयरसर्विस द्वारा प्रस्तावित तिथि (2000 ई० पू०) इसके लिए व्हीलर द्वारा प्रस्तावित तिथि (2500 ई० पू०) से काफी बाद मे पडती है।

सन् 1964 मे धर्मपाल अग्रवाल ने सिधु सभ्यता के विभिन्न स्तरों से प्राप्त कुछ जैविक सामग्री की तिथियाँ कार्बन–14 पद्धति द्वारा निर्धारित की गयी तिथियों के समग्र अध्ययन के बाद इस सभ्यता का जीवन काल 2300-1750 ई० पू० स्वीकार करने का सुझाव दिया। इस मत से इस सभ्यता की कुल अवधि साढे पाँच सौ वर्ष ठहरती है। यह एक रोचक तथ्य है कि यद्यपि इस सभ्यता के प्रारंभ और अत की मार्शल द्वारा निर्धारित की गयी तिथि (3250 ई० पू०–2750 ई० पू०) कार्बन 14 विधि से निर्धारित तिथि से कही पहले पडती है तथापि मार्शल का यह अनुमान कि मोहेजोदडो मे सभ्यता की कुल अवधि 500 वर्ष है, जो कार्बन 14 विधि से ज्ञात इस सभ्यता की कुल अवधि के साक्ष्य के अत्यंत निकट है।

1968 में आल्चिन और श्रीमती आल्चिन ने कोटदीजी और कालीबंगां की सिधु सभ्यता की तिथियों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला कि इन स्थलों पर सिंधु सभ्यता चार शताब्दियों 2150 ई० पू० से 1750 ई० पू० तक विद्यमान रही यद्यपि अन्य स्थलों में इसमे कुछ अंतर हो सकता है। वे कहते

है कि सभ्यता के प्रारंभ के लिए यदि इस तिथि मे 100 साल का अतर भी मान लिया जाय तो सिंधु सभ्यता के आरभ की तिथि 2250 ई० पू० स्वीकार की जा सकती है। वे यह सुझाते है कि 2150 ई० पू० के पहले के मेसोपोटामिया के साथ भारतीय क्षेत्र के व्यापारिक संबंधों का उल्लेख है उनका तात्पर्य कदाचित् आमरी संस्कृति के साथ व्यापारिक संबधों से है न कि सिंधु सभ्यता के साथ।

बुकनन (Buchanan) के अनुसार सिंधु सभ्यता की मेसोपोटामिया की आयातित मुद्राओ तथा अन्य वस्तुओं का प्राचीनतम उपलब्ध साक्ष्य (देखिये आगे पृष्ठ 236) भी 23 वी शती ई० पू० से पहले का नही है। अतः विकसित सिंधु सभ्यता के मेसोपोटामिया से संपर्क के साक्ष्य (देखिए आगे) 23 वी शती ई० पू० से बहुत पहले के नही है। उनका यह भी कहना है कि सिधु सभ्यता के प्रौढ (विकसित—mature) चरण की अवधि लगभग 300 वर्ष की है और इसका अत 2000 ई० पू० मे हो गया। कुतूहल का विषय है कि इवार लिस्सनर (Ivar Lissner) ने इस सभ्यता की कालावधि 1700-1500 ई० पू०[1] आंकी लेकिन लिस्सनर महोदय ही कुषाण स्तूप के नीचे के अवशेषो के लिए आज से 4000 वर्ष पहले की तिथि होने की सम्भावना मानते हैं,[2] और इस आधार पर तो 2000 ई० पू० से कुछ पहले ही सिंधु सभ्यता की तिथि होनी चाहिए। फिर वह इस सभ्यता को मिस्र के राजा अखनेतन का समकालीन मानते है।[3]

तिथि के संबध मे विभिन्न विद्वानो का उल्लेख करने के पश्चात् अब हम उस सामग्री का विवेचन करेगे जिस पर अधिकाश मत आधारित है। यों आकार-प्रकार मे किन्चित समानता तो आकस्मिक हो सकती है और इसलिए इसे तिथि-निर्धारण के लिए निचित प्रमाण नही माना जा सकता। सिधु सभ्यता और मेसोपोटामिया के सारगन और उससे पूर्व की संस्कृति के सदर्भ में कार्नीलियन के रेखाकित मन के मिले है। मोहेंजोदडों तथा लोथल से प्राप्त सोने की अक्षीय नली वाले बिम्ब (disc) मनके की तरह के मनके मेसोपोटामिया के अनेक स्थलो मे प्रारभिक राजवंश III अक्काद संस्कृति के संदर्भ मे और ट्राय के II 'जी' स्तर मे (जिसकी तिथि लगभग 2300 ई० पू० आकी गयी है), पाये गये

1. Ivar Lissner, *The Living Past*, Translated from German by J. M. Brownjohn (1957) p. 146.

2 वही, पृ० 148

3. वही, पृ० 151

है । मोहेंजोदड़ो से प्राप्त चांदी की अगूंठी (ring) पर एक तिरछा सलीबनुमा डिजाइन है । यदि यह समानता केवल आकस्मिक न होकर परस्पर संबंधों की द्योतक है तो कुछ विद्वानों के अनुसार इस साक्ष्य के आधार पर सिंधु-सभ्यता के मनकों के लिए 2300 ई० पू० से कुछ पहले की तिथि ज्ञात होती है ।

यह उल्लेखनीय है कि मेसोपोटामिया से सम्पर्क के लगभग सभी साक्ष्य उन उत्खननों से उपलब्ध है जिनमे वस्तुओं की तिथि वैज्ञानिक विधि से परतों के आधार पर निर्धारित न कर गहराई के आधार पर निर्धारित की गयी । यह स्वाभाविक ही है कि अब पुरातत्त्ववेत्ता इस विधि के आधार पर किये गये वस्तुओं के काल-निर्धारण को सदेह की दृष्टि से देखते है ।

हरिताभ लिए क्लोराइट सिस्ट का जो टुकडा मोहेजोदडो के निम्न स्तरो मे पाया गया है, उस पर बुनी चटाई का सा डिजाइन बना है । यह टुकडा ऐसे बर्तन का है जो द्वार तथा खिडकी सहित वृत्ताकार कुटिया की आकृति से मिलता-जुलता है । ऐसे पत्थर के बर्तन मेसोपोटामिया मे प्रारम्भिक राजवंश के सदर्भ मे खफजे, उर (रानी की कब्र मे) किश, लगश, अदब और द्वारी मे मिले है और सूसा (II) मे भी । इनकी तिथि लगभग 2500 ई० पू० आकी गयी है । पिगट के अनुसार ये बर्तन मकरान और सीस्तान मे बनाये गये थे जहा इस तरह के बर्तन मिले है और वही मे इन्हे एक ओर सिधु सभ्यता के क्षेत्र मे और दूसरी ओर मेसोपोटामिया मे ले जाया गया । इनके प्रयोग के विषय में उनका मत है कि इनमे शरीर पर लेप के लिए प्रसाधन सामग्री रखी गयी होंगी ।[1]

दूसरे प्रकार के पत्थर के बर्तन और उनकी अनुकृति मे बने वर्गाकार या बेलनाकार मजबूत मिट्टी के बर्तन मिले है । इन पर खाने बने है । ये मेही (बलूचिस्तान) और मोहेजोदडो की ऊपरी सतह पर पाये गये है । मेसोपो-टामिया मे ये बर्तन ऊपर वर्णित पत्थर के बर्तनों के समकालीन भी है और कुछ बाद तक भी प्रयुक्त होते रहे है ।

तेल अस्मर से अक्कादी स्तरों मे सिंधु सभ्यता के वृक्क (Kidney) के आकार के हाथी दात के उत्खचन मिले हैं जो शंख के अनुप्रस्थच्छेद पर आधा-

---

1. इस तरह के बर्तनों की तिथि भारतेतर संदर्भ मे सी. जे गैड्ड ने 3000 ई० पू० से 2600 ई० पू०, एम० डी० मैक्वेनम ने 2700 ई० पू० तथा एम० काटेनन ने 3000 ई० पू० – 2800 ई० पू० आकी है किंतु कुछ विद्वानों के अनुसार इनकी तिथि के बारे में निश्चित रूप से इतना ही कहा जा सकता है कि वे 2400 ई० पू० से पहले के है ।

रित हैं । हड़प्पा तथा मोहेंजोदडो के कुछ बर्तनों पर उभार लिये दाने है जो तेल अस्मर में अकादी स्तरों मे मिले है ।

साड की कुछ मृण्मय आकृतिया और चित्रो को भी कुछ विद्वानों ने परस्पर सम्पर्क का द्योतक माना है । इस तरह के साक्ष्य निम्नलिखित है :—

(1) दियाला घाटी में लोहित भाण्ड (scarlet ware) पर चित्रित आकृतिया ।

(2) पूर्व राजवश I–II काल मे एक सेलखडी के बर्तन पर चित्रित आकृतिया ।

(3) तेल अस्मर से सारगन काल मे प्राप्त मिट्टी पर-उत्कीर्ण आकृति ।

(4) तेल बिल्ला के सूसा 'डी' काल के संदर्भ मे प्राप्त आकृति । चूंकि सिंधु सम्यता से कही पहले मुण्डीगाक (अफगानिस्तान) I मे साड ज्ञात था अत. इस पशु की मेसोपोटामिया के स्थलो पर मूर्त अंकन अथवा चित्रण को सिंधु सम्यता और प्राचीन मेसोपोटामिया की सम्यताओं के पारस्परिक सम्पर्क का प्रमाण मानना कठिन है ।

हिसार III बी मे एक ताबे का चाकू मिला है जिसके फल की नोक हडप्पा सम्यता के संदर्भ मे प्राप्त चाकुओं की तरह कुछ मुडी है । मोहेंजोदडो से प्राप्त कासे के छेदवाला कुल्हाडी बसूला की तरह के उपकरण फारस में तृतीय सहस्राब्दी के अत या द्वितीय सहस्राब्दी की तिथि वाले स्तरो मे मिले हैं । मेसोपोटामिया और फारस की छेदवाली कुल्हाडियों से मिलती-जुलती कुल्हाडिया चन्हुदडो मे सिंधु सम्यता के अंतिम चरण या झूकर सस्कृति मे शाही तम्प (दक्षिणी बलूचिस्तान) मे पायी गयी है । मोहेंजोदडो मे इस तरह की कुल्हा-डियो के बने मिट्टी के दो माडल मिले है । ह्वीलर के अनुसार इनकी तिथि 2000 ई० पू० के लगभग हो सकती है लेकिन जैसा—मैलोवन का कथन है सुमेर में इस तरह की माडल कुल्हाडिया अल उबेद काल में भी मिलती है । चन्हुदडो के परवर्ती हडप्पा या झूकर चरण मे ताबे के गदा-सिर की तुलना पिगट ने लुरिस्तान में प्राप्त हुए इसी तरह के गदा सिर से की है और उनका अनुमान है कि लुरिस्तान से प्राप्त हुआ गदा सिर 1400 ई० पू० या कुछ बाद का है । किंतु इस धातु उपकरण के साम्य को भी अधिकाश विद्वान् तिथि-निर्धारण के लिये विश्वसनीय नही मानते क्यो कि तृतीय सहस्राब्दी ई० पू० मे इस क्षेत्र मे अनेक जातियो का आगमन निर्गमन हुआ । ह्वीलर ने तिथि निर्धारण के सदर्भ मे व्यापारिक साक्ष्य का उल्लेख किया है । उनके अनुसार प्रारंभिक राजवंश

(Early Dynastic) काल मे लाजवर्द का पर्याप्त प्रयोग होता रहा है और सारगन काल में इसका प्रयोग कम हो जाता है। मोहेंजोदडो हडप्पा और चन्हु-दडो मे भी इसका प्रयोग बहुतायत मे किया गया है (देखिए अध्याय 'आर्थिक जीवन' पृष्ठ 158) उनका कहना है कि लाजवर्द की लोकप्रियता अथवा उसकी प्राप्ति मे कमी दोनो क्षेत्रों—'सिंधु' एवं 'मेसोपोटामिया'—में एक ही कारण से हो सकती थी और यह भी दोनों की समकालीनता सिद्ध करता है।

मोहेंजोदडो और चन्हुदडो की आवर्त शीर्ष वाली पिनों से मिलती-जुलती पिनें सियाल्क (ईरान) मे चतुर्थ सहस्रादी ई० पू० और इटली में 1300 ई० पू० मे पाई जाने से उनका साक्ष्य तिथि निर्धारण मे सहायक नही। मोहेंजोदडो से प्राप्त पशु-शीर्ष वाली पिनों का साक्ष्य भी तिथि निर्धारण में विशेष सहायक नही क्योकि इस तरह की पिनें मेसोपोटामिया और एलम में प्रारम्भिक राजवंश के संदर्भ मे, अनातोलिया में लगभग 2000 ई० पू०, ईरान के लुरिस्तान मे लग-भग 1400 ई० पू० और कोबन कब्रिस्तानो मे लगभग 1300 मे मिली है।

सिंधु सभ्यता के विभक्त मनकों का साक्ष्य भी निश्चित नही है, हडप्पा और क्नोसास से प्राप्त एक एक मनके का वर्णक्रम लेखी विश्लेषण करने पर दोनो की सरचना मे पूर्ण एकरूपता पाई गई जिससे ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों का निर्माण स्रोत एक ही है। व्हीलर ने क्नोसास मे इस तरह के मनको की तिथि लगभग 1600 ई० पू० सुझाई है लेकिन यह अनुमान पर ही आधारित है निश्चित साक्ष्य पर नही। सेलखडी के विभक्त मनके टेलब्राक (उत्तरी सीरिया) मे 3200 ई० पू० के संदर्भ मे मिलते हैं। यो भी दोनों क्षेत्रों के एक एक मनके की सरचना मे समानता आकस्मिक भी हो सकती है और जबतक दोनों क्षेत्रो से प्राप्त अनेक मनकों का विश्लेषण नही किया जाता, इस उपर्युक्त समानता के तिथि निर्धारण के संदर्भ मे विशेष महत्त्व नही दिया जा सकता। कम से कम 1600 ई० पू० के लगभग की तिथि सिंधु सभ्यता के परिप्रेक्ष्य मे बहुत बाद की लगती है।

लोथल बी के संदर्भ मे प्राप्त ऊँची गर्दन वाले (high necked) अण्डाकार मृद्-भाण्ड आहाड I बी मे भी मिलता है। आहाड I ए की कार्बन 14 विधि से उपलब्ध तिथि 1727±140 और आहाड I सी के मध्य परतों की तिथि 1552±108 आती है। I बी के लिए लगभग 1600 ई० पू० तिथि मानी जा सकती है और यही तिथि लोथल बी (पांचवा चरण) की भी मानी जा सकती है। मोहेजोदडो और लोथल मे रिजर्ण्ड लेप वाले बर्तन भिन्न है जो इन्हे प्राचीन सिद्ध करता है।

लोथल और टेलब्राक की मुद्राओं पर प्राप्त अनेक रेखाओं से बनाया गया स्वस्तिक अभिप्राय का उल्लेख भी तिथि संबंधी साक्ष्य के तौर पर किया गया है। लेकिन यह एक सामान्य प्रकार का अभिप्राय है और इसका साक्ष्य तिथि निर्धारण के सदर्भ में सर्वमान्य नही हो सकता। फिर टेलब्राक के इस तरह के अभिप्राय के प्रयोग की तिथि लगभग 3200 ई० पू० आकी गयी है जो अद्यतन उपलब्ध साक्ष्यो के आधार पर सिंधु सभ्यता के अधिक से अधिक अनुमानित तिथि से भी पहले की है।

मुद्राओं का साक्ष्य

सिंधु सभ्यता की तिथि ज्ञात करने के लिए भारतेतर देशों मे प्राप्त कुछ ऐसी मुद्रायें जो अभिप्राय अथवा आकार प्रकार से सिधु सभ्यता मे निर्मित अथवा सिधु शैली की नकल लगती है, अत्यन्त महत्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करती है। यह सही है कि इन भारतेतर स्थलो मे उनकी तिथि निर्धारित करने के स्तरीय साक्ष्य हमारी सहायता करते है किंतु मेसोपोटामिया की वे खोदाइया भी जिनमे ये मिली थी आधुनिक वैज्ञानिक ढंग मे नही की गई थी और इसलिए आधुनिक पुरातत्त्व-वेता उनके साक्ष्य को निस्सकोच स्वीकार नही करते और मतभेद होना स्वाभाविक है। फिर यह समस्या भी रह जाती है कि वे सिधु सभ्यता के किस स्थल और किस स्तर (प्रारम्भिक, मध्य अथवा अन्त) की है क्योंकि साधारणत सिधु सभ्यता के अधिकाश उपकरणों में प्रारम्भिक काल से लेकर अन्त तक कोई विशेष अंतर नही दिखता और जहा तक शंका उठाने का प्रश्न है सिद्धात रूप मे यह भी कहा जा सकता है कि यह भी सम्भव है कि ये मुद्राये सिधु सभ्यता के अबतक ज्ञात काल से भी पूर्व के काल की हो, अथवा अतिम ज्ञात स्तरो के काल से भी बाद की हों। यों सम्भावना यही है कि ये मुद्राये इन नगरो के विकसित काल की है। अब हम मुद्राओ के साक्ष्य की विवेचना करेगे।

सी० जे० गैड्ड ने इन मुद्राओं का सर्वप्रथम गहन अध्ययन एवं विश्लेषण किया था। व्हीलर ने इनका पुनर्विवेचन किया और नीचे दिया गया विवरण उन्ही के पुनर्विवेचन पर आधारित है। कुल मिलाकर 21 इस प्रकार की मुद्राएं हैं। कुछ (कम से कम सोलह) ऐसी है जिनके प्राप्तिस्थल किश, लगश, उम्मा, तेल अस्मर, टेपे गौरा और हम्मा (सीरिया) आदि ज्ञात है। इन 29 मुद्राओ मे से केवल 12 या 13 ही ऐसी है जिनका प्राप्ति स्थल ज्ञात है और इसमे से भी कुछ को ही ज्ञात तिथि वाले स्तरो से कुछ हद तक सम्बद्ध कर सकते है। लेकिन यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि इनकी तिथि के बारे में भी विद्वान

पूर्णत. एकमत नही है । यही नही कुछ तो उपर्युक्त मुद्राओ मे से कतिपय सिंधु सम्यता की होने अथवा उनकी नकल पर बनी होने के संबंध में भी संदेह व्यक्त करते है । जिन मुद्राओं की तिथि के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी हुई उनका विवरण व्हीलर के दिये क्रम मे नीचे प्रस्तुत है—

1 सेलखडी की वर्गाकार मुद्रा जिसके किनारे गोलाई लिए है और पृष्ठभाग सिंधु सम्यता के बटन प्रकार की मुद्रा की तरह है । इसके अग्रभाग पर सिंधु सम्यता की तरह बैल अंकित है किंतु कला की दृष्टि से कुछ सिंधु सम्यता की मुद्राओ पर अंकित बैल से निम्न कोटि का है । इसके प्राप्ति स्तर का ज्ञान नही किंतु इस पर पुरा कीलाकार लेख है जिसे कुछ विद्वानो ने सारगन से पूर्व काल का माना है, किंतु लिपि के आधार पर निश्चिततिथि निर्धारण मे कठिनाई स्वाभाविक है और अतः यह निश्चित नही है (गैड्ड न० 1) ।

2 उर से प्राप्त सेलखडी की वृत्ताकार मुद्रा जिसकी बटन की तरह पीठ है और जिस पर वृषभ और सिंधु लिपि के कुछ चिह्न अंकित है । कुछ के अनुसार अक्काद मे पूर्व के स्तरों मे पाई गई किंतु कुछ के अनुसार यह अक्कदीय स्तर की है (गैड्ड नं० 16) ।

3 उर से प्राप्त मुद्रा जिस पर वृषभ अंकित है; लेख में कुछ सिंधु सम्यता की लिपि से कुछ भिन्न लिपि के चिह्न है । साथ मे प्राप्त वस्तुएं सारगन काल की तिथि सूचित करते है (गैड्ड नं० 15) ।

4. किश से प्राप्त सारगन कालीन सेलखडी की वर्गाकार मुद्रा जिस पर एकशृंगी पशु और सिंधु लिपि के अक्षर अंकित है ।

5 टेल अस्मर मे अक्कदकालीन बिना लेख वाली बेलनाकार मुद्रा (सम्भवत. ग्लेज की हुई सेलखडी की) जिसपर हाथी गैंडा और घडियाल अंकित है ।

6. टेल अस्मर से प्राप्त सारगन काल की अलाबास्टर की वर्गाकार बटन की तरह की मुद्रा जिसके मुखभाग पर वर्ग के भीतर वर्ग का डिजाइन है और सबसे बाहरी वर्ग मे मनके का डिजाइन है ।

7. टेपे गौरा से प्राप्त पकी मिट्टी की वर्गाकार मुद्रा जिस पर वर्ग के भीतर वर्ग का डिजाइन बना है । यह या तो सारगन काल की है या कुछ पहले की ।

8. किश से प्राप्त सारगन कालीन सैंधव प्रकार की सेलखड़ी की वर्गाकार मुद्रा जिस पर एकशृंगी पशु और सिंधु लिपि के चिह्न है ।

9 लगश से प्राप्त लार्सा कालीन सिंधु लिपि चिह्नों वाली मुद्रा ।

10 उर में प्राप्त लार्सा कालीन पत्थर की बेलनदार मुद्रा, जिस पर ताड वृक्ष के सम्मुख कूबड वाला बैल अंकित है। बैल के पीछे एक बिच्छू और दो साप और एक मानवाकृति दिखाई गई है।

11. उर से प्राप्त वृत्ताकार मुद्रा जिसका पृष्ठ भाग बटन की तरह है। मुद्रा पर मानवाकृति ऐसी वंहगी (yoke) लिए है जिससे दो बर्तन या मछली पकडने का जाल लटक रहा है। कुछ इसे (1500 ई० पू० या बाद) की मानते है, लेकिन व्हीलर ने इसे लार्सा काल (1900 ई० पू० के लगभग) की माना है।

12. हमा (सीरिया) से प्राप्त 'श्वेत' पत्थर की बेलनाकार मुद्रा का टुकडा जिस पर सैंधव प्रकार के बैल का सिर बना है। इसे लगभग 2000-1750 ई० पू० का माना है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त कुछ अन्य मुद्रा साक्ष्य का उल्लेख भी समीचीन होगा। एक हीराकृति प्रकार की मुद्रा और चन्हुदडो से एक वृत्ताकार मुद्रा मिली है जिस पर गरुड का चिह्न है। इस तरह का अभिप्राय सूसा मे लगभग 2400 ई० पू० और टेलब्राक (उत्तरी सीरिया) मे 2400 ई० पूर्व मे मिलता है। यह भी तिथि निर्धारण के लिए सारगन और थोडे बाद के काल का साक्ष्य प्रस्तुत करता है।

हाल ही मे लैम्बर्ग कार्लोव्सकी ने टेपे याह्या (Tepe yahya) दक्षिण पूर्वी ईरान) के उत्खनन के दौरान एक मृद्भाण्ड का टुकडा पाया जिस पर सिंधु सभ्यता की मुहर छाप है। उसी तरह मे प्राप्त कोयले की रेडियो कार्बन तिथि 2350 ई० पू० है। यदि इस रेडियो कार्बन तिथि को मान्यता दी जाय तो सिंधु सभ्यता के प्रारभ के लिए इससे कुछ पहले की तिथि स्वीकार करनी पडेगी।

इस सदर्भ में लोथल से प्राप्त 'फारस की खाडी' प्रकार की मुद्रा का उल्लेख महत्त्वपूर्ण होगा। हाल ही में डेन पुरातत्वविदों द्वारा बहरीन और फैयल्का (Failaka) मे किये गये उत्खननों ने महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है जिसमे विशिष्ट प्रकार के वृत्ताकार मुद्राएं कोष उल्लेखनीय है। इन मुद्राओं के बारे में अबतक जो थोडी बहुत सामग्री प्रकाशित हुई है उसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि यद्यपि ये सिंधु सभ्यता के मुद्राओं के पूर्णतया अनुरूप नही है तथापि उनसे संबद्ध अवश्य है। कुछ तो सिंधु मूल की ही लगती है जो

व्यापार के संदर्भ में वहाँ पहुँची । हाल ही में बुस्नन ने मेसोपोटामिया के किसी स्थल (संभवतः उर) से प्राप्त कीलाक्षर पट्टिका प्रकाशित की है जो लार्सा के राजा गुनगुनम के दसवें वर्ष (अर्थात् 1923 ई० पू०) की है। इस पट्टिका पर फारस की खाडी के प्रकार की एक प्रकार (बुस्नन का तीसरा प्रकार) की मुद्रा की छाप है । इससे 'फारस की खाडी' प्रकार की मुद्रा की तिथि निर्धारित की जा सकती है। चूकि लोथल मे भी इसी तरह की एक मुद्रा टीले की सतह से मिली है अतः लोथल की मुद्रा की तिथि भी 1923 ई० पू० के लगभग होगी ।[1]

उपर्युक्त साक्ष्य इस बात के द्योतक है कि प्रारंभिक राजवंश III के अंत के बाद और अक्काद काल (अर्थात् लगभग 2400 ई० पू०) से कुछ समय पहले से मेसोपोटामिया और सिंधु सभ्यता के मध्य संपर्क था । ऊपर ह्वीलर के वर्णन के आधार पर जिन बारह मुद्राओ का संक्षिप्त विवरण दिया गया है उनमे से तीन के बारे मे मतभेद है । कुछ विद्वान इन्हे सारगन काल से पूर्व की और कुछ सारगन काल की मानते है । ह्वीलर ने केवल एक को ही सारगन काल से पूर्व की माना है, उनके अनुसार शेष बारह मुद्राओं मे से छह सारगन काल की, बाकी लार्सा काल और इससे भी बाद के काल की है ।

सिंधु सभ्यता के काल-निर्धारण के संबध में मेसोपोटामिया के उस अभिलिखित साक्ष्य का उल्लेख भी समीचीन होगा जिसमें मेलुहह दिल्मुन और मगन (या मकन) नामक तीन देशों का उल्लेख है जिनके साथ मेसोपोटामिया का व्यापार होता था । इन तीनों नामो की पहचान पर विद्वान एकमत नही है । हमने विभिन्न मतं का उल्लेख परिशिष्ट मे दिया है, यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि इन स्थलों से मेसोपोटामिया को लकडी, हाथीदात, कार्नीलियन आदि के निर्यात का उल्लेख है । ये वस्तुएं सिंधु सभ्यता के क्षेत्र की ओर इगित करती है । जहा वे सुलभ रही थी । उक्त अभिलेखीय सामग्री उर के तृतीय राजवंश कालीन (अर्थात् 2130-2030 ई० पू०) अथवा लार्सा राजवश (अर्थात् 2030-1700 ई० पू०) कालीन है ।

---

1. राव का कहना है कि यह मुद्रा 1900 ई० पू० से काफी पहले की होनी चाहिए क्योंकि 1900 ई० पू० के लगभग तो लोथल का बहरीन द्वीप और अन्य विदेशी क्षेत्रों से व्यापार बहुत कम हो गया था दूसरी ओर सारगन काल (लगभग 2300 ई० पू०) मे इस तरह का व्यापार अपनी चरम सीमा पर था।

यद्यपि परतो अथवा सांस्कृतिक अवशेषों की मोटाई तिथि निर्धारण का कोई निश्चित पैमाना नही है, तथापि तिथि निर्धारण के सबध मे इनके साक्ष्य की एकदम अवहेलना भी नहीं की जा सकती। स्वयं ह्वीलर, जिन्होने गहराई के आधार पर तिथि निर्धारण की कटु आलोचना की है और भारतीय पुरातत्व मे परतों को आधार बनाकर खोदाई की विधि की शुरुआत कराई, मोहेंजोदडो के अत्यन्त गहरे निक्षेपों को तिथि निर्धारण के लिए साक्ष्य के रूप में स्वीकार करने के लिये प्रेरित हुये है। 1964 मे डेल्स ने मोहेंजोदडो मे टीले की निचली सतह से बेधन (बोरिंग) द्वारा खोदाई की। इसमे सतहके नीचे 11.88 मीटर की गहराई तक इस सस्कृति के अवशेष मिले। उस तल से जहा मे डेल्स ने बेधन शुरू किया था टीला लगभग 9 14 मीटर ऊंचा है। यानी टीले की उपरी सतह से 9.14 + 11 88 लगभग 21 मीटर की गहराई तक की परतों मे इस सभ्यता के अवशेष मिले है। स्वय ह्वीलर ने 1950 मे मोहेंजोदडो के बाढ जनित मैदानी सतह (flood plain) से 7 92 मीटर (जिसमे तीन मीटर से कुछ अधिक पानी के अदर की खोदाई भी शामिल है) नीचे तक खोदा और उन्हे इस सतह तक अन्नागार भवन के नींव की निचली सीमा मिली। यह सभव है कि बाढ आदि के कारण अल्प काल मे ही बालू तथा कुछ अन्य प्रकार के निक्षेप की काफी मोटी तहे जमा हो गयी हो, और ऐसी दशा मे निक्षेप के कारण ही लबी अवधि निर्धारित करने के तर्क का वजन कम हो जाता है। डेल्स के बेधन मे बहुत थोडो ही सामग्री प्राप्त हो सका है अत इस सभावना को पूर्णत नकारा नही जा सकता कि निम्नतम स्तरों को वस्तुत सिंधु सभ्यता से भिन्न हो। लेकिन यदि निम्नतम स्तरों के अवशेष भी सिंधु सभ्यता के ही है, जिसकी कि अधिक सभावना है, तो इस सभ्यता के प्रारभ की तिथि 2400 ई० पू० मे कुछ पहले निर्धारित की जा सकती है। ह्वीलर तो कहते है कि इससे कही पहले की तिथि स्वीकार करने के लिए भी हमे तैयार रहना चाहिए।[1]

रेडियो कार्बन (कार्बन-14) विधि के अनुसार रेडियोधर्मी कार्बन-14 का अर्ध-जीवन अर्थात् मूल के आधे क्षय हो जाने का समय 5 730 + 40 वर्ष आका गया है। अब कार्बन-14 विधि का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी प्रत्येक स्थिति मे इस विधि द्वारा निर्धारित तिथि के एकदम सही होने के बारे मे विद्वानो ने

---

1 "We have to be prepared to find that the Indus Civilization was a going concern well before 2400 B.C."

संदेह व्यक्त किया है (देखिए परिशिष्ट) । अब हम कुछ रेडियो कार्बन तिथियों के साक्ष्य की विवेचना करेंगे ।

कोटदीजी में सिंधु सभ्यता से पहले की (कोटदीजी) संस्कृति के लिए रेडियो कार्बन तिथिया 2600±145 ई० पू० और 2100±140 ई० पू० के बीच है। कालीबगा प्रथम (सिंधु सभ्यता से पूर्व की संस्कृति) के लिए ज्ञात रेडियो कार्बन तिथिया 2370±120 ई० पू० से 1765±115 ई० पू० के बीच है और इसी स्थल पर सिंधु सभ्यता के काल के लिए रेडियो कार्बन तिथिया 2230±105 और 1665±110 के बीच है । अग्रवाल ने कुछ प्रतिदर्शों मे दूषण की सभावना व्यक्त की है । उनके अनुसार 1665±110 की तिथि अन्य तिथियों से एकदम अलग है और 1700 से 1800 ई० पू० के बीच की तिथियोंवाले प्रतिदर्शों की संख्या अत्यल्प है। लाल और थापर ने कालीबगा मे सिंधु सभ्यता के लिए 2300 ई० पू० से 1800 ई० पू० की तिथि आकी है । मोहेंजोदडो से प्राप्त रेडियो कार्बन तिथि के लिए जिन प्रतिदर्शों का परीक्षण किया गया है वे सभी डेल्स द्वारा की गयी खोदाइयों मे मिले और सिंधु सभ्यता के अतिम चरण के स्तरो से है । इनकी रेडियो कार्बन तिथिया 2155±65 से 1865±65 के बीच है । अत प्रारभ के चरणो के लिए कुछ पहले की तिथि होनी चाहिए । अग्रवाल का सुझाव है कि मोहेंजोदडो मे सिंधु सभ्यता का प्रारभ लगभग 2300 ई० पू० मानना ठीक होगा । वे यहा पर इस सभ्यता का अत 2000 ई० पू० के आस-पास होना मानते है । इस सिलसिले मे यह उल्लेख समीचीन होगा कि मोहेंजोदड़ो से काफी पहले के उत्खननो से प्राप्त और संग्रहालय में सग्रहोत गेहूँ के दानों की रेडियो कार्बन तिथि परीक्षण से ज्ञात तिथि 1755 को प्रतिदर्श के दूषित होने की पूरी सभावना के कारण स्वीकार नही किया गया ।

लोथल के लिए उपलब्ध कार्बन-14 तिथिया 2080±135 और 1800±140 के बीच की है । अग्रवाल ने लोथल के लिए ज्ञात विभिन्न तिथियों का विश्लेषण कर 2200—1700 तिथि प्रस्तावित की और यह माना कि विकसित सिधु सभ्यता का काल 1900 ई०पू० तक रहा और उसके बाद उप-सिंधु सभ्यता का काल रहा । राव ने रेडियो कार्बन के अतिरिक्त लोथल मे प्राप्त कुछ सामग्री यथा अक्षीय नली वाले सोने के बिब मनके, मृद्भाण्ड के ढक्कन पर स्वस्तिक का चिह्न, सोमित लेप वाले भाण्ड आदि को मेसोपोटामिया के साक्ष्य से समानता और समकालीनता स्थापित करने का प्रयास किया और वहा पर सिंधु सभ्यता के प्रारभ के लिए 2450 ई० पू० तिथि सुझाई । वे भी इस बात से सहमत है कि विकसित सिंधु सभ्यता का काल, जिसमें उनके अनुसार चार चरण है, का

अंत 1900 ई० पू० के आसपास हो गया था। रोजदी के लिए दो कार्बन-14 तिथियां उपलब्ध है—एक 1745±105 और दूसरी 1970±115 बाडा की तीन कार्बन तिथिया प्राप्त है, एक 1890±95, दूसरी 1845±155 और तीसरी 1645±90. निश्चय ही दोनों विकसित सिंधु सभ्यता के अत या बाद के काल के हैं।

कार्बन तिथियों का साक्ष्य इस बारे में स्पष्ट है कि मोहेजोदडो मे जब नगर-निर्माण हो चुका था तब भी उससे लगभग 25 मील की दूरी पर स्थित कोट-दीजी में ग्रामीण संस्कृति ही पनप रही थी जो काफी समय तक मोहेंजोदडो की विकसित नागरिक सस्कृति की समकालीन रही। कालीबगा में भी प्राग्-हड्प्पा संस्कृति और सिंधु संस्कृति के कुछ समय तक साथ-साथ पनपने के साक्ष्य है। ऊपर से देखने में यह कुछ अस्वाभाविक लगता है किंतु ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे इसमे आश्चर्य की कोई बात नही दिखती। जैसे व्हीलर का कहना है कि उस युग के ग्रामीण और नागरिक तकनीको में आज के नगर और ग्राम की तकनीको जैसा कोई अतर नही था और कुछ क्षेत्रो (यथा भाण्ड-निर्माण) मे तो दोनो ही संस्कृतियों के लोगो की तकनीक लगभग समान रूप मे विकसित थी।

विभिन्न साक्ष्यों का विश्लेषण करने के पश्चात् ह्वीलर इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि उन नगरो की, जो सिंधु सभ्यता के केन्द्र बिन्दु थे, नीव लगभग 2400 ई० पू० के कुछ पहले डाली गयी होगी और वे 18 वी शताब्दी ई० पू० तक विद्यमान रहे। किंतु इसकी सभावना है कुछ स्थलो पर नगरो की नीव अपेक्षाकृत देर मे पडी हो, कुछ नगर मोहेंजोदडो के निर्जन होने से पहले ही उजड गये हो और कुछ मोहेंजोदडो के अत के पश्चात् भी किंचित् समय तक विद्यमान रहे हो। निश्चय ही सारे स्थलो के लिए एक ही तिथि निर्धारित करना पूर्णत अवैज्ञानिक होगा। केन्द्रीय स्थलो मे दूरी और परिस्थिति ने विभिन्न स्थलों के नगरो की नीव और अत पर पर्याप्त प्रभाव डाला था। व्हीलर ने मिस्र की सस्कृतियो की कुछ कार्बन-14 तिथियो का उल्लेख किया है जिनके अनुसार एक राजा के काल के स्तरो की कार्बन तिथि उसके पौत्र के काल के कई शताब्दियो बाद की आती है। उन्होने सकेत किया है कि तृतीय सहस्राब्दी ई० पू० के स्तरो की अधिकाश रेडियो कार्बन तिथिया वास्तविक तिथियों से काफी बाद की लगती है जो सभवत किन्ही विशेष कारणों से वातावरण में कार्बन को प्रभावित किये जाने मे हुआ। मार्कलिया ने अपनी पुस्तक **प्रीहिस्ट्री ऐंड प्रोटोहिस्ट्री आफ इण्डिया ऐंड पाकिस्तान** के नवीन (द्वितीय) सस्करण में सिंधु सभ्यता की तिथि सबधी दो अत्यत भिन्न आधुनिक मतो का उल्लेख किया

है—पहला जिसके अनुसार हड़प्पा और मोहेंजोदडो में 2300 ई० पू० और प्रान्तों मे 2000-1800-1700 ई० पू० और दूसरा मुगल तथा लैम्बर्ग कार्लोव्सकी का मत जिसके अनुसार सिंधु सभ्यता के प्रारंभ की तिथि 3000 ई० पू० माननी चाहिए (क्योंकि दक्षिणी ईरान के टेपे याह्या से उनके सबध थे)। किन्तु उन्होने स्वयं ह्वीलर द्वारा प्रस्तावित 2500-1500 ई० पू० तिथि को ही अधिक समीचीन माना है, वैसे वे इससे भी पहले की तिथि स्वीकार करने के पक्ष में है।

•

अध्याय 18

इतर संस्कृतियों से संपर्क

सिंधु सभ्यता के लोगों का अन्य सभ्यताओं से सपर्क व्यापारिक तथा सास्कृतिक दोनों ही प्रकार का था। कुछ साक्ष्य सीधे और स्पष्ट सपर्क के द्योतक है और दूसरे अप्रत्यक्ष संपर्क के। कुछ ऐसी भी वस्तुए है जिनके सपर्क-सूचक होने के बारे में निश्चित रूप मे कहना कठिन है।

'आर्थिक-जीवन' अध्याय मे हमने विभिन्न धातुओं, कीमती पत्थरों आदि के आयात के सिलसिले में कई क्षेत्रों, यथा मध्य एशिया, अफगानिस्तान, ईरान, दक्षिण भारत आदि का उल्लेख किया है। मेसोपोटामिया के विभिन्न स्थलों से सिंधु सभ्यता मे निर्मित अथवा उनकी नकल वाली लगभग तीस मुद्राएं मिली है।[1] इतनी मुद्राएं न केवल परस्पर संपर्क अपितु मेसोपोटामिया में सिंधु सभ्यता के लोगों की बस्ती बसे होने की द्योतक लगती हैं।[2] सिंधु सभ्यताए मे प्राप्त बेलनकार मुद्राएं मेसोपोटामिया मे निर्मित अथवा उससे प्रेरित लगती है। बहरीन द्वीप मे प्राप्त कुछ मुद्राओ पर सिंधु लिपि के चिह्न है। इस द्वीप मे प्राप्त अन्य मुद्राओं के तरह की कुछ मुद्राए दक्षिणी मेसोपोटामिया और एक लोथल मे मिली है। बहरीन ने भारत मेसोपोटामिया के मध्य व्यापार मे मध्यस्थ की भूमिका अदा की होगी और लोथल, जहा पर गोदी के अवशेष मिले है, का इस व्यापार मे महत्त्वपूर्ण भाग रहा होगा। सुमेरी लेखो मे व्यापार

1 इस सदर्भ में हाथी की सूड वाले बैल की आकृति युक्त वर्तुलाकार मुद्रा विशेष उल्लेखनीय है। यह अभिप्राय सिंधु सभ्यता की कई मुद्राओ पर मिलता है। इस प्रकार के मिश्र पशु की एक पाषाण मूर्ति भी उपलब्ध है। यह अकन सिंधु सभ्यता की अपनी विशिष्टता लगते है।

2. लैम्बर्ग कार्लोव्स्की इस मत मे सहमत नही कि मुद्राओ का साक्ष्य मेसोपोटामिया मे सिंधु सभ्यता के व्यापारियो की बस्ती होने का प्रमाण है। उनका कहना है कि न तो वहा पर भारतीय वास्तु शैली पर आधारित कोई इमारत मिली है और न किसी इमारत (या इमारतों) मे पर्याप्त भारतीय मूल की वस्तुए मिली है। उनका यह भी मत है कि सिंधु सभ्यता मे प्राप्त साक्ष्य भी इसके पक्ष मे नही कि सिंधु सभ्यता के किसी स्थल मे मेसोपोटामिया के लोगों की बस्ती थी।

के संदर्भ में उल्लिखित मेलुहह, मगन और दिल्मुन में शायद अंतिम का सिंधु सभ्यता से तात्पर्य था (देखिये परिशिष्ट 4)।

मोहेंजोदडो की कुछ मुद्राओं (मैंके फ० ए० नं० 75, 86, 122 और 454) पर दो बाघों से लडते हुए मानव का अंकन संभवतः सुमेरी गिल्गामेश और उनके मित्र इंकिडू के सिंहों से लडने के कथानक पर आधारित लगता है।[1] मैंके ने मोहेंजोदडो की मुद्राओ को निर्माणशैली के आधार पर मेसोपोटामिया के अनुकरण पर भारत मे निर्मित माना है।

इसी तरह एक मुद्रा पर अंकित सींगयुक्त बाघ से लडती एक सींग वाली आकृति की पहचान सुमेरी गाथा के इकिडू से की गयी है। क्रीट की कला के समान सिंधु सभ्यता की मुद्रा पर मानव का बैलों से युद्ध का अंकन है। पशु को कई सिरवाला दिखाने की परपरा का विकास कुछ विद्वानों के अनुसार सिधु सभ्यता मे हुआ जहा पर इस तरह के अनेक उदाहरण है। सीरिया और क्रीट से इस तरह के अकन अल्प सख्या मे मिले है। क्रीट और सिंधु सभ्यता की बंदर की मूर्तियो मे भी पर्याप्त सादृश्य है।

मोहेंजोदड़ो की कुछ मुद्राओं (मैंके फ० ए० फलक LXXXIII, 1; LXXXVI, 156) मे 'ग्रीक क्रास' मिला है जो कि सुमेर और एलम मे काफी प्राचीन संस्कृतियो के सदर्भ मे कई उपकरणो पर मिलता है। मशकबीन का अभिप्राय मोहेंजोदडो की एक मुद्रा [मैंके फ० ए० XCVIII, 641 (g)] पर मिला है। यही अभिप्राय शाही तम्प के वर्तनो पर भी मिलता है। मैंके का मत है कि आधुनिक काल मे भी भारत के कुछ क्षेत्रों मे इस अभिप्राय को दुष्ट आत्माओं से रक्षा करने मे समर्थ माना जाता है।

मैंके (फ० ए० पृ० 362) के अनुसार मोहेंजोदड़ो की एक मुद्रा पर बैल या भैंसे द्वारा मनुष्य को उछाले जाते हुए दृश्य को क्रीट की कला मे अंकित जानवरो के ऊपर से उछल कर कूद कर निकलनेवाले खेल का चित्रण हो सकता है। नाल के कब्रिस्तान क्षेत्र से प्राप्त एक सेलखडी मुद्रा पर साप को पकडे गरुड दिखाया गया है। इस तरह का अभिप्राय सूसा से प्राप्त एक मुद्रा पर भी मिला है जिनकी तिथि लगभग 2400 ई० पू० आकी गयी है। मैंके ने मोहेंजोदडो की एक मुद्रा (फ० ए० फलक C चित्र b और c) को मुख्यत निम्न कारणों से उस स्थल पर निर्मित न मान कर बाहर से लायी गयी माना है—(1) जानवर को उल्टी दशा में दिखाना, जो सिंधु शैली की अन्य मुद्राओं पर नही मिलता; (2) मुद्रा का संगमरमर का बना होना, यह पत्थर सिंधु सभ्यता मे मुद्रा-निर्माण के

1. दूसरी और मोडे इसे सुमेरी कथानक का अकन नही मानते।

लिए प्रयुक्त नही होता था, (3) मुद्रा की पीठ पर सिंधु सभ्यता की मुद्राओं से भिन्न प्रकार की घुडी का होना। मोहेंजोदडो की चार मुद्राओं और दो ताबीजों (?) पर गरुड का अकन मिलता है। हडप्पा से प्राप्त सेलखडी के एक लोलक पर भी गरुड़ का चित्रण है। कुछ विद्वानो के अनुसार इस अभिप्राय का मूल ईरान में है और बाद मे सुमेर और भारत मे भी इसका प्रचलन हुआ।

कुछ आभूषण भी सिधु सभ्यता और पश्चिमी एशिया के मध्य सपर्क के द्योतक है। हडप्पा सस्कृति की तरह के रेखाकित मनके किश, शाह टेपे, टेल अस्मर, हिसार आदि से मिलते हैं। इसी तरह सिधु सभ्यता जैसे कावली मिट्टी के विभक्त मनके निनेवेह, हिमार और क्रीट मे भी प्राप्त हुए हैं। उर तथा किश से सिंधु सभ्यता के जैसे लम्बे ढोलाकार मनके मिले हैं। मोहेंजोदडो से पकाई मिट्टी के नालीदार मनके मिस्र के पत्थर के इस तरह के मनको के अनुरूप है। हडप्पा से एक मक्खी की आकृति जैसा मनका मिला है जिससे मिलते-जुलते मनके प्राचीन मिस्र और सुमेर मे मिले हैं।

उर के राजकीय कब्रिस्तान मे प्राप्त 'बिब' मनको की तरह के मनके मोहेंजोदडो से भी पाये गये हैं (मार्शल मो० इ० मि० पृ० 515, फलक CXLIX, 7)। लेकिन यह प्रकार सरल है और इसलिए सपर्क का द्योतक हो भी सकता है और नही भी। उर से प्राप्त गहरे हरे रग के लम्बे ढोल-बेलनकार (long barrel cylinder) मनके इस तरह के मोहेंजोदड़ो से प्राप्त मनको से मिलते-जुलते हैं। जिस तरह के पत्थर के ये बने है वह या तो ईरान या भारत मे उपलब्ध है। मैके का अनुमान है कि ऐसे मनको का निर्माण एक ही स्थान पर हुआ जहा से ये अन्यत्र ले जाये गये और अधिक सभावना यही लगती है कि इनका निर्माण भारत मे हुआ होगा।

मोहेंजोदडो से सेलखडी की V आकृति का एक मनका मिला है (मैके फ ए फलक CXI, 8)। इसी से मिलते-जुलते मनके उर और मिस्र मे बारहवे राजवंश के सदर्भ मे मिले हैं। मैके का मत है कि इस तरह के मनके बनाना भारतीयो ने पश्चिम से सीखा होगा।

मोहेंजोदडो और हडप्पा से कुछ अंतरक और अतक मिले हैं जिनमे मिलते-जुलते उदाहरण मिस्र के प्राचीन साम्राज्य के समय के अवशेषो से प्राप्त हुए है। हाल ही मे बहरीन मे की गयी खोदाइयो मे कार्नीलियन के मनके मिले हैं जो सिधु सभ्यता के ही किसी स्थल (या किन्ही स्थलों) से लाये गये होगे। केशपट्ट पर छोटे-छोटे छेदों का अलकरण पश्चिमी एशिया मे बहुत लोकप्रिय था। ऐसे अनेक उदाहरण किश, उर, समर्रा, मियाल्क आदि स्थानो पर मिले हैं। मोहे-

जोदडो की खोदाइयों में भी एक इस तरह का उदाहरण उपलब्ध हुआ है । हडप्पा तथा मोहेंजोदडो से कुंडलाकार (coiled) कंगन सदृश उदाहरण मिस्र, शाह टेपे, हिसार, किश तथा सूसा से भी मिले है ।

मोहेंजोदडो और लोथल से सीमित लेप (रिजर्व्ड स्लिप) वाले बर्तन मिले है । इस तकनीक से बने बर्तन उर और कार्कमिश में भी मिलते है । वूली के अनुसार सभवत इस तरह के बर्तनो का बनाना अनातोलिया से प्रारभ हुआ । सिंधु सभ्यता के कुछ मृद्भाण्डो पर प्राप्त घुंडीदार अलकरण टेल अस्मर के मृद्भाण्ड पर भी प्राप्त है । प्रतिच्छेदी-वृत्त डिजाइन सिंधु सभ्यता मे अत्यंत लोकप्रिय अभिप्राय है । लेकिन यह अभिप्राय टेल हलफ मे चतुर्थ सहस्राब्दी (?) की संस्कृति तथा क्रीट की कला मे भी मिलता है । बलूचिस्तान मे नाल सस्कृति के बर्तनों पर भी यह दिखता है और कोटदीजी मे प्राक्-हडप्पा सस्कृति के संदर्भ मे भी । यह कहना कठिन है कि इस डिजाइन का सबसे पहले प्रयोग कहा हुआ, यह एक दूसरे के प्रभाव की द्योतक है अथवा स्वतत्र रूप से इसका प्रयोग कई सस्कृतियो मे हुआ ।

सिंधु सभ्यता के बर्तनो की तरह पीपल के पत्ते का डिजाइन पेरियानो, घुडई, कुल्ली और मेही मे भी मिलता है। कुल्ली मे हडप्पा प्रकार के बेलनकार छिद्रित भाण्ड बर्तन का प्रकार मिला है । आमरी मे हाल ही मे किये उत्खननो के साक्ष्य के अनुसार वहा पर प्रथम काल का मत्स्य शल्क का अलकरण हडप्पा प्रकार का है । तृतीय काल के प्रारंभ तक यह स्थल पूर्णत सिंधु सभ्यता के लोगो द्वारा आवासित था । मोहेंजोदडो से मेढे की आकृति का बर्तन मिला है जो पीछे से खोखला है । यह सिंधु सभ्यता मे अपनी तरह का एक ही उदाहरण है, किंतु मिस्र, सुमेर, क्रीट और एलम की सभ्यताओ मे जानवरो की आकृतिवाले कई भाण्ड मिले है और इसलिए सिंधु सभ्यता का यह पात्र उन्ही के प्रभाव से प्रेरित होकर निर्मित किया गया लगता है ।

सिंधु सभ्यता मे कुछ मिट्टी के खिलौने स्टूल मिले है जिनके पाये बैल के पाव की तरह है । इस तरह के पायेवाले स्टूल मिस्र और सुमेर की सस्कृतियो मे भी मिलते है । उपर्युक्त तीनो ही संस्कृतियो मे खिलौने चारपाइया भी मिली है जिन पर नारी को लेटा दिखाया गया है । ये स्टूल और चारपाइया परस्पर संपर्क की द्योतक लगती है । सिंधु सभ्यता के ताम्र-पट्ट पर अकित रस्सी सदृश चिह्न मिस्र के तेरहवे-अट्ठारहवे राजवश की कुछ मुद्राओ पर भी है । मैके इस अभिप्राय के अंकन को परस्पर संपर्क के महत्त्वपूर्ण साक्ष्य मानते है । मोहेंजोदडो से शंख से बने हृदय की आकृति के उत्खचन पाये गये है (मैके फ० ए० पृ० 588, फलक

CVII, 5, 15) । ये टेल अस्मर में हड्डी के इसी तरह के उदाहरणों से मिलते जुलते हैं। मोहेंजोदडो से प्राप्त योगी (?) की मूर्ति के शाल पर तिपतिया डिजाइन है। इस तरह का अलंकरण मोहेंजोदडो से प्राप्त कई मनको पर भी है (मैके फ० ए० C, 12, CVI,6 5; CVII, 14) । मोहेंजोदडो के कुछ मनकों पर अंग्रेजी अक 8 की तरह का अलंकरण भी है। दोनो डिजाइन धार्मिक महत्त्व के लगते है और मेसोपोटामिया से लिये गये लगते है जहाँ इस तरह के डिजाइन का काफी प्रचार था।

मातृदेवी की उपासना सिंधु सभ्यता और पश्चिमी एशिया तथा मिस्र मे प्रचलित थी। सिधु संस्कृति की कुछ मातृदेवी की मूर्तियो के सिर पर फाख्ता पक्षी दिखाया गया है जो कि सीरियाई-क्रीट (Syrio-Cretan) संस्कृति की मूर्तियों की विशेषता है।

मोहेंजोदडो मे घिया पत्थर के छोटे-छोटे किंतु आकर्षक खानेदार बर्तन मिले है। इस तरह के बर्तन किश, लगश, अदब, उर, खफजे और मारी मे काफी सख्या मे तृतीय सहस्राब्दी ई० पू० के सदर्भ मे पाये गये है। कुछ ऐसे बर्तन बलूचिस्तान तथा फारस मे भी पाये गये है जिनके अनुकरण मे कुछ मिट्टी के बर्तन भी बने। पिगट का सुझाव है कि इस तरह के बर्तन मकरान (पूर्वी ईरान) मे प्रयुक्त हुए थे। मोडे के अनुसार इस तरह के बर्तनो का प्रेरणा स्रोत मेसो-पोटामिया हो सकता है जहा पर समूचे पात्र मिले है।

मोहेंजोदडो मे हरिताभ-धूसर सेलखडी के बर्तन (फ० ए० फलक CXLII, 45) पर चटाई का डिजाइन है। इस तरह के डिजाइन वाले बर्तन सुमेर तथा एलम मे मिले है। मोहेंजोदडो के शौचालय टेल अस्मर मे अक्कादी स्तरों मे प्राप्त शौचालयो से मिलते है। मोहेंजोदडो से प्राप्त कुल्हाडा-बसूला सिधु सभ्यता मे अपनी तरह का एकमात्र उपकरण है। टेपे हिसार मे भी इसी तरह का उपकरण मिला है।

बहरीन द्वीप से सिधु सभ्यता मे निर्मित पालिश किये फ्लिट का एक बाट मिला है। बिब्बी के अनुसार बहरीन मे इस बाट के होने के दो कारण हो सकते है—(1) व्यापार के सबध मे बहरीन को प्रारभिक प्रेरणा सिंधु सभ्यता से मिली न कि मेसोपोटामिया से, और (2) बहरीन के लोगो का भारत के साथ मेसोपोटामिया से कही अधिक व्यापारिक सपर्क था।

सोवियत मध्य-एशिया के तुर्कमेनिया रिपब्लिक में कैस्पियन सागर के निकट कई स्थानो-आल्तिन डेपे, नामज्गा डेपे, ताहिरबाई डेपे और अनाउ की खोदाइयों से इस क्षेत्र मे सिंधु सभ्यता के प्रभाव पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पडा। उक्त स्थलों

के उत्खननों से सिंधु सभ्यता के आकार-प्रकार वाले कई बर्तन तथा कुछ अन्य वस्तुएं यथा एक मुद्रा, मृण्मय बैल, मनके, नग्न पुरुष आकृतिया और खिलौना गाडी के पहिये तथा ताबे के पात्र आदि मिले है। मिट्टी की बनी खिलौना गाडिया, बैल की आकृकिया एकदम सिंधु सभ्यता से प्रभावित हैं। आल्तिन डेपे की एक कब्र से मिली एक रजत मुद्रा पर एक बाघ का अंकन है जिसके तीन सिर है। इस तरह का अभिप्राय सिंधु सभ्यता की मुद्राओं पर भी मिलता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि हडप्पा सस्कृति के लोग छोटे-छोटे समूहों मे हिंदूकुश पार कर अक्षु घाटी पहुँचे और फिर उत्तरी ईरान से होकर आल्तिन डेपे, अनाउ और नामज्गा मे विकसित ताम्राश्म सभ्यताओं के सम्पर्क में आये। वहा पर धीरे-धीरे शातिपूर्वक स्थानीय सस्कृति की धारा मे मिल गये। स्वराज्य प्रकाश गुप्त का विचार है कि ये संबध 2000 ई० पू० के आसपास रहे होंगे जबकि सिंधु सभ्यता अपने चरम विकास पर थी।

मोहेंजोदडो, हडप्पा, लोथल, देसालपुर और कालीबंगा से सभ्यता के उन्नत युग के द्योतक स्तरो से नवपाषाण संस्कृति के पत्थर की कुल्हाडिया उपलब्ध हुई है। कुछ विद्वानों के अनुसार पत्थर के फलक बनाने की तकनीक को सिंधु सभ्यता वालो ने नवाश्म सस्कृति के धारको मे अपनाया था।

राव के अनुसार गुजरात के सिंधु सभ्यता के उत्तराधिकारी चमकीले लाल रग के भाण्ड वाले लोगो के मालवा और मेवाड के साथ संबंध थे। एरण में रंगपुर IIC और III प्रकार के कुन्द या प्रखर नौतली कटोरे मिले है जिन पर एकदम सौराष्ट्र की परपरा मे चित्रकारी की गयी है। इनके साथ ही कैल्से-डोनी के फलक और चपटी ताबे की कुल्हाडिया भी मिली है।

मेवाड पठार मे हमें आहाड मे ह्रासोन्मुखी लाल रंग के हडप्पा भाण्ड और चपटी कुल्हाडिया लगभग 1800 ई० पू० के और चमकीले लाल भाण्ड लगभग 1500 ई० पू० के तिथि वाले सतहों मे मिले है। और उत्तर में बणास घाटी मे गिलूँद और कुछ अन्य स्थलो मे चर्ट फलक और सिंधु प्रकार के विकसित भाण्ड काले-लाल भाण्ड के साथ मिले हैं। कुछ हडप्पा प्रकार के आकार वाले बर्तन भी मिले है। उज्जैन के समीप कायथा मे रगपुर IIC प्रकार के भाण्ड मिले है। उज्जैन जिले मे ही मनोति (Manoti) में परवर्ती हडप्पा भाण्ड के नीचे सोथी प्रकार से मिलते-जुलते बर्तन पाये गये है। इसका अर्थ हुआ कि प्रारंभिक हड़प्पा सभ्यता के लोगो ने वहा बस्ती नही बसायी। एस० ए० साली ने कई परवर्ती सिंधु सभ्यता कालीन कुछ उपकरण प्रकार महाराष्ट्र के धूलिया जिले मे सावल्दा, काओठा (Kaotha) और धूलिया आदि स्थलो मे पाये हैं जो इस बात के द्योतक है कि उनका परवर्ती सिधु सभ्यता के लोगो से संबंध था।

दक्षिण की ओर प्रवरा नदी के तट पर स्थित नेवासा और भीमा नदी के तट स्थित चांदोली मे सौराष्ट्र के सिधु सभ्यता के बाद के चमकीले लाल भाण्ड के प्रयोग-कर्ताओं के साथ सपर्क के सक्ष्य हैं। गोदावरी पर स्थित नासिक और जोर्वे में प्रथम सहस्राब्दी के प्रारंभ मे चपटी ताम्र-कुल्हाडिया मिली है।

गोदावरी घाटी में नेवासा और दाइमाबाद और बेलारी जिले मे टेक्कल-कोटा में सिंधु प्रकार की तकनीक से पत्थर के फलक बनाने के साक्ष्य मिलते है। दक्षिणी कृष्णा और पेन्नार की घाटी मे सिगनपल्ली, रामपुरम, शिववरम्, पतपट्ट और पुसरूपाडु में नवपाषाण-युगीन लोगो द्वारा अल्पमात्रा मे ही सही, परवर्ती हड़प्पा टेक्नीक में बने और रगे बर्तन मिले है। सिगनपल्ली मे सेलखडी और शंख के बने 'बिब्र' मनके हडप्पा प्रकार के है। ब्रह्मगिरि, मास्की, पिक्लहाल, हल्लूर के प्रारंभिक चरण में भी सिधु सभ्यता प्रकार के अवशेष मिले हैं।

ह्वीलर, जोर्वे और नावडाटोली मे प्राप्त चपटी कुल्हाडियों को हड़प्पा संस्कृति के सपर्क का द्योतक मानते हैं। नावडाटोली की कुल्हाड़ियो पर ताम्रसंचय की कुल्हाडियो के समान ही वृत्ताकार गड्ढे मिलते है जिस कारण हमको वे ताम्र सचय सस्कृति के किसी क्षेत्र से आयातित लगती हैं। लोथल की ताम्र मानवाकृति (आ० 16, 13) हमें सिधु सभ्यता मे ताम्र सचय सस्कृति से आयातित मालूम पडती है क्योंकि उस सस्कृति मे इस तरह के बहुत से अवशेष प्राप्त है। कायथा के प्रथमकाल (कायथा संस्कृति) मे प्राप्त तावे की कुल्हाडियो पर भी हमे इसी तरह के वृत्ताकार गड्ढे मिलते हैं और ये भी ताम्रसचय संस्कृति की लगती है।

●

अध्याय 19

अंत

संस्कृति के उद्‌भव और अंत, दोनों के कारणों का निर्धारण करना अधिकाशत. कठिन कार्य होता है। ऐतिहासिक काल की सस्कृतियों के ही बारे मे सर्वमान्य तो अलग बात रही बहुमान्य निष्कर्ष पर पहुँचना भी कठिन होता है। प्रागैतिहासिक और पूर्व ऐतिहासिक काल के लिए तो यह समस्या और भी जटिल हो जाती है। साधारणतया किसी सस्कृति का अत एक नही अपितु अनेक कारणो से होता है, और जहा तक सिंधु संस्कृति का प्रश्न है, यह सोचना कि इतने विशाल और विभिन्न प्रकार के भौगोलिक क्षेत्र मे फैली और अनेक महत्वपूर्ण नगरों वाली इस दीर्घजीवी सभ्यता का अत सभी क्षेत्रों मे एक ही कारण से हुआ होगा, नितात अनुपयुक्त होगा। यही नही, संभवत एक स्थल पर भी इसके अंत के अनेक कारण रहे होगे। निश्चित साक्ष्यों के अभाव मे इस सभ्यता के अत के लिए विभिन्न प्रकार के अनुमान विद्वानो ने लगाये है। इन विभिन्न अनुमानों मे कौन सही है और कौन गलत यह निर्धारण करना सरल नही, और न यह ही बताना सभव है कि इनमे से कौन कितनी मात्रा मे उत्तरदायी था।

जैसा फेयरसर्विस ने लिखा है, नागरिक समाज एक जटिल समाज है जिसमें यथास्थिति बनाये रखने के लिए सतुलन आवश्यक है। किंतु स्वय की जटिलता एव परिस्थितियों मे परिवर्तन के कारण यह सतुलन बनाये रखना कठिन होता है और जब सतुलन बहुत बिगड जाता है तो ह्रास के लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं। व्हीलर ने मोहेंजोदडो के अंतिम प्रकाल के स्तरों मे ह्रास के लक्षणों को भलीभाति दर्शाया है। उस काल के भवनों की परियोजना और उनका आकार-प्रकार, दीवारों के निर्माण-कार्य, चबूतरों के निर्माण आदि सभी मे ह्रास के चिह्न नजर आते हैं। अतिम चरण मे टीले पर और विस्तार के लिए जगह नही रह गयी थी और निम्न तल पर मकान बनाना बाढ़ के खतरे को मोल लेना था। जनसख्या बढने के कारण टीले पर विस्तार की संभावना समाप्त होने पर लोगों ने पहले की बनी इमारतों को छोटे-छोटे कमरों में बाटना आरभ कर दिया था और वह भी अधिकाशत लापरवाही से। नये मकानो के निर्माण मे पुराने मकानों की ईंटों का प्रयोग करना शुरू हो गया था। वे लोग पूर्वजों के खडहरों में मकान बनाने लगे थे। यहां (मोहेंजोदडो मे) विशाल अन्नागार के समीप लग-

भग 9.15 मीटर या उससे अधिक ऊचाई पर निम्नकोटि की इमारते बनायी गयी। 'डी के' टीले के 'जी' क्षेत्र के दक्षिणी भाग मे श्रमजीवियों की बस्ती बस गयी थी जिनमें से अधिकाश कुम्हार थे और उनके छह भट्ठे वही पर बना दिये गये थे। पहले नगर के समृद्ध काल मे कुम्हारो ने नगर से बाहर ही भट्ठे बनाये थे। इस प्रकार के निर्माण से स्पष्ट है कि अब नागरिक जीवन, जिसके लिए सिंधु सभ्यता विख्यात है, के स्थान पर देहातीपन पनपने लगा था। और, यह सभी लक्षण वहाँ के निवासियो के रहन-सहन के स्तर की गिरावट के द्योतक हैं। अत मोहेंजोदडो में इस सभ्यता के पूर्ण अत से पूर्व इसके शनै -शनै अत की ओर अग्रसर होने के साक्ष्य उपलब्ध है। मोहेंजोदडो के अलावा हड़प्पा संस्कृति के कुछ अन्य स्थलो हड़प्पा, लोथल, कालीबगा इत्यादि—के अन्तिम चरण में भी ह्रास के चिह्न दिखायी देते हैं।

सिधु सभ्यता तथा मेसोपोटामिया से प्राप्त साक्ष्य इस बात के द्योतक है कि अतिम चरण मे सिधु सभ्यता का विदेशो से व्यापार एकदम कम हो गया था। यह इस बात का द्योतक है कि सिधु सभ्यता का समाज अब कुशल नेतृत्व से वंचित था। सिधु सभ्यता की समृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण विदेशी व्यापार था और इसमें कमी होने से इस सभ्यता के वासियो पर दुष्प्रभाव पडना स्वाभाविक था। विदेशी सपर्क के कम होने से विचारो और उपकरणो के पारस्परिक आदान-प्रदान का अभाव रहा और परिणामस्वरूप सभ्यता मे कूपमडूकता आ गयी होगी और दूसरी सभ्यता की उपलब्धियो, उनके अविष्कारों और खोजो को अपनी सभ्यता मे प्रयुक्त करने के महान् लाभ से वे वचित हो गये होंगे।

जातीय चरित्र के पतन और नैतिक मूल्यो मे अत्यधिक ह्रास की कल्पना इस सबध मे कुछ विद्वानो ने की है। कुछ ने सस्कृति के लोगो द्वारा निरतर बाह्य आक्रमणकारियो से जूझे रहने के कारण अतत. शक्तिहीन होने की बात कही है, तो कुछ के अनुसार राजपरिवार और राजदरबार के षड्यत्रो ने भी इसको क्षीण करने मे सहायता दी होगी। शासको की निरकुशता के विरुद्ध जनता द्वारा विद्रोह की सभावना तथा पूजीपतियो और सूदखोरों के शोषण के विरुद्ध मजदूरो तथा साधारण वर्ग द्वारा विद्रोह किये जाने की सभावना का भी उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त जनसख्या की अनपेक्षित वृद्धि से भी सामाजिक और आर्थिक स्तर मे गिरावट आने की सभावना से इनकार नही किया जा सकता। कुछ ने मलेरिया जैसे रोग के बडे पैमाने पर फैलने पर लोगों का स्वास्थ्य गिर जाने की सभावना भी व्यक्त की है। ऐतिहासिक काल मे ऐसे निश्चित साक्ष्य ज्ञात हैं जब पूरी-पूरी बस्ती मलेरिया के रोग के दुष्प्रभाव से

उजड़ गयी । संस्कृति के तीव्र विकास हेतु जो कार्य लोगों ने किये वे भी कुछ हद तक इसका वातावरण बदलने और अंततः ह्रास के लिए उत्तरदायी बने ।

मोहेंजोदडो, हडप्पा जैसे नगरों की इमारतों के निर्माण एवं पुर्ननिर्माण में करोडों ईंटें खपी होंगी । इन ईंटों के पकाने में लाखों मन लकडी जलायी गयी होगी, जिससे समीपवर्ती क्षेत्र का जंगल तथा वनस्पति विनष्ट हुई और भूमि मे नमी की कमी हुई । चारागाहों का अत्यधिक उपयोग भी हानिकारक सिद्ध हुआ । मवेशियों, विशेषत बकरियो के शताब्दियों तक चरने से हरियाली नष्ट हो गयी । इन बातों से वातावरण पर प्रभाव पडा होगा और वर्षा मे भी थोडी बहुत कमी आयी होगी । नगर के समीपवर्ती क्षेत्र की भूमि मे हर साल मे अधिक से अधिक उपज लेने के प्रयास से भूमि की उर्वरता मे ह्रास हुआ होगा । शायद प्रकृति ने इस सभ्यता के ह्रास मे योगदान दिया । कुछ विद्वानो की धारणा है कि मानसूनी हवाओं के बदलने से भी सिंधु के क्षेत्र मे वर्षा मे कमी आयी ।[1]

मोहेंजोदडो मे हडप्पा सस्कृति के दौर मे ही धीरे-धीरे हरियाली कम होती जा रही थी । व्हीलर का यह मत, कि मोहेंजोदडो के लोग अपने वातावरण को धीरे-धीरे अतिशय उपयोग मे सूखा बना रहे थे और यह परिवर्तित वातावरण स्वय मोहेंजोदडो नगर पर दुष्प्रभाव डाल रहा था, काफी समीचीन लगता है ।

घोष का मत है कि कुछ स्थलो पर आर्द्रता का ह्रास और फलत भूमि की शुष्कता का विस्तार सभ्यता के अंत के लिए महत्वपूर्ण कारण रहा । इस संदर्भ मे वे बताते है कि सरस्वती नदी के क्षेत्र मे हडप्पा संस्कृति के स्थल, जिसके जीवनकाल मे यह नदी निश्चित रूप मे जीवत थी, नदी के तट पर पाये गये, किंतु उनके बाद की सस्कृति–चित्रित धूसर–भाण्ड सस्कृति वाले लोगो के आवास उस स्थल मिले हैं, जो पहले नदी का तल था । यह इस बात का द्योतक है कि इनके इस स्थल पर आने तक नदी सूख चुकी थी । नदी के सूखने का भी उस क्षेत्र मे सूखापन बढाने मे योगदान रहा होगा । उनका कहना है कि सिंधु मे भी कुछ स्थल ऐसे है जहा हडप्पा सभ्यता के अत के बाद भी अन्य सस्कृतियों ने अपनी वस्ती बसायी, किंतु किरथर पर्वत श्रेणियो के समानान्तर जो हडप्पा संस्कृति के स्थल है, उनमे इस तरह के सिंधु सभ्यता के बाद बस्ती बसाने के साक्ष्य नही मिलते । इससे यह सिद्ध होता है कि जलवायु मे प्रतिकूलता आ रही थी । इस संदर्भ मे बीरबल साहनी पुरावनस्पति सस्थान लखनऊ के गुरूदीप सिंह द्वारा की गयी राजस्थान की झीलों के तट से प्राप्त पराग परीक्षणो से

1. विस्तार के लिए देखिए परिशिष्ट 'सिंधु सभ्यता के काल में मोहेंजोदड़ो के क्षेत्र की जलवायु' ।

प्राचीन जलवायु के साक्ष्य प्रस्तुत करना समीचीन होगा। इसके अनुसार लगभग 3000-1800 ई० पू० मे राजस्थान के क्षेत्र मे पर्याप्त आर्द्रता तथा हरियाली थी और 1800 ई० पू० के लगभग शुष्क जलवायु आरभ हुई। तो क्या यह जलवायु परिवर्तन कालीबगा में हड़प्पा सभ्यता के विनाश के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी था ?

नदियों ने भी अनेक बार मार्ग बदला होगा, जिसमे कुछ वस्तिया उजड गयी होंगी। ऐतिहासिक काल मे सिंधु के अनेक बार मार्ग बदलने के लिखित साक्ष्य उपलब्ध हैं। भूकम्प के प्रकोप भी नदियो का मार्ग बदलने मे सहायक रहे होगे। माधोस्वरूप वत्स तो हड़प्पा नगर के विनाश के लिए रावी नदी के मार्ग-परिवर्तन को उत्तरदायी मानते हैं। रावी जो हडप्पा के बिल्कुल समीप थी दूर हट गयी और आज यह लगभग 6 मील की दूरी पर है। जल के स्रोत का इतनी दूर होना हड़प्पावासियो के समृद्धि पर घातक प्रभाव डालने वाला सिद्ध हुआ होगा। नागरिको का यातायात और व्यापार बहुत कुछ नदी के माध्यम मे ही होता था और नदी के दूर हो जाने पर यह कठिन हो गया होगा।

कालीबगा मे सिधु सभ्यता के अवशेषो के ऊपर किसी अन्य सस्कृति के अवशेष नही, अर्थात् सिधु सभ्यता के बाद यह स्थल हमेशा के लिए निर्जन हो गया। बालकृष्ण थापर के अनुसार यहा पर न तो विदेशी आक्रमण, न बाढ और न ही लोथल ओर रगपुर के समान सस्कृति के परिवर्तन से उप-सिधु सभ्यता के होने के साक्ष्य ही मिलने हैं। डेल्स, जिन्होने 1968 मे कालीबगा के क्षेत्र का सर्वेक्षण किया, का कहना है कि घग्गर और उसकी सहायक नदियो का रुख-परिवर्तन और फलस्वरूप उनका गगा और उसकी सहायक नदियो मे मिलना उस क्षेत्र मे सस्कृति के अत का मुख्य कारण लगता है। उनका मत है कि 1750 ई० के आस-पास नदियो के इस तरह के मार्ग परिवर्तन के साक्ष्य प्राप्त होते हैं। लगभग यही तिथि कार्बन-14 विधि से भी कालीबगा के अत के लिए ज्ञात है। निश्चय ही नदियो के रुख के परिवर्तन के कारण बस्तियो मे पीने और सिंचाई के लिए जल का अभाव हो गया होगा। इस कारण इस क्षेत्र मे अनाच्छादन हो गया होगा।[1] इस प्रक्रिया मे कुछ समय लगा होगा और

1 सूरज भान के द्वारा किये सर्वेक्षणो से भी हड़प्पा से पूर्व की संस्कृति, हड़प्पा संस्कृति और हडप्पा से सबद्ध सस्कृतियो की बस्तिया उन स्थलों पर मिली हैं जिनके समीप मे पहले जमुना बहती थी किंतु उस नदी के मार्ग बदलने के कारण जो धीरे-धीरे निर्जन हो गये।

लैम्ब्रिक ने तो सुझाया है कि कदाचित् मोहेंजोदडो से ऊपर (above)

कालीबंगा का साक्ष्य भी इसकी पुष्टि करता है । यहा पर अंतिम चरण मे बस्ती का क्षेत्र पहले से कम हो गया था और गढी वाले टीले और निचले टीले दोनों में ही रक्षा-प्राचीर का उपयोग नही रह गया था ।

नदियों मे वार्षिक बाढ का आना हड़प्पा सस्कृति के लोगो के लिए एक सामान्य विभीषिका बन चुका था । आधुनिक काल मे भी सिंधु में भयानक बाढ आने के निश्चित साक्ष्य उपलब्ध है । एक ऐसी बाढ 1929 मे आयी और बाढ का जल टीले (जिससे कि प्राचीन काल की अपेक्षा अब नदी काफी दूर है) तक पहुँच गया था । और अभी हाल ही मे इस तरह की बाढ आयी । मार्शल के निदेशन मे किये गये उत्खान मे मोहेंजोदडो की विभिन्न सतहों मे बालू के रूप में बाढ के प्रकोप के प्रमाण मिले है । मोहेंजोदडो मे विशेष रूप से स्पष्ट है कि पुर्निर्माण के दौर मे इमारतो को ऊँचे धरातल पर बनाया जा रहा था । यद्यपि इन बाढों से पूरे नगर का डूबना तो कठिन था, क्योंकि भवन निरतर ऊँची सतह पर बनाये जा रहे थे, तथापि नगर के एक बडे भाग का जलमग्न होना साधारण सी बात रही होगी । इससे वहा के लोगो के नैतिक बल मे ह्रास आया होगा । उनके रहन-सहन के स्तर मे गिरावट आना आवश्यम्भावी था । साधारण लोग तो बाढ के बावजूद नगर नही छोडे होगे किंतु सपन्न लोग बाढ से उत्पन्न कठिनाइयों और असुविधाओ के कारण मोहेंजोदडो छोड कर अन्यत्र चले गये होगे । छोटी-मोटी बाढ के बाद तो नगर छोड कर गये लोग शीघ्र लौट आते रहे होगे, किंतु भयकर बाट के पश्चात तोकुछ क्षेत्र के लोगों को काफी समय तक लौटना कठिन हो जाता रहा होगा । मैंके के अनुसार चह्नुदडो मे भी सिंधु सभ्यता के लोगो का उस स्थल को छोडने के लिए बहुत कुछ बाढ ही उत्तरदायी थी । वहा पर अंतिम चरण मे भयंकर बाढ के साक्ष्य रेत की तह से स्पष्ट है । चन्हुदडो के एक टीले के बारे मे मैंके का कहना है कि वहा पर सिधु सभ्यता के लोग किसी तरह कुछ समय तक बने रहे और बाद मे शनै -शनै नष्ट हो गये या उस स्थान को छोड कर अन्यत्र अधिक समृद्ध स्थलों की ओर चले गये । मैंके तो यह भी सुझाते है कि शायद सिंधु नदी मे बाढ इतने विशाल पैमाने पर इतनी अधिक बार और इतने लम्बे समय तक रही हो कि चन्हुदडो के लोग बाढ से रक्षा के लिए ऊँचे स्थलों की ओर गये और शनै -शनै उनकी संस्कृति की विशिष्टता समाप्त हो

सिधु नदी मे अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण व्यपवर्तन से अन्य शोषित स्थानो के लोगों को मोहेंजोदडो आने को विवश किया हो और मोहेंजोदडो की जनसंख्या का संतुलन विगड गया हो, और उनकी समृद्धि और शक्ति का अत्यधिक क्षय हो गया हो ।

गयी। स्तरीय साक्ष्य इस बात के द्योतक है कि जब झूकर संस्कृति के लोग चन्हुदडो आये तो वहा पर सिधु सभ्यता के लोग नही थे।

राव को लोथल और भगत्राव (दक्षिण गुजरात) मे कम से कम दो शोषण बाढों के आने के प्रमाण मिले है। उनके अनुसार एक बाढ लगभग 2000 ई० पू० और दूसरी उसके लगभग एक शताब्दी बाद आयी थी। राव का अनुमान है कि हडप्पा मोहेंजोदडो मे भी भीषण बाढ इसी समय आयी होगी। इमारतों को बाढ मे बचाने के लिए चारो ओर रक्षा दीवार का निर्माण भी किया गया था। भीषण बाढ मे खेती भी नष्ट हो जाती रही होगी और नहरे बालू से पट जाती रही होगी। राव का कहना है कि ऐसे अवसरो पर सिधु घाटी से सिधु सभ्यता के कुछ लोग घग्गर की घाटी और कुछ सतलज की ओर गये। काली-बगा मे ये लोग पहले से ही आवासित क्षेत्र मे भी पहुँचे। रोपड और कुछ अन्य सतलज के समीपवर्ती बस्तिया शायद इन्ही बाढपीडित लोगो ने बसायी थी। मोहेजोदडो लोथल और अन्य नगरो का क्षेत्र पहले से कम हो गया और वहा पर हर क्षेत्र में ह्रास दिखने लगता है।

कुछ स्थलो पर इस बात के प्रमाण मिले है कि भूमिगत जल-तल कुछ ऊंचा हो गया था। सिधु नदी अपने साथ जो मिट्टी बहा कर लाती थी उसके जमाव के कारण नदी का तल ऊपर उठता गया और उसके साथ ही उसके इर्द-गिर्द का मैदानी क्षेत्र भी। यह प्रक्रिया धीमी कितु निरतर रही और कई पीढियो के अतर मे भूमि का तल काफी ऊँचा हो गया होगा तथा नगरो को बाढ का खतरा और बढ गया होगा। जैसा कि व्हीलर ने लिखा है, यदि मानवी अनुशासन मे भी कमी आ गयी हो और सिचाई के लिए बनायी गयी नहरो तथा बाधो के प्रबध मे अनियमितता रही हो तो उससे एक ओर उपज मे कमी आयी होगी दूसरी ओर जलप्लावन के कारण सभ्यता के ह्रास मे और भी तेजी आयी होगी।

डेल्स को अपनी पुरातात्विक खोजो के सदर्भ मे मकरान के आज के समुद्र तट मे कई मील भीतर की भूमि मे प्राचीन समुद्र तट के चिह्न मिले हैं। हडप्पा सस्कृति के तीन महत्वपूर्ण नगर सुत्कगेडोर, सोत्काकोह (परनी नदी के तट पर) और बालाकोट (कराची के उत्तर-पश्चिम लगभग 45 मील की दूरी पर सोनम-पनी के समीप, जिसकी खोज राडक्स ने की है) की प्राचीन स्थिति के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है। आज तो सुत्कगेडोर समुद्र तट से लगभग 56 किमी०, सुत्काकोह 13 किमी० और बालाकोट लगभग 19 किमी० है, कितु यहा पर किये सर्वेक्षण से उपलब्ध साक्ष्यो से ऐसा अनुमान लगाया गया है कि वे समुद्र तट पर ही अवस्थित रहे होगे और जलमार्ग द्वारा व्यापार के लिए

महत्वपूर्ण पडाव रहे होंगे। डेल्स के अनुसार, संक्षेप में तीन प्राकृतिक शक्तियों ने इन नगरों को समुद्र तट से दूर करने मे योगदान किया, वे समुद्र तट की भूमि का सतत रूप से ऊपर उठना, नदियों (दास्त और सादि कौर) की लायी हुई मिट्टी के जमाव से उनके मुहानों का अवरुद्ध होना और स्थान-स्थान पर हवाओं द्वारा रेत का जमा किया जाना। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि समुद्र तल का यह ऊपर उठना लगभग 480 किमी० के मकरान तट तक ही सीमित नही रहा होगा, बल्कि इस प्रक्रिया ने शनै-शनै समीपवर्ती क्षेत्र, यहाँ तक कि सिंधु के निचले भाग को भी प्रभावित किया होगा।

मोहेंजोदडो और अन्य नदी तटवर्ती नगरो के लिए बाढ ही पर्याप्त परेशानी का कारण थी, किंतु इसके साक्ष्य है कि आमरी, मोहेंजोदडो और कुछ अन्य स्थल एक दूसरे प्रकार के जलप्लावन के भी शिकार हुए। मोहेंजोदडो मे जो बारीक बलुई मिट्टी (silty clay) मिली है वह बाढ के बहते हुए पानी का परिणाम न होकर रुके हुए पानी का परिणाम लगता है। इनसे ऐसा लगता है कि ये स्थल सामान्य वार्षिकी बाढ के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार के जलप्लावन से भी प्रभावित हुए।

प्रसिद्ध भारतीय भूगर्भ-शास्त्री एम० आर० साहनी ने काफी साल पहले यह धारणा व्यक्त की थी कि सिंधु सभ्यता के अंत का मुख्य कारण विशाल पैमाने पर, बाढ से भिन्न, जलप्लावन था। उस समय यह मत विशेष चर्चा का विषय नही बना था। लेकिन अब हाल की खोजों से इस मत को काफी बल मिला है। अमेरिका के जल वैज्ञानिक आर० एस० राइक्स ने मोहेंजोदडो में वेधन कर उससे प्राप्त सामग्री का अध्ययन किया। साथ ही उन्होंने अन्य स्थानों का भी परीक्षण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि अरब सागर के उत्तरी छोर पर, सिंधु सभ्यता के काल में विवर्तनिक हलचल के कारण भी कुछ स्तर ऊपर उठता गया और नदियों के मुहाने पर रेत जमा हो गयी थी। पानी समुद्र मे गिरने के बजाय रुकता गया और इस तरह एक झील सी बन गयी। पानी तो फिर भी इस उठे हुए क्षेत्र से काफी मात्रा मे रिस कर निकल जाता रहा होगा, पर कीचड और दल-दल बढती चली गयी होगी। कल्पना यह की गयी है कि ऐसी स्थिति एक से अधिक बार आयी होगी। इससे और बाढों से भी साधारण यातायात मे बडी बाधा पडी होगी। ये नगर व्यापार के केन्द्र थे और देशीय तथा अन्तर्देशीय व्यापार पर इस तरह के पानी और कीचड के जमाव का दुष्प्रभाव पडना और लोगों के आत्मबल का ह्रास होना स्वाभाविक था।

यह मत अपेक्षाकृत कुछ सनसनीपूर्ण और विषय के विशेषज्ञों द्वारा विस्तृत सर्वेक्षण पर आधारित होने के कारण अच्छा खासा चर्चा का विषय बना हुआ

है। लेकिन जितने प्रभावपूर्ण और नाटकीय ढंग से इसका प्रचार हुआ उतने ही तर्कपूर्ण ढंग से इसका खंडन भी हो रहा है। इस मत के खंडन के सिलसिले में लैम्ब्रिक का नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने इस तरह की झील के निर्माण के सबंध में कुछ तकनीकी शकाएं उठायी है। इस प्रक्रिया मे बने बाध के चिह्नों का आज बिल्कुल भी न मिलना निश्चय ही कुछ संदेह उत्पन्न करता है। फिर इस झील के पानी, उसकी कीचड से बने दलदल के बावजूद लोग नगर में कैसे रह सकते थे, जबकि भोज्य सामग्री प्राप्त करना दुष्कर हो गया होगा और यातायात ठप्प होने से अन्यत्र से सपर्क टूट गया होगा। अगर वे जीवट के होते तो सामूहिक प्रयास से बाध तोड कर मुक्ति पा जाते, अन्यथा स्थल छोड अन्यत्र चला जाना ही एकमात्र चारा उनके पास था। निश्चय ही इस मत के सर्वमान्य ही नही बहुमान्य रूप मे भी स्वीकृत होने मे सदेह है। कीचड और दलदल से निरतर जूझते हुए लोग मोहेंजोदडो जैसे विकसित नागरिक सस्कृति के निर्माता हो सकते थे, ऐसा विश्वास करना कठिन है।

अनेक महान् सस्कृतियो के अत का कारण बाहरी आक्रमण भी रहा है। टॉइनबी ने भी लिखा है कि जब सभ्यता मे सपन्नता आती है और आसानी से लोगो की दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति हो जाती है तो वे आरामतलब और विलासी हो जाते हैं। उनके पौरुष मे कमी आ जाती है। उनमे नये सृजनात्मक कार्य करने का उत्साह क्षीण हो जाता है और वे पुरानी लीक पर ही चलते रहते है। वह वर्ग जो सस्कृति के विकास के समय जनता को कुशल नेतृत्व देते रहे थे, अब नेतृत्व के गुणो मे रहित हो जाते है और जनता की श्रद्धा उन पर कम हो जाती है तथा जनता के अनुशासित सहयोग के बिना किसी भी शक्ति के लिए अधिक अवधि तक महान् समस्याओ का समाधान करना संभव नही होता। दूसरी ओर लुटेरो और अन्य शत्रुओ की आखें इन सभ्यताओ की संपन्नता को प्राप्त करने की ओर लगी रहती है। और, जब वे इनकी शक्ति क्षीण देखते है तो आक्रमण कर देते है। कुछ विद्वानो के अनुसार शायद यही बात हडप्पा सभ्यता के सबध मे भी कुछ हद तक सत्य हो, और ह्रासोन्मुखी इस सभ्यता को बाहरी आक्रमण मे अत्यत हानि पहुँची हो। जो विद्वान हडप्पा सभ्यता के अंत के सदर्भ मे आक्रमण की बात करते है, वे इस संदर्भ मे बलूचिस्तान के तीन स्थलो राना घुडई (तृतीय चरण की समाप्ति पर), नाल (झोव संस्कृति के आवास) और डाबरकोट (ऊपरी स्तर)—पर सिंधु सभ्यता के अतिम काल के लगभग समकालीन सस्कृतियो के सदर्भ में अग्निकाण्ड के साक्ष्य की चर्चा करते हैं और इससे यह निष्कर्ष निकालते है कि ये उस समय कुछ आक्रमणकारियों के सक्रिय होने और लूटपाट तहस नहस करने के साक्ष्य लगते है। इस संदर्भ में

इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि मोहेंजोदडो मे जो आभूषण निधियां खुदाई में मिली हैं वे इस बात की द्योतक है कि आक्रमणकारियों से भयभीत होकर लोगों ने अपने स्थान त्यागने से पूर्व आभूषणों को सुरक्षा की दृष्टि से भूमि में गाड दिया ताकि भविष्य मे लौटकर उन्हें प्राप्त कर सकें। लेकिन दूसरे विद्वानो का यह कहना है कि उस समय अगणित आवासित स्थल थे उनमें से केवल तीन स्थलों पर छोटे-मोटे अग्निकाण्ड से सिधु सभ्यता को भी आक्रमणकारियों से नष्ट होने का साक्ष्य मानना ठीक नही। जो आक्रमणकारियों को इस सभ्यता के विनाश के लिए उत्तरदायी मानते है वे भी आक्रमणकारियो की पहिचान के बारे मे एकमत नही है।

कई विद्वानों की धारणा है कि सिंधु सभ्यता अनार्य सभ्यता थी। गार्डन चाइल्ड ने 1934 मे इस सभ्यता के अंत के लिए आर्यो के उस पर हावी होने की संभावना व्यक्त की। व्हीलर ने भी 1946 मे इसी तरह का मत व्यक्त किया, उनके अनुसार लगभग द्वितीय सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य तक सिंधु संस्कृति विद्यमान थी, यद्यपि वह पतनोन्मुख थी, लगभग इसी समय आर्य लोग आक्रान्ता के रूप मे अपनी विजय-वाहिनी के साथ भारत मे आये।[1] उनके अनुसार ऋग्वेद के कुछ मंत्रो मे, जिनकी रचना उन्होने द्वितीय सहस्राब्दी के मध्य मे मानी है, अनार्यों के उनके दुर्ग रूप मे सुरक्षित नगरो का उल्लेख है जिन्हे आर्य विजेताओ ने धराशायी किया था।[2] आर्य अपने देवता इन्द्र से इन शत्रुओ के दुर्गों को नष्ट

1. इस संबंध मे यह उल्लेखनीय है कि एशिया माइनर के बोगाज कोई नामक स्थान मे लगभग चौदहवी शताब्दी ईसापूर्व के लेख मे इन्द्र, वरुण और नासत्य (द्वय) का उल्लेख है जो उस समय आर्यों के उस क्षेत्र मे होने के द्योतक है। बलूचिस्तान के मुगल घुण्डई नामक स्थान मे तिपाया बर्तन, घोडे की घंटिया, छल्ले और चूडिया मिली है, जिनकी तुलना मध्य ईरान मे सियाल्क मे लगभग 1000 ई० पू० की तिथिवाले वस्तुओ से की गयी है। फोर्ट मुनरो की तलवार की तिथि लगभग 1200 ई० पू० आकी गयी है। कुर्रम की घाटी मे प्राप्त छेददार कुल्हाडी का मूल ईरान और काकेशश मे उन्होने माना। व्हीलर के अनुसार ये सब पश्चिम की ओर से लाये गए और आर्य भी भारत में पश्चिम की ओर से ही आये।

2 इन नगरों के लिए 'पुर' शब्द का इस्तेमाल किया गया है जिसका अर्थ दुर्ग भी होता है। एक को विस्तृत दूसरे को चौडा कहा है। कही-कही दुर्गों को, प्रतीकात्मक रूप में (metaphorically) धातु का कहा गया है, और कही शारदी (शरद ऋतु के)। दुर्ग पत्थर के (अश्ममयी) और कच्ची ईंट (?) (आमा) के बने उल्लिखित है।

करने की प्रार्थना करते हैं और इन्द्र को इनका विजेता कहा गया है (पुरंदर)। कुछ विद्वानों के अनुसार इन अनार्य पुरों की पहिचान हड़प्पा एवं मोहेंजोदडो के दुर्गों से की जानी चाहिए। व्हीलर प्रश्न करते है कि ऋग्वेद में उल्लिखित आर्यों के शत्रुओं के पुर (दुर्ग) कहां है या थे ? पुर या दुर्ग हड़प्पा सस्कृति के स्थलों— हड़प्पा, मोहेंजोदडो, कालीबगा इत्यादि को छोड कर किसी अन्य इतनो प्राचीन संस्कृति के संदर्भ मे नही मिलते। यदि यह मान भी लिया जाय कि ये सिंधु सभ्यता के बाद के रहे होंगे, जिन्हे अभी पुरातत्ववेत्ता ढूढ नही पाये, तो हमें कल्पना करनी होगी कि सिंधु सभ्यता के अंत और आर्यों के आक्रमण के बीच मे अल्प काल मे एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण सभ्यता का उदय हुआ जिसमे काफी मजबूत दुर्ग बनाये गये और जिन्हे आर्यों ने विजय किया। किंतु यह मत अधिक तर्कसंगत नही लगता।[1]

मोहेंजोदडो में सिंधु सभ्यता के विनाश के लिए आर्य विजेताओ को दोषी ठहराते हुए व्हीलर साक्ष्य के तौर पर मोहेंजोदडो के अतिम स्तर से प्राप्त स्त्री, पुरुष एव बालकों के ककालो का, जिनमें कुछ पर पैने शस्त्र के घाव के निशान है और जो संभवत सामूहिक रूप से मौत के घाट उतारे गये थे, का संदर्भ देते है।[2] ऐसा लगता है कि जीवन-रक्षार्थ भागते समय, कोई जीने पर चढते समय,

1. लेकिन इस संदर्भ मे यह उल्लेख भी समीचीन होगा कि कुछ लोग सिंधु सभ्यता को ही आर्यो की सस्कृति मानते है, और अब कोटदीजी और कालिबंगा मे सिधु सभ्यता के पूर्व की संस्कृति के सदर्भ मे किलेबदी का साक्ष्य मिलना उनके पक्ष मे एक और तर्क प्रस्तुत करता है। जैसे साकलिया का कथन है, अब केवल आर्यो को ही 'पुरदर' (पुरो का भेत्ता) सज्ञा देना ठीक नही क्योकि स्वय सिधु सभ्यता के लोगो द्वारा पूर्व सस्कृति के दुर्गों का भेदन किये जाने की सभावना से इकार नही किया जा सकता।

मोहेंजोदडो मे कुल अडतीस नर-कंकाल मिले है। इसमे पाच तो समूहो मे और एक अलग मिला है। मार्शल के निर्देशन मे जो उत्खनन हुए थे, वे परतो के आधार पर नही किये गये थे अत इन नरकंकालो का ठीक ठीक तिथि निर्धारण कठिन है। लेकिन व्हीलर ने कहा है कि कम मे कम तीन समूह (I)-(III) ऐसे है जो निश्चित रूप से समकालीन है और अतिम चरण के है। (I) 'डी के' क्षेत्र मे एक सार्वजनिक कुएँ वाले कमरे मे चार ककाल मिले है। इस कुएँ मे जाने के लिए जो सीढिया है दो उसमे पडे थे जैसे कि भागने का भरसक प्रयास करते हुए मारे गये हो। दो कंकाल समीप ही थे। मैके के विवरण के अनुसार ये अतिम प्रकाल के है और निश्चित रूप से हत्या के शिकार हुए थे। (II) 'एच आर' क्षेत्र मे घर न V मे तेरह ककाल मिले जो वयस्क पुरुष, स्त्री

कोई सडक पर ही और कोई मकान के भीतर ही मार डाले गये । मृतकों के शव बिना किसी उचित शवोत्सर्ग के पडे रह गये, मानों उनके निकट संबंधी भी नही रहे हों जो कम से कम उनका अंतिम संस्कार तो करते। उनके मतानुसार ऐसी संभावना है कि लगभग तृतीय सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य से कुछ पूर्व भारत मे आर्यों के आक्रमण ने हड्प्पा संस्कृति का विनाश किया । मानों बर्बर

और बच्चों के है, जिनमे से कुछ के शरीर पर आभूषण भी पाये गये हैं । इनमें से कुछ पर तलवार जैसे पैने शास्त्र से घाव किये जाने के निशान है जो अनुमानतः उनकी मृत्यु के कारण बने । (III) डेल्स ने 'एच० आर०' क्षेत्र के उत्खनन में 1964 मे 5 नरकंकाल पाये जो अंतिम चरण के दीवारों के मध्य बिना उपयुक्त रूप से दफनाये पडे थे और किसी भयानक विपत्ति के शिकार हुए थे। (IV) 'वी एस ' क्षेत्र मे छह नरककाल (जिनमे से एक बच्चे का है) बिखरे पडे थे । इनके विषय मे विस्तृत जानकारी का अभाव है । (V) 'एच आर' क्षेत्र में पडा एक ककाल । (VI) 'डी के' क्षेत्र में नौ कंकाल, जिनमे पाच बच्चों के थे अस्त-व्यस्त रूप मे पडे मिले। इस समूह के साथ दो हाथी दात मिले । मैंके का मत है कि इनमें से कुछ हाथी दात का कार्य करते थे जो आक्रमण के समय हाथीदात लेकर भागना चाहते थे, पर मार डाले गये । उनका यह भी कथन है कि मृत्यु के बाद इन्हे जल्दी में ढक दिया गया । कंकालों में एकमात्र यही समूह है जिसमे शवों को ढकने का प्रयास किया गया था, अन्य तो खुले ही छोड दिये गये थे । व्हीलर का अनुमान है कि इन कंकालों का नगर के बीच मे यों ही पडे रहना इस बात का द्योतक है कि इन हत्याओं के वाद नगर मे बस्ती नही रही। गढी वाले टीले मे इस तरह के कंकालों का न मिलना इस बात का द्योतक है कि उसकी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण आक्रांता उसमे कुछ समय तक रहे, वहा पर विजेताओ ने इस तरह से हत शवो को हटा दिया था । उपर्युक्त शवों का पूरा पूरा कंकाल मिलना इस बात का द्योतक है कि पशु-पक्षियों ने इन्हें नोचा नही । व्हीलर का मत है कि सभवतः आक्रांत नगर मे यत्र-तत्र छिटपुट आग जलते रहने के कारण ये जानवर शायद इन शवों तक नही पहुँच पाये । यह भी संभावना व्यक्त की गयी है कि शायद प्लेग जैसी बीमारी के फैलने से लोग नगर छोड कर कुछ समय के लिए चले गये लेकिन कुछ असमर्थ बचे रह गये । कुछ कंकाल, जिन पर शस्त्रों के प्रहार के निशान नही है, ऐसे ही असमर्थ बीमार लोगों के हो सकते है । डेल्स भी आक्रमणवाले मत मे विश्वास नही करते, उनके अनुसार हजारो लोगों की बस्ती मे थोडे से लोगों का आकस्मिक आपत्ति से मृत्यु को प्राप्त होना कोई आश्चर्य की बात नही । वे इस बात की भी सभावना मानते है कि ये बाढ़ की विभीषिका के शिकार हो सकते थे ।

आक्रमणकारियों को नगर जीवन से कोई वास्ता ही नही था, वे तो नये प्रदेश प्राप्त करने और लूटपाट मे ही रुचि रखते थे। व्हीलर ने मोहेंजोदडो के विषय मे लिखा है—ह्रास दीर्घीकृत और क्रमिक रहा और अंत विध्वंसात्मक (decline was long drawn out and progressive, and the final fall catastrophic)।

हडप्पा मे सिधु सभ्यता के अंत के बारे में भी ह्वीलर ने कुछ मोहेंजोदडो की तरह की धारणा व्यक्त की है। इस संबंध में यह भी सुझाव दिया गया है कि हडप्पा की पहचान ऋग्वेद मे उल्लिखित हरियूपिया से की जानी चाहिए, जहा पर सभवत आर्यो ने अनार्यो पर विजय पायी थी। इस संदर्भ में व्हीलर ऋग्वेद के संदर्भ का उल्लेख करते है जिसके अनुसार वृचीवन्तों जिनका उल्लेख इद्र के शत्रुओ के रूप मे हुआ है (और इसलिए जिसे हम अनार्य मान सकते है), को अभ्यावर्तिन चयमान ने पराजित किया। व्हीलर ने आर्यो का तादात्म्य कब्रिस्तान 'एच' संस्कृति के लोगो से किया था, किंतु ब्रजवासी लाल ने जब तर्कों से स्पष्ट किया कि स्तर विज्ञान के साक्ष्य के आधार पर यह कब्रिस्तान 'एच' हडप्पा सस्कृति के कब्रिस्तान 'आर-37' के न केवल बाद का है अपितु दोनो के बीच काल-व्यवधान भी है[1], तो व्हीलर भी अब अपने पूर्व मत पर अधिक बल नही देते। अपनी पुस्तक 'Early Indus Civilization' मे मैके ने लिखा है कि मोहेंजोदडो का अंत 17वी शती ईसवी पूर्व में हुआ, और यह ध्यान देने योग्य बात है कि उनकी यह धारणा कार्बन–14 विधि से प्राप्त तिथियो के साक्ष्य के बहुत निकट है।[2] उनका यह कहना है कि इसी समय बेबोलीनिया पर Hyksos लोगो का आक्रमण हुआ और ईरान मे इसी समय प्रथम बार इण्डो-ईरानी (आर्य) लोगो ने पदार्पण किया। निश्चय ही मैके भी बाहरी आक्रमण को काफी हद तक मोहेंजोदडो के पतन के लिए उत्तरदायी समझते है। उनके अनुसार मोहेंजोदडो मे धातुओं के उपकरणो (बर्तन इत्यादि) के जो संचय मिले है वे इस बात के द्योतक है कि आक्रमण की आशका से लोग इन्हे गाड कर अन्यत्र चले गये और फिर दुर्भाग्य से लौट न सके।

मोहेंजोदडो से 130 कि० मी० की दूरी पर चन्हुदडो मे भी हडप्पा सस्कृति के अत के लिए कुछ विद्वानो ने आक्रमणकारियो को उत्तरदायी बतलाया है लेकिन इसके निश्चित साक्ष्य नही है और दूसरी ओर इस बात के साक्ष्य है कि अतिम चरण मे यह स्थल भयानक बाढ से ग्रसित हुआ। यहा पर झूकर नामक

---

1 विस्तार के लिए देखिए परिशिष्ट 'उत्तरकालीन संस्कृतिया'।

2. यद्यपि उन्होने यह मत तब व्यक्त किया था जब कार्बन–14 विधि ज्ञात नही थी।

संस्कृति के लोग सिधु सभ्यता के बाद कुछ अतराल से आये जिस कारण उन्हे इस सभ्यता के विनाश के लिए उत्तरदायी मानना ठीक नही लगता। इस संस्कृति की सांस्कृतिक सामग्री सिंधु सभ्यता की तुलना मे निम्नकोटि की है। इसके बाद झांगर लोगों ने कुछ अंतर के बाद चन्हुदडो को अपना निवास बनाया।

सिंधु सभ्यता के अत के संदर्भ मे उसके सौराष्ट्र और नर्मदा के समीप की बस्तियों की कहानी कुछ भिन्न रही। रंगपुर, लोथल आदि मे प्राप्त अवशेषों से निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि वहा ह्रासोन्मुखी संस्कृति शनै.-शनै. कुछ परिवर्तित होकर पर्याप्त काल तक जीवित रही। सिंधु सभ्यता मे चमकदार लाल रंग के मृद्‌भाण्ड काफी संख्या मे बनने लगे जिनपर चित्रण के कुछ अभिप्राय सिंधु सभ्यता के बर्तनों पर अकित अभिप्रायों मे भिन्न थे। पकी ईंटों के स्थान पर कच्ची ईंटों का प्रयोग हुआ। अब चकमक पत्थर (फ्लिंट) की जगह जैस्पर के फलक बनने लगे। इन स्थलों पर बस्ती एक छोटे क्षेत्र तक सीमित रही और उसमे स्वच्छता का प्रबंध नगण्य था लेकिन गुजरात और मध्य-भारत मे द्वितीय सहस्राब्दी के मध्य और उससे पूर्व कुछ समानातर किनारेवाले अश्म-फलक मिले है जो सिंधु सभ्यता के अश्म-फलकों से मिलते जुलते है। रोपड और विशेषतः आलमगीरपुर में ह्रासोन्मुखी सिंधु सभ्यता के स्थल है। आबखेडी और बडगाव से भी कुछ ऐसी सामग्री मिली है जो ह्रासोन्मुख हडप्पा संस्कृति से कुछ मिलती जुलती है। इनमे खडित मृद्‌भाण्ड और मृण्मूर्तिया उल्लेखनीय है। इन स्थानो मे ताबे के उपकरण तो मिले, किंतु पत्थर के उपकरण नही मिले।[1]

●

1 कुछ विद्वानों का मत है कि गेरुए रंग के मृद्‌भाण्ड, जो कई स्थानों मे मिले हैं, वास्तव में ह्रासोन्मुखी सिधु सभ्यता के लोगों के ही मृद्‌भाण्ड है अतरंजीखेडा मे इनकी छोटी ग्रामीण बस्ती और ताबे के कुछ उपकरण भी मिले है। यही लोग ताम्र निधियो के निर्माता भी थे (देखिए परिशिष्ट 'उत्तरकालीन संस्कृतियां')।

परिशिष्ट 1

प्राचीन मेसोपोटामिया, मिस्र और सिंधु की ताम्र-पाषाण संस्कृतियां—कुछ समानताएं और विशिष्टताएं

सिंधु सभ्यता के निर्माता सुनियोजित नगर-व्यवस्था और सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रति सजग थे। हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो जैसे नगरो में भवन-निर्माण पक्की ईंटो से किया गया जबकि अधिकाश अन्य स्थलों पर कच्ची ईंटो से। वे विभिन्न पशुओं को पालते, कृषि करते और स्थल और जल-मार्गों द्वारा व्यापार करते थे। वे सोना, चादी, ताबा, टीन का उपयोग आभूषणों, अस्त्र-शस्त्रों और अन्य उपकरणो के लिए करते थे। उनके बर्तन, चाकनिर्मित थे और कुछ विभिन्न अभिप्रायों मे चित्रित है। वे काचली मिट्टी, हाथी दाँत, विभिन्न प्रकार के कीमती पत्थर, शख और मिट्टी के आभूषण और अन्य उपकरण बनाते थे। ये मुद्राओं का प्रयोग करते थे और विशिष्ट प्रकार की लिपि मे लेख लिखते थे जो अभी तक पढे नही गये। सिंधु सभ्यता ताम्र-पाषाण सस्कृति थी, अर्थात् इसमे पाषाण का प्रयोग तो पाषाण युग से दाय भाग के रूप मे मिला था किंतु साथ ही ताबा, कासा, सोना, चादी तथा कुछ अन्य धातुओं का प्रयोग आरभ हो गया था। किंतु उस संस्कृति के लोग लौह के प्रयोग से अपरिचित थे। उपर्युक्त बाते मिस्र और मेसोपोटामिया की प्राचीन संस्कृतियों पर भी लागू होती है। प्राय सभी महत्त्वपूर्ण ताम्र-पाषाणयुगीन सस्कृतियों का विकास नदियों की घाटियों मे हुआ। नदियो की घाटियो मे सस्कृतियो के पनपने के कई कारण थे। नदिया अपने साथ लायी मिट्टी से भूमि को उपाजाऊ बनाती है और सिंचाई के लिए पर्याप्त मात्रा मे जल प्रदान करती है। उनके माध्यम से नौकाओं पर आवागमन हो सकता है। जिस तरह मिस्र मे नील, मेसोपोटामिया मे दजला-फरात नदियों का वहा की संस्कृति के विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, उसी प्रकार पंजाब तथा सिंध मे सिंधु तथा उसकी सहायक नदियो ने भी सिंधु सभ्यता के विकास मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।[1]

---

1 स्वयं मार्शल ने सुझाव दिया था कि अगर भविष्य मे सभ्यता का विस्तार सिंधु से दूर स्थलों मे सिद्ध हो जायगा तो शायद 'सिंधु सभ्यता' के बनिस्पत

वातावरण और मानवीय अध्यवसाय की भिन्नता के फलस्वरूप विभिन्न संस्कृतियों के विकास मे भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन ताम्रपाषाण संस्कृतियों के विकास में विभिन्न जाति-प्रजातियों के लोग सहायक थे। उनकी लेखन शैली उनके देवी देवता, सामाजिक स्थिति और उनकी नैतिक मान्यता में अंतर होता स्वाभाविक था। किंतु स्थानीय आवश्यकताओं और सुविधाओं के कारण इन सस्कृतियो का विकास एक-सा न होते हुए भी उनके विचारसूत्र मे पर्याप्त समानता पायी जाती है। मिस्री, सुमेरी, क्रीट और सिंधु सभ्यताओं मे विचारों की अभिव्यक्ति के लिए लेखन-कला अपनायी गयी और उनमे चित्र-शैली का पर्याप्त प्रयोग हुआ, किंतु उनके लिपि-चिह्न भिन्न रहे। सिंधु और मेसोपोटामिया दोनो की सभ्यताओ मे लोग कताई-बुनाई करते थे, किंतु हडप्पा सस्कृति वालो ने वस्त्रों के लिए कपास का प्रयोग किया, नील की घाटी मे सन (फ्लेक्स) को वरीयता दी गयी। इसी तरह मृद्‌भाण्डो पर चित्रांकन सभी सस्कृतियो में हुआ किंतु चित्रांकन की विधा एव विषय मे पर्याप्त भिन्नता रही।

सिंधु सभ्यता का सुमेरी और मिस्री सभ्यताओ की भांति अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। शि० रंगनाथ के इस कथन मे कुछ सच्चाई दिखती है कि सिंधु सभ्यता के लोगों ने अपनी सस्कृति की विशिष्टता को विदेशी संस्कृति के प्रभाव से बलपूर्वक बचाया। सुनियोजित नगर व्यवस्था, सार्वजनिक स्नानागार, विशिष्ट प्रकार की अभिलिखित मुद्राएं और विशिष्ट प्रकार के मृद्‌भाण्ड और उन पर अलंकरण की विधा सिंधु सभ्यता को प्राचीन विश्व संस्कृति के इतिहास में एक अलग स्थान प्रदान करते हैं। सिंधु सभ्यता की मूर्तियां भी अपनी विशिष्टता लिए है जो अन्य सभ्यताओं की कृतियो मे अलग पहचाने जाते है। मिस्र और मेसोपोटामिया मे साधारण जनो के भवन तो साधारण कोटि के किंतु राजाओ की कब्रें और देवताओ के मदिर अत्यत वैभवशाली बनाये गये थे। सिंधु सभ्यता के नगरों के साधारण जनों के भवन मेसोपोटामिया और मिस्र के नागरिको के भवन की तुलना मे कही विशाल और आरामदेह है, लेकिन भव्य कब्रो और विशाल मंदिरों का, जो मिस्र और मेसोपोटामिया के स्थापत्य की विशिष्टता है, सिंधु सभ्यता मे नितात अभाव है। अन्य सभ्यताओं के धर्म से

भारतीय सभ्यता अधिक उपयुक्त होगा। हाल ही में एम० आर० मुगल ने इस सभ्यता के लिए 'विशाल सिंधु सभ्यता' (Greater Indus Civirlization) नाम सुझाया है। पुरातात्विक खोजों से प्रमाणित हो चुका है कि भारत मे गंगा-यमुना और ट्रास-काकेशिया मे अक्षु नदी का योगदान भी मानवी कार्यकलापो एवं संस्कृति के विकास में कम नही रहा।

सिंधु सभ्यता के धर्म मे कुछ समानता अवश्य लगती है किंतु यह समानता मात्र ऊपरी है, और सिंधु सभ्यता की इससे अधिक विशिष्टता यह है कि वह परवर्ती हिंदू धर्म के कितने ही मुख्य तत्त्व लिये हुए है। जैसा मार्शल का कहना है, संभवतः कुछ वस्तुओं की खोज या अविष्कार सिंधु घाटी मे हुआ होगा और कुछ का इतर प्रदेशों मे, फिर इन स्थानों मे उनका अन्यत्र प्रसार हुआ होगा। यह भी सभव है कुछ सभ्यताओ के निर्माताओ के आदि पूर्वज एक ही थे जिनसे इन्होंने दाय के रूप मे विचार प्राप्त किये किंतु अपनी सूझबूझ से विभिन्न परिस्थितियो मे आवश्यकतानुसार परिवर्तित परिवर्द्धित कर उसे अमली जामा पहनाया।

•

परिशिष्ट 2

सिंधु सभ्यता से पूर्व की कुछ संस्कृतियां

सिंधु सभ्यता के उदय से पूर्व अफगानिस्तान, बलूचिस्तान एवं सिंध मे कई संस्कृतिया पनपी । इन सस्कृतियों का वर्गीकरण का मुख्य आधार उनके भाण्डों का आकार-प्राकार तथा चित्रण शैली और अभिप्राय है । इन संस्कृतियों के उद्-घाटन करने वाले विद्वानों मे स्टाइन, मजुमदार, डिकार्डी, रास, फेयर सर्विस, डेल्स एवं कसाल मुख्य है । विद्वानों ने इन सस्कृतियो से संबंधित सामग्री का समाकालित अध्ययन कर उनका वर्गीकरण, कालनिर्धारण और उनका सास्कृतिक महत्त्व दर्शाया है ।[1]

दक्षिणी अफगानिस्तान मे स्थित मुण्डीगाक की सांस्कृतिक सामगी को उत्ख-ननकर्ता कसाल ने छह प्रकालो मे बाटा है । प्रथम काल के प्रथम चरण मे हाथ से बने गुलाबी भाण्ड प्रयुक्त हुए । द्वितीय चरण मे पश्चिमी एशिया की सस्कृति से प्रभावित चाक-निर्मित मृद्भाण्ड प्रचलन मे आये और ताबे का उपयोग शुरू हुआ । इस काल के अतिम चरण मे आमरी सस्कृति के सपर्क के साक्ष्य मिलते है । द्वितीय काल मे सस्कृति का स्वतत्र विकास अधिक और पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव गौण हो गया । ताबे की सुइया, रीढदार कटार, सेलखडी की अलकृत मोहरे बनने लगी । तृतीय काल के मृद्भाण्डों तथा अन्य उपकरणों में विविधता है जो विभिन्न संस्कृतियों के प्रभाव का द्योतक है । तांबे की हत्थेदार छेदवाली कुल्हाडी और बसूले पाये गये । द्विरंगी भाण्ड (जो आमरी संस्कृति की विशेषता है) और बहुरंगी भाण्ड (जो नाल सस्कृति की विशेषता है) प्रयोग मे आये । मुण्डीगाक का यह काल नामज्गा II अ और अनाउ II का समकालीन था । क्वेटा प्रकार के भाण्ड भी मिले । सीस्तान के सहर-ए-सोख्ता I से संपर्क के साक्ष्य मिलते है। इस काल की तिथि लगभग 2600 ई० पू० है । चौथे प्रकाल मे आवास मे विस्तार हुआ । प्रासाद, मंदिर और रक्षा-प्राचीर का निर्माण नागरिक

1. पिगट ने बलूचिस्तान एवं सिंध की प्राचीन संस्कृतियों को भाण्डों के आधार पर दो वर्गों मे बाटा—(1) लाल भाण्ड उत्तरी वाले क्षेत्र और (2) पाण्डु रग के भाण्ड वाले क्षेत्र । किंतु यह देखा गया है कि लाल भाण्ड बहुल क्षेत्र मे कुछ स्थलो पर पाण्डु भाण्ड मिले है, और पाण्डु भाण्ड बहुल क्षेत्र के कुछ स्थलों मे लाल भाण्ड मिले है ।

जीवन के विकास के द्योतक है। मृद्भाण्डों के कुछ अभिप्राय ईरानी संपर्क के और लोहित (स्कारलेट) भाण्ड पश्चिमी एशिया के प्रभाव के द्योतक है। कुल्ली शैली के अनुरूप पशुओ को स्वाभाविक से कही अधिक लम्बा दिखाया गया है। लेकिन कुल्ली भाडों पर पशुओं के साथ वनस्पति भी दिखलाई गई है जबकि मुण्डीगाक के पात्रों पर नही। सिंधु सभ्यता से प्रभावित कुछ मातृदेवी की मूर्ति, मृद्भांड और पत्थर का पुरुष का सिर मिला।

दक्षिण-मध्य अफगानिस्तान मे स्थित देह मोरासी घुंडई मे दुप्री द्वारा किये उत्खनन मे एक विकसित गाव के अवशेष मिले है। कच्ची ईटो की चहारदीवारी के भीतर कुछ निर्माण-कार्य, मृद्भाण्ड, ताबे की नली और अलाबास्टर का प्याला मिला। सीस्तान के सदृश पाण्डु पर काले चित्रणयुक्त, धूसर भाड, तकुए, ताबे के टुकडे, पत्थर की खानेदार मुद्रा, कंघेदार कुदाली और झोब सस्कृति की तरह की मातृदेवी की मूर्तिया मिली। बलूचिस्तान मे ईरानी तत्वो के प्रसारण मे इस स्थल की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

सीस्तान प्राचीन काल मे पूर्व और पश्चिम को जोडने वाली कडी रहा है। यहा हेल्मद नदी के डेल्टा मे तोसी द्वारा सहर-ए-सोख्ता मे किये गये उत्खनन से ज्ञात चार प्रकालों वाली सास्कृतिक सामग्री मे प्रारभ से लेकर अंत तक निरंतरता रही। इन प्रकालो की रेडियो-कार्बन तिथिया क्रमश. 3500-3200; 2660-2400, 2400-2380 तथा 1800-1530 ई० पू० ज्ञात हुई है। प्रथम प्रकाल मे ईटो से निर्मित इमारतो के बारे में अल्प सूचना मिली। द्वितीय प्रकाल मे कई कमरों वाले भवन बने। कई कीमती पत्थरो के मनके मिले है बलुए पत्थर और अलाबास्टर के बर्तनों पर मेसोपोटामिया का प्रभाव लगता है। उत्खननो से मृण्मय स्त्री (मातृदेवी), पुरुष और पशु-आकृतिया मिली है। बैल की लगभग 200 मृण्मूर्तियो का मिलना उसके धार्मिक महत्त्व का द्योतक लगता है। मृद्भाण्ड और कुछ अन्य उपकरण पश्चिमी एशिया, मुण्डीगाक, ईरानी संस्कृति एव सिधु सस्कृति के सपर्क का साक्ष्य प्रस्तुत करते है।

ईरानी मकरान के बामपुर नामक स्थल पर, जिसे पहले स्टाइन ने खोदा था, डिकार्डी के उत्खननो मे प्रथम से चतुर्थ काल तक मुख्यत. दूधिया रग के लेप वाले लाल भाण्ड मिले। तृतीय काल के डिजाइन मु डीगाक के चतुर्थ काल से मिलते जुलते है और इस तरह दक्षिणी अफगानिस्तान और बलूच ईरानी सीमा मे सिधु सभ्यता से थोडे पहले के चरण में पारस्परिक सबधों के द्योतक है। बामपुर मे चतुर्थ काल के पश्चात् दूधिया लेप के स्थान पर लाल लेप वाले नये भाण्ड पाये गये। अलकरण मे कुछ कुल्ली प्रकार के अभिप्राय भी है, किंतु विशिष्ट कुल्ली प्रकार के गोल आख वाले डिजाइन का अभाव है।

क्वेटा के आस-पास के टीलों पर 'क्वेटा' भाण्ड मिले हैं जो गुलाबी लिए सफेद रंग से लेकर हरीतिमा लिए हैं। इनकी दूधिया या पाण्डु सतह पर नीला-रुण-बभ्रु रंग मे अधिकाशत ज्यामितीय अभिप्राय अंकित मिलते हैं। पशुओं की आकृति वाले चित्रण अत्यल्प है। इस प्रकार के बर्तनों की तुलना चौथी या तीसरी सहस्राब्दी की ईरानी संस्कृतियों से की गई है। मुंडीगाक में ऐसे बर्तन (चतुर्थ काल के) कुल्ली-हड़प्पा प्रकार के बर्तनों से पहले (तृतीय काल मे) पाये गये है।

डिकार्डी के सर्वेक्षण के फलस्वरूप क्वेटा के दक्षिण की ओर और सिंधु के मैदान तक कई टीलों में टोगाऊ प्रकार के मृद्भाण्ड मिले है। ये चाक से बने है। इन पर लाल लेप और पशु-चित्रण है। पशु कभी पूरे दिखाये गये है और कभी केवल उनका सीग मात्र। कुछ चिडियां और मानवाकृतियां भी अंकित है। कुछ स्थलों पर टोगाऊ प्रकार के भाण्ड नाल और कुल्ली भाण्डों वाली सतहों से नीचे की सतहो मे मिले।

क्वेटा घाटी मे स्थित दम्ब सदात के उत्खनन मे सबसे प्राचीन (प्रथम काल) अवशेषो के साथ केची बेग मृद्भाड मिलने से उसे किले गुलमोहम्मद का सम-कालीन माना है। इस काल मे ईंटो से निर्मित वास्तु के अवशेष मिले। द्वितीय काल मे सास्कृतिक निरंतरता रही और घाटी मे विशाल पैमाने पर निर्माण कार्य हुए। तृतीय काल के अवशेष मुडीगाक III से तुलनीय है। इस काल के उप-करणो मे खानेदार मोहरे, पशु-मूर्तिया, तराशे और घिस कर बनाये पाषाण उपकरण, मिट्टी और पत्थर की गोली, कीमतीपत्थरो के मनके और ताबा विशेष उल्लेखनीय है। भाण्ड प्रकार रानाघुडई, सूरजंगल, डाबरकोट इत्यादि से समानता रखता है। झोब सस्कृति की तरह की मातृदेवी की मूर्तिया भी मिली। भाण्डों पर अकित कुछ चिह्नो का सिंधु लिपि से साम्य होना महत्त्वपूर्ण है। निर्माण-कार्यों मे एक अपेक्षाकृत विशाल चबूतरा उल्लेखनीय है।

क्वेटा से जैकोबाबाद जाने वाले मार्ग पर बलूचिस्तानी मैदान मे स्थित पीराक दंब का पता राइक्स ने 1957 में लगाया। कसाल द्वारा 1968 में किये सीमित उत्खनन से बिना व्यवधान के तीन कालो के साक्ष्य मिले। निचले स्तरों से एकागी अलंकरण वाले, पाडु भांड, मध्य प्रकाल मे द्विरंगी मृद्भाड और तीसरे प्रकाल मे काले धूसर और कुछ अन्य प्रकार के भांड के साथ लोहा मिला। यह स्थल ताम्रयुग से लौहयुग में प्रवेश के साक्ष्य के लिए महत्त्वपूर्ण है।

बलूचिस्तान के झालवान और लासबेला की सीमा पर बोरली नदी के दोनों ओर संस्कृति के आवास मिले है जिन्हे एडिथ साहिर समूह नाम दिया गया है।

इस संस्कृति को दो प्रकालों में बाटा गया है। प्रथम चरण मे संस्कृति कुल्ली संस्कृति से प्रभावित रही। मुख्य टीले पर 'जिगुरेट' की तरह का निर्माण कार्य हुआ था जिसमें ऊपर तक पहुँचने के लिए मार्ग था। टीलों पर प्राप्त शिलाखंडों के ढेर मूलतः इमारतो के निर्माण में प्रयुक्त हुए थे। एक शिलाखंड निर्मित कई प्रवेशद्वार वाली विशाल (64 5 मी० × 13 5 मी०) इमारत और एक वृत्ताकार इमारत महत्त्वपूर्ण लगती है। एक क्षेत्र मे 40 से भी अधिक इमारतों का समूह देखा गया है। यहा पर मिस्ट शवाधान के अवशेष भी मिले। द्वितीय चरण मे नाल के समान कुछ मृद्भाण्ड और सिंधु सभ्यता के सदृश मृत्पिड (केक), मृण्मय चित्रित कूबडवाला बैल, मृण्मय चूडिया खिलौना-गाडी इत्यादि पाये गये हैं।

मध्य बलूचिस्तान के सुरब क्षेत्र में अजीरा और स्याह दब की सामग्री का उत्खननकर्त्री डिकार्डी ने पाच भागो मे वर्गीकरण किया है। प्रथम प्रकाल में ईरान की नवाश्मयुगीन सियाल्क सस्कृति की तरह के पाषाण-फलक तथा लाल लेप वाले मृद्भाण्ड मिले। इस काल मे अंजीरा मे अर्धयायावरों की बस्ती बसी जिसकी सादृश्यता किले गुलमोहम्मद II (3500-3100 ई० पू०) मे की गई है। द्वितीय काल मे शिलाखडो की नीव वाली कच्ची ईंटो की इमारतें बनी। किले गुलमोहम्मद II-III की भाति के कुछ बर्तन बने, यथा लाल लेप वाले चमकीले भाड, टोकरी के साचे पर निर्मित भाड और चमकीले धूसर भाण्ड। तृतीय काल के प्रथम चरण मे टोकरी के साचे से बनाए मृद्भाण्ड और टोगाऊ तथा आमरी-केचीबेग प्रकार के बहुरगी मृद्भाण्ड पाये गये। द्वितीय चरण मे पहले के कुछ भाडों का चलन बंद हो गया। एक विशाल मच का निर्माण हुआ जिसका निश्चित प्रयोजन अज्ञात है। तृतीय चरण मे 'जरी' मृद्भाण्ड और नाल सस्कृति के भाड मे मिलते जुलते भाड मिले। आमरी-केचीबेग भाडो के कारण तृतीय काल को किले गुलमोहम्मद के चतुर्थ काल के अत और दब सदात I का समकालीन माना गया है। चतुर्थ काल की सामग्री दंब सादात II के सदृश रही। अजीरा मे अपेक्षाकृत अच्छी तरह तराशे पत्थरों मे कई इमारते बनी। कुछ नाल प्रकार के भाड मिले। कुछ भाडो पर कुल्ली संस्कृति का प्रभाव दिखता है और 'अजीरा' प्रकार के मृद्भाण्ड का सर्वप्रथम ज्ञान हुआ। पेरियानो घुंडई की तरह के आर्द्र और सीमित लेप वाले और रानाघुंडई के तृतीय काल के तृतीय चरण मे पाये गये भाण्डो सदृश डिजाइन वाले भाड मिले।

गोमल घाटी से होकर अफगानिस्तान और भारत का प्राचीन काल से संपर्क रहा था। इस घाटी मे अहमद हसन दानी द्वारा खोजे कई सिंधु तथा प्राग् सिंधु सभ्यता कालीन बस्तियो मे गुमला (जहा उत्खनन भी हो चुका है) विशेष उल्लेखनीय है। गुमला मे सास्कृतिक सामग्री के चार प्रकाल है प्रथम और द्वितीय में

आवासीय निरंतरता रही और जो लोग आकर बसे उन्हें कृषि, तांबे, कांसे और मृद्भाण्डों का ज्ञान था। रहने के लिए उन्होंने झोंपडिया बनायीं। चर्च के लंबे फल, सफेद चित्रित मृद्भाण्डों की परपरा में चित्रित किनारीदार प्यालों का निर्माण हुआ। गुमला के तीसरे प्रकाल की साम्रगी कोटदीजी कालीबंगा के सदृश है। सीगदार देव की आकृति और असंख्य मातृदेवी की मूर्तियां बहुतायत से मिली। चौथे प्रकाल में सिंधु सभ्यता का प्रसार हुआ जिसमें मृत्पिंड (केक), खिलौना-गाडियों के ढाचे और पहिये, चूडिया, बाट, रेखांकित कार्नीलियन मनका, चकमक और चर्ट-फलक उपलब्ध हुए। 'सिंधु' प्रकार की मुद्राएं नही मिली। मकानों की योजना शतरंज के पट की तरह की थी। सिधु सभ्यता का प्रसार तीसरे प्रकाल की बस्ती को जलाने के बाद हुआ था और स्वयं उनकी बस्ती भी अग्निकांड से नष्ट हुई। कुछ हथगोले मिले जो युद्ध मे अस्त्र की तरह प्रयुक्त होते रहे होंगे।

क्वेटा से 3 21 किमी दूरी पर स्थित किले गुल मोहम्मद मे फेयर सर्विस ने 1950 मे खोदाई कराई। उन्होंने यहा की पुरातात्विक सामग्री को दो प्रकालों मे वर्गीकृत किया है। प्रथम काल के स्तरों की दो रेडियो-कार्बन तिथिया 3688 ई० पू० तथा 3712 ई० पू० ज्ञात हुई है। इस प्रकाल की आवासित भूमि पर भेड, बकरी और बैल की हड्डियां इन पशुओ के फालतू होने के द्योतक है। प्रथम प्रकाल के अन्तिम चरण मे कच्ची ईंटों के साक्ष्य मिले है। वे कई तरह के पत्थर के फलक बनाते थे। धातु का प्रयोग सम्भवत उन्हे ज्ञात न था। कुछ घिसी हुई खडित शिलाए मिली है जिन पर अन्न पीसा गया होगा। हड्डी के कुछ सूजे मिले है। किले गुल मोहम्मद के दूसरे प्रकाल के अवशेष पर्याप्त साम्कृतिक विकास के साक्ष्य लगते हैं। अब भाण्ड बनने लगे थे। भाण्डो पर टोकरी की छाप उनके टोकरी की सहायता से बनाये जाने का प्रमाण है। मकानों की दीवालें कच्ची ईटो की थी। धातु प्रयोग के साक्ष्य नही। तीसरे प्रकाल की सामग्री के साथ प्रथम बार ताबे के दर्शन होते है। हाथ से बने बर्तनो के साथ चाकनिर्मित वर्तन भी बने। भाण्डों पर काले या लाल रंग के अलंकरण भी मिलते है। पत्थर के फलक और हड्डियों के सूजे का प्रयोग पूर्ववत रहा। इस प्रकाल के लोग भी अर्द्ध-घुमक्कड ही थे। भोजन चूल्हो पर बनाते थे। पशुओं मे भेड, बकरी, गधा और बैल पालते थे। कुछ हड्डियों की पहचान कतिपय विद्वान घोडे और अन्य गधे से करते हैं। किले गुलमोहम्मद की इस प्रकाल की सामग्री से मिलते-जुलती सामग्री बलूचिस्तान के रानाघुंडई 1 तथा सूर जगल से भी मिली है जो समकालीनता की द्योतक लगती है।

उत्तरी बलूचिस्तान मे रानाघुंडई टीले (जो पिगट के वर्गीकरण के अनुसार झोब संस्कृति का स्थल है) के सर्वेक्षण से रास को पाच प्रकालों के साक्ष्य मिले।

इमारतों के अवशेषों का न होना इस बात का द्योतक है कि प्रथम काल मे यायावर लोग वहाँ रहे इस काल के अनलंकृत भाण्ड, चकमक पत्थर के फलक, हड्डी के सूजे और बैल, भेंड, गधे तथा घोडे की हड्डिया मिली। द्वितीय काल में यहां पर नये लोग आये जिनके बर्तन सुन्दर और चाक से बने थे और उन पर कलात्मक शैली में बैल और हिरन (जिनके पैर काफी लम्बे दिखाये गये है) पाण्डु या लाल रंग से अंकित है। इस संस्कृति की हिसार के प्रथम काल (लगभग 3500 ई० पू०) से कुछ समानता है। द्वितीय काल के बाद यहां पर कुछ समय तक बस्ती नही रही। भवनों के तीन निर्माण चरण तृतीय काल के दीर्घावधि तक चलते रहने के प्रमाण है। मृद्भाण्ड सुन्दर बने किंतु द्वितीय काल से भिन्न थे। कुछ बर्तनो पर लाल सतह पर काले और लाल दुरंगे अभिप्राय अंकित हुए। बहुरेखीय वर्गों के अभिप्राय का प्रयोग आमरी के पात्रों के अधिक निकट है। तृतीय काल के प्रथम चरण की तुलना सूरजंगल के आवास से की गई है। तृतीय काल के द्वितीय चरण मे ऊँचे (सुराही) की तरह के बर्तन मिले है। रानाघुडई तृतीय काल के तृतीय चरण के बर्तनो की तुलना पेरियानो घुडई के बर्तनो से की जाती है। लाल लेप पर काले रग के चित्रण की विधा रही। कुछ पशुओ और मछली का भी चित्रण मिलता है। झोब सस्कृति के कई स्थलो से नारी (मातृदेवी ?) की रौद्र रूप मे मूर्तिया मिली है।

झोब संस्कृति का सम्पर्क एक ओर पुरैतिहासिक ईरान और मेसोपाटामिया की सस्कृतियों और दूसरी ओर परवर्ती चरणों मे सिधु सभ्यता के साथ भी रहा। डाबरकोट की बराबर भुजाओ वाले सलीबनुमा अभिप्राय युक्त हरिताम पत्थर की मुद्रा, एक अन्य स्थल (सम्भवत पेरियानो घुडई) से प्राप्त इसी अभिप्राय वाली अन्य मुद्रा, मोगल घुडई मे कार्नीलियन का रेखांकित मनका, पेरियानो घुडई से लहरदार अलंकरण वाला मिट्टी का कगन—ये सब सिंधु सभ्यता से सपर्क के द्योतक लगते है।

पाण्डु भाण्डों की परम्परा मे आमरी-नाल प्रकार के बर्तनो का महत्त्व-पूर्ण स्थान है जो सिंधु और बलूचिस्तान के कुछ स्थलो पर मिले है। बर्तनों के कुछ ऐसे आकार प्रकार अथवा चित्रण है जो आमरी मे है पर नाल मे नही, अथवा नाल मे है पर आमरी मे नही। लेकिन कई ऐसे तत्व है जो दोनों मे समान है। दोनो ही का पेस्ट अच्छे प्रकार और पाण्डु रग का है। उन पर दूधिया लेप है। दोनों चाक निर्मित है। दोनों पर ही पैनल डिजाइन है। लेकिन नाल मृद्भाण्डो पर पशुओं की आकृतिया, मछली, हिरन और वृषभ है। आमरी मृद्भाण्डों पर पशुओं के अंकन न के बराबर है। ज्यामितीय अलकरण में दोनों में कुछ समानता और कुछ भेद है। आमरी मे चित्रण के लिए लाल और काले

रंग का प्रयोग हुआ है लेकिन नाल में इन दोनों के अलावा पीला, नीला और हरा रंग भी प्रयुक्त हुआ है। पीले और नीले रंग का भाण्ड चित्रण के लिए प्रयोग पूरे प्रागैतिहासिक पश्चिमी एशिया में नहीं मिलता।

नाल और मु डीगाक के भाण्डों मे कुछ समानता है जो दक्षिणी अफ-गानिस्तान से बलूचिस्तान मे प्रभाव के द्योतक हैं। नाल में छेदवाला एक सिंधु सम्यता प्रकार का बाट मिला है। दो ताम्र निधियां मिली है जिनके उपकरणों में आर्सेनिक का अत्यल्प मात्रा मे होना सिंधु सम्यता के ताम्र उपकरणो के ताम्र के स्रोत से भिन्न स्रोत के द्योतक है। नाल मे मिले कब्रिस्तान मे पूर्ण तथा आंशिक दोनो प्रकार के शवोत्सर्ग प्रचलित थे। तीन कब्रों के किनारे कच्ची ईंटे लगी थी। शवो के साथ विभिन्न उपकरण और पशुओं की हड्डिया मिली। एक सेलखडी की मुद्रा पर पावो मे सर्प दाबे हुए गरुड का चित्रण है जो सूसा से लगातार 2400 ई० पू० और टेलब्राक की मुद्राओ के ऐसे अभिप्राय के सदृश है।

1929 मे ननिगोपाल मजुमदार ने सिधु मे सर्वेक्षणात्मक उत्खनन से प्राप्त सामग्री के आधार पर ही आमरी संस्कृति के कुछ चरण सिंधु सभ्यता से पहले और कुछ चरण मे सिधु सम्यता के समकालीन बताया था। बाद मे इसकी पुष्टि हुई एम० कसाल ने 1959-61 मे यहाँ पर पुन उत्खनन कराया। कुल पाच प्रकालो मे प्रथम चार ही पुरैतिहासिक है प्रथम काल के प्रथम चरण में अधिकाश बर्तन हाथ से निर्मित है। चाकनिर्मित बर्तनों के किनारे पतले है। पेस्ट पीला या गुलाबी है। अलकरण ज्यामितीय है। कुछ द्विरगी (काले और लाल) चित्रणयुक्त है। इस काल मे ताबे के टुकडे, पत्थर के फलक, पत्थर की गोलियाँ, मिट्टी के मनके आदि मिले है। स्थायी निवास के चिह्न नही पाये गये। द्वितीय चरण (IB) मे कच्ची ईंटों के घर बने। पहले से चाकनिर्मित बर्तनों की सख्या बढी। चित्रण मे पुराने अभिप्रायों के साथ नए अभिप्रायों को स्थान मिला। 'हीरक' चेक, लटकन, सिरमा और टोगाउ भाण्डो के समान हिरन के सीग आदि डिजाइन, मिलते है। तृतीय चरण (IC) आमरी संस्कृति के चरम विकास का द्योतक है जिसमे द्विरगी और तिरगी चित्रण मिलते है जो IB से ही विकसित है। ID मे सिंधु सभ्यता के तत्त्व दिखते है यथा पशुओ, विशेषतया बैल, का चित्रण, मत्स्य शल्क डिजाइन का बहुलता से प्रयोग और अल्प संख्या मे सिधु सभ्यता के बर्तनो के प्रकार। दूसरे (II) काल मे आमरी प्रकार के भाड बनते रहे किंतु सिंधु सभ्यता की विशेषता वाले बर्तनो की संख्या मे वृद्धि हुई तृतीय काल मे प्रथम तीन चरण सिंधु सभ्यता के चौथा और अंतिम चरण झूकर संस्कृति का। चतुर्थ काल झागर सस्कृति का है।

कुछ विद्वानो ने आमरी सस्कृति के प्रारभ मे स्थानीय ईरानी तत्वो (जो

बलूचिस्तान के माध्यम से पहुँचे) का मिश्रण पहचाना है। प्रथम काल तक उसका अपना अलग व्यक्तित्व है। शनैः शनैः इसमें सिंधु सभ्यता के तत्वों का प्रवेश हुआ। विद्वानों का अनुमान है कि आमरी मे संस्कृति का प्रारंभ तृतीय सहस्राब्दी के प्रारंभिक चरण के लगभग हुआ।

'कुल्ली संस्कृति' नाम कोलवा जिले के इसी नाम के स्थल पर दिया गया है। स्टाइन ने कुल्ली मे सर्वेक्षणात्मक उत्खनन किये थे। कुल्ली सस्कृति का प्रारंभ सिंधु सभ्यता के प्रारभ से पहले हो गया था किंतु यह कुछ समय तक समकालीन भी रही। कुल्ली संस्कृति मे प्राप्त बर्तनों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया गया है –(1) कुल्ली मृद्भाण्ड (2) हड़प्पा प्रकार के भाण्डों के साथ पाये गये कुल्ली प्रकार के भाण्ड और (3) हड़प्पा तथा कुल्ली संस्कृति के पारस्परिक सपर्क के फलस्वरूप विकसित भाण्ड।

कुल्ली प्रकार के बर्तनों में गोल बर्तन, बोतल की आकृति के बर्तन, छोटे सीधे किनारे वाले बर्तन, तश्तरियाँ, साधार तश्तरियाँ और छिद्रित बेलनाकार बर्तन मिले हैं। अंतिम दो आकार सिंधु सभ्यता मे भी मिलते हैं। बर्तन सादे और चित्रित दोनों प्रकार के मिले है। चित्रण काले रंग से है। पशुओं का चित्रण अधिकांशत वृक्षों या वनस्पति के साथ किया गया है। पशु मे अधिकांशत कूबड वाला पशु पर बिल्ली जैसी आकृति और हिरन या बकरी का चित्रण है। बडे पशुओ का स्वाभाविक मे अधिक लबा और लबवत छाया किया दिखाया गया है। बैल को अधिकांशत एक ध्वज मे बधा दिखाया गया है। जो भाव मे सिंधु सभ्यता मुद्राओ पर एक शृंगी पशु के आगे दिखाए ऐसे अभिप्राय से मिलता जुलता है। अन्य अभिप्रायो मे पक्षी, कचीनुमा अभिप्राय, ओमेगा जैसा अभिप्राय, फुल्ल, तिकोन लटकन आदि है। काले रग के साथ लाल रग का भी चित्रण के लिए प्रयोग हुआ है।

कुल्ली सस्कृति की नारी मृण्मूर्तियां विभिन्न आभूषणों से सज्जित हैं और उन्हे धड के नीचे चपटा बनाया गया है। ये गृह-पूजा और देवताओं को चढावे के लिए अभिप्रेत लगती है। पशु मृण्मूर्तियो मे बैल की आकृति सर्वाधिक है और उन पर आडी तिरछी रेखाओ का चित्रण है।

शवोत्सर्ग मे जलाना और गाडना दोनो प्रथाएं कुल्ली संस्कृति में प्रचलित थी। कुल्ली सस्कृति के मेही नामक स्थल मे पात्र शवोत्सर्ग के भी उदाहरण मिले। मेही के कब्रो मे मृद्भाण्ड, मृण्मूर्तियां, दो ताबे के दर्पण इत्यादि वस्तुए मिली। एक दर्पण का हत्था सिर रहित नारी की आकृति वाला है। दर्पण मे निहारते हुए नारी का सिर का अक्ष मानो उसे सिर युक्त बना देता। पिगट ने

इस सुन्दर कल्पना के लिए कलाकार की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कुल्ली संस्कृति के स्थल टोजी और मजेरा दम्ब मे रक्षा प्राचीर से आवास घिरे होने के साक्ष्य मिले है। कुल्ली संस्कृति के स्थलों में भवन निर्माण में पत्थर का प्रयोग हुआ है। मेही में कच्ची ईंटों के प्रयोग के साक्ष्य मिले है। कुल्ली में पत्थर की दीवारों पर सफेद पलस्तर लगाया गया था और वे अंदर की ओर थोडी तिर्यक भी थी। कमरों की रूपरेखा और सीढियों की उपस्थिति मकानों के दुमंजिले होने के साक्ष्य प्रस्तुत करते है। पत्थर के सिलबट्टे मिले है जिन पर अनाज कूटा जाता रहा होगा। पत्थर के फलक (शाही तम्प, मेही), चर्ट का घनाकार बाट, मिट्टी की चूडियां एक सोने का पत्र (कुल्ली) इत्यादि कुछ वस्तुएं सिंधु सम्यता से प्रेरित लगती है। मेही से प्राप्त पत्थर के बर्तन बडे आकर्षक है। इनमें चार खाने है और उनकी बाहरी दीवाल पर बारीकी से वर्ग और छाया का अलंकरण है।

सिंधु-कुल्ली समन्वय के द्योतक चित्रणों के संदर्भ में ओर्नेख घाटी मे स्थित निन्दोवारी नामक कुल्ली संस्कृति का स्थल महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पर कसाल ने उत्खनन कराया। इस स्थल पर दो टीले है। उत्तरी टीला सीढीदार है और दीवाल से विभाजित है। उसके शिखर पर बुर्जनुमा अवशेष है जो मदिर का द्योतक हो सकता है। दक्षिणी टीला छोटा है और इसमें रक्षा-प्राचीर और इतर संस्कृति के बर्तन मिले है। बडे टीले पर सिंधु और कुल्ली प्रकार के मृद्भाण्ड तथा मातृदेवी और वृषभ की मृण्मूर्तिया पायी गयी। कुछ हड़प्पा अभिप्राय कुल्ली शैली मे चित्रित है। उदाहरणार्थ विशिष्ट सिंधु अभिप्राय प्रतिच्छेदी वृत्त कुल्ली भाण्ड की सतह पर अंकित है। विद्वान अभी निश्चित नही है कि यह परस्पर समानता ग्रामीण सस्कृति वालो का सिधु सम्यता से प्रेरित होने अथवा सिंधु सम्यता के लोगो का ग्रामीण शैली से प्रभावित होने का द्योतक है। इतना निश्चित है कि निन्दोवारी मे बस्ती कुछ काल तक सिंधु सम्यता की समकालीन थी।

कोटदीजी मे खान द्वारा की गयी खुदाइयों से यहा गढ़ी और आवास स्थल प्राप्त हुए। कुल 16 आवास स्तरो मे नीचे के 12 सिधु सम्यता के पहले की (कोटदीजी) संस्कृति के, तेरहवी अग्निकाण्ड के साक्ष्य वाली परत संक्राति काल की, और अंतिम तीन सिंधु सम्यता काल की है। कोटदीजी संस्कृति मे चर्ट (चकमक) के फलक और वाणाग्र मिले। पत्राकार वाणाग्र कोटदीजी के अतिरिक्त केवल तीन अन्य स्थलों—पेरियानो घुडई, क्रनै और पण्डिवाही—मे मिले हैं। सिलबट्टे, पत्थर की पालिश की गई गेंदें, पत्थर की गोफन गोलिया, और मिट्टी और शंख की चूड़िया मिली है। कीमती पत्थरों के मनके नही मिले। मिट्टी का एक वृषभ अत्यंत प्रभावशाली और कलापूर्ण है। कोटदीजी

के नियंत्रित भवन, सुदृढ सुरक्षा दीवार तथा नालियो का प्रबंध उसे सिंधु सभ्यता के पूर्व का नगर की सज्ञा देने के पक्ष मे है; लेकिन इस संस्कृति के लोग अभी लेखन-कला से परिचित नही थे । ताबे के प्रयोग के अत्यल्प साक्ष्य हैं। इस संस्कृति के भाण्ड चाक पर बने पतले और हलके है । ये गुलाबी से लाल रंग लिए है और अधिकाशत. रिम और कंधों पर सीधी रेखायें या लहरियों से अलंकृत हैं । इस तरह के अभिप्राय कुछ हद तक हड़प्पा मे पूर्व हड़प्पा संस्कृति के संदर्भ में और आमरी के IB-IIB चरण मे मिले हैं । इसी संस्कृति के संदर्भ में सिंधु सभ्यता की तरह के मिट्टी के पिण्ड ('केक') मिले है । मत्स्य शल्क का अभिप्राय भी मिलता है । इनका नगर सुनियोजित और रक्षा-प्राचीर से सुरक्षित था । प्रारभ से ही चाक द्वारा भाण्डों के निर्माण के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि कोटदीजी सम्कृति के लोग बाहर से आये थे । यद्यपि इन लोगों ने सुरक्षा दीवार तथा घरो की दीवारों की नीव मे पत्थर का प्रयोग किया तथापि निर्माण के लिए मुख्यतया कच्ची ईंटों का ही प्रयोग हुआ । 5730 के अर्ध जीवन के आधार पर चतुर्थ परत के लिए 2100±138 ई० पू० और 14वे परत के लिए 2605±145 रेडियो कार्बन तिथि मिली है ।

कालीबंगा के दो टीलो मे गढी वाले टीले मे सिंधु सभ्यता की गढी के नीचे पूर्वकाल के रक्षात्मक दीवार के अवशेष मिले हैं । रक्षा प्राचीर मूलतः 1 90 मीटर चौडी थी लेकिन बाद मे इसे लगभग दुगना चौडा बना दिया गया । रक्षित क्षेत्र उत्तर-पश्चिम मे 250 मीटर है । सिंधु सभ्यता से पूर्व की सभ्यता के सदर्भ मे मिले भाण्ड कोटदीजी, आमरी और बलूचिस्तान के कई स्थलो मे प्राप्त पूर्व हड़प्पा सम्कृति के बर्तनो की तरह के है ये उतनी अच्छी तरह नही पकाये गये है जितना की सिंधु सभ्यता के भाण्ड पकाये गये है और उनकी अपेक्षा छोटे और पतले है । इनका रग गुलाबी से लाल तक है और इनपर काले रग मे ज्यामितीय अभिप्राय चित्रित है । कुछ पर सफेद रग से छाया की गई है। चित्रण में रिम पर काली मोटी धारी विशेष उल्लेखनीय है। खानेदार तिकोन, मत्स्य शल्क आदि अभिप्राय है किंतु पशुओ (हिरन को छोडकर) के अकन का अभाव है । एक प्रकार का भाण्ड ऐसा है जिसे चाक पर बनाया गया किंतु उसकी बाह्य धरातल मे मुख्यत नीचे का भाग खुरदरा बनाया गया । कुछ नादा के भीतरी भाग को उथले उत्कीर्ण अभिप्रायो से और बाहरी भाग को रस्सी की छाप के अभिप्राय से अलकृत किया गया था । सिंधु सभ्यता के कुछ विशिष्ट पात्र—पान पात्र, बेलनदार छिद्रित बर्तन और साधार तश्तरी—इस संस्कृति मे नही मिले । उपलब्ध प्रकारो म एक साधार कटोरा उल्लेखनीय है। साकलिया ने इसकी तुलना

ईरान के सियाल्क तथा हिसार और भारत में नवडाटोली से प्राप्त इस तरह के बर्तनों से की है। इस सस्कृति के लोगो का सक्कर और रोहरी के फ्लिट खदानों से सम्पर्क नही था। और इन्होंने अपने पाषाण उपकरण गोमेद, कैल्सीडोनी और कार्नीलियन से बनाये थे। सेलखड़ी, शख कार्नीलियन, पकी मिट्टी और ताबे के मनके मिले है; लेकिन काचली मिट्टी के मनके और कार्नीलियन के रेखाकित मनके, जो सिधु सभ्यता की विशिष्टता है, इस संस्कृति मे नही पाये गये। पकी मिट्टी और ताबे की चूडिया, पत्थर के सिलबट्टे मिट्टी के खिलौने, गाड़ी के पहिये इस सस्कृति मे मिलते है। इस काल की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि जुते हुए खेत का मिलना है।

व्हीलर द्वारा 1946 मे हुए हड्प्पा उत्खनन मे सिधु सभ्यता के नीचे अप्रयुक्ता धरती के ऊपर सिधु सभ्यता से निम्न प्रकार के मृद्भाण्ड मिले। कुछ मानो मे ये सिधु सभ्यता के भाण्डो से भी अधिक परिष्कृत है। इनपर गहरे बैजनी या लाल लेप है और सतह अनाकर्षक सादी है।

अधिकाश अल्करण कोर (रिम) तक सीमित है और मुख्यतः सावधानी से बने आडे काली धारियाँ है जिन पर कुछ उदाहरणो मे लटकन दिखाई गई है।

●

परिशिष्ट 3

सिंधु सभ्यता के काल में मोहेंजोदड़ो क्षेत्र की जलवायु

आज तो मोहेजोदडो और उसका समीपवर्ती क्षेत्र काफी हद तक रेगिस्तान बन गया है। यहां ग्रीष्म ऋतु मे तापमान 120 अंश फारेनहाइट तक और शीतकाल में हिमाक तक पहुँच जाता है। आजकल मोहेंजोदड़ो के आसपास साल भर मे औसतन केवल 75 मिलीमीटर वर्षा होती है। जहा पर नदी को भली भाति नियंत्रित किया गया है और नहरे निकाली गई है वहा काफी अच्छी फसल होती है, अन्यत्र जहा ये सुविधाएं नही है साधारण प्रकार की घास और ईंधन की लकडी ही साधारणत उगती है। अनुमानतः सिंधु सभ्यता के काल मे शायद ऐसा नहीं रहा होगा। नगर, विशेषतया सुनियोजित विशाल नगर के निर्माण के लिए लोग उपयुक्त जलवायु, वातावरण और सुविधाओं वाला स्थल ही चुनते है। उसकी स्थिति एवं विकास के लिए अनिवार्य है कि समीपवर्ती क्षेत्र से उसे पर्याप्त मात्रा मे अन्न एवं अन्य सामग्री उपलब्ध होती रहे। ऐसा सोचना स्वाभाविक है कि यदि उस समय मोहेजोदडो का क्षेत्र रेगिस्तानी होता तो सिंधु सभ्यता के निर्माता उसे महान् नगर-निर्माण के लिए भला क्यो चुनते? कई विद्वानों ने पहले यह धारणा व्यक्त की थी कि सिंधु सभ्यता की जलवायु पहले आज से बहुत भिन्न थी और आज की अपेक्षा सभ्यता के विकास के कही अनुकूल थी।[1] मोहेंजोदडो मे भवन निर्माण के लिए पकाई गई ईंटो का ही मुख्य रूप से उपयोग हुआ है, कच्ची ईंटें ज्यादातर भराई के लिए ही प्रयुक्त हुई थी। पकाई

---

1. इस सिलसिले मे बीरबल साहनी पुरावनस्पति सस्थान लखनऊ, के गुरदीप सिह द्वारा राजस्थान की कुछ झीलों के तल से प्राप्त पराग के अध्ययन से निकाले निष्कर्ष महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुसार 3000 ई० पू० से 1800 ई० पू० तक राजस्थान अधिक आर्द्र और शस्य-श्यामल रहा था। किंतु लगभग 1800 ई० पू० से जलवायु मे शुष्कता के प्रमाण मिलते हैं। पुरातात्विक और रेडियो कार्बन तिथि का साक्ष्य भी इस बात की ओर इंगित करते है कि लगभग 1800 ई० पू० मे कालीबंगा की बस्ती ह्रासोन्मुखी थी। जिसका एक कारण शुष्कता का बढना रहा लगता है।

गई ईंटें महंगी बैठती है। दूसरी ओर कच्ची ईंटें सस्ती तो होती ही है गरमी के मौसम मे ये मकान को पकाई गयी ईंटों की अपेक्षा अधिक शीतल रखती हैं। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि मोहेजोदड़ो मे भवन-निर्माण के लिए पक्की ईंटों के प्रयोग का एक कारण उस समय उस क्षेत्र मे वर्षा का अधिक होना रहा होगा। इन ईंटों को पकाने के लिए पर्याप्त ईंधन इस्तेमाल किया गया होगा और इसका अर्थ है उस काल मे वृक्ष-वनस्पति का पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होना, काफी मात्रा मे वनस्पति उगने के लिए पर्याप्त वर्षा का होना अपेक्षित है। मुद्राओं पर गैंडा, बाघ, हाथी आदि वन्य पशुओं के अकन हैं और बाघ को छोड कर इन पशुओं की अस्थिया भी उत्खनन के दौरान मिली हैं। गैंडा नम और दलदली जगह मे रहना पसद करता है। और बाघ तथा हाथी जगल मे। यदि ये पशु वहा थे, जैसा कि कलाकारो द्वारा उनके यथार्थ एवं सजीव चित्रण से तथा वहा प्राप्त हुए उनके अस्थि अवशेषो से संभव लगता है, तो यह मान लेना पडेगा कि उस समय वहा की जलवायु और वातावरण उनके अनुरूप ही रहे होंगे और ऐसे वातावरण का अर्थ है पर्याप्त वर्षा का होना। दूसरी ओर ऊँट की हड्डी का अति न्यून सख्या मे मिलना भी रेगिस्तानीपन के होने के विपरीत साक्ष्य प्रस्तुत करता है। सिधु सभ्यता के स्थलों की खोदाई मे बबूल और इमली की लकडी के साक्ष्य मिले हैं जो झाडदार वन की उपज है। ऐतिहासिक काल मे भी यहा पर अधिक वर्षा होने का अनुमान विद्वानों ने लगाया है। जिस विशाल पैमाने पर और सुनियोजित ढंग से मोहेंजोदडो (और सिंधु सभ्यता के कुछ अन्य स्थलो मे भी) नालियो का निर्माण हुआ है उससे सिधु सभ्यता के लोगो की सफाई के प्रति जागरूकता प्रकट होती है। लेकिन कुछ विद्वानो ने ऐसी भी धारणा व्यक्त की है कि नगर नियोजकों ने नालियों का इतने बडे पैमाने पर निर्माण वर्षाजल का सुचारू रूप से निकास करने के उद्देश्य से किया हो। इसे भी वे प्राचीन सिध मे आज से कही अधिक वर्षा होने के समर्थन मे एक साक्ष्य मानते हैं। सिंध और पंजाब की क्षत्रपी (प्रात) ईरान के राजा दारा (6ठी शती ई० पू०) की बीस क्षत्रपियो मे से सबसे अधिक जनसख्या वाली और सबसे अधिक समृद्ध थी। सिकन्दर के आक्रमण के समय (चतुर्थ शती ई० पू० का अंतिम चरण) मे भी सिंध काफी उपजाऊ था, उसकी जनसंख्या काफी थी और उसमे दलदली जगल थे। मुस्लिम इतिहासकारों के उल्लेख भी इस मत की पुष्टि मे विद्वानो ने उद्धृत किये है।

कुछ विद्वानो ने यह भी मत व्यक्त किया कि सिंध प्रदेश सिंधु सभ्यता के काल मे मानसूनी हवाओं के क्षेत्र मे आता था। कालातर मे मानसूनी हवाओं के रुख मे परिवर्तन हो गया जिससे दक्षिणी-पश्चिमी मानसूनी हवाओं ने पूर्व की

ओर अपना रुख बदल दिया और सिंध प्रदेश उसके क्षेत्र से निकल गया।[1] स्टाइन को बलूचिस्तान मे जो प्राचीन काल के मानव-निर्मित बाधो के अवशेष मिले है वे एक ओर तो इस बात के सूचक है कि पर्याप्त वर्षा होती थी जिससे उनमें पानी एकत्र हो पाता था, और दूसरे यह कि साल की सभी ऋतुओं मे वर्षा एक समान नही होती थी और वर्ष भर मे कभी-कभी सूखा भी पडता रहा होगा; अन्यथा बाध निर्माण की आवश्यकता ही क्यो होती ?

लेकिन हाल ही में जल-वैज्ञानिको ने वैज्ञानिक विधि से इस समस्या का अध्ययन किया है और सिधु तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रो के संदभ मे इस बारे मे आर० एल० राइक्स ने अतिमहत्वपूर्ण तथ्य प्रकाशित किये है जो जलवायु परिवर्तन संबधी उपर्युक्त धारणा के विपरीत पडते है।[2] वातावरण मे परिवर्तन के लिए अन्य कारणो को उत्तरदायी बताया गया है जिनमे मानव द्वारा विशाल पैमाने पर पेडों को काटना, मवेशियो, विशेष रूप से भेड-बकरियो, को चराने के लिए चरागाहों का अत्यधिक उपयोग किया जाना भी है। इससे हरियाली नष्ट हो गयी होगी और भूमि मे आर्द्रता घट जाने से वर्षा की मात्रा पर थोडा बहुत प्रभाव अवश्य पडा होगा। लेकिन इसमे जलवायु पर बहुत अधिक प्रभाव नही पडा होगा। विशाल पैमाने पर वनस्पति नष्ट करने से रेगिस्तान बढता जाना स्वाभाविक था।

स्वयं ह्वीलर भी, जो पहले जलवायु परिवर्तन के मत के समर्थक थे और जिनके तर्कों से इस मत को समर्थन ही नही काफी बल भी मिला था तथा इसे प्रचलित करने मे जिनका महत्वपूर्ण योगदान रहा, अब राइक्स के मत से अत्यधिक प्रभावित हुए लगते है। अब वह मोहेंजोदडो और हडप्पा मे भवन निर्माण के लिए पक्की ईंटो के निर्माण का कारण उस समय काफी मात्रा मे वर्षा होना नही मानते, बल्कि उसे उच्चवर्गीय लोगो के अपने फायदे के लिये बनाया जाना मानते है। सिधु सभ्यता के अन्य कई प्रमुख स्थलो, यथा सौराष्ट्र के स्थलो, मे पकाई गई ईंट का प्रयोग मोहेंजोदडो की अपेक्षा बहुत कम हुआ है। शायद इसलिए कि वहा ईंधन के साधन सीमित थे।

1. पिगट के मतानुसार यह मत उस मत से भी अधिक समीचीन लगता है जिसके अनुसार उत्तरी तूफानी कटिबध उत्तर-हिमनद काल के तुरत बाद दक्षिण की ओर मुड गया। सामान्य जलवायु की स्थिति आने पर भी इसकी स्थिति मे परिवर्तन नही हुआ।

2. ह्वीलर ने अपने **इंडस सिविलिजेशन** के तृतीय संस्करण मे इसका संक्षेप मे उल्लेख किया है।

कई विद्वानों (यथा राइक्स, डायसन और फेयरसर्विस) का मत है कि जल-विज्ञान, प्राणिशास्त्र, वनस्पति विज्ञान, पुरातत्व एवं स्थापत्य कला के साक्ष्य इस बात का निश्चित समर्थन नही करते कि बलूचिस्तान या सिंध में रेगिस्तान क्रमशः बढता गया था । फेयरसर्विस का कहना है कि पिछले चार हजार वर्षों में सिंध प्रदेश की जलवायु मे कोई मूलभूत अंतर नही आया है । उनके अनुसार सिंध प्रदेश मे आज भी वहा उगने वाली कंडी, बबूल तथा अन्य लकडियो से हडप्पा सस्कृति की ईंटों से भी अधिक मजबूत ईंटें पकाई जा सकती है । चूकि ये झाड बहुत जल्दी उग आते हैं इसलिए जंगल कटने वाली बात बहुत नही जमती । लैम्ब्रिक, जो सिंध में बहुत साल तक प्रशासक का कार्य करते रहे, का कहना है कि आजकल नदी के आसपास जो पेड है वे सारे प्रदेश के ईंट पकाने के लिए पर्याप्त है और प्राचीन काल मे इससे कम ईधन नही रहा होगा । साकलिया ने बताया है कि सिंधु सभ्यता के भवनो में खिडकियों के निश्चित साक्ष्य नही मिलते और आज भी सिध और बीकानेर के क्षेत्र के लोग साधारणतया बिना खिडकियो के मकान बनाते है । उनके अनुसार सिंध के प्राचीन एवं बीकानेर में अर्वाचीन काल के भवनो मे खिडकियों का न होना इस बात की ओर इगित करता है कि प्राचीन सिंध की जलवायु आजकल के बीकानेर की तरह रही होगी । कुछ विद्वानो ने यह भी बताया है कि आधुनिक सिंध मे जितनी वर्षा होती है उससे पाच गुना अधिक वर्षा वाले क्षेत्र (50 सेमी) मे भी कच्ची ईंटें प्रयुक्त होने के साक्ष्य मिलते है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि निरंतर बाढ के कारण ही नही अपितु समुद्रतट के समीप भूमि के ऊपर उठने के फलस्वरूप नदियो का पानी समुद्र मे गिरने के बजाय वापस लौटने के कारण झील बन जाने के कारण भी मोहेंजोदडो के लोगों के लिए यह आवश्यक हो गया होगा कि वे इस तरह के जल-प्लावन के प्रतिरोध में पक्की ईंटो की चिनाई वाले मकान बनायें

राइक्स ने मोहेंजोदडो की नालियो के आकार-प्रकार का गहराई से विवेचन कर यह मत व्यक्त किया है कि इस नगर की नालिया वर्षाजल के निकास के लिए पर्याप्त नही थी, वे घरो के गदे पानी के निकास के लिए ही उपयुक्त लगती है । अत यह सोचना समीचीन नही कि उन्हे वर्षा-जल के निकास हेतु बनाया गया था और इस आधार पर सिंध में उस समय पर्याप्त वर्षा होने की धारणा बनाना भी ठीक नही । राइक्स ने यह भी बताया है कि सिंधु के बाढ प्रभावित क्षेत्र में छोटे-छोटे जंगल और बडी-बडी घास उग सकती थी जैसे आज भी सिंध मे कही-कही दिखाई देती है । ऐसे स्थल हाथी, बाघ, गैंडा आदि जंगली पशुओं के रहने के लिए उपयुक्त थे । उत्तरी सिंध मे बाघ अब भी दिख जाते है

और लगभग तीन शताब्दी पहले तक सिंध के तीर में गैंडे होने के साक्ष्य हैं। हाथी शायद अन्यत्र से ही सिंधु प्रदेश मे लाया गया होगा। राइक्स का यह भी कहना है कि आधुनिक काल में सिंध नदी को सिंचाई के लिए नियंत्रित करने से पूर्व बिना वर्षा के भी बाढ प्रभावित क्षेत्र में उथले आतभौम जलस्तर की भूमि को साफ करके खेती की जा सकती थी, और यदि आज भी नदी को अनियंत्रित कर दिया जाय तो इस तरह की ताम्र-पाषाण युगीन परिस्थितियां पुनः लौट आ सकती है। राइक्स की यह धारणा उन विद्वानों की धारणा से भी मेल खाती है जिनके अनुसार लगभग नौ हजार वर्षो से, जब से मनुष्य ने वातावरण पर प्रभुत्व स्थापित करना शुरू किया, जलवायु मे नाममात्र का ही परिवर्तन हुआ है।

•

परिशिष्ट 4

दिल्मुन, मेलुह्ह और मगन

मेसोपोटामिया में प्राप्त विभिन्न कीलाक्षर लिपि मे लिखे लेख वाली बहुत सी मृत्पट्टिकाएं मिली है जिनमें मेसोपोटाटिया के व्यापारियों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों से वस्तुएं आयात करने के संदर्भ मे तीन जगहों–दिल्मुन, मेलुह्ह और मगन का उल्लेख है।

लगभग 2450 ई० पू० के एक लेख मे दिल्मुन से लकडी से लदे जहाज आने का उल्लेख है। सारगन काल (लगभग 2350 ई० पू०) के लेखों में दिल्मुन, मगन और मेलुह्ह के जहाजो का उसकी नयी राजधानी अगेड (बेबीलोन) मे आने का उल्लेख है। दिल्मुन के व्यापारी उर मे बसे हुए थे। दिल्मुन के क्षेत्र को जहा सूर्योदय होता है वहा स्थित बताया है और उसे लोकोत्तर स्वर्ग की संज्ञा दी गई है। पहले विशेषण सूर्योदय का क्षेत्र से इस क्षेत्र का मेसोपोटामिया के पूर्व मे स्थित होना सिद्ध होता है।

बाद के कुछ लेखों मे भी जहाज द्वारा उर मे इन स्थलो से सोना, चादी, ताबा, लाजवर्द, पत्थर के मनके, हाथीदात की कंघी, आभूषण, अंजन, काठ और (शायद) मोती लाये जाने के उल्लेख है।

दिल्मुन, मेलुह्ह और मगन की निश्चित पहिचान कठिन है। विद्वानों ने इस सबध मे अलग अलग मत व्यक्त किये है। कुछ विद्वानो (यथा बिब्बी (Bibby) एम० ई० एल० मैलोवन, आल्चिन और श्रीमती आल्चिन) ने दिल्मुन की पहिचान बहरीन के द्वीप से की है। यहा पर रस-अल-कला और फैलका मे डेन पुरातत्त्वविदो द्वारा किये उत्खनन मे विशाल संख्या मे वृत्ताकार सेलखड़ी की मुद्राएं मिली है। चूकि बहरीन उन वस्तुओ का मूल स्रोत नही लगता जो लेखो मे उसके सदर्भ मे उल्लिखित है अत यह धारणा व्यक्त की गई है कि बहरीन के लोग भारत और मेसोपोटामिया के व्यापार में बीच की आढती दलाली का काम करते थे।

ए० एल० ओपेनहाइम ने मेलुह्ह को सिंध प्रदेश का द्योतक मानने का सुझाव दिया है। मेलोवन मेलुह्ह और मगन को मेसोपोटामिया और भारत के मार्ग मे समुद्रतट पर स्थित स्थल मानते हैं।

लीमान्स ने मगन, जिसका ताबे के स्रोत के रूप मे विशेष उल्लेख मिलता है, की पहचान बलूचिस्तान के मकरान तट से की है। अन्य बातों के अलावा, मगन और मकरान नामों में बहुत कुछ ध्वनि साम्य इस मत को बल देता है। उन्होंने मेलुह्ह की पश्चिमी भारत के क्षेत्र और सौराष्ट्र से पहचान करने का सुझाव दिया है। कुछ के अनुसार मगन की पहचान ओमन या दक्षिणी अरब के किसी और क्षेत्र से की जानी चाहिए। मेलुह्ह के सिधु सभ्यता के क्षेत्र से पहिचान किए जाने के पक्ष मे आल्चिन ने संस्कृत भाषा के म्लेच्छ शब्द का उल्लेख किया है जिसका अर्थ 'बर्बर' है (म्लेच्छ शब्द अनार्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है और सिंधु सभ्यता को अधिकाश लोग अनार्य मानते है)। मेसोपोटामिया के एक आभिलेखीय साक्ष्य के अनुसार अक्कद काल मे मेलुहह की भाषा का रूपातर करने के लिए शासन की ओर से अनुवादक की व्यवस्था थी। मेलुह्ह से उपलब्ध वस्तुओ मे लकड़ी (जिसमे काली लकडी का उल्लेख है जिसका शायद आबनूस से तात्पर्य था), लाल पत्थर (जिसमे कार्नीलियन अभिप्रेरित रहा होगा), हाथी-दात विशेष उल्लेखनीय है।[1] धर्मपाल अग्रवाल का सुझाव है कि मेलुह्ह से आयातित वस्तुओ मे ताबे का उल्लेख होना इस बात का द्योतक है कि यह राज-स्थान के क्षेत्र का द्योतक रहा हो क्योंकि वहा ताबा प्रचुर मात्रा में उप-लब्ध है।

इस सदर्भ मे एस० एन० क्रेमर के मत का उल्लेख करना भी ठीक होगा। वे दिल्मुन को ही सिंधु प्रदेश के क्षेत्र के लिए प्रयुक्त मानते है। मृत्तिका-पट्ट लेखो मे दिल्मुन को वह क्षेत्र बताया गया है 'जहा सूर्योदय होता है' और 'जहा के नगर साफ सुथरे है' और 'जो लोकोत्तर स्वर्ग है' और 'जहा हाथी रहते है'। राव का कहना है कि हाथियो का उल्लेख इस बात की ओर इंगित करता है कि सौराष्ट्र के क्षेत्र से तात्पर्य है जहा ऐतिहासिक काल तक हाथी पाये जाते थे। उनका कहना है कि लोथल एक 'स्वच्छ नगर' था और वहा हाथी भी थे, अत: दिल्मुन की पहचान लोथल से हो सकती है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि सौराष्ट्र मे ही हथब के पास कूड नामक एक सिधु सस्कृति का स्थल मिला है

1. अल्चिन और श्रीमती अल्चिन का कहना है कि कपास, जिसके लिए सिंधु प्रदेश अतिप्राचीन काल से सुप्रसिद्ध था, का इस संदर्भ मे उल्लेख न होना मेलुह्ह के सिधु सभ्यता के क्षेत्र के लिए प्रयुक्त होने के बारे मे संदेह पैदा करता है और यो जो वस्तुए इस सदर्भ मे उल्लिखित है वे अफ्रीका से भी आ सकती थी। लेकिन फिर भी वे इस बात की ही अधिक संभावना मानते है कि मेलुह्ह से सिंधु सभ्यता के क्षेत्र का ही तात्पर्य रहा होगा।

जो प्राचीनकाल में एक बन्दरगाह था और जहा समुद्र देवी वाणुवती सिकोतरी-माता के लिए एक मन्दिर बना है। उन (राव) के अनुसार कूड को स्थानीय लोग दिल्मुन नाम से जानते है। लेकिन राव इस संदर्भ मे निश्चित नही है और उनका कहना है कि अगर दिल्मुन की पहचान लोथल और कूड का दावा मान्य न हो तो दिल्मुन की पहचान बहरीन के द्वीप से, मगन की मस्कट के समुद्रतट से और मेलुह्ह की पहचान सिधु सभ्यता के क्षेत्र से की जानी चाहिए।[1]

●

1. उनके अनुसार यदि यह पहचान ठीक मान ली जाय तो मस्कत की ताबे की खान से ताबा एक ओर सुमेरीय नगरो को और दूसरी ओर सिधु सभ्यता के नगरों को भेजा गया होगा और दिल्मुन के व्यापारियों ने इसमे बिचौलियो की भूमिका निभाई होगी।

परिशिष्ट 5

सिंधु सभ्यता की संभावित राजधानियां

हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो एक दूसरे से लगभग 640 किमी की दूरी पर स्थित हैं। इन दोनों मे एक दुर्ग और एक एक निचला नगर होने के साक्ष्य मिलने के कारण पिगट ने इनके हड़प्पा साम्राज्य की दो राजधानिया होने की सभावना व्यक्त की। उन्होंने इस सिलसिले मे ऐतिहासिक काल में कुषाण-काल मे साम्राज्य की दो राजधानियों का उदाहरण दिया है जिसमें कुषाण लोग दो राजधानियों, उत्तर मे पेशावर और दक्षिण मे मथुरा, से राज्य करते थे। ह्वीलर ने इस संदर्भ मे नवी शताब्दी में अरब शासन के अंतर्गत दो राजधानियों-मुल्तान और मन्सूरा से शासन सचालन का उदाहरण दिया है जो भौगोलिक दृष्टि से सिंधु सभ्यता के नगरो के निकट है, क्योंकि मुल्तान हड़प्पा के काफी करीब है और मंसूरा मोहेंजोदड़ो के। ह्वीलर ने यह भी सुझाया है कि पहले मोहेंजोदड़ो प्रमुख नगर रहा होगा किंतु जब भूगर्भशास्त्रीय कारणों से उनके इर्द गिर्द झील बन गई और नगर ह्रासोन्मुख होने लगा तो ऐसी स्थिति मे हड़प्पा नगर का राजनैतिक और आर्थिक महत्त्व बढ जाना स्वाभाविक था और वही प्रमुख नगर बन गया। कुछ साल बाद कालीबंगा के उत्खनन मे वहा पर भी हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो की तरह गढी और निचले नगर के अवशेष प्राप्त हुए तो पुरातत्ववेत्ताओं ने इसके हड़प्पा साम्राज्य की तीसरी राजधानी होने की सभावना व्यक्त की जो राजस्थान और उसके समीपवर्ती क्षेत्र के प्रशासन के लिए उत्तरदायी थी। और इसी तरह लोथल को हड़प्पा संस्कृति के सौराष्ट्र और समीपवर्ती क्षेत्र की राजधानी माना जा सकता है। शि रंगनाथ राव के मतानुसार इस बात की अधिक संभावना है कि ये एक साम्राज्य की राजधानियाँ थी और इस साम्राज्य का केन्द्र-स्थल सिधु की घाटी में था। वे इसे विश्व में प्रथम महान् साम्राज्य की संज्ञा देते है जिसने विभिन्न जातियो और धर्म के लोगों को एक सूत्र मे बाधा। लेकिन हाल ही के उत्खननो से सुरकोटडा मे भी गढी और निचला नगर की रूपरेखा स्पष्ट हुई है। यह लोथल से अधिक दूर नही। निश्चय ही गढी और निचले नगर की योजना मात्र मे राजधानी का अनुमान लगाना समीचीन नही वैसे इनमें से कुछ नगर

राजधानियां हो सकते हैं। यद्यपि यह धारणा संगत लगती है तथापि यह नही भूलना चाहिए कि हड़प्पा सभ्यता के क्षेत्र की हड़प्पा साम्राज्य का क्षेत्र सिद्ध करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य नही है। यह भी हो सकता है कि अलग अलग क्षेत्रों के लोग अपने अपने क्षेत्र में शासन कर रहे थे, लेकिन उनमें सांस्कृतिक एकता थी। लिखित साक्ष्यों के उपलब्ध न होने के कारण कुछ भी निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

●

परिशिष्ट 6

सामाजिक एवं आर्थिक वर्गभेद और रूढ़िवादिता

हमने सामाजिक जीवन के कुछ पहलुओं यथा वेशभूषा, आभूषण, आमोद-प्रमोद, शव-विसर्जन, खानपान (अध्याय 'आर्थिक जीवन') आदि का विवेचन विभिन्न अध्यायों के अंतर्गत किया है। इस परिशिष्ट में वर्गभेद और रूढिवादिता का विवेचन किया गया है।

वर्गभेद

सिंधु सभ्यता में कई जातियों के होने के साक्ष्य का उल्लेख अन्यत्र किया गया है। अत यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि सिंधु सभ्यता के समाज मे कई सामाजिक वर्ग थे। विभिन्न उपकरणो मे अनुमान लगाया जा सकता है कि कुम्भकार, राज, बढई, टमटा, सोनार, दस्तकार, जुलाहे, ईंट बनाने वाले, मनके बनाने वाले, मुद्रा बनाने वाले इत्यादि पेशेवर लोग रहे होगे। ऐसा सोचना स्वाभाविक है कि उस काल मे पुरोहितों का एक अलग वर्ग रहा होगा और तत्कालीन समाज मे उसका अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा। शासक के स्वरूप का ठीक ठीक ज्ञान नही। कुछ विद्वानो ने कल्पना की है कि शासक धर्म का भी महत्वपूर्ण अधिकारी था। राजकर्मचारियो व सेनाधिकारियो का समाज मे अच्छा स्थान रहा होगा। किंतु सपन्नता की दृष्टि से व्यापारियो का प्रमुख स्थान रहा होगा। गढी वाले टीले मे शासक, महत्वपूर्ण कर्मचारी, सम्रात एव सपन्न लोग रहते रहे होंगे और निचले नगर मे अधिकतर सामान्य जन।

हडप्पा के विभिन्न प्रकार के मकानों और उनकी स्थिति को देखकर उस समय जातिप्रथा के प्रचलन की सभावना कुछ विद्वानों ने मानी है। विशाल आन्नागारों और गढी की पश्चिमी एशिया से तुलना कर पुरोहित-राजाओ की कल्पना की गई है। उपकरणो के निर्माण-शैली मे जो रुढिवादिता है उसे धर्म का प्रभाव का फल माना गया है और धर्म का स्रोत राजा था ऐसा सुझाया गया है। लेकिन दूसरे विद्वान इसे स्वीकार नही करते। उनके अनुसार यह रूढिवादिता और विभिन्न स्थलो के उपकरणो मे समानता आर्थिक क्षेत्र मे अत्यधिक अनुशासनबद्धता का परिणाम थी। यह तो लगभग निश्चित लगता है कि हडप्पा के बैरकों मे रहने वालो की स्थिति समाज मे निम्न थी, किंतु यह कहना कठिन

है कि इन मजदूरों की स्थिति दासों जैसी थी। इन बैरकों को देख कर वत्स को तेल-अल-अमर्ना के मजदूरों के गाव का ध्यान आया। ह्वीलर का कहना है कि मिस्र के दीर-अल-मदीना, काहुन या गीजे के गाव का भी उल्लेख समानता की दृष्टि से इस सदर्भ मे किया जा सकता है। मिस्र के इन गावों मे छोटे-छोटे घरों को हडप्पा के बैरको की तरह कतार मे बनाया गया था। पर जहा तक उनमे रहनेवालों का प्रश्न है उनकी स्थिति और हडप्पा के बैरको में रहनेवालों की स्थिति मे अंतर लगता है। उदाहरणार्थ दीर-अल-मदीना के ग्रामीण लोग राजाओं के लिए कब्रें तैयार करते थे और उनके घर नगर या अन्य बस्तियों से दूर एकात में होते थे। काहुन और गीजे के बैरकों मे रहनेवालों का वास्ता इन मिस्र मे रहनेवालों की तरह मृतको के शवाधान संबंधित सरचनाओं के निर्माण मे नही बल्कि राजकीय प्रशासन सबंधी कार्यो से रहा होगा। वे गढी मे रहनेवाले शासक और संभ्रात व्यक्तियो के आवासों के निकट ही निवास करते थे जिससे आवश्यकता पडने पर उनकी सेवा तुरंत उपलब्ध हो सके। ह्वीलर ने सुझाया है कि शायद उनकी स्थिति सुमेर के धर्म-प्रभावित शासन के अंतर्गत दासों अथवा अर्ध-दासों की तरह रही हो। सुमेर मे इस तरह के अनेक लेख मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि मंदिरो मे विभिन्न कार्यों, यथा कपडा मिल चलाने, बेकरी या कताई-बुनाई के लिए दास और अर्ध-दासो को काम पर लगाया जाता था। लेकिन रगनाथ राव ने ठीक ही कहा है कि सिधु सभ्यता मे विभिन्न कार्यो के लिए मजदूर अवश्य लगाये जाते रहे होंगे किंतु इस धारणा की पुष्टि के लिए अकाट्य साक्ष्य उपलब्ध नही है कि इन मजदूरो की स्थिति दासो जैसी थी। गढीवाले टीले के लोगो का समाज और राजनीति मे महत्त्व तो लगता है किंतु निचले नगर मे पर्याप्त संख्या मे विशाल और अति छोटे घर मिलते है जो इस बात का द्योतक है कि उस समय धनी और निर्धन लोग पास-पास के मकानों मे रहते थे।

राव का मत है कि आधुनिक ग्रामो के साक्ष्य के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दो कमरेवाले घरो मे पाच या छह लोग रहते रहे होंगे और बडे घरों मे अधिक मे अधिक दस से बारह लोग।

लोथल की एक ही कब्र के दो शवो मे एक दीर्घशिरस्क है और दूसरी लघुशिरस्क। ऐसी धारणा व्यक्त की गयी है कि इनमे एक शव स्त्री का और दूसरा पुरुष का है और यदि यह पति-पत्नी साथ ही गाडे जाने का उदाहरण है तो यह दो भिन्न जातियो के मध्य वैवाहिक सबध का द्योतक है। लेकिन इस एकमात्र और अनिश्चित साक्ष्य के आधार पर तत्कालीन समाज मे अंतर्जातीय विवाह के सामान्य प्रचलन होने की धारणा बनाना ठीक नही होगा। यह सोचना स्वाभाविक

है कि सिंधु सम्यता में समाज की इकाई परिवार रही होगी। स्त्री मूर्तियों के बहुसंख्या में प्राप्त होने से कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि तत्कालीन धर्म में मातृदेवी की प्रधानता थी और संभवत परिवार मातृ-प्रधान था। किंतु पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इस विषय में भी निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

रूढ़िवादिता

फेयरसर्विस के अनुसार एक ओर सिंधु सम्यता के कस्बे और गाव नगरो के ही लघु रूप हैं और दूसरी ओर नगर भी ग्रामो के ही विस्तृत और परिष्कृत रूप। अंतर मात्र इतना है कि ग्रामों की अपेक्षा नगरो मे भव्य भवन थे और उनमें पर्याप्त संपन्नता भी थी। एक ओर तो हम हड़प्पा और मोहेंजोदडो जैसे नगरो में प्रारंभ से लेकर अंत तक लगभग एक ही तरह के नगर विन्यास और उपकरण पाते है। दूसरी ओ सिंधु सम्यता के विस्तृत क्षेत्र के विभिन्न स्थलो के मृद्भाण्ड तथा कुछ अन्य उपकरणों मे भी पर्याप्त समानता मिलती है। तकनीकी क्षेत्र मे शायद ही विश्व की अन्य सम्यता मे इतनी एकरूपता मिले जितनी हम सिधु सम्यता मे पाते है। फेयरसर्विस का विचार है कि उपकरणों की एकरूपता शासन की निरकुश तानाशाही के कारण नही, जैसा कि कुछ विद्वानों ने सुझाया है; बल्कि जनता का एक खास रहन-सहन का ढग इसका कारण था, जो कुछ उसी तरह का था जैसा कि पिता-पुत्र का सबंध। ग्रामीणों का नैतिक-लोक नगरो मे भी विद्यमान था। सिधु सम्यता के विभिन्न नगरो की योजना मे पर्याप्त समानता होना, जनता का एक खास परंपरा के प्रति मोह होना, उसमे रंग जाना और उसका निर्वाह करने का फल है। उनके अनुसार परंपरा ही उनके नैतिक मूल्यों का आधार बन गयी थी और धर्म ने इस परपरावाद को और मजबूत बना दिया होगा। प्रारंभ मे नगर और ग्रामो में घनिष्ठ सपर्क रहा जिससे दोनों के मूलभूत उपकरणो में समानता रही किंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया उनके सपर्क मे ढिलाई आने लगी। दूरस्थ स्थलों मे तो संपर्क बहुत कम हो गया और वे नगरों की छाया मात्र रह गये।

वस्तुओ के निर्माण मे उपयोगिता और मजबूती की ओर विशेष ध्यान और कल्पनाशीलता और नवीनता की ओर कुछ उदासीनता, आल्चिन और श्रीमती आल्चिन के अनुसार, उनकी परलोक के प्रति अत्यधिक आस्था तथा चिंतन के कारण हो सकता है। उनके परपरावाद मे बहुत कुछ परवर्ती काल के बाद के भारतीय समाज की रुढिवादिता का पूर्वरूप मिलता है। अत्यंत आदिम प्रकार की चपटी हत्थे के लिए बिना छेदवाली कुल्हाडिया और बिना रीढदार

भाले इस सभ्यता के प्रारंभ से अंत तक हर चरण में मिले है । समकालीन मेसोपोटामिया मे हत्थे के लिए छेदवाली कुल्हाडी और बीच मे गोढदार भाले काफी पहले से बनने लगे थे । और मेसोपोटामिया मे व्यापारिक सपर्क के बावजूद सिधु सभ्यता के लोगो ने उन्नत प्रकार के उपकरणो का निर्माण नही किया ।[1]

•

1. ताबे की हत्थे के लिए छेदवाली एकमात्र कुल्हाडी मोहेजोदडो की ऊपरी सतह पर मिली है जिसे कुछ विद्वान् पश्चिम की ओर आये आक्रमणकारियो द्वारा लायी गयी मानते है ।

परिशिष्ट 7

सिंधु सभ्यता के कुछ नगरों की अनुमानित जनसंख्या

फेयरसर्विस ने मोहेंजोदडो के एक छोटे से मान (गढ़ी, VS और DK क्षेत्र) को छोडकर शेष मान के लिए 41,250 जनसंख्या आकी है। हड़प्पा के लिए, गढी क्षेत्र को छोडकर, उन्होने 23,544 जनसख्या का अनुमान लगाया है। इस तरह के निर्णय लेने मे उन्होने दो बातो को ध्यान मे रखा, एक तो 400 फीट वर्गाकार क्षेत्र एक व्यक्ति के लिए पर्याप्त होता है और दूसरा एक भवन मे 6 व्यक्ति रह सकते है।

दत्तमजुमदार ने हड़प्पा की जनसख्या को आकने के लिए अन्नागार के आकार को आधार बनाया और 37,155 के लगभग जनसख्या आकी। रगनाथ राव का कहना है कि लोथल मे करीब 4500 वर्गमीटर के क्षेत्र मे छोटे-बडे करीब 80 घर है। लोथल के तृतीय चरण मे करीब 90,000 वर्गमीटर का क्षेत्र था जिसमे 1600 घर बन सकते थे। एक घर मे औसतन 6 व्यक्ति होने का अनुमान है और इस तरह लोथल की जनसख्या लगभग 10 हजार हुई। उनका कहना है कि यदि नगर की चाहदीवारी के बाहर के भी आवासो को इसमे शामिल कर दिया जाय तो जनसख्या 15000 हो सकती है जो उनके अनुसार एक ताम्र-पाषाणकालीन नगर के लिए काफी है।

•

परिशिष्ट 8

गोदी-बाड़ा (Dockyard)

(फ० VI, 2),

लोथल मे पकी ईंटों से निर्मित एक ढाचा मिला है जिसे शि० रंगनाथ राव ने गोदी पहचाना है।[1] इसके भीतर का क्षेत्र समलम्बक है और इसका औसत आकार 214 × 36 मीटर है। इसकी गहराई 3.3 मीटर है। लेकिन राव के अनुसार अनुमात मूलरूप मे गहराई 4.15 मीटर रही होगी। राव के विवरण के अनुसार इसकी उत्तरी दीवार में 12 मीटर चौड़ा प्रवेशद्वार था जिससे जहाज आते-जाते थे। यह प्रवेशद्वार एक नाली के द्वारा भोगावा नदी से जुड़ा था, जिससे गोदी में पानी आता था। राव के अनुसार उन लोगों ने जानबूझ कर गोदी को समुद्र तट अथवा भोगावा नदी पर नही बनाया क्योकि वहा पर स्थित होने मे बाढ और गाद से गोदी को हानि पहुँचने की सभावना थी। दक्षिणी दीवार मे एक मीटर चौडी जल-निकास के लिए नाली बनी थी। यहा पर ईटो पर खाचे मिले है जो इस बात के द्योतक है कि यहा पर लकडी का दरवाजा लगा था जिसे आवश्यकतानुसार उठाया या गिराया जा सकता था। उच्च ज्वार के समय इसे खोल कर अतिरिक्त पानी को बाहर निकलने दिया जाता था और निम्न ज्वार में दरवाजे को बंद कर गोदी मे अपेक्षित मात्रा मे पानी बने रहने दिया जाता था।

राव का मत है कि डिजाइन, आकार और निर्माण की दृष्टि से लोथल की गोदी फिनीशिया और रोम की गोदियो से कही अधिक विकसित थी और निश्चय ही अपने ढग का विश्व मे सबसे प्राचीन उदाहरण है। उन्होने बी० एस० लैले द्वारा किये गये अध्ययन के आधार पर अन्य गोदियों से लोथल की गोदी की तुलना की है और निष्कर्ष निकाला है कि प्राचीन ही नही आधुनिक गोदियो की तुलना मे भी इसका आकार कोई खास कम नही था। उन्होने डाइरेक्टर आफ पोर्ट्स, अहमदाबाद के मत का उल्लेख किया है जिसके अनुसार पुरैतिहासिक काल मे समुद्र का एक अग लोथल तक फैला था और इसलिए यहा पर गोदी का होना संभव लगता है।

---

1. आगे दिये विवरण मे जहां किसी अन्य के मत का उल्लेख नही किया गया है तो इस विषय की पूरी सामग्री राव के विवरण पर आधारित है।

राव के अनुसार लोथल मे गोदी के मिलने मे सिधु सभ्यता के विदेशों से व्यापार मे लोथल का महत्वपूर्ण योगदान स्वीकार करना पडेगा । उत्खनन के आधार पर राव का कहना है कि लोथल मे लगभग 2000 ई० पू० मे एक बाढ आयी जिसमे नगर और गोदी दोनो को क्षति पहुँची और भोगावा नदी अब दो किलोमीटर दूर बहने लगी । लोथलवासियो ने दो मीटर गहरी एक नहर खोद कर गोदी को नदी मे जोड दिया । लेकिन अब गोदी बडे जहाजो के आने के उपयुक्त नही रह गयी थी और केवल छोटी-छोटी नावें ही उसमे आती रही । उनके अनुसार लगभग 1900 ई० पूर्व मे एक और भीषण बाढ आयी । जिसने गोदी को रेत से पूरी तरह पाट दिया और इसके बाद उसका उपयोग नही हो पाया ।

अधिकाश विद्वान श्री राव के इस मत से सहमत लगते है कि यह ढांचा गोदी ही है, लेकिन कुछ विद्वानो ने इसे तालाब माना है । सबसे पहले यू० पी० साह ने गोदी के मत को चुनौती दी और उसके पश्चात् लौरेंस लैंशिनक ने काफी जोर-शोर से राव के मत का खडन किया और इसे तालाब माना है ।[1] राव ने लैंशिनक के तर्को का उत्तर दिया है और अपने मत की पुष्टि मे निम्नलिखित तर्क दिये है—(1) यदि यह तालाब होता तो लोगो ने इसके लिए पक्की ईंटो, जो काफी खर्चीली होती है, का प्रयोग नही किया होता और कच्ची ईंटो से ही निर्माण किया होता, (2) यदि यह तालाब होता तो इसमे पानी जमा होने के लिए काफी चौडी खुली जगह होनी चाहिए थी, (3) इसकी दीवारें सीधी है, यदि यह तालाब होता तो इसमे भीतर जाने के लिए या तो सीढिया होनी या फिर ढाल होती, (4) इसके समीप उत्खनन मे एक विशाल चबूतरा मिला है जिसका तालाब के सदर्भ मे तो कोई विशेष महत्व नही लगता लेकिन गोदी के सदर्भ मे जहाज मे लादने के लिए और जहाज से उतारा हुआ माल रखने के लिए उसका प्रयोग स्वाभाविक लगता है, (5) इसके तल की मिट्टी में खारापन पाया गया और उसमे घोंघे भी मिले है जो इस बात के द्योतक लगते है कि इसमे समुद्र का पानी भी आता था । इसके अदर खारे पानी के होने का साक्ष्य इसके जल का सिचाई अथवा पीने के लिए प्रयोग होने के पक्ष मे नही है, अत यह भी इसके तालाब होने के मत के विरुद्ध ही जाता है, (6) भीतरी

---

1 लैंशिनक के कुछ तर्कों मे तो काफी बल है लेकिन उनके तर्क मे एक मुख्य कमजोरी यह है कि वे लोथल को एक नगर मानने के लिए तो क्या बल्कि एक बडा गाव मानने को भी तैयार नही । उनका यह तर्क है कि भला छोटे से गाव में गोदी की क्या आवश्यकता ।

दीवार में कुछ छेद मिले है जिसमे लकडी के खम्भे रहे होंगे। इन खम्भों से जहाजों को लंगर डालते समय बाधा जाता रहा होगा। (7) इसके भीतर कुछ छेद वाले पत्थर मिले है जिसका उपयोग जहाजों के लगर डालने के सदर्भ में उन्हे बांधने के लिए किया गया होगा।

यद्यपि राव के उपर्युक्त तर्क काफी प्रभावशाली है तथापि यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि अभी भी कुछ विद्वान् उनके इस मत से सहमत नही है।

●

परिशिष्ट 9

सिंधु सभ्यता में खोपड़ी की शल्य-चिकित्सा

सिंधु सभ्यता मे खोपडी की शल्य चिकित्सा के दो उदाहरण ज्ञात है, एक कालीबंगा से जो निश्चित है और दूसरा लोथल से जो संदिग्ध हैं। कालीबंगा से प्राप्त एक बालक की खोपडी पर छह छेद है। निरीक्षण से पाया गया कि ये छेद कुछ भर गये थे। स्पष्ट है कि बालक की खोपडी की शल्य-चिकित्सा की गई थी और वह सफल हुई तथा बालक उसके बाद कम से कम कुछ दिनों तक अवश्य जीवित रहा।

लोथल से प्राप्त एक बालक की खोपडी पर भी छेद पाया गया।[1] इस बालक की उम्र नौ-दस साल के लगभग रही होगी। कालीबगा के साक्ष्य के विपरीत लोथल से प्राप्त इस खोपडी मे किये छेद के भरने के कोई साक्ष्य नही दिखे। या तो शल्य-चिकित्सा सफल नही हुई और उसके थोडे ही समय बाद बालक मर गया, या फिर हमे यह मानना पडेगा कि छेद मरणोपरान्त किया गया था। यदि छेद मरने के बाद किया गया तो उसका सबध शवोत्सर्ग सबद्धी किसी धार्मिक विश्वास से जोडना होगा, न कि शल्य-चिकित्सा से।

इन दो सिंधु सभ्यता के उदाहरणो के अलावा भारत मे शल्य-चिकित्सा के केवल दो अन्य उदाहरण मिले है—एक बुर्जाहोम (काश्मीर) से और दूसरा लंघनाज (गुजरात) से।

खोपडी की शल्य-चिकित्सा सिरदर्द और चोट आदि के कारण होनेवाली असह्य पीडा को ठीक करने के लिए की गयी होगी। पेरु (मध्य अमेरिका) की जनजातियो मे इस तरह की शल्य-चिकित्सा आज भी की जाती है। भारत के ऐतिहासिक काल के साहित्य मे भी इस तरह की चिकित्सा के उल्लेख मिलते है।

●

---

1 राव ने अपनी पुस्तक 'लोथल एण्ड दि इण्डस सिविलिजेशन' मे लोथल के इस उदाहरण को खोपडी पर शल्य-चिकित्सा किये जाने का प्राचीनतम उदाहरण कहा है। उनका यह कथन सही नही लगता। भारत मे सिंधु सभ्यता में ही कालीबगा के उदाहरण को लोथल से बाद का नही कहा जा सकता, और जहा तक विश्व के सदर्भ का प्रश्न है, योरप के नवपाषाणयुग के साक्ष्य निश्चय ही भारतीय उदाहरण के पहले के है।

परिशिष्ट 10

सिंधु सभ्यता की परवर्ती भारतीय सभ्यता को देन

अनेक विद्वान् सिंधु सभ्यता में ऐतिहासिक काल के कुछ तत्त्वों का मूल देखते है। चूकि सिंधु सभ्यता के अंत और ऐतिहासिक काल के प्रारभ के बीच लम्बा काल-व्यवधान रहा है अत इस संबंध मे मतमतांतर होना स्वाभाविक है और निश्चयपूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता। नीचे हमने उन संभावित तत्वों का उल्लेख किया है जो, कुछ विद्वानों के अनुसार, ऐतिहासिक काल को सिंधु सभ्यता की देन माने जा सकते है। इन तत्वो का पिछले पृष्ठों मे विभिन्न संदर्भों में कुछ विस्तार से वर्णन हो चुका है, अत. यहा उनका उल्लेख मात्र ही पर्याप्त होगा —

(1) मातृदेवी का देवोपासना में प्रमुख स्थान जिसका अत्यत विकसित रूप शाक्त धर्म मे पाते है। वैदिक देवताओं मे देवियां हैं तो, पर देवो की अपेक्षा उनका स्थान गौण है।

(2) शिव-पशुपति जैसे देवता की धारणा सिधु सभ्यता की ही देन लगती है।

(3) लिगपूजा—इसका महत्व इसलिए विशेष रूप से है कि ऋग्वेदीय आर्य लिगपूजा नही करते थे अपितु अनार्यों को लिगपूजक कहकर भर्त्सना करते थे। लेकिन लगता है विजेता आर्य विजित अनार्यों से प्रभावित हुए और यजुर्वेद तक आते-आते राजकीय कर्मकाण्ड मे लिग को स्थान मिलने लगा। कालातर मे तो यही शिव का विशेष प्रतीक हो गया और इसे मानव प्रतिमाओं से भी अधिक महत्व मिला।

(4) कुछ विद्वान् हड़प्पा मुद्राओं के अंकनो में पौराणिक आख्यानों के अनुरूप आख्यानो का अंकन होने की संभावना मानते है। उदाहरण के लिए मनुष्य द्वारा भैसे को सीग से पकड कर उसकी नाक पर पाव रख कर उस पर भाला भोकने के दृश्य को मैके ने शिव द्वारा दुंदुभी का वध और जितेन्द्रनाथ बनर्जी ने देवी द्वारा महिषासुर-मर्दन के जैसे आख्यान का अकन माना है। मनुष्यों द्वारा वृक्ष को उखाडने के अंकन को बनर्जी ने महाभारत में उल्लिखित कृष्ण द्वारा यमलार्जुन वृक्षों को उखाडने जैसे किसी आख्यान का अंकन माना है।

(5) सिंधु सभ्यता की मुद्राओं पर ऐसे अंकन जिनमे विभिन्न पशुओं के

अवयवों के संश्लेषण से आकृति बनी है, की तुलना ऐतिहासिक काल के किन्नर, गधर्व, कुंभाण्ड आदि के अकनो से की जा सकती है ।

(6) सिंधु सभ्यता की कुछ मुद्राओं पर ध्वज बना है । परवर्ती काल मे देवताओं के लिए ध्वज के निर्माण की परपरा बहुत लोकप्रिय हुई ।

(7) कई प्रतीक, यथा स्वस्तिक, चक्र आदि जो सिधु सभ्यता की मुद्राओं पर मिले हैं ऐतिहासिक काल में भी पर्याप्त धार्मिक महत्व के रहे ।

(8) सिधु सभ्यता मे मातृदेवी और कुछ अन्य देवताओ को नग्न दिखाया गया है । ऐतिहासिक काल मे भी कुछ देवी-देवताओं को, विशेषत· जैन तीर्थकरो को, नग्न दिखाया गया है ।

(9) सिंधु सभ्यता मे, विद्वानों का अनुमान है, पशुओं का पर्याप्त धार्मिक महत्व था, और ऐतिहासिक काल में भी ऐसा ही रहा है जब पशुओं को स्वतंत्र रूप से या देवताओं के वाहन के रूप मे आदरपूर्ण स्थान दिया गया ।

(10) जिस तरह से सिंधु सभ्यता की मुद्राओ और बर्तनो पर वृक्षो का अंकन है वह उनके धार्मिक प्रभाव का द्योतक है । इस संदर्भ में पीपल का वृक्ष विशेष उल्लेखनीय है । ऐतिहासिक काल मे भी पीपल आदि कई वृक्षों की पूजा होती रही है और उन्हे धार्मिक महत्व का माना गया है ।

(11) कला के क्षेत्र मे भी सिंधु सभ्यता का प्रभाव लगता है । सिधु सभ्यता की मुद्राओ पर वृषभ का अत्यत सजीव और प्रभावोत्पादक आलेखन है । कुछ विद्वानो ने अशोक कालीन रामपुरवा-वृषभ मे इसी कला-परपरा का निर्वाह हुआ माना है । मोहेंजोदडो की कास्य नर्तकी मे भारतीय नारी सौदर्य के आदर्शों का कुछ रूप मिलता है ।

(12) सिंधु सभ्यता की कुछ मूर्तियां कायोत्सर्ग मुद्रावाली जैन तीर्थकरो की मूर्तियो से मिलती हैं ।

(13) मूर्तियो मे प्रजनन अगों का स्वाभाविक से कही अधिक बढ़ा-चढा कर दिखाना, दोनों—सिधु सभ्यता काल और ऐतिहासिक काल—की मूर्तियो मे दिखाई देता है ।

(14) मनुष्य-पशु-युद्ध का चित्रण सिंधु सभ्यता की मुद्राओं और ऐतिहासिक काल की वसाढ से प्राप्त एक मुद्रा और अहिच्छत्रा की मृण्मय फलक पर मिलता है ।

(15) मोहेंजोदडो के गढीवाले टीले में स्तंभ-युक्त भवन के अवशेष अशोक के पाटलिपुत्र के स्तंभो पर आधारित भवनों की याद दिलाते हैं ।

(16) कुछ विद्वान् तो सिंधु सभ्यता की ताम्रपट्टिकाओ को आहत सिक्कों का पूर्वरूप मानते हैं ।

(17) मोहेंजोदडो की शिव-पशुपति की मुद्रा पर जो ग्रैवेयक दिखाया गया है, ऐतिहासिक काल में यक्ष मूर्तियों के गले मे उसी तरह का ग्रैवेयक बना मिलता है ।

(18) सिंधु सभ्यता में जिस तरह की बैलगाडियां थी वे आज की बैल-गाडियो से विशेष भिन्न नही थीं ।

(19) अधिकाश विद्वानों का मत है कि भारत में सिधु सभ्यता के लोगों ने ही सबसे पहले हाथी पालना शुरू किया। प्रारंभिक ऐतिहासिक काल में हाथी का सेना मे अत्यत महत्वपूर्ण स्थान रहा ।

(20) कनिंघम और कुछ अन्य विद्वान् सिधु सभ्यता की लिपि को ब्राह्मी लिपि का मूल मानते हैं ।

●

परिशिष्ट 11

तिथि निर्धारण की रेडियो कार्बन विधि

तिथि निर्धारण की रेडियो कार्बन (अथवा कार्बन–14) विधि लिब्बी ने 1949 में खोज निकाली थी और पिछले 25 सालों मे अनेक सकृतियो की तिथि निर्धारण मे इसकी सहायता ली गयी है। सिंधु सभ्यता के कुछ स्थलो के लिए कार्बन–14 तिथिया उपलब्ध हैं। इस विधि मे कार्बन पदार्थो की तिथि निर्धारित करने का आधार है उस पदार्थ में उपलब्ध कार्बन–14 तत्त्व के अर्ध-जीवन का आकलन करना। जीवधारियों अर्थात् मनुष्य, पशु-पक्षी और वनस्पति मे दो तरह का कार्बन पाया जाता है—कार्बन–12 और कार्बन–14। जीविता-वस्था मे कार्बन–12 और कार्बन–14 का अनुपात सभी जीवधारियों और वन-स्पति मे समान होता है। जीवधारी के मरने अथवा वनस्पति के कटने और सूखने के बाद भी कार्बन–12 तो उतना ही रहता है जितना जीवितावस्था मे था, लेकिन कार्बन–14 धीरे-धीरे कम होने लगता है। उसमे यह क्षय एक निश्चित गति से होता है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि जैविक (कार्बनिक) पदार्थों मे कार्बन–14 की मात्रा 5568 ± 30 साल[1] मे अपनी मूल मात्रा से आधी

---

1 धन-ऋण (±) का चिह्न इस बात का द्योतक है कि इस चिह्न से पहले दी गई सख्या एकदम निश्चित नही है और इस बात की गुंजाइश है कि इस चिह्न के बाद दी हुई संख्या को इसमें एक बार बढाने मे और इसमे से घटाने से जो दो सख्याए मिले वास्तविक तिथि उन दोनों के बीच कही भी हो सकती है। उदाहरण के लिए 5730 ± 40 का अर्थ है कि तिथि परीक्षण के समय से ($5730 + 40 =$) 5770 तथा ($5730 - 40 =$) 5690 वर्षों के बीच कही भी हो सकती है। यो तो इन दो सख्याओ के बीच की सख्या निकालने से उसमे गलती होने की सीमा कम हो जाती है, लेकिन जैसे कुछ विद्वानो ने चेतावनी दी है कि जब तक किसी स्थल के चरण विशेष के बारे मे अनेक संगत कार्बन–14 तिथिया ज्ञात न हों तब तक बीच की सख्या को सही तिथि के रूप में स्वीकार नही किया जा सकता और इसलिए ± का चिह्न लगाना ही वैज्ञानिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त है।

हो जाती है। कुछ दूसरे विद्वान् कार्बन-14 का अर्धजीवन (half life) 5730±40 वर्ष मानते है। अब प्रायः सभी विद्वान् दूसरे मत को स्वीकार करते हैं और इस पुस्तक मे भी हमें दी गयी रेडियो कार्बन तिथिया उसी पर आधारित हैं।

इस संबंध मे यह उल्लेख आवश्यक है कि कार्बन 14 तिथि के लिए जो प्रतिदर्श (Sample) भेजा जाय उसमे यह उल्लेख करना आवश्यक है कि यह जले अनाज के दाने का है या लकडी का; और फिर लकडी के प्रतिदर्श में भी यह उल्लेख होना आवश्यक है कि यह भवन के खम्भे का है या साधारण लकडी का। यह इसलिए आवश्यक है कि कार्बन-14 विधि से लकडी के सूखने की तिथि का ज्ञान होगा न कि उसके भवन मे प्रयोग किये जाने का, और पुराने मकान की अच्छी लकडी का प्रयोग पुन नये मकान मे हो सकता है और ऐसी दशा में मकान की तिथि लकडी के लिए प्राप्त कार्बन-14 तिथि से बाद की हो सकती है। साधारणतया किसी भवन मे प्राप्त जले अन्न के दानों की तिथि और उस भवन की तिथि एक ही होगी।

किसी संस्कृति के तिथि निर्धारण के सदर्भ मे कार्बन-14 विधि के प्रयोग सबधी कुछ बातो का उल्लेख आवश्यक है। अच्छा यह है कि उस संस्कृति विशेष के न केवल किसी स्थल विशेष के विभिन्न चरणो से अपितु एक ही परत के लिए भी अनेक कार्बन-14 तिथिया ज्ञात हो। ऐसा करने से ही सही तिथि ज्ञात होने की सभावना है। निश्चय ही किसी स्थल विशेष से प्राप्त केवल एक या दो कार्बन-14 तिथिया उस स्थल की निश्चित तिथि निर्धारित करने के लिए पर्याप्त नही है। अक्सर यह धारणा हो सकती है कि 'प्रारंभिक' प्रतिदर्श (सैम्पल) लगभग सस्कृति के प्रारंभ के द्योतक है और 'बाद' के सभ्यता के अंत के। लेकिन यह आवश्यक नही है बल्कि अधिकाशत. ऐसी सभावना कम ही रहती है। इससे बस इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 'पहले' वाली तिथि के समय संस्कृति विद्यमान थी और 'बाद' वाले के बाद तक यह बनी रही। फिर किसी स्थल पर सभ्यता के प्रारभ और अत और उसके विभिन्न चरणों के संदर्भ मे कार्बन-14 विधि से ज्ञात की गयी तिथिया उस स्थल विशेष के लिए मान्य हो सकती है। उन तिथियो को उसी संस्कृति के अन्य स्थानों के लिए भी स्वीकार नही किया जा सकता, विशेष रूप से जबकि यह स्थल दूर-दूर स्थित हो और उनके भौगोलिक वातावरण मे भी भिन्नता हो। सिंधु सभ्यता के संदर्भ मे, जिसका विस्तार एक अत्यत विस्तृत भू-भाग पर रहा था, जिसके स्थल विभिन्न भौगोलिक और जलवायु की परिस्थितियों मे है और साधारण ग्राम्य-

संस्कृति से लेकर विकसित नगर सभ्यता के द्योतक हैं, यह सोचना स्वाभाविक है कि बस्तियों का उदय और उनका अंत अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग कारणों से अलग-अलग समय में हुआ होगा।

एक बात स्पष्ट है कि अब विद्वान कार्बन–14 विधि के महत्त्व को स्वीकार करते हुए भी उसे अब उतनी निश्चित रूप से सही तिथि बतानेवाली विधि नहीं मानते जितनी कि शुरू-शुरू में, जब इस विधि की पहली खोज हुई थी। विदेशों में वृक्ष-काल (डेण्ड्रोक्रोनोलॉजी) और अनुवर्ण मृत्तिका (Clay varve) परीक्षण से प्राप्त तिथियों और कार्बन–14 विधि से प्राप्त तिथियों में पर्याप्त अंतर पाया गया। भारत में उपर्युक्त दोनों ही विधियों का प्रयोग अभी तक संभव नहीं हो सका है, अतः यहां पर कार्बन–14 तिथियों की तुलना के लिए उनका साक्ष्य उपलब्ध नहीं। किंतु विदेशों से प्राप्त तथ्य हमें कार्बन–14 तिथि के बारे में सचेत करने के लिए पर्याप्त है।

कुछ समय पूर्व तक ऐसी धारणा थी कि जीवधारियों में कार्बन–14 ग्रहण करने की मात्रा विश्व के सभी क्षेत्रों में सदैव एक ही रही है, लेकिन अब विद्वानों ने इस पर संदेह व्यक्त किया है। कुछ कारणों, यथा औद्योगिक वस्तुओं में ईंधन के रूप में अत्यधिक कोयला प्रयोग होने से अथवा परमाणु विस्फोट के कारण इसमें अंतर आ सकता है। यह देखा गया है कि मिस्र और मेसोपोटामिया के इतिहास के तृतीय और द्वितीय सहस्राब्दी ई० पू० के मध्य की बहुत सी ऐसी तिथियां हैं जो लिखित ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर लगभग निश्चित हैं किंतु कार्बन–14 विधि से इस काल के स्तरों के लिए जो तिथियां ज्ञात हैं वे इन लिखित साक्ष्यों से ज्ञात तिथियों की बहुत बाद की निकली हैं। यदि यह भी मान लें कि ऐतिहासिक साक्ष्यों से निर्धारित तिथियों को पूर्णतया निश्चित तिथियां स्वीकार करना कठिन है, तो भी कुछ कार्बन–14 तिथियां ऐसी हैं जिन्हें न केवल संदिग्ध अपितु असंभव की संज्ञा देनी होगी। उदाहरण के लिए कार्बन विधि के अनुसार तृतीय राजवंश के जोसेर (Djoser) की जो तिथि मिलती है वह उसके उत्तराधिकारी हुनी (Huni) की लगभग निश्चयपूर्वक ज्ञात तिथि से 8 शताब्दी बाद की है।[1] ह्वीलर का कहना है कि हो सकता है कि इस तरह की विसंगति किन्हीं कारणों से सिंधु सभ्यता की कार्बन तिथियों पर भी लागू होती हो।

---

1. वैसे यह भी हो सकता है कि तिथि का यह भेद प्रतिदर्शों के दूषित होने के कारण हो। लेकिन ऐसा एक नहीं अनेक प्रतिदर्शों के साक्ष्य का इस तरह से होना इस बात का समर्थन नहीं करते।

प्राग सिंधु तथा सिंधु सभ्यता स्थलों की कार्बन तिथियां

स्थल	कार्बन तिथियां ई० पू० (अर्धायु 5730 वर्ष)
आमरी	TF-863, 2665±100
(पाकिस्तान)	TF-864, 2900±115
दब सदात	UW-60, 2200±165
(पाकिस्तान)	P-523, 2200±75
	L-180 E, 2200±360
	L-180 C, 2220±410
	P-522, 2500±200
	L-180 B, 2320±360
	UW-59, 2510±70
कोटदीजी	P-195, 2100±140
(पाकिस्तान)	P-180, 2250±140
	P-179, 2330±155
	P-196, 2600±145
मुण्डिगाक	TF-1129, 3145±110
(अफगानिस्तान)	TF-1132, 2995±105
	TF-1131, 2755±105
कालीबगा I	TF-154, 1820±115
(राजस्थान)	TF-156, 1900±110
	TF-165, 1965±105
	TF-161, 2095±105
	TF-240, 1765±115
	TF-162, 2105±105
	TF-241, 2255±95
	TF-157, 2290±120
	TF-155, 2370±120
मोहेंजोदडो	PF-75, 1755±115
(पाकिस्तान)	P-1182A, 1865±65
	P-1176, 1965±60

स्थल	कार्बन तिथिया ई० पू० (अर्धायु 5730 वर्ष)
	P–1178 A, 1965±60
	P–1180, 1995±65
	P–1179, 2085±65
	P–1177, 2155±65
	TF–143, 1665±110
	TF–946, 1765±105
	TF–149, 1830±145
	TF–150, 1900±105
	TF–605, 1975±110
	P–481, 2050±75
	TF–153, 2075±110
	TF–25, 2090±115
	TF–942, 2225±115
कालीबंगा II	TF–152, 1770±90
(राजस्थान)	TF–142, 1790±105
	TF–141, 1860±115
	TF–139, 1930±105
	TF–151, 1960±105
	TF–948, 1980±100
	TF–147, 2030±105
	TF–145, 2060±105
	TF–608, 2075±110
	TF–947, 1925±90
	TF–163, 2080±105
	TF–607, 2090±125
	TF–160, 2230±105
लोथल	TF–19, 1800±140
(गुजरात)	TF–23, 1865±110
	TF–29, 1895±115
	TF–26, 2000±125

स्थल	कार्बन तिथियां ई० पू० (अर्धायु 5730 वर्ष)
	TF–27, 2000±115
	TF–22, 2010±115
	TF–133, 1895±115
	TF–136, 2080±135
रोजदी	TF–199, 1745±105
(गुजरात)	TF–200, 1970±115
सुरकोटडा	TF–1301, 2000±135
(गुजरात)	TF–1305, 2055±100
	TF–1310, 1970±100
	TF–1295, 1940±100
	TF–1294, 1780±100
	TF–1297, 1790±95
	TF–1307, 1660±110
	TF–1311, 1780±90
बाडा	TF–1204, 1845±155
(पजाव)	TF–1205, 1890±95
	TF–1207, 1645±90

●

परिशिष्ट 12

सिंधु सभ्यता और वैदिक संस्कृति

सिंधु सभ्यता की खोज होने के समय से यह प्रश्न बराबर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करता रहा है कि इस सभ्यता के जनक कौन थे ? कई विद्वानों ने वैदिक और सिंधु सभ्यता की कुछ आधारभूत विभिन्नताओं की ओर ध्यान आकर्षित कर उन्हे अलग परिस्थितियों की उपज माना है।

मार्शल और कुछ अन्य विद्वानों ने सिंधु सभ्यता और ऋग्वैदिक सभ्यता के मध्य अंतर को इस प्रकार दिखाया है[1] —(1) ऋग्वैदिक सभ्यता ग्रामीण सस्कृति लगती है जबकि सिंधु सभ्यता के लोग सुनियोजित नागरिक जीवन से भलीभांति परिचित थे। (2) आर्य धातुओ में सोने तथा चादी से परिचित थे और यजुर्वेद मे लोहे के प्रयोग के भी निश्चित सदर्भ मिलते है। सिंधु सभ्यता के लोग सोने, चादी का प्रयोग करते थे, किंतु उन्होने चादी का उपयोग सोने से अधिक किया, ताबे और कासे के विभिन्न आयुधों तथा उपकरणो का निर्माण करना वे जानते थे, किंतु लोहे से परिचित नही थे। (3) ऋग्वैदिक आर्यों के जीवन में अश्व का बडा महत्व था। किंतु सिंधु सभ्यता के लोग अश्व से परिचित थे—इस विषय मे निश्चित साक्ष्य नही हैं। (4) वेदों मे व्याघ्र का उल्लेख नही मिलता और हाथी का अत्यल्प मात्रा में उल्लेख मिलता है। किंतु सिंधु सभ्यता की मुद्राओ पर व्याघ्र और हाथी दोनों ही का पर्याप्त मात्रा मे अकन उपलब्ध है। (5) आर्य विभिन्न अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण करते थे। वे रक्षा उपायो मे कवच बनाना जानते थे, जबकि सिंधु सभ्यता के किसी भी स्थल की खोदाई से निश्चित रूप से रक्षा संबंधी कोई भी वस्तु अभी तक नही मिली। (6) आर्य गाय को विशेष आदर देते थे। पर सिंधु सभ्यता मे मुद्राओं तथा अन्य कलाकृतियों से लगता है कि गाय की विशेष महत्ता नही थी, गाय की अपेक्षा बैल का अधिक महत्व था। (7) आर्यों के जीवन संभवत मूर्तिपूजक नही थे। दूसरी ओर सिंधु सभ्यता के लोग मूर्तिपूजक थे। (8) सिंधु सभ्यता के स्थलो से नारी मूर्तिया प्रभूत संख्या मे उपलब्ध होने से ऐसा लगता है कि सिंधु सभ्यता के देवताओं मे मातृदेवी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। आर्यों मे पुरुष देवता अधिक महत्व-पूर्ण रहे हैं। देवियो का महत्व अपेक्षाकृत कम है। (9) मार्शल ने मोहेंजोदडो

1. मुख्य रूप से मार्शल पर आधारित।

और हड्प्पा में अग्निकुण्डों के अवशेषों का न मिलना इस बात का प्रमाण माना है कि यहां पर यज्ञादि का प्रचलन नहीं रहा होगा। जबकि आर्यों के धार्मिक जीवन मे यज्ञों का अत्यंत महत्व रहा है। (10) सिंधु सभ्यता की मुद्राओं और अन्य उपकरणों से स्पष्ट है कि लोग लिखना जानते थे किंतु आर्यो के विषय में कुछ विद्वानों की धारणा है कि वे लिखना नही जानते थे और अध्ययन-अध्यापन मौखिक रूप से करते थे। (11) ऋग्वेद में असुरो के दुर्गों का उल्लेख है और हम यह जानते है जानते है कि सिंधु सभ्यता के सभी प्रमुख नगर दुर्ग के रूप में निर्मित थे। (12) अनार्यों को चपटी नाकवाला भी कहा गया है। हड़प्पा सस्कृति की कुछ मूर्तियों मे भी चपटी नासिका दिखलायी गयी है। आर्यों की नाक प्रखर होती थी।

कुछ विद्वानों ने हड़प्पा सभ्यता और आर्य संस्कृति को एक ही माना है। उनके अनुसार दोनो मे जो विभेद है वह समय का अंतर मात्र है। उनके अनुसार ऐसी स्थिति मे वैदिक सभ्यता या तो हड़प्पा सभ्यता की जन्मदात्री थी अथवा उससे ही विकसित थी। किंतु मार्शल के अनुसार इस मत को स्वीकार करने मे कई कठिनाइया है। उनके अनुसार यदि यह मान लिया जाय कि वैदिक सस्कृति हड़प्पा सभ्यता से पहले की है तो ऐसी कल्पना करना युक्तिसंगत ही होगा कि वैदिक ग्रामीण सस्कृति से शनै शनै. हड़प्पा, मोहेजोदडो जैसे नगरों का विकास हुआ। ऐसी स्थिति मे विकास के लिए काल का अतर अवश्य रखना होगा। किंतु प्रश्न यह है कि संस्कृति संबधी जिस तरह की सामग्री का ऋग्वेद मे उल्लेख है वह आगे हड़प्पा सभ्यता के काल मे क्यो नही मिलती ? उदाहरण के लिए यदि हड़प्पा सभ्यता की वैदिक सस्कृति पूर्वगामिनी है तो रक्षात्मक वस्तुओ (कवच आदि) का सिंधु सभ्यता मे अभाव क्यो है। सिंधु सभ्यता मे लोहे का प्रयोग क्यो नही मिलता, और अश्व जो वैदिक साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण पशु है, सिंधु सभ्यता के हड़प्पा और मोहेंजोदडो जैसे नगरो मे उसके निश्चित और प्रभूत मात्रा मे साक्ष्य क्यों नही मिलते ? गाय के स्थान पर वृषभ का धार्मिक महत्व कैसे हो गया ? सिंधु सभ्यता के कुछ स्थलों मे नव पाषाण कालीन उप करणो का मिलना इगित करता है कि सिंधु सभ्यता वैदिक संस्कृति की पूर्वा-गामिनी थी।

दूसरी ओर यदि सिंधु सभ्यता को ही वैदिक सस्कृति मानें और कालक्रम की दृष्टि से उसे वैदिक संस्कृति के पहले की माने तो इस बात का समुचित उत्तर नही मिल पाता कि जिन आर्यो ने हड़प्पा, मोहेंजोदडो और अन्य स्थलों पर ईंटो के भवनो का निर्माण किया था वही आगे चल कर वैदिक युग में लकडी-बास के मकान बना कर क्यों रहने लगे ? कैसे उन्होंने लिंग और मूर्तिपूजा को

भुला दिया (या उसे एकदम गौण स्थान दिया) और आगे चल कर ऐतिहासिक काल मे पुन बडे पैमाने पर अंगीकार कर लिया ? इसका भी उत्तर देना कठिन है कि किन कारणो से सिंध प्रदेश को, जहा पर सिंधु सभ्यता के कुछ सबसे महत्वपूर्ण स्थल मिले है, वेदों में विशेष महत्व नही दिया गया है। उपर्युक्त साक्ष्यो के संदर्भ मे इन दोनों सस्कृतियो के एक ही स्रोत होने का निश्चय न कर सकना दुष्कर लगता है। ऐसी सभावना अधिक है कि वैदिक संस्कृति हडप्पा सस्कृति की उत्तरगामिनी ही नही थी अपितु उसका विकास ही इतर परिस्थितियो मे हुआ था।

इसी प्रसग से सबंधित यह प्रश्न भी है कि यदि सिधु सभ्यता और वैदिक सस्कृति भिन्न है और वैदिक संस्कृति बाद की है तो क्या सिधु सभ्यता के अतिम चरण मे वैदिक संस्कृतिवालो से उनका सपर्क हुआ या वैदिक सस्कृति सिधु सभ्यता के समाप्त होने के बहुत बाद में आयी। इस विषय मे विद्वान् एकमत नही है।

मार्शल, जिन्होने सिंधु सभ्यता की तिथि 3250 से 2750 ई० पू० मानी थी, ने इस सभ्यता को न केवल अनार्य ही माना है, अपितु आर्यों के आगमन से बहुत पूर्व समाप्त हुई बताया है। गॉर्डन चाइल्ड और ह्वीलर, जो इस सभ्यता का प्रारभ लगभग 2500 ई० पू० और अत 1500 ई० पू० आकते है, ने आर्यों को इस सभ्यता के अत के लिए उत्तरदायी ठहराया है।

किंतु इस सिलसिले मे यह उल्लेख करना आवश्यक है कि वैदिक साहित्य के अध्ययन से अभी ठीक-ठीक इतिहास का निर्माण आसान नही। किसी वस्तु विशेष का उल्लेख न होना इस बात का प्रमाण नही कि वह वस्तु थी ही नही। फिर हाल ही की कुछ खोदाइयो से नये साक्ष्य भी उपलब्ध हुए है (जो मार्शल के समय तक ज्ञात् नही थे)। उदाहरणार्थ अब लोथल से घोडे की मृण्मूर्तिया मिली है। सुरकोटडा मे भी सिधु सभ्यता के सदर्भ मे घोडे की हड्डिया मिली है। यो मोहेंजोदडो से प्राप्त मृण्मूर्ति को भी कुछ लोगो ने घोडे की आकृति पहचाना था। मोहेंजोदडो ओर हडप्पा के उत्खनन मे तो अग्निकुड के निश्चित साक्ष्य नही मिले थे किंतु कालीबगा और लोथल मे अग्निकुडो के निश्चित प्रमाण मिल चुके है। यद्यपि कुछ विद्वान मार्शलके मत को ही मानते है। किंतु कई विद्वान् जिनमे टी० एन० रामचन्द्रन, केदारनाथ शास्त्री, पुसालकर, स्वामी शकरानन्द, बुद्ध प्रकाश, शि० रगनाथ राव आदि उल्लेखनीय है, सिधु-सभ्यता को आर्यों की ही सभ्यता मानते है।

बुद्ध प्रकाश तथा कुछ अन्य विद्वानो के अनुसार ऋग्वेद की बहुत सी सूक्तो

को मुद्राओ के अंकन द्वारा समझाया गया है। हड़प्पा के जिस स्थान मे ह्वीलर ने मंदिर होने की सभावना बतायी है वही के आयताकार राख युक्त अलग-अलग बंटी हुई इमारत की पहिचान बुद्ध प्रकाश ने वैदिक यज्ञवेदी से की है। कालीबंगां और लोथल की खोदाइयो में तो अग्निवेदियों के निश्चित् प्रमाण प्राप्त हुए हैं। कुछ विद्वान् इन्हे यज्ञभूमि मानते हैं। ऋग्वेद के अनुसार सोम यज्ञ की परिसमाप्ति पर पापों से विमुक्ति के लिए अवमृथ स्नान करना पडता था। मोहेजोदडो का विशाल स्नानागार ऐसे ही कार्यों के लिए प्रयुक्त रहा होगा। मोहेजोदडो के कुछ स्थलों से जो बर्तनों के ढेर के ढेर मिले है वे बुद्ध प्रकाश के अनुसार, यज्ञीय पात्र (कपाल) हो सकते हैं जिन पर यज्ञ के समय पिण्ड अर्पित किये जाते थे। ऋग्वैदिक एवं हड़प्पा सस्कृतियो के शवोत्सर्ग की परपराओं मे भी कुछ समानता थी। बुद्ध प्रकाश ने वैदिक साहित्य मे उल्लिखित दास, दस्यु और पणि की सिधु सभ्यता के व्यापारियो से पहिचान की है जिन्हे ऋग्वेद मे लालची, धनी, भेडिये के समान क्रूर कहा गया है। उनके अनुसार नागरिको के शोषण और अत्याचार के विरुद्ध ग्रामवासियो ने विद्रोह किया और नगरो को बर्बाद कर दिया। इस संदर्भ मे वह यह भी उल्लेख करते है कि दिवोदास को 'ऋणच्युत' अर्थात् लोगो को ऋण से मुक्ति प्रदाता बतलाया गया है।

शि० रगनाथ राव का मत है कि हड़प्पा सभ्यता मे विभिन्न जातिया थी। इनमे एक जाति भा-योरपीय (इडो-योरपीय) थी और जिसका उस सस्कृति मे अत्यत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। उनके अनुसार आर्य कई समूहो में आये थे और इनमे कुछ ऋग्वेदी आर्यों से भी पहले आ चुके थे। जिस समय ऋग्वेदीय आर्य भारत मे आये उस समय तक पहले के आये हुए आर्य यहा के लोगों के साथ घुल-मिल गये थे और वे उनके रहन-सहन और भाषा आदि से बहुत प्रभावित हुए थे। ऋग्वेदीय आर्यो ने उनको असुर, मृध्रवाच् और वैदिक परपरा को न मानने उल्लिखित वालो के रूप मे किया है। वैदिक साहित्य मे ही सुरों और असुरो को मूलत एक ही मूल का माना गया है। राव के अनुसार ऋग्वेद मे वर्णित दाशराज्ञ-युद्ध भी पहले आये हुए आर्यो (पुरुओ) और बाद मे आये आर्यों (भरतो) के बीच हुआ था।

राव लोथल का संदर्भ देते हुए कहते है कि यहा पर सिधु सभ्यता के लोगों द्वारा पशु-बलि दिये जाने और अग्निपूजा किये जाने तथा घोडे और चावल का ज्ञान होने के स्पष्ट साक्ष्य मिले है। उनका यह भी अनुमान है कि लोथल के लोग रथो से भी परिचित थे। वे यह भी कहते है कि ऋग्वेदीय आर्य भले ही ग्रामवासी रहे हों लेकिन उनसे पहले के आर्य नगरो की जनसंख्या का एक भाग थे। यों सिधु सभ्यता के हर नगर के आसपास ग्राम थे और स्वय इस सभ्यता

के लोग भी अंतिम चरण मे बहुत कुछ ग्रामीण हो गये थे । उनका कहना है कि लगभग 1900 ई० पू० में आर्यों का एक और समूह आया था । इन आर्यों को अपने अभियान के सदर्भ मे सिंधु सभ्यता के लोगो का सामना करना पडा था, जिनकी संस्कृति उस समय ह्रासोन्मुख थी । सिधु सभ्यता की कई जातियों में से एक ऋग्वेदीय आर्यों से पहले के आर्य भी थे । मातृदेवी और शिव अनार्य देवता हो सकते हैं, किंतु पशुबलि और अग्निपूजा आर्यों मे ही प्रचलित थी । जहा तक सिंधु सभ्यता के लोगो के लेखनकला से भलीभाति परिचित होने और आर्यों के लेखनकला से अनभिज्ञ होने के तर्क का प्रश्न है, राव के अनुसार यह हो सकता है कि आर्य लेखनकला से परिचित थे लेकिन उनके लेख शीघ्र नष्ट होनेवाली वस्तुओं पर लिखे होने के कारण उपलब्ध नही है । राव के अनुसार इस मत मे ज्यादा बल नही कि आर्य 1500 ई० पू० मे ही आये, यह अधिक तर्क संगत लगता है वे उससे काफी पहले यहा आ चुके थे ।

ऑल्चिन और श्रीमती ऑल्चिन का भी कहना है कि कार्बन–14 और अन्य नवीनतम विधियों के प्रचलन के बाद अब सिंधु सभ्यता की जो तिथिया ज्ञात है उनसे उसके आर्यों के सपर्क में आने की बात मे कोई विरोध तो नही ही मिलता है बल्कि उनके अनुसार यह मान लिया जाय कि सिंधु सभ्यता एक सास्कृतिक इकाई के रूप में लगभग 2150 ई० पू० मे प्रारभ हुई तो आर्य लोग इस सभ्यता के प्रारभ के प्रेरणा स्रोत के लिए भी उत्तरदायी हो सकते है । वे यह भी लिखते हैं कि हाल ही मे यूनान और एशिया-माइनर मे हुए शोध कार्य से ज्ञात होता है कि इस तिथि के आसपास भा-योरपीय लोगो की हलचल शुरू हो गयी थी ।

•

परिशिष्ट 13

सिंधु सभ्यता के बाद की कुछ उत्तर भारतीय संस्कृतियां

सिंधु सभ्यता के विश्रृंखलन के बाद उत्तर भारत में, इस सभ्यता के क्षेत्र मे विभिन्न संस्कृतियों के अवशेष पाये गये हैं। हडप्पा मे 'एच समाधि' संस्कृति, चन्हुदडो में क्रमश: झूकर और झागर संस्कृति, लोथल और रंगपुर मे चमकदार लाल रंग के मृद्‌भाडों की संस्कृति के अवशेष मिले है। 'गेरुए भाड' संस्कृति का काफी विस्तार मिला है और उसे ताम्र-निधानों से भी संबद्ध किया गया है। रोपड और आलमगीरपुर में सिंधु सभ्यता के बाद कुछ अंतराल से चित्रित धूसर भाण्ड मिले है। इन संस्कृतियों का सक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

एच कब्रिस्तान संस्कृति

हडप्पा मे सिधु सभ्यता के कब्रिस्तान से भिन्न एक और कब्रिस्तान मिला है जिसे 'एच' कब्रिस्तान सस्कृति नाम दिया गया है। इस संस्कृति के धारकों के विषय में अधिक जानकारी नही, ज्ञात सामग्री कब्रो मे प्राप्त वस्तुओ और शवों तक ही सीमित है। इस तरह के मृद्‌भाण्ड पहले केवल बहावलपुर के दो स्थानो पर ही प्राप्त हुए थे किंतु अब छिटपुट रूप से ऐसे मृद्‌भाण्ड पंजाब में रोपड, बाडा, सघोल इत्यादि कई स्थानो मे पाये गये है। सहारनपुर जिले के आम्रखेडी और बडागाव के अवशेषो मे कुछ उस तरह के बर्तनो के प्रकार उपलब्ध हैं। साकलिया के अनुसार बीकानेर और मध्यभारत मे भी इस तरह के बर्तन मिले है।

इस कब्रिस्तान के दो स्तर थे। 'स्तर दो' पहले का तथा 'स्तर एक' बाद का है। शायद इन स्तरो के बीच समय का अधिक अन्तर नही रहा। सबसे निचले स्तर (दो) मे शवों को 2·438 मीटर नीचे रखा गया था। शवों को पूरा लिटा कर दफनाया गया था। सामान्यतौर पर शव को पूर्व से पश्चिम या उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम दिशा में लिटाया गया। प्राय: सभी उदाहरणों में मृतकों के साथ भोज्य सामग्री रखी गयी थी। एक क्रब्र में जीवित बकरी रख दी गयी थी। दो कब्रों को छोडकर सभी में मिट्टी के बर्तन मिले। एक नारी

कंकाल के हाथ में सोने की एक चूडी थी। एक शव के तीन दांत सोने के तार से बंधे मिले उसके साथ कुछ मृद्भाण्ड भी मिले। साकलिया ने प्याले, आधार विहीन तश्तरी, 'फ्लास्क' तथा चपटे ढक्कनो की इसके विशिष्ट बर्तनो मे गणना की है। गुहा के अनुसार दूसरे स्तर के ककाल दीर्घशिरस्को के है; यह बात सिंधु सभ्यता के भी कई शव-ककालो पर भी लागू होती है।

कब्रिस्तान एच के दूसरे स्तर के शव ·61 मीटर से ·91 मीटर की गहराई मे थे। इनमें आंशिक शवोत्सर्ग किया गया। इस प्रकार की लगभग 140 समाधिया मिली है, जिनमे से लगभग एक दर्जन शव वच्चो के है। अस्थियो को मटके में रखने के बाद एक ढक्कन से उसे ढक दिया जाता था। ये मृत्पात्र अच्छी तरह से पकाये है और लाल रग के है। इन पर चमकीले रंग का लेप है।

इन मृत्पात्रो पर तरह-तरह के चित्रण हैं। मुख्यतया इन पर पौधे, वृत्त, विन्दु, सीधी तथा त्रिभुजाकार रेखाये इत्यादि हैं। पशु-आकृतियो मे वकरी, मोर और मछली विशेष उल्लेखनीय है। कुछ मृत्पात्रो पर ऐसे दृश्य चित्रित है जिनका सबध धार्मिक कथानक से हो सकता है। एक मे तो मोरों की पक्ति, नक्षत्र या सूर्य तथा वृत्त के अन्दर मानवाकृति है। एक अन्य बर्तन पर मोर तथा वडे सीगवाली बकरी चित्रित है।

एक मृत्पात्र बडे महत्व का लगता है जिस पर एक कथानक का क्रकिक चित्रण है। सर्वप्रथम इसमे दो मोर चित्रित है जिनके बाद एक मनुष्य दो गायो को पकडे खडा है। उसके समीप ही एक कुत्ता है। तत्पश्चात् एक विशिष्ट आकृति का साड है जिसके सीगो पर सात त्रिशूल की सी आकृतिया बनी है जो ध्वज हो सकते है। एक अन्य व्यक्ति दो गायो (या बैलों) तथा एक ध्वज के साथ चित्रित है। इस सपूर्ण चित्रण की पृष्ठ भूमि छोटे-छोटे चिह्नों, पत्तियो और टेढी मेढी रेखाओं से भरी है। इस चित्रण का अर्थ क्या है यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। ऋगवेद के 10वे मडल मे शवविसर्जन सबंधी कुछ सूत्रो की ओर वत्स ने ध्यान दिलाया है। इसके सदर्भ में कुत्ते यम के दूत हो सकते हैं, त्रिशूल आदि के साथ दिखाये गये पशु स्वर्ग के द्योतक, और बकरी मृतक के लिए दिशा खोजने वाला। लेकिन उक्त मडल मे शव दाह का उल्लेख है न कि आशिक मृद्भाण्ड शव विसर्जन और इसलिए समानता केवल ऊपरी है।

पशुओ की आकृतियो तथा दृश्याकन मे थोडी सी समानता कुल्ली सस्कृति मे ही उपलब्ध है। वैसे इनकी भाण्डों की कुछ विशेषताएं सुमेरी मृत्पात्रों मे भी प्राप्त है। रंगपुर के चमकदार लाल रंग वाले बर्तनों से भी किंचित साम्य उल्लेख्य है।

वत्स, जिन्होंने यहां पर खोदाई करायी थी उनकी यह धारणा थी कि उक्त मृदभाण्ड सिंधु सभ्यता के अंतिम चरण के समकालीन हैं जो उसके साथ चलती रही, और इसमें कुछ विदेशी तत्व भी है। गार्डन चाइल्ड का अनुगमन करते हुए ह्वीलर ने इस संस्कृति के लोगों की पहिचान आर्यों से करने का सुझाव दिया। उनके अनुसार इस सस्कृति के धारको का सिधु सभ्यता के विनाश मे योगदान रहा। किंतु ब्रजवासी लाल ने निर्दिष्ट किया कि ह्वीलर द्वारा 1946 मे हड़प्पा में कराये गये उत्खननों से एच-समाधि संस्कृति तथा सिधु सभ्यता का कोई सबंध नही प्रमाणित होता है। एच-कब्रिस्तान सस्कृति और आर-37 के क्षेत्र मे दोनो को आच्छादित करनेवाली तहे अलग-अलग हैं। सिंधु सभ्यता और एच-समाधि की तह के मध्य लगभग 4 फीट मोटाई की तह का अतर रहा। इन दोनो संस्कृतियो का परस्पर साक्षात्कार ही नही हुआ। अतः लाल ने बताया कि इस सस्कृति के लोगों को विजेता कैसे स्वीकार किया जा सकता है जबकि उस समय जिन्हे विजित माना गया है उन लोगो का अस्तित्व ही शेष नही रह गया था।

लाल का दूसरा तर्क यह है कि इस संस्कृति के अवशेष सरस्वती एवं गगा-यमुना दोआव मे नही मिले है जब कि यह क्षेत्र आर्यो को प्रमुख निवास भूमि रही, केवल बहावलपुर के दो स्थलो से ही इस तरह के पात्र उपलब्ध हुए है जबकि आर्यो का विस्तार कही अधिक भूभाग पर था। जब लाल ने यह तर्क दिया था तब तो स्थिति ऐसी ही थी, लेकिन अब यह तर्क उतना प्रभावशाली नही रहा क्योकि, जैसा ऊपर कहा गया है, इस तरह के भाण्डो से मिलते-जुलते भाण्ड कुछ अन्य स्थलों से प्राप्त हो चुके है।

लाल का तीसरा तर्क यह है कि कतिपय विद्वानो का मत है कि इडो-आर्य संस्कृति के जन्मदाता उत्तरी स्टैप्स के निवासी थे। उनका सिर बड़ा होता था। किंतु इन समाधियो मे जो अस्थिपंजर उपलब्ध है उनमे उत्तरी स्टेपी लोगो की विशेषतायें नही हैं।

अल्चिन द्वय के अनुसार सिधु सभ्यता के प्रारंभिक मृद्भाण्डो तथा एच-कब्रिस्तान के मृद्भाण्डो के बीच उतना अतर नही है जितना कि माना जाता है। यह सच है कि भाण्डों के कुछ प्रकार और डिजाइन सिंधु सभ्यता की परपरा से भिन्न है, किन्तु दूसरी ओर मृद्भाण्डो पर लाल लेप और काले रग से अभिप्रायो की चित्रण विधा सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्ड परपरा के ही अनुरूप है। ऐसा लगता है कि सिंधु सभ्यता और नवागतुको के कुम्हारो की कला मे सामंजस्य स्थापित हो गया था। आल्चिन द्वय का कहना है कि चूकि कब्रिस्तान-एच के

मृद्भाण्ड टेपे गियान (स्तर II, III) और जमशिदी II के समान हैं अतः कब्रिस्तान-एच की तिथि 1750 और 1400 ई० पू० के बीच होनी चाहिए।

चंहुदडो मे सिंधु संस्कृति कालीन भग्नावशेषों को जिन लोगों ने अपना आवास योग्य स्थान चुना वे झूकर संस्कृति के लोग थे। इस संस्कृति के अवशेष 1928 में सिंध के लरकाना से 6 मील दूर झूकर नामक स्थान पर सर्वप्रथम मिले थे। चंहुदडो मे आकर ये लोग वही की पुरानी ईंटों को लेकर और पुराने खडहरों का जीर्णोद्धार कर रहने लगे थे। वे सांस्कृतिक दृष्टि से हड़प्पा-संस्कृति से भिन्न थे। यह भिन्नता उनके द्वारा बनाये गये मृद्भाण्डों मे भी देखने को मिलती है। ज्यामितीय आलेखन यद्यपि हडप्पा विधा के अनुरूप ही काले रंग से लाल बर्तनों पर किया गया है किंतु भाण्ड हाथ से निर्मित है और सिंधु सभ्यता की अपेक्षा घटिया किस्म के है। इनका निचला भाग अधिकाशतया अच्छी तरह से तराशा गया है। यह विशेषता हडप्पा सस्कृति के बर्तनों मे नही मिलती है। इस संस्कृति की भाण्डों के अलंकरण बलूचिस्तान, हडप्पा-संस्कृति और मेसोपोटामिया की संस्कृतियो के अधिक निकट हैं। उदाहरण के लिए दौडती हुई लबे सीगवाली बकरी का चित्रण बलूचिस्तान के पेरियानो घुंडई और मटको तथा तश्तरियो पर कमल पुष्प जैसा अलकरण दक्षिणी बलूचिस्तान के जारी-दंब के एक मृद्भाण्ड खड पर प्राप्त है। बडे-बडे मटके, साधारण तश्तरियां, प्याले सदृश मटके जिनमे घुडीदार हत्थे और पालिशदार लेप सिंधु सभ्यता के मृद्भाण्डो के अनुरूप है। बर्तनों का साम्य केवल प्रकार तक ही सीमित है, उनकी बनावट, अलंकरण और आकार मे काफी भिन्नता है। पीपल पत्र अलकरण जो हडप्पा सस्कृति में लोकप्रिय था उसका झूकर सस्कृति मे अभाव है। झूकर संस्कृति के बर्तनो पर चित्रित कुछ अभिप्राय आमरी संस्कृति के अभिप्रायों से समानता रखते है। इनमे लाल रंग की मोटी रेखाओ से बनाये तुल्य चतुर्भुज (rhomb), सनाल पुष्प, लटकन जैसे अभिप्राय सम्मिलित है। यों मेसोपोटामिया के टेल हलफ और झूकर सस्कृति के बर्तनों मे आकार-प्रकार मे कोई समानता नही है, लेकिन कुछ अभिप्रायों मे समानता है जैसे मोटी लाल रंग की रेखाओं का क्षैतिजीय विभाजन, चेक, टेढी-मेढी रेखाए, तुल्य चतुर्भुज, समतल लबवत छाया जो सबसे पहले मेसोपोटामिया के बर्तनों पर ही मिलती है।

झूकर संस्कृति के मृद्भाण्ड कुछ अन्य संस्कृतियों के मृद्भाण्डो से भी थोड़े-बहुत मिलते-जुलते है लेकिन इसे किसी संस्कृति विशेष से सबद्ध करना कठिन है। मैलोवन का विचार है कि टेल हलफ प्रकार के मृत्पात्रों (जिसका उद्भव सीरिया मे हुआ था) के निर्माता घुमक्कड थे और उनका संपर्क भारतीयों तथा बलू-

चियों के साथ हुआ। झूकर संस्कृति के अवशेषों से कुछ पत्थर की मुद्राएं भी प्राप्त हुई है जिनमे से दो उदाहरण छेददार मुद्राओं के हैं। इन्हे मैंके ने सिंधु संस्कृति के प्रभाव का द्योतक माना है। इन पर अभिप्राय के तौर पर मोर, मानव, पशु, हरिण, लम्बे सीगवाली बकरी, संयुक्त पशु और दो बैलों की आकृतिया हैं। ये सिंधु संस्कृति की मुद्राओ पर अंकित अभिप्रायों से भिन्न हैं। इनकी बनावट शाही तम्प और एलम कैम्पेडोसिया की मुद्राओं के समान है। इसके अतिरिक्त चहुदड़ों से प्राप्त हत्थे के लिए छिद्रवाली कुल्हाडी के समान कुल्हाडियों के उदाहरण पश्चिमी एशियायी देशो मे ही प्राप्त हैं।

चहुदडो को झूकर के बाद झागर संस्कृतिवालों ने अपना निवासस्थान चुना। इस संस्कृति के सर्वप्रथम अवशेष चंहुदडो से उत्तर-पूर्व लगभग 43 मील दूर झागर नामक स्थान से पाये गये थे। इस सस्कृति के अवशेषो के साथ रंगीन मृद्भाण्ड नही पाया गया है। उनके कुछ मृद्भाण्डों पर चाकलेट क्रीम या हल्के लाल रंग का लेप मिलता है। कुछ जुडवा बतन भी मिले है। जिनके सादृश्य हमे बलूचिस्तान के लाल रंग के मृद्भाण्डों मे प्राप्त है। काजल (?) के लिए प्रयुक्त बर्तनों को छोडकर प्राय सभी बर्तन धीरे-धीरे चलते हुए चाक पर बनाये गये थे। इन पर रेखाकन मिलता है। उनके भौतिक संस्कृति के अन्य उपादानो के विषय मे जानकारी नही है। शायद वे लोग झोपडियो मे रहते थे। मैंके ने झाकर सस्कृति को भील जैसे आदिवासी लोगो की सस्कृति होने की संभावना बतायी है।

इधर काठियावाड और कच्छ क्षेत्र मे सिधु संस्कृति के आकस्मिक अन्त का कोई प्रमाण नही है। अपितु वहाँ के निवासियो ने सिधु सस्कृति के ही तत्वों को नया रूप और रग देकर एक नयी परपरा का प्रारंभ किया। अब वे चमकीले लाल भाण्डों का निर्माण करने लगे थे। पहले चरण मे इनका अल्प मात्रा मे निर्माण हुआ, बाद के चरण मे (II C) वह विशाल पैमाने पर बनने लगे। प्याले, तश्तरिया और मटके की आकृतिया कुछ बदली बनायी गयीं। और चित्रण बर्तनो के उपरी भाग मे सीमित हो गया। चित्रणो मे सीढी, त्रिअरीय डिजाइन, प्रतिच्छेदी लटकन, छाया किये हीरक, अपुष्पपर्ण तिरछी और लहरीय रेखाओं के साथ कुछ पौधों को वरीयता दी गयी।

साधार प्याले और तश्तरिया राजस्थान के आहाड II मे प्राप्त इस तरह के भाण्डों के समान है। उल्लेख्य है कि इस तरह के प्याले और तश्तरिया रोपड तथा हडप्पा (आर–37) की समाधियों से भी उपलब्ध है। प्यालों और तश्तरियों को तिर्यक, लहरिया, सीढीनुमा, अभिप्रायो से अलकृत किया गया।

तश्तरियों के किनारे मे गोलाई आ गयी । 'काले और लाल' मृद्भाण्ड जो इससे पहले चरण मे बहुत थोडी सख्या मे मिले थे काफी सख्या में मिले ।

चमकीले लाल मृत्पात्रों के साथ मनके, मृण्मूर्तिया और लघुपाषाण उपकरण भी मिले हैं । काचली मिट्टी और सेलखडी के मनकों का स्थान मिट्टी के मनको ने ले लिया था जो उनकी बिगडी आर्थिक दशा का द्योतक हो सकता है । मृण्मूर्तियो मे लोथल से एक घोड़े (चरण III) की आकृति का मिलना विशेष महत्त्वपूर्ण है । अब घर कच्ची मिट्टी से बनाये जाने लगे थे । नालियों की योजना और फर्श का ईंटो द्वारा निर्माण यह अतीत बातें रह गयी थी ।

लोथल और रगपुर के अतिरिक्त सोमनाथ के निकट हिरण्या नदी के तट पर प्रभास और राजकोट के समीप भादर नदी के तट पर रोजदी की खोदाइयों से भी हडप्पा सस्कृति के बाद की सामग्री उपलब्ध हुई हैं । प्रभास II के मृत्पात्रो मे क्रमिक ह्रास दिखलायी देता है । वहा से उपलब्ध प्यालो पर फलकों मे चित्रण हैं जो मालवा सस्कृति के साथ सम्पर्क होने का परिचायक है । रोजदी मे निम्नतम स्तरो में तो हडप्पा सस्कृति की विशेषताएँ रही किंतु आगे चलकर अतिम स्तर मे चमकीले लाल भाण्ड के साथ सफेद चित्रित 'काले और लाल भाण्ड का प्रसार हुआ ।

बाडा (पजाब) में प्राप्त अवशेष उत्तर हडप्पा कालीन है । पिछले वर्षो मे यहा पुन उत्खनन कराने और अन्य स्थानो से प्राप्त सामग्री का समकालिक अध्ययन करने मे शर्मा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बाडा संस्कृति में कुछ तत्त्व प्राग् हडप्पा सस्कृति की परपरा में है, जिसके सादृश्य बलूचिस्तानी सस्कृतियो मे प्राप्त है । यह परंपरा ग्रामीण संस्कृति के रूप मे हडप्पा सस्कृति के नागरिक जीवन के साथ-साथ चलती रही और कालान्तर मे सिधु सभ्यता के विशृंखलित होने के बाद इस सस्कृति के तत्व कुछ अधिक उभरे । अब तो बाडा की तरह के मृद्भाण्ड सतलज घाटी से लेकर दिल्ली के आस-पास कई स्थानो पर पाये गये है । इस सस्कृति मे सिधु सभ्यता के कुछ तत्व भी आत्मसात हो गये, जैसे वर्तनो के कुछ आकार प्रकार और चित्रित अभिप्राय ।

वडागाव और आवखेडी, जिनका परीक्षात्मक उत्खनन कराने का श्रेय मधुसूदन नरहर देशपाण्डे को है, से गेरूए मृद्भाण्ड मिले । साथ ही कुछ मृद्भाण्डों मे हडप्पा सस्कृति के अंतिम प्रकाल की तथा कुछ कब्रिस्तान एच और झूकर संस्कृत के मृद्भाण्डों की विशेषताये भी देखी गयी है । बडगाव के निम्नतम स्तर मे अलकरण की विविधता से युक्त मृत्पात्र खंड मिले जिन्हे साधारण तौर पर ग्रीवा से मोटी रेखाओं द्वारा चित्रित किया गया था । यहा के ऊपरी

स्तरों से बर्तनों पर आबखेडी से साधार प्याले, मुडे हुए किनारेवाले छिछले पात्र, छोटे प्याले और बर्तन, रस्सी के निशान के तरह के अभिप्रायवाले भाण्ड और फैले (flaring) किनारे वाले पात्र पाये गये है। मृण्मय कूबडा बैल और कुछ मृत्पिड (केक) की प्राप्ति सिंधु सभ्यता की निकटता के द्योतक है। उत्खननो में ताम्र निर्मित कोई वस्तु नही पायी गयी है। कुछ चर्ट फलक अवश्य मिले है। आबखेडी के निवासी ईंटें बनाना व पकाना जानते थे। उन्होंने इनसे चूल्हे तो बनाये किंतु मकान नही।

उत्खनन के निदेशक देशपाण्डे का विचार है कि बडगाव की वस्तुएं हड़प्पा सस्कृति के अंतिम प्रकाल की तथा आबखेडी की ह्रासोन्मुख सिधु सस्कृति की परिचायक लगती है। उत्खननों से कुछ अनगढ लाल भाण्ड पाये गये है जिनपर उभारदार लहरिया अलकरण है। इससे मिलता-जुलता अलकरण परवर्ती कालीन कुछ चित्रित धूमर भाण्डो पर भी देखा गया है।

सिंधु सभ्यता के बाद की संकृतियों मे गेरुए मृद्भाण्ड सस्कृति का कम महत्त्व नही है। ये भाण्ड कुछ विद्वानों के अनुसार दीर्घ काल तक जलमग्न अवस्था मे रहने के फलस्वरूप बहुत जीर्ण शीर्ण दशा मे मिले है। यह लगभग 1,35,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र मे पाये जा चुके है। यह हरियाणा, पंजाब, राजस्थान और उत्तर प्रदेश मे मिले है। उत्तर प्रदेश मे ऐसे मृद्भाण्ड बहादराबाद, आबखेडी और बडगाव, हस्तिनापुर, अहिच्छत्रा तथा अतरजीखेडा के उत्खननों से भी प्राप्त हुए है। कुछ स्थलो पर वे लौह युग के प्रारंभिक काल की चित्रित धूमर भाण्ड के प्रयोग करनेवाली सस्कृति के नीचे कुछ अतर के साथ पाये गये है। बहादराबाद मे गगा नहर की खादाई के दौरान एक ताम्रोपकरण निधान की प्राप्ति हुई थी। यह जानने के लिए कि इनके साथ और कौन-सी भौतिक सामग्री सबधित है वहा पर एक परीक्षात्मक उत्खनन किया गया। इस उत्खनन मे गेरुए रग के मृत्पात्र उपलब्ध हुए। राजपुर पार्श (कानपुर जिले मे) जहाँ पर पहले एक ताम्र निधि पायी जा चुकी थी के उत्खननों से ऐसे ही प्रमाण मिले है। अब सैफाई की खोदाई मे ताम्रोपकरण निधान के कुछ उपकरण और गेरुए रग के मृत्पात्रों के एक साथ मिलने से दोनो का एक ही सस्कृति के होने की संभावना बढी है। हस्तिनापुर और कुछ अन्य स्थलों मे ये भाण्ड चित्रित धूसर भाण्ड से नीचे (पहले) के स्तरो मे मिले है।

निधानों मे प्राप्त ताम्र उपकरण निम्नलिखित है—चपटी कुल्हाडिया, लम्बी कुल्हाडिया, 'कधे' वाली कुल्हाड़िया, फैली मूंठवाली तलवार, हारपून, छल्ले और मानवाकृति। इनमे से लम्बी कुल्हाड़िया (छेनिया) और चपटी कुल्हाडिया सिधु

सभ्यता में भी मिलती हैं। उपर्युक्त उपकरणो के प्राप्ति स्थानों का क्षेत्र काफी व्यापक है। अबतक के साक्ष्यों के अनुसार यह पंजाब, राजस्थान, गंगा-यमुना की घाटी, बिहार, उडीसा और हैदराबाद के क्षेत्र मे विभिन्न स्थलों के उपलब्ध हो चुके है।

हाइने गेल्डेर्न का विचार था कि यह उन आर्यों के आगमन के सूचक है जो काकेशस (रूस) और पश्चिमी ईरान से भारत लगभग 1200–1000 ई० पू० आये। उनके मत का आधार पंजाब और पश्चिमी एशिया के ताम्रोपकरणों में समानता मानना था। प्रारंभ मे स्टुअर्ट पिगट ने इसी मत को स्वीकार किया था किंतु आगे चलकर उन्होने अपनी धारणा बदल दी और यह सुझाव दिया कि ये हडप्पा-संस्कृति के उन विस्थापित लोगों के चिह्न है जिन्होंने पश्चिम की ओर से हुए आक्रमणों से बचने के लिए पूर्व की ओर गगा घाटी मे आश्रय लिया। राव भी इन्हे ह्रासोन्मुख सिंधु सभ्यता के लोगों की कृतिया मानते है। मिर्जापुर की एक प्रागैतिहासिक गुफा मे गैडे के शिकार के दृश्य मे कांटेदार हारपून के चित्रण के आधार पर ब्रजवासी लाल ने यह मत व्यक्त किया है कि इन ताम्र उपकरणो के निर्माता मुण्ड आदिवासी थे जिनका विस्तार किसी समय उत्तरी भारत के विस्तृत क्षेत्र मे था। स्वराज्य प्रसाद गुप्त भी इन्हे मुण्ड जाति की कृति मानते है। उनका सुझाव है कि ताम्रोपकरण निधान के उपकरणों का निर्माण बिहार मे हुआ जहा पर ताम्र की खदाने भी थी। सर्वप्रथम साधारण किस्म के औजार कुल्हाडिया आदि बनायी गयी तत्पश्चात इन्ही से गगा-घाटी मे विकसित औजारो का निर्माण हुआ। 'मानवाकृति' उपकरण इसी वर्ग मे रखा जा सकता है।

इस संदर्भ मे खुर्दी (राजस्थान के नागौर जिले मे) को ताम्रोपकरण निधान का उल्लेख करना असंगत न होगा जिसमे कुछ नालीदार आकर्षक प्याले प्राप्त हुए है। इस तरह के मृण्मय तथा धातु निर्मित प्याले ईरान के गियान-प्रथम और सियाल्क (नेक्रोपोलिस 'बी') मे विशेष लोकप्रिय थे। ताम्रोपकरण निधान के लोगों का सम्पर्क मध्य भारतीय ताम्राश्म संस्कृति के साथ भी हुआ था। कुछ चपटी कुल्हाडिया नावदाटोली के उत्खनन में मिले थे। साकलिया का विचार है कि इनका सम्बन्ध पुलिन्द जाति से रहा होगा क्योंकि यह क्षेत्र प्राचीन काल से इस जाति का कार्यस्थल रहा है। किंतु इन कुल्हाडियो पर वृत्ताकार छिछले गर्त मिले है जो ताम्र निधानों की कई कुल्हाडियो पर मिली है। इसे ताम्रनिधि संस्कृति एवं मध्य भारत की ताम्र-पाषाण संस्कृति के मध्य सम्पर्क का द्योतक मानना युक्तिसंगत लगता है। मीताथल (हरियाणा) में भी अंतिम हडप्पा संस्कृति के संदर्भ मे ताम्र-संचय के उपकरण मिले हैं और चांदोली से 'मध्य-

भारतीय ताम्रश्म संस्कृति के संदर्भ में जैसा ऊपर कहा जा चुका है, कुछ विद्वान गेरुए मृद्भाण्ड को ह्रासोन्मुखी सिंधु सभ्यता के लोगों की कृति मानते हैं, किंतु अभी तक ऐसा कोई स्थल नही ज्ञात है जहा पर सिंधु और गेरुए मृद्-भाण्ड संस्कृतियों के बीच की निश्चित कडी मिली हो। हस्तिनापुर में लाल ने गेरुए भाण्ड की तिथि 1200 ई० पू० आकी थी। ताम्रोपकरण समूह के मानवाकृति से बहुत मिलता-जुलता उपकरण लोथल में उपलब्ध हुआ है जिसकी तिथि लगभग 1900 ई० पू० आकी गयी है। अभी हाल ही मे अतरंजी खेडा, लाल-किला, झिझन तथा नसीरपुर से कुछ मृद्भाण्ड खंडो को लेकर तापसदीप्ती विधि से तिथिकरण किया गया है। अधिकाश तिथियां 2000 ई० पू० के पहले पडी है, तीन तिथिया 2000 ई० पू० से 1500 के बीच की तथा दो 1500 ई० पू० के बाद की है (देखिये परिशिष्ट 11)।

रोपड और आलमगीरपुर मे सिंधु सभ्यता के बाद जो नवागंतुक आये जो लौह के प्रयोग से परिचित थे और एक विशिष्ट प्रकार के भाण्ड 'चित्रित धूसर भाण्ड' का प्रयोग करते थे। इनकी सर्वप्रथम उपलब्धि अहिच्छत्रा के सन् 1941-44 के उत्खननों में हुई थी। ब्रजवासी लाल को हस्तिनापुर (जिला मेरठ) की खोदाइयो मे इस प्रकार के भाण्ड गेरुए रग के पात्रों के बाद कुछ अतर से, और काले ओपदार उत्तर भाण्ड के स्तरों के नीचे मिले थे। अब तक इनकी प्राप्ति पानीपत, इन्द्रप्रस्थ, तिलपत, सोनपत, बैराट, नोह, कौशाम्बी, श्रावस्ती इत्यादि कई अन्य स्थलों मे हो चुकी है। उज्जैन मे भी सर्वेक्षण के दौरान सतह से अत्यल्प संख्या मे इस तरह के मृद्भाण्ड खड प्राप्त हुए हैं। इनके कई प्राप्ति स्थल ऐसे है जिनका महाभारत मे उल्लेख है। लाल ने हस्तिनापुर के उत्खननो से प्राप्त चित्रित धूसर-भाण्ड की तिथि 1100-800 ई०पू० निर्धारित की थी। इधर कुछ स्थानों के उत्खननों से कार्बन-तिथिया ज्ञात हुई है। अतरंजीखेडा (जिला एटा) मे इस सस्कृति के प्रारंभिक स्तर की तिथि 1025 + 110 ई०पू० और अंतिम स्तर की 535 ई०पू० पायी गई है। नोह (भरतपुर) की कार्बन–14 तिथि 821 से 604 ई०पू० के बीच और अहिच्छत्रा की 475 ई०पू० ज्ञात हुई है। विभिन्न कार्बन–14 तिथियो का परीक्षण कर अब कुछ पुरातत्ववेत्ता इस संस्कृति का प्रारंभ लगभग 800 ई०पू० मानने के पक्ष मे हैं। चित्रित धूसर-भाण्ड का निर्माण विशुद्ध और अच्छी तरह घुटी हुई मिट्टी द्वारा किया गया था। ये ऐसे बंद भट्टों मे पकाये गये थे जिनमे ताप को शनै. शनै कम करने की व्यवस्था थी। बर्तना मे प्रमुखतया छिछली और गहरी तश्तरिया और कटोरे मिले है इन पर काले रंग से स्वस्तिक, वृत्त, बिंदु, लहरदार रेखाओं आदि का ज्यामितीय अलंकरण मिलता है। इस सस्कृति के संदर्भ मे लोहे के बाणाग्र, छेददार चूल,

और भाले के फल मिले हैं। नोह से कुल्हाड़ियां भी मिली है। पत्थर के उपकरण नही मिले। ताबे की वस्तुओं में बाणाग्र, पिन और अजनशलाकाएं उल्लेखनीय हैं। शीशे के मनके और चूड़िया भी बनाये गये थे। कुछ वस्तुओ की पहचान खेल की गोटी से की गयी है। विस्तृत खोदाई के अभाव मे आवास व्यवस्था की विशेष जानकारी नही, किंतु इतना स्पष्ट है कि भवन मिट्टी और लकडी से बने थे। अन्नो में चावल से भी परिचित थे। मास भोजन भी प्रचलित था खिलौने गडियों से आवागमन के लिए पहियो वाली गाडी का प्रयोग होने का अनुमान लगा सकते है।

हस्तिनापुर-उत्खनन के निदेशक लाल ने चित्रित धूसरभाण्ड का आर्य सस्कृति का परिचायक होने की सभावना व्यक्त की थी। इस भाण्ड से कुछ मिलते जुलते भाण्ड सिसली, शाही तम्प (बलूचिस्तान) और हाल ही मे गधार प्रदेश में ज्ञात 'गंधार-कब्रिस्तान सस्कृति' के सदर्भ मे मिले है। लेकिन इस सस्कृति के धारको के बारे मे निश्चित धारणा बनाने से पूर्व विस्तृत सर्वेक्षण एव उत्खनन अपेक्षित है।

●

मुख्य संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. Agrawal, D. P., *The Copper Bronze Age in India*, (Delhi, 1971)
2. Agrawal, D P. and Ghosh, A. (ed.), *Radio-Carbon and Indian Archaeology* (Bombay, 1973).
3 Agrawal D. P. and Kusun gar, S., *Prehistoric Chronology and Radio-Carbon dating in India* (Delhi, 1974)
4. अग्रवाल, धर्मपाल तथा अग्रवाल, पन्नालाल, **भारतीय पुरैतिहासिक पुरातत्त्व** (लखनऊ, 1975)
5 Allchin, Bridget and Raymond, *The Birth of Indian Civilization* (Harmondsworth, 1968)
6 Childe, V G, *New Light on the Most Ancient East* (New York, 1957)
7 Fairservis, W A, *The Roots of Ancint India*, (New York 1971)
8 Gordon, D H, *The Prehistoric Background of Indian Culture* (Bombay, 1958)
9 Gupta, S. P, *Disposal of the Dead and Physical Types in Ancient India* (Delhi, 1972)
10 काला, सतीशचन्द्र, **सिंधु सभ्यता** (इलाहाबाद, 1955)
11 Mackay, E J. H, *Early Indus Civilization*, 2nd ed, (London, 1948)
12 Mackay, E J H, *Chanhudaro Excavations, 1935-36* (New Haven, 1943)
13. Mackay, E. J H, *Further Excavations at Mohenjodaro*, 2 vols, (Delhi, 1934-38)
14 Marshall, J. (ed.) *Mohenjodaro and the Indus Civilization*, 3 vols. (London, 1931)
15 Misra, V N. and Mate M S (ed) *Indian Prehistory 1964* (Poona, 1965)

16. Piggott, S , *Prehistoric India* (Harmondsworth, 1961)

17. Majumdar, R. C. and Pusalker, A. D., (ed.) *The History and Culture of the Indian, People, Vol. I, The Vedic Age* (London, 1951)

18. Rao, S. R , *Lothal and the Indus Civilization* (Bombay, 1973)

19 Sankalia, H. D , *Prehistory and Proto-history of India and Pakistan*, 2nd ed (Poona, 1974).

20. Sastri, K N., New Light on the *Indus Civilization*, 2 Vols (Delhi, 1957, 1965)

21. शास्त्री, केदारनाथ, **सिंधु सभ्यता का आदि केंद्र हड़प्पा** (देहली, 1959).

22. Vats, M. S , *Excavation at Harappa*, 2 Vols (Delhi, 1940)

23 Wheeler, R E. M , *Erly India and Pokistan* (London, 1959)

24 Wheeler, R. E. M., *Civilization of the Indus Vally and Beyond* (London, 1965)

25 Wheeler, R E. M., *The Indus Civilization* (Supplementary volume to Cambridge History of India) 3rd ed (Cambridge, 1968)

सिंधु सभ्यता संबंधी विस्तृत ग्रंथ-सूची एवं लेख-सूची के लिए देखिए B M Pande and K. S. Ramchandran, *Bibliography of the Harappan Culture* (Florida, 1971)

•

1 कच्ची ईंटों की सुरक्षा दीवार (दो चरण), हड़प्पा (एं. इ.)
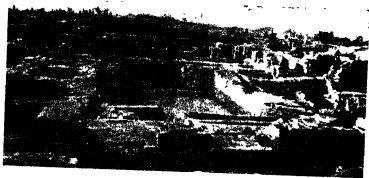
2 विशाल स्नानागार, मोहेंजोदड़ो (मो. इ सि. XXI, B)
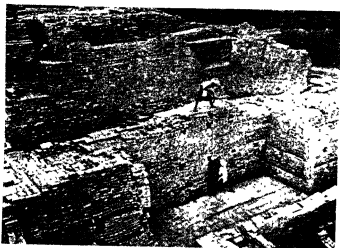
1 विशाल अन्नागार का एक भाग, मोहेंजोदड़ो

2 अन्न कूटने के लिए ईंटों के वृत्ताकार चबूतरे, हड़प्पा (मो इ मि LIVA)
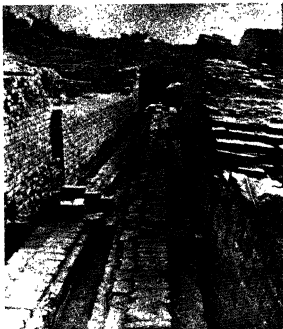
1 ढकी नाली, मोहेंजोदड़ो

2 टोडा मेहराब, मोहेंजोदड़ो (मो. इं सि XXIV, b)
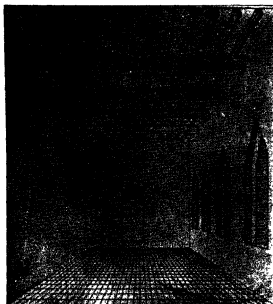
1 एक हाल के भीतरी भाग का पुनर्गठन, मोहेंजोदडो (मो इं मि LXIII)

2 अन्नागार, हडप्पा (ए ह VI.)
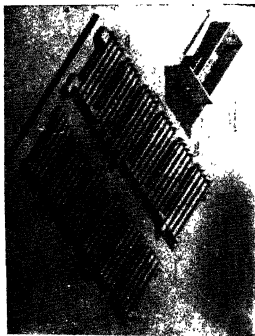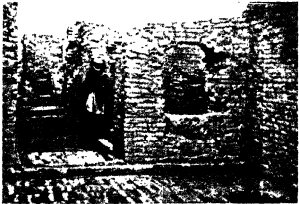
1 भवन में खिड़की का एक उदाहरण, मोहेंजोदड़ो (मो इ सि LV, C.)
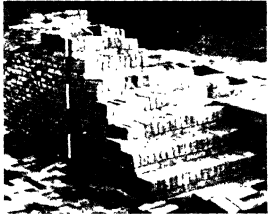
2 सीढ़ी, मोहेंजोदड़ो

3 घर के भीतर कुआँ, मोहेंजोदड़ो (फ ए ए मो XL a)

1 भाण्डागार के अवशेष, लोथल (लो इ मि IX 1)

2 गोदीवाडा, लोथल (ह्वीलर, इं मि)

1 नालियाँ, लोथल (ललितकला)

2 भवन और सडकें, कालीबंगा (इ आ॰ रि॰)

1. अलकृत ईंटों से निर्मित फर्श, कालीबंगा (कल्चरल फोरम)

2 सड़क, कालीबगा (इ. आ. रि)

1

2 3
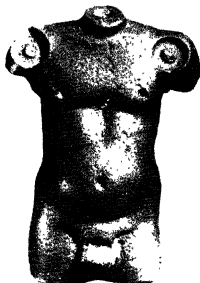
1. योगी (पुरोहित), मोहेंजोदड़ो (मो. ड मि XCVIII, 1-2)

2. पत्थर का धड़ (नर्तकी ?) हड़प्पा, (ए. ह)

3 लाल बलुआ पत्थर का धड़, हड़प्पा (ए. ह.)
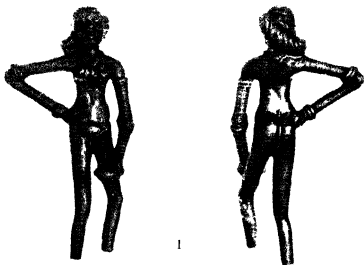
1

2

1 कास्य नर्तकी, मोहेंजोदडो (मो इ सि XCIV, 6-8)
2 पुरुष शीर्ष मोहेंजोदडो, (मो इ. सि XCIX, 4-5)

नारी (मातृदेवी), मृण्मूर्ति (मो. इं. सि. XCIV, 14)

नारी (मातृदेवी), मृण्मूर्ति, मोहेंजोदड़ो
(फ. ए मो. LXXV, 21)

1

2

3

4

1. मृण्मय शीर्ष, चन्हुदडो (ए. च.)
2 मृण्मय शीर्ष, मोहेंजोदडो (फ ए मो. LXXIV, 21)
3 गिलहरी, कॉचली मिट्टी, हडप्पा (ए. ह LXXVIII 29)
4 बंदर, काँचली मिट्टी, मोहेंजोदडो (मो इ सि XCVI, 13)

1 वृषभ मृण्मूर्ति, मोहेंजोदडो (मो इ. मि XCVII, 23)

2 महिष मृण्मूर्ति, मोहेंजोदडो (मो इ मि XCVII, 22)

3. गेंडा-सिर, मृण्मय, लोथल (इ आ रि 1957-58 XVIII, top left)
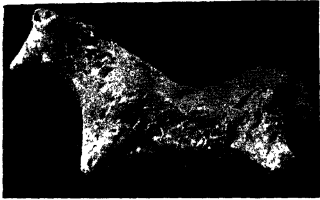
1 घोडा, मृण्मूर्ति, लोथल (लो इं सि XXIII A)

2 महिष, कास्य, मोहेंजोदडो (फ. ए. मो LXXI, 23)

3 वृषभ मृण्मूर्ति, लोथल (लो इ सि)
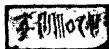
1 पशुपति (?) मुद्रा, मोहेंजोदडो (फ ए मो C, F), 2 कालीबंगा बेलनाकार मुद्रा एव मुद्रा छाप, 3 मुद्रा छाप, 4 तीन सिर वाला काल्पनिक पशु (फ ए मो XCVI, 494), 5 काल्पनिक पशु, 6 शृंग-युक्त पुरुष बाघ पर आक्रमण करता हुआ (मो इं सि CXI, 357), 7 काल्पनिक बाघ मुद्रा, मोहेंजोदडो (मो इं सि CXII, 386)

1 एकश्रृंगी पशु, 2 वृषभ, 3 बलि दृश्य (?), 4 गैंडा, मोहेंजोदड़ो (फ ए मो XCIX, 651), 5. 'फारस की खाड़ी' मुद्रा प्रकार, लोथल (लो इ. सि XXVID)
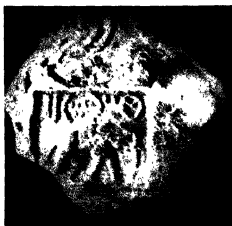
1 कपड़े के निशान वाला मुद्रा छाप, लोथल
(एं इ 18-19, XLIX, 6)

अ

आ

2 (अ) शृंगी देवता मृत्पिंड कालीबंगा, (आ) उपर्युक्त बलिदृश्य

1 2 3

4

5

मृदभाण्ड 1 मोहेंजोदडो (मो इ सि LXXXVII, 4), 2 मोहेंजोदडो (मो इं सि XXVIII, 1), 3. लोथल (लो इ मि. XXVIII E), 4. हड़प्पा (एं इ)

2 ए
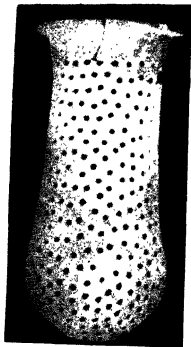
1 कलश, लोथल (लो इं सि XXVIII B), 2 सछिद्र पात्र, लोथल (लो. इ सि XXVIII D), 3 पक्षी, वृक्ष तथा हरिण चित्रण युक्त पात्र, लोथल (इ. आ रि. 57-8, XVI(a)

1
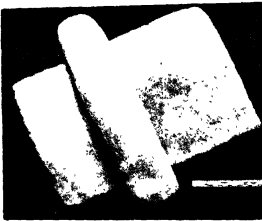
2

1 चर्ट फलक, हड़प्पा, 2 सिल बट्टा, पत्थर, लोथल
(लो इं. सि. XXXI A)

4
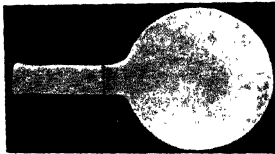
1 पांसे, मिट्टी, लोथल (लो. इ मि XXXIIIC), 2 बाट, पत्थर कालीबंगा (एक्सपीडीशन, Vol 17, 2, winter 1975, p. 28, Fig 3), 3 दर्पण, तांबा, हड़प्पा, 4 पैमाना, हाथी दांत, लोथल (लो इ सि XXXIIB)
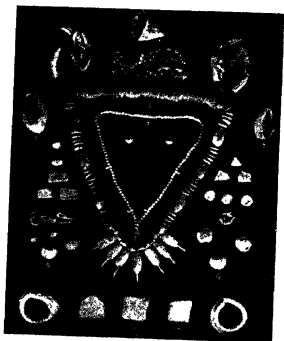
1 आभूषण, मोहेंजोदड़ो

2 आभूषण, मोहेंजोदड़ो (मो इं सि CXLIX)
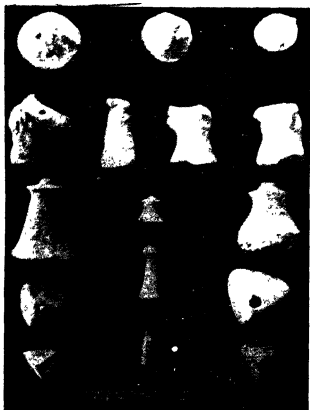
1 शतरंज जैसे खेल की गोटिया, लोथल (लो इ सि XXXIV A)
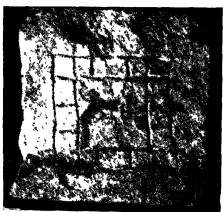
2 ईंट पर अंकित खेल के लिये निशान, लोथल
(लो इ सि XXXIII D)
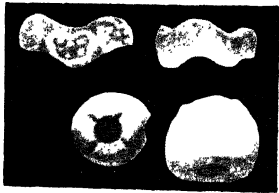
1

2

3

1. चक्र, मोहेंजोदडो 2-3 लिङ्ग, मोहेंजोदडो (मो इं. सि)

1 अग्निस्थान, कालीबगा (इं आ. रि)

2 अग्निवेदिका, कालीबंगां (इ आ रि)

1 सामूहिक नरकंकाल, मोहेंजोदड़ो (मो इ मि XLIV, a)

2. पात्र शवाधान, हड़प्पा (ए ह L, a)
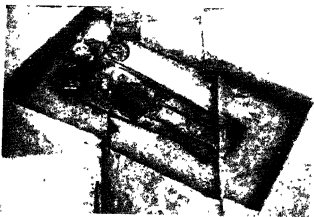
1 शवपेटिकायुक्त शवाधान, हड़प्पा (ए इ)

2 ईंटों में चिह्नित शवाधान, हड़प्पा (ए इं)

1 युगल एवं एकाकी शवाधान, लोथल (लो इ मि XXXVIII, C)

2 युगल शवाधान, लोथल (लो इ मि XXXVIII, B)